विष्णु पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(...ल हिन्दी भाष्य सहित जनोपयोगी संस्करण)

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन, २० स्मृतियों, १८ पुराणों, योग वासिष्ठ, गृह्य सूत्र संग्रह, बृहदारण्यकोपनिषद् आदि के प्रसिद्ध भाष्यकार और हिन्दी के लगभग १५० ग्रन्थों के रचयिता।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब ... र, बरेली-२४३००१ (उ०प्र०)

विष्णु पुराण

(द्वितीय खण्ड)

[सरल भाषानुवाद सहित]

सम्पादक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन, योग वासिष्ठ,

२४ गीता, २० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के

प्रसिद्ध भाष्यकार
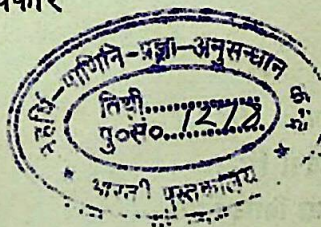
प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेद नगर)

बरेली—२४३००१ (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली २४३००१ (उ.प्र.)

★

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

★

संशोधित संस्करण
१९७५

मुद्रक :
देवदत्त मिश्र
यमुना प्रिन्टिंग प्रेस,
आर्य समाज रोड, मथुरा।

★

मूल्य :
ग्यारह रुपये मात्र

दो शब्द

विष्णु-पुराण के इस द्वितीय खण्ड में जिन विषयों का विवेचन किया गया है वह अनेक दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनके चतुर्थ अंश में जो सूर्य और चन्द्रवंश के राजाओं का वर्णन किया गया है वह संक्षिप्त होते हुए भी अन्य पुराणों की अपेक्षा अधिक क्रमबद्ध है और उसके पढ़ने से भारतवर्ष के इन दो प्रमुख शासक परिवारों के नरेशों का सामान्य परिचय अच्छी तरह मिल जाता है। यद्यपि पौराणिक वर्णनों में प्राचीन घटनाओं का जो समय दिया गया है वह ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमें हजारों और लाखों की संख्या से कम की बात ही नहीं की गई है, तो भी भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की खोज करने वालों ने पुराणों की वंशावलियों का उपभोग किया है और अनेक पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों में दी गई राजाओं की नामावलियों की तुलना करके उस अज्ञात काल की एक मोटी रूपरेखा प्रस्तुत की है। ऐतिहासिक विद्वानों ने इस निगाह से 'विष्णुपुराण' को अधिक प्रामाणिक माना है और उसका जिक्र हम अनेक देशी और विदेशी इतिहास ग्रन्थों में पाते हैं।

पञ्चम अंश में जो कृष्ण चरित्र दिया गया है उसमें भी ऐसी ही विशेषताएँ पाई जाती हैं। यों तो 'भागवत' में भगवान् कृष्ण का जो वर्णन मिलता है वह भक्ति और साहित्यिक उच्चता की दृष्टि से सर्वाधिक प्रसिद्ध है और ब्रह्म-वैवर्त पुराण में भी गोकुल, वृन्दावन में निवास करने के समय का वर्णन बहुत विस्तार, रोचकता और शृङ्गार-रस के साथ वर्णन किया गया है, पर 'विष्णु पुराण' में थोड़े से पृष्ठों में समस्त कृष्ण चरित्र जिस प्रकार स्वाभाविक ढंग से लिखा गया है और व्रज तथा द्वारिका के कार्यकलापों के वर्णन में जो उचित अनुपात

तथा संतुलन का ध्यान रखा गया है उससे इसकी लेखन सम्बन्धी श्रेष्ठता स्पष्ट सिद्ध हो जाती है। यही कारण है कि सभी पुराणों से छोटा होते हुए भी इसका महत्व अधिक माना गया है और विद्वन्मण्डली में भागवत के पश्चात् इसी का प्रचार अधिक देखने में आता है।

अन्तिम अंश में कलियुग की जो विशेषताएँ और अध्यात्मक मार्ग की शिक्षाएँ मिलती हैं उन्हें भी अपने ढंग की अनूठी ही कहा जा सकता है। लेखक ने वर्तमान युग की उपयोगिता जिस प्रकार प्रतिपादित की है वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है। अनेक पौराणिक लेखकों ने जिस प्रकार कलियुग को पापों की खान और दुष्कर्मों का आगार बतलाने में ही अपनी शक्ति खर्च कर दी है उसे व्यक्ति तथा समाज के कल्याण की दृष्टि से उपयोगी नहीं कहा जा सकता। किसी के दोषों का डंका पीट-कर हम उसका अधिक सुधार नहीं कर सकते। इसका मार्ग तो यही है कि उसकी अच्छाइयों को सामने लाकर उसे सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जाय। "विष्णुपुराण" में यही किया गया है।

इन बातों पर विचार करने से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह पुराण निस्सन्देह प्राचीन धार्मिक साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें धार्मिक शिक्षाओं को सरल तथा सुबोध रूप में उपस्थित करके पाठकों के लिये एक लाभकारी माध्यम प्रस्तुत किया गया है।

—सम्पादक
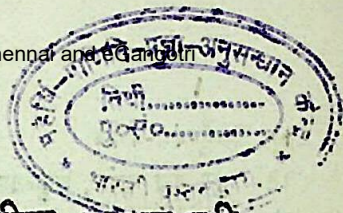
विष्णु पुराण के द्वितीय खण्ड की

विषय-सूची

अध्याय चतुर्थ अंश

३. मान्धाता की संतति, सगर की उत्पत्ति और विश्व-विजय ९
४. सगर के साठ हजार पुत्रों का भस्म होना, भागीरथ, खटवांग और भगवान राम का चरित्र १४
५. इच्वाकु के दूसरे पुत्र निमि के वंश का वर्णन २८
६. चन्द्रवंश का वर्णन, राजा पुरुरवा तथा उर्वशी का सम्मिलन ३२
७. जन्हुका गंगा पान, जमदग्नि और विश्वामित्र की उत्पत्ति ४१
८. क्षत्रवृद्धि का वंश वर्णन, धन्वन्तरि का जन्म ४५
९. रजि के वंश का वर्णन, दैत्यों और देवताओं के युद्ध में रजि की विजय ४७
१०. नहुष पुत्र ययाति का चरित्र, पुरुरवा का अपने पिता को यौवन-दान ५१
११. यदुवंश का वर्णन और सहस्रार्जुन चरित्र ५४
१२. राजा ज्यामघ का चरित्र ५७
१३. सत्वत की संतति का वर्णन, स्यमन्तक मणि की कथा, श्रीकृष्ण को अपवाद ६२
१४. अनमित्र वंश वर्णन ८२
१५. वसुदेव जी की संतति का वर्णन, कंस के हाथ छः पुत्रों का वध श्री कृष्ण जन्म ८६
१६. दुर्वसु वंश वर्णन ९२
१७. द्रुह्यु वंश वर्णन ९३

१८. अनु-वंश-वर्णन ९३
१९. पुरु वंश वर्णन, शकुन्तला की कथा ९५
२०. कुरु वंश वर्णन १०२
२१. भविष्य में होने वाले कुरुवंशीय नरेश १०७
२२. भविष्य में होने वाले इक्ष्वाकुवंशीय नरेश १०८
२३. भविष्य में होने वाले मगधवंशीय राजा १०९
२४. कलियुगी राजाओं और कलि अवस्था का वर्णन, राजवंश वर्णन और उपसंहार ११०

पंचम अंश

१. वसुदेवजी का विवाह, दैत्यों के भार से पीड़ित पृथ्वी का देवताओं सहित भगवान की शरण में जाना १२७
२. देवताओं द्वारा देवकी की स्तुति १३९
३. भगवान कृष्ण का जन्म और योगमाया द्वारा कंस को चेतावनी १४२
४. कंस का असुरों को कृष्ण वध का आदेश और वसुदेव-देवकी का जेल से छुटकारा १४७
५. पूतना बध १४९
६. शकट भंजन, यमलार्जुन उद्धार, वृन्दावन निवास १५३
७. कालिय दमन १६०
८. धेनुकासुर का वध १७३
९. प्रलम्ब नामक दैत्य का मारा जाना १७५
१०. शरद वर्णन तथा गोवर्धन पूजा १८०
११. भगवान कृष्ण का गोवर्धन धारण १८८
१२. इन्द्र द्वारा भगवान कृष्ण की पूजा १९१
१३. गोपों द्वारा भगवान का स्तवन, श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ रास-क्रीड़ा १९५
१४. वृषभासुर का वध, २०४

१५. श्रीकृष्ण जी को बुलाने के लिए कंस का अक्रूरजी जी को भेजना २०७
१६. केशी-वध २१०
१७. अक्रूर जी की गोकुल यात्रा २१४
१८. श्रीकृष्ण का मथुरागमन, गोपियों का विरह विलाप, अक्रूरजी का जमुना में भगवद्दर्शन २१९
१९. भगवान का मथुरा में प्रवेश और माली पर कृपा २२८
२०. कुब्जा से भेंट, धनुष भंग, कुवलियापीड़ तथा चाणूर आदि का नाश, कंस-वध २३२
२१. उग्रसेन का राज्याभिषेक, संदीपन के पास विद्याध्ययन २४८
२२. जरासन्ध का मथुरा पर आक्रमण २५२
२३. कालयवन की उत्पत्ति और मथुरा पर आक्रमण, श्रीकृष्ण का द्वारका गमन, कालयवन का भस्म होना २५५
२४. वलराम जी का व्रज गमन, गोपियों से भेंट २६२
२५. वलराम का जमुना-आकर्षण, रेवती से विवाह २६५
२६. श्रीकृष्ण का रुक्मिणी जी से विवाह २६८
२७. प्रद्युम्न का जन्म और शम्बरासुर द्वारा उसका हरण २७०
२८. प्रद्युम्न का विवाह, वलराम की द्यूत क्रीड़ा २७५
२९. नरकासुर-वध २७९
३०. स्वर्ग से पारिजात हरण, इन्द्र से संग्राम २८४
३१. सोलह हजार कन्याओं से श्रीकृष्ण का विवाह २९६
३२. उषा का स्वप्न अनिरुद्ध को देखकर मोहित होना २९९
३३. श्रीकृष्ण और वाणासुर का युद्ध ३०३
३४. पौंड्रक और काशी राज का वध ३११
३५. साम्ब का दुर्योधन की कन्या के साथ विवाह ३१८
३६. बलराम जी द्वारा द्विविद-वध ३२०
३७. ऋषियों के शाप से यदुवंश का विनाश और श्रीकृष्ण का परमधाम सिधारना ३२६

३८. यादवों का अन्त्येष्टि-संस्कार, परीक्षित का राज्याभिषेक और पाण्डवों का हिमाचल गमन ३३६

षष्टम अंश

१. कलिधर्म निरूपण ३५०
२. श्री व्यास जी द्वारा कलियुग, शूद्र और स्त्रियों का महत्व वर्णन ३५७
३. निमेषादि काल-मान ३६२
४. नैमित्तिक और प्राकृतिक प्रलय ३६८
५. आध्यात्मिक आदि विविध तापों का वर्णन, भगवान के सगुण-निर्गुण रूप का वर्णन ३७४
६. केशिध्वज और खाण्डिक्य सम्वाद ३८६
७. अध्यात्म विद्या तथा योग वर्णन ३९३
८. विष्णु पुराण पठन-पाठन का फल ४०८
विष्णु पुराण का निष्पक्ष नैतिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक अध्ययन ४१०-५०४

ॐ

श्रीविष्णु पुराण

[द्वितीय भाग]

* चतुर्थ अंश *

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।

तीसरा अध्याय

अतश्च मान्धातुः पुत्रसन्ततिरभिधीयते ।।१।। अम्बरीषस्य मान्धातृतनयस्य युवनाश्वः पुत्रोऽभूत् ।।२।। तस्माद्धारीतः यतोऽङ्गीरसो हारीताः ।।३।। रसातले मौनेया नाम गन्धर्वा बभूवुष्पट्कोटिसंख्यातातास्तैरशेषाणि नागकुलान्यपहृतप्रधान-रत्नाधिपत्यान्यक्रियन्त ।।४।। तैश्च गन्धर्ववीर्यावधुरुरगेश्चरैः स्तूयमानो भगवानशेषदेवेशः स्तवच्छ्रवणोन्मीलितोन्निद्रपुण्डरीक-नयनो जलशयनो निद्रावसानात् प्रबुद्धः प्रणिपत्याभिहितः भगवन्नस्माकमेतेभ्यो गन्धर्वेभ्यो भयमुत्पन्नं कथमुपशममेष्यतीति ।।५।। आह च भगवाननादिनिधनपुरुषोत्तमो योऽसौ यौवनाश्वस्य मान्धातुः पुरुकुत्सनामा पुत्रस्तमहमनुप्रविश्य तानशेषान् दुष्ट-गन्धर्वानुपशमं नयिष्यामीति ।।६।। तदाकर्ण्य भगवते जलशायिने कृतप्रणामाः पुनर्नागलोकमागताः पन्नगाधिपतयो नर्मदां च पुरु-कुत्सानयनाय चोदयामासुः ।।७।। सा चैनं रसातलं नीतवती ।।८।।

जब मान्धाता की सन्तति का वर्णन किया जाता है ।।१।। राजा मान्धाता के पुत्र अम्बरीष के जो युवनाश्व नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उससे हारीत नामक पुत्र हुआ, जिससे आंगिरस हारीतगण उत्पन्न हुए। ।।२।।३।। पूर्वकाल की बात है—पाताल में मौनेय नाम के छः करोड़ गन्धर्व रहते थे, उन्होंने सभी नागकुलों के प्रमुख-प्रमुख रत्नों और अधिकारों का अपहरण कर लिया ।।४।। जब गन्धर्वों के पराक्रम से तिरस्कृत हुए उन नागराजों द्वारा स्तुति की गई, तब उसे सुनते हुए जिनके पद्म के समान विकलित नेत्र खुल गये, ऐसे उन निद्रा से जगे हुए जलशायी सर्वदेवेश्वर प्रभु को प्रणाम करके उन नागों ने निवेदन किया—हे भगवन् ! इन गन्धर्वों से जो भय उत्पन्न हो गया है, उसकी शान्ति किस प्रकार हो सकेगी ? ।।५।। इस पर आदि-अन्त-शून्य भगवान् श्री पुरुषोत्तमदेव बोले—हे नागगण ! युवनाश्व-पुत्र राजा मान्धाता के पुरुकुत्स नामक पुत्र के शरीर में प्रविष्ट होकर मैं उन सभी दुष्ट गन्धर्वों को नष्ट कर डालूंगा ।।६।। यह सुन कर सब नागगण उन जलशायी भगवान् श्रीहरि को प्रणाम करते हुए नागलोक में लौटे और पुरुकुत्स को लाने के लिए उन्होंने अपनी बहिन नर्मदा को प्रेरित किया जो पुरुकुत्स को रसातल में लिवा लाई ।।७।।८।।

रसातलगतश्चासौ भगवत्तेजसाप्यायितात्मवीर्यस्सकलगन्धर्वान्निजघान ।।९।। पुनश्च स्वपुरमाजगाम ।।१०।। सकलपन्नगाधिपतयश्च नर्मदायै वरं ददुः यस्तेऽनुस्मरणसमवेतं नामग्रहणं करिष्यति न तस्य सर्पविषभयं भविष्यतीति ।।११।। अत्र च श्लोकः ।।१२।। नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि । नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः ।।१३।।

इत्युच्चार्याहर्निशमन्धकारप्रवेशे वा सर्पैर्न दश्यते न चापि कृतानुस्मरणभुजो विषमपि भुक्तमुपघाताय भवति ।।१४।। पुरुकुत्साय सन्ततिविच्छेदो न भविष्यतीत्युरगपतयो वरं ददुः ।।१५।।

भगवान् विष्णु के तेज से प्रवृद्ध हुए उस पुरुकुत्स ने रसातल में पहुँच कर सभी गन्धर्वों का वध कर डाला और तब वह अपने नगर में

लौट आया ॥९॥१०॥ उस समय सभी नागों ने नर्मदा को यह वर दिया कि तेरे स्मरण पूर्वक जो कोई तेरे नाम का उच्चारण करेगा, उसे सर्प-विष का भय नहीं रहेगा ॥११॥ इस विषय में एक श्लोक है नर्मदा को प्रातःकाल नमस्कार, रात्रिकाल में भी नमस्कार। हे नर्मदे! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है, तुम विष और सर्प से मेरी रक्षा करो ॥१२॥१३॥ इसके उच्चारण पूर्वक दिन या रात्रि में, किसी भी समय कहीं अन्धेरे में जाने पर भी सर्प नहीं काटता तथा इसका स्मरण करके भोजन करने से, भोजन में मिला हुआ विष भी मारक नहीं होता ॥१४॥ उस समय पुरुकुत्स ने भी नागों को वर दिया कि तुम्हारी सन्तति अन्त को कभी भी प्राप्त नहीं होगी ।१५।

पुरुकुत्सो नर्मदायां त्रसद्दस्युमजीजनत् ॥१६॥ त्रसद्दस्युतस्सम्भूतोऽनरण्यः यं रावणो दिग्विजये जघान ॥१७॥ अनरण्यस्य पृषदश्वः पृषदश्वस्य हर्यश्वः पुत्रोऽभवत् ॥१८॥ तस्य च हस्तः पुत्रोऽभवत् ॥१९॥ ततश्च सुमनास्तस्यापि त्रिधन्वा त्रिधन्वनस्त्रय्यारुणिः ॥२०॥ त्रय्यारुणेस्सत्यव्रतः योऽसौ त्रिशंकुसंज्ञामवाप ॥२१॥ स चाण्डालतामुपगतश्च ।२२। द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां विश्वामित्रकलत्रापत्यपोषणार्थं चाण्डालप्रतिग्रहपरिहरणाय च जाह्नवीतीरन्यग्रोधे मृगमांसमनुदिनं बबन्ध ॥२३॥ स तु परितुष्टेन विश्वामित्रेण सशरीरस्स्वर्गमारोपितः ॥२४॥

पुरुकुत्स ने अपनी उस भार्या नर्मदा से त्रसद्दस्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥१६॥ त्रसद्दस्यु का पुत्र अनरण्य हुआ, जिसका दिग्विजय के समय रावण ने वध किया था ॥१७॥ उस अनरण्य का पुत्र पृषदश्व हुआ, पृषदश्व का हर्यश्व, हर्यश्व का हस्त, हस्त का सुमना, सुमना का त्रिधन्वा, त्रिधन्वा का पुत्र त्रय्यारुणि हुआ ॥१८-२०॥ त्रय्यारुणि का पुत्र सत्यव्रत हुआ, वही फिर त्रिशंकु नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२१॥ वह त्रिशंकु चाण्डाल होगया ॥२२॥ एक समय बारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई। उस समय वह विश्वामित्रजी के सभी बालकों के पोषण के निमित्त तथा चाण्डालत्व को दूर करने के लिए गंगातट स्थित वट वृक्ष पर मृग का माँस बाँध देता

था ॥२३॥ उसके इस कार्य से प्रसन्न हुए महर्षि विश्वामित्र ने उसे देह सहित स्वर्ग में भेज दिया ॥२४॥

त्रिशंकोर्हरिश्चन्द्रस्तस्माच्च रोहिताश्वस्ततश्च हरितो हरितस्य चञ्चुश्चञ्चोर्विजयवसुदेवौ रुरुको विजयाद्रुरुकस्य वृकः ॥२५॥ ततो वृकस्य बाहुर्योऽसौ हैहयतालजंघादिभिः पराजितोऽन्तर्वत्न्या महिष्या सह वनं प्रविवेश ॥२६॥ तस्याश्च सपत्न्या गर्भस्तम्भनायगरो दत्तः ॥२७॥ तेनास्या गर्भस्सप्तवर्षाणि जठर एव तस्थौ ॥२८॥ स च बाहुर्वृद्धभावादौर्वाश्रमसमीपे ममार ॥२९॥ सा तस्य भार्या चितां कृत्वा तमारोप्यानुमरणकृतनिश्चयाभूत् ॥३०॥ अथैतामतीतानागतवर्तमानकालत्रयवेदी भगवानौर्वस्स्वाश्रमान्निर्गत्याब्रवीत् ॥३१॥

उसी त्रिशंकु से हरिश्चन्द्र हुए। हरिश्चन्द्र से रोहिताश्व और रोहिताश्व से हरित हुआ। हरित से चञ्चु, चञ्चु से विजय और वासुदेव तथा विजय से रुरुक और रुरुक से वृक उत्पन्न हुआ ॥२५॥ वृक का बाहु हुआ, जिसे हहय तथा तालजंघादि क्षत्रियों ने युद्ध में हरा दिया, इस कारण वह अपनी गर्भवती राजमहिषी को साथ लेकर वन में चला गया ॥२६॥ परन्तु राजमहिषी की सौत ने उसके गर्भ का स्तम्भन करने के विचार से उसे विष दे दिया ॥२७॥ उस विष के प्रभाव से उसका गर्भ सात वर्ष तक गर्भाशय में ही रुका रहा ॥२८॥ अन्त में वृद्धावस्था को प्राप्त हुए बाहु की और्व ऋषि के आश्रम के निकटवर्ती स्थान में मृत्यु हो गई ॥२९॥ तब उसकी महिषी ने चिता बनाकर उसमें अपने पति का शव रखा और उसके साथ सती हो जाना चाहा ॥३०॥ तभी भूत, भविष्यत्, वर्तमान के ज्ञाता महर्षि और्व ने अपने आश्रम से निकल कर राजमहिषी से कहा ॥३१॥

अलमलमनेनासन्द्राहेणाखिलभूमण्डलपतिरतिवीर्यपराक्रमो नैकयज्ञकृदरातिपक्षक्षयकर्त्ता तवोदरे चक्रवर्त्ती तिष्ठति ॥३२॥ नैवमतिसाहसाध्यवसायिनी भवती भवत्वियुक्ता सा तस्मादनुमरणनिर्बन्धाद्विरराम ॥३३॥ तेनैव च भगवता स्वाश्रममानीता

॥३४॥ तत्र कतिपयदिनाभ्यन्तरे च सहैव तेन गरेणातितेजस्वी बालको जज्ञे ॥३५॥ तस्यौर्वो जातकर्मादिक्रिया निष्पाद्य सगर इति नाम चकार ॥३६॥ कृतोपनयनं चैनसौर्वो वेदशास्त्राण्यस्त्रं चाग्नेयं भार्गवाख्यमध्यापयामास ॥३७॥ उत्पन्नबुद्धिश्च मातरम-ब्रवीत् ॥३८॥ अम्ब कथमत्र वयं क्व वा तातोऽस्माकमित्येवमादि-पृच्छन्तं माता सर्वमेवावोचत् ॥३९॥ ततश्च पितृराज्यापहरणा-दमर्षितो हैहतालजंघादिवधाय प्रतिज्ञामकरोत् ॥४०॥ प्रायशश्च हैहयतालजंघाञ्जघान ॥४१॥

हे साध्वी ! यह दुराग्रह त्याग देने योग्य है। क्योंकि तेरे उदर में अत्यन्त बलवीर्ययुक्त, अनेक यज्ञों का अनुष्ठाता, सम्पूर्ण पृथिवी का स्वामी तथा सभी शत्रुओं को मारने वाला चक्रवर्ती सम्राट स्थित है ॥३२॥ इसलिए तू ऐसे दुस्साहस का प्रयत्न न कर। मुनि के वचन सुन कर उसने सती होने के आग्रह का परित्याग किया ॥३३॥ तब महर्षि और्व उसे अपने आश्रम पर लिवा ले गये ॥३४॥ कुछ कालोपरान्त उस रानी के उदर से 'गर' (विष के सहित एक तेजस्वी शिशु उत्पन्न हुआ ॥३५॥ तब महर्षि और्व ने उसका जातकर्म संस्कारादि कर उसका 'सगर' नाम रखा और उपनयनादि संस्कार के पश्चात् उसे सम्पूर्ण वेद, शास्त्र एवं भार्गव नामक आग्नेयास्त्रों की शिक्षा प्रदान की ॥३६-३७॥ जब उसकी बुद्धि विकसित हो गई तब वह बालक अपनी माता से बोला ॥३८॥ हे माता ! हम इस तपोवन में क्यों रह रहे हैं ? हमारे पिता कहाँ हैं ? इसी प्रकार के अन्य प्रश्न भी उसने पूछे तब उसकी माता ने उसे सब बातें बता दीं ॥३९॥ माता के मुख से राज्यापहरण की बात सुन कर उस बालक ने हैहय और तालजंघादि क्षत्रियों का संहार करने की प्रतिज्ञा ली और कालान्तर में उसने उन सभी राजाओं को मार डाला ॥४०-४१॥

शकयवनकाम्बोजपारदपह्लवाः हन्यमामास्तत्कुलगुरुं वसिष्ठं शरणं जग्मुः ॥४२॥ अथैनान्वसिष्टो जीवन्मृतकान् कृत्वा सगर-माह ॥४३॥ वत्सालमेभिर्जीवन्मृतकरनुसृतैः ॥४४॥ एते च मयैव

त्वत्प्रतिज्ञापरिपालनाय निजधर्मंद्विजसङ्गपरित्यागं कारिताः ॥४५॥ तथेति तद्गुरुवचनमभिनन्द्य तेषां वेषान्यत्वमकारयत् ॥४६॥ यवनान्मुण्डितशिरसोऽर्द्धं मुण्डिताञ्छाकान् प्रलम्बकेशान् पारदान् पह्लवाञ्श्मश्रुधरान् निस्स्वाध्यायवषट्कारानेतानन्याश्च क्षत्रियांश्चकार ॥४७॥ एते चात्मधर्मपरित्यागाद्ब्राह्मणैः परित्यक्ता म्लेच्छतां ययुः ॥४८॥ सगरोऽपि स्वमधिष्ठानमागम्यास्खलितचक्रस्सप्तद्वीपवतीमिमामुर्वी प्रशशास ॥४९॥

इसके अनन्तर उसने शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लवगण को भी हताहत किया, जिससे वह सगर के कुलगुरु वसिष्ठजी की शरण को प्राप्त हुए ॥४२॥ वसिष्ठजी ने उन्हें जीवित रह कर भी मृतक समान करके राजा सगर से कहा ॥४३॥ हे वत्स ! इन जीवन्मृत मनुष्यों को मारने से क्या लाभ है ? ॥४४॥ मैंने तेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए ही इन्हें स्वधर्म और द्विजातियों के ससर्ग से बहिष्कृत कर दिया है ॥४५॥ राजा सगर ने गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर उनकी वेश-भूषा में परिवर्तन करा दिया ॥४६॥ उसने यवनों के शीश मुड़वाये, शकों के आधे सिर को मुँड़वाया, पारदों को लम्बे बाल वाले बनाया, पह्लवों के मूँछ-दाढ़ी रखवाईं तथा इन सब को और अन्याय वैरियों को भी स्वाध्याय तथा वषट्कार आदि से वंचित कर दिया ॥४७॥ स्वधर्म हीन होने के कारण ब्राह्मणों ने भी इनका परित्याग कर दिया, इसलिए यह सब म्लेच्छ बन गये ॥४८॥ फिर महाराज सगर अपनी राजधानी में आ गये और सेना से युक्त होकर सात द्वीपों वाली इस सम्पूर्ण पृथिवी पर राज्य करने लगे ॥४९॥

चौथा अध्याय

काश्यपदुहिता सुमतिर्विदर्भराजतनया केशिनी च द्वे भार्ये सागरस्यास्ताम् ॥१॥ ताभ्यां चापत्यार्थमौर्वः परमेण समाधिनाराधितो वरमदात् ॥२॥ एका वंशकरमेकं पुत्रमपरा षष्ठि पुत्रसहस्राणां जनयिष्यतीति यस्या यदभिमतं तदिच्छया गृह्यता-

मित्युक्ते केशिन्येकं वरयामास ॥३॥ सुमतिः पुत्रसहस्राणि षष्टिं वव्रे ॥४॥ तथेत्युक्ते अल्पैरहोभिः केशिनी पुत्रमेकमसञ्जासनामानं वंशकरमसूत ॥५॥ काश्यपतनयायास्तु सुमत्याः षष्टिः पुत्रसहस्राण्यभवन् ॥६॥ तस्मादसमञ्जसादंशुमान्नाम कुमारो जज्ञे ॥७॥ स त्वसमञ्जसो बालो बाल्यादेवासद्वृत्तोऽभूत् ॥८॥ पिता चास्याचिन्तयदवमतीतबाल्यः सुबुद्धिमान् भविष्यतीति ॥९॥ अथ तत्रापि च वयस्यतीते असच्चरितमेनं पिता तत्याज ॥१०॥ तान्यपि षष्टिः पुत्रसहस्राण्यसमञ्जसचरितमेवानुचक्रुः ॥११॥

श्री पराशरजी ने कहा—काश्यपपुत्री सुमति और विदर्भराज की पुत्री केशिनी यह दोनों राजा सगर की भार्या हुईं ॥१॥ उनके द्वारा सन्तानोत्पत्ति की कामना के लिए आधारित होकर भगवान् और्व ने यह वर प्रदान किया ॥२॥ तुम में से एक से वंश-वृद्धि करने वाला एक पुत्र उत्पन्न होगा और दूसरी से साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति होगी। इनमें से दो वर जिसे अच्छा लगे, उसी वर को वह माँग ले। ऋषि द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर केशिनी ने एक पुत्र और सुमति ने साठ हजार पुत्रों का वर माँगा ॥३-४॥ महर्षि के 'ऐसा ही हो' कहने पर केशिनी ने वंश की वृद्धि वाले असमंजस नामक एक पुत्र को उत्पन्न किया और सुमति ने साठ हजार पुत्रों को जन्म दिया ॥५-६॥ असमंजस के अंशुमान नामक एक पुत्र हुआ ॥७॥ वह असमंजस अपने बाल्यकाल से ही दुराचरण वाला हुआ ॥८॥ पिता ने समझा कि जब इसकी बाल्यवस्था व्यतीत हो जायगी, तब यह सुधर जायगा ॥९॥ परन्तु उस अवस्था के निकलने पर भी उसके आचरण में परिवर्तन न देख कर पिता ने उसका त्याग कर दिया ॥१०॥ तथा सगर के साठ हजार पुत्र भी असमंजस के ही अनुगामी हुए ॥११॥

ततश्चासञ्जमसचरितानुकारिभिस्सागरैरपध्वस्तयज्ञादिसन्मार्गे जगति देवास्सकलविद्यामयमसंस्पृष्टमशेषदोषैर्भगवतः पुरुषोत्तमस्यांशभूतं कपिलं प्रणम्य तदर्थमूचुः ॥१२॥ भगवन्नेभिस्सगरतनयैरसमञ्जसचरितमनुगम्यते ।१३। कथमेभिरसद्वृत्तमनुसरद्भि-

जगद्भविष्यतीति ॥१४॥ अत्यार्त्तजगत्परित्राणाय च भगवतोऽत्र शरीरग्रहणमित्याकर्ण्य भगवानाहाल्पैरेव दिनैर्विनङ्क्ष्यन्तीति ॥१५॥

अत्रान्तरे च सगरो हयमेधमारभत ॥१६॥ तस्य च पुत्रैरधिष्ठितमस्याश्वं कोऽप्यपहृत्य भुवो विलं प्रविवेश ॥१७॥ ततस्तत्तनयाश्चाश्वखुरगति निर्बन्धेनावनीमेकैको योजनं चख्नुः ॥१८॥ पाताले चाश्वं परिभ्रमन्तं तमवनीपतितनयास्ते ददृशुः ॥१९॥ नातिदूरेऽवस्थितं च भगवन्तमपघने शरत्कालेऽर्कमिव तेजोभिरनवरतमूर्ध्वमधश्चाशेषदिशश्चोद्भासयमानं हयहर्त्तारं कपिलर्षिमपश्यन् ॥२०॥

उन असमंजस के चरित्र का अनुगमन करने वाले साठ हजार सगर पुत्रों ने विश्व से यज्ञादि सन्मार्ग का उच्छेद किया, तव सकल विद्याओं के ज्ञाता भगवान् के अंशभूत श्री कपिलजी को देवताओं ने प्रणाम कर उन सगर-पुत्रों के विषय में निवेदन किया ॥१२॥ हे भगवन् ! सगर के यह सभी पुत्र असमंजस के चरित्र का अनुकरण करने वाले हुए हैं ॥१३॥ इन सबके सन्मार्ग के विपरीत चलने से यह जगत किस दशा को प्राप्त होगा ? ॥१४॥ हे भगवन् ! आपने दीनों की रक्षा करने के लिये ही यह देह धारण किया है। यह बात सुन कर कपिलजी बोले—इन सब का कुछ ही दिनों में नाश होना है ॥१५॥ इसी अवसर पर महाराज सगर नें अश्वमेध का अनुष्ठान आरम्भ किया ॥१६॥ तब उसके पुत्रों द्वारा सुरक्षित अवश्य का अपहरण करके कोई पृथिवी में प्रविष्ट हो गया ॥१७॥ तव उस अश्व के खुर-चिन्हों का अनुसरण करते हुए सगर-पुत्रों में से प्रत्येक ने चार-चार योजन भूमि खोद डाली ॥१८॥ और पाताल में पहुँच कर उन्होंने अश्व को विचरण करते हुए देखा ॥१९॥ उसके निकट ही मेघ आवरण से रहित शरदकालीन सूर्य के समान अपने तेज से सब दिशाओं को प्रकाशमय करने वाले महर्षि कपिल को अश्वहर्त्ता के रूप में बैठे हुए देखा ॥२०॥

ततश्चोद्यतायुधा दुरात्मानोऽयमस्मदपकारी यज्ञविघ्नकारी हन्यतां हयहर्त्ता हन्यतामित्यवोचन्नभ्यधावंश्च ॥२१॥ ततस्तेनापि भगवता किञ्चिदीषत्परिवर्त्तितलोचनेनावलोकितास्स्वशरीरसमुत्थेनाग्निना दह्यमाना विनेशुः ॥२२॥

सगरोऽप्यवगम्याश्वानुसारितत्पुत्रलमशेषं परमर्षिणा कपिलेन तेजसा दग्धं ततोंऽशुमन्तमसमञ्जपुत्रमश्वानयनाय युयोज ॥२३॥ स तु सगरतनखातमार्गेण कपिलमुपगम्य भक्तिनम्रस्तदा तुष्टाव ॥२४॥ अथैनं भगवानाह ॥२५॥ गच्छैनं पितामहायाश्वं प्रापय वरं वृणीष्व च पुत्रकं पौत्रश्च ते स्वर्गाद्गङ्गां भुवमानेष्यत इति ॥२६॥ अथांशुमानपि स्वर्यातानां ब्रह्मदण्डहतानामस्मत्पितॄणामस्वर्गयोग्यानां स्वर्गप्राप्तिकरं वरमस्माकं प्रयच्छेति प्रत्याह ॥२७॥

उन्हें इस प्रकार देखकर वे सब दुरात्मा सगरपुत्र अपने शस्त्रास्त्रों को सम्भाल कर 'यही हमारा अपकार करने वाला और यज्ञ में वाधा डालने वाला है, इस अश्वचोर को मार दो, वध कर डालो' कहते हुए कपिलजी की ओर दौड़ पड़े ॥२१॥ तब भगवान् कपिल ने अपने परिवर्तित नेत्रों से देखा, जिससे वे सब अपने ही देह से प्रकट होते हुए अग्नि में भस्म हो गये ॥२२॥ जब राजा सगर को यह ज्ञात हुआ कि अश्व के पीछे रक्षक रूप से जाने वाले उनके सभी पुत्र भस्म हो गए हैं, तो उन्होंने असमंजस के पुत्र अंशमान को अश्व प्राप्ति के कार्य में नियुक्त किया ॥२३॥ तब वह उन राजपुत्रों द्वारा खोदे हुये मार्ग से कपिलदेव के पास गया और उसने अत्यन्त भक्तिभाव से नम्र होकर उनको प्रसन्न किया ॥२४॥ फिर प्रसन्न हुए उन कपिलजी ने अंशुमान से कहा—हे वत्स ! इस अश्व को ले जाकर अपने दादा को सौंप और जो तू चाहे वही मुझसे माँग ले । तेरा पौत्र गंगाजी को स्वर्ग से पृथिवी पर लाने में समर्थ होगा ॥२५-२६॥ इस पर अंशुमान ने कहा—कि मेरे यह स्वर्ग को न प्राप्त हुए पितृगण ब्रह्मदण्ड से भस्म हुए हैं, उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला वर प्रदान कीजिए ॥२७॥

तदाकर्ण्यं तं च भगवानाह उक्तमेवैतन्मयाद्य पौत्रस्ते त्रिदिवाद्गङ्गां भुनमानेष्यतीति ।।२८।। तदम्भसा च संस्पृष्टेष्वस्थिभस्मसु एने च स्वगमारोक्ष्यन्ति ।२९। भगवद्विष्णुपादाङ्गुष्ठनिर्गतस्य हि जलस्यैतन्माहात्म्यम् ।।३०।। यन्न केवलमभिमन्धिपूर्वकं स्नानाद्युपभोगेषूपकारक मनभिसंहितमप्यपेत प्राणास्यास्थिचर्मस्नायुकेशाद्युपस्पृष्ठं शरीरजमपि पतितं सद्यश्शरीरिणं स्वर्गं नयतीत्युक्तः प्रणम्य भगवतेऽश्वमादाय पितामहयज्ञमाजगाम ।३१। सगरोऽप्यश्वमासाद्य तं यज्ञं समापयामास ।।३२।। सागरं चात्मजप्रीत्या पुत्रत्वे कल्पितवान् ।३३। तस्यांशुमतो दिलीपः पुत्रोऽभवत् ।३४। दिलीपस्य भगीरथः योऽसौ गङ्गां स्वर्गादिहानीय भागीरथीसंज्ञां चकार ।।३५।।

अंशुमान की बात सुनकर भगवान् कपिलजी बोले—यह मैंने पहिले ही कहा है कि तेरा पुत्र गङ्गाजी को स्वर्ग से उतारेगा ।।२८।। और जैसे ही उनके जल का स्पर्श उनकी अस्थियों से होगा, वैसे ही यह सब स्वर्ग को प्राप्त होंगे ।।२९।। भगवान् विष्णु के पादांगुष्ठ से निर्गत हुए उस जल का यह माहात्म्य है कि वह केवल अभीष्टमय स्नानादि कार्यों में ही प्रयुक्त नहीं होता, किन्तु बिना किसी कामना के मृतक की हड्डी, चर्म, स्नायु या केशादि का उससे स्पर्श होने या जिसमें उसके किसी अङ्ग के गिर जाने से भी उस प्राणी को तत्काल स्वर्ग मिलता है। भगवान् कपिल का वचन सुनकर अंशुमान ने उन्हें प्रणाम किया और अश्व को साथ लेकर अपने दादा की यज्ञशाला में जाकर उपस्थित हुआ ।।३०।।३१।। तब राजा सगर ने उस अश्व को प्राप्त कर अपने यज्ञ को सम्पूर्ण किया और अपने पुत्रों के द्वारा खोदे हुए उस सागर को ही उन्होंने अपना पुत्र माना ।। ३२।।३३ ।। उस अंशुमान के दिलीप हुआ। दिलीप के भगीरथ हुआ, जिसके प्रयत्न मे गंगाजी स्वर्ग पर उतर आईं और उनका नाम उसके नाम पर ही भागीरथ हुआ ।।३४।।३५।।

भगीरथात्सुहोत्रस्सुहोत्राच्छ्रुतः तस्यापि नाभागः ततोऽम्बरीषः तत्पुत्रस्सिन्धुद्वीपः सिन्धुद्वीपादयुतायुः ।।३६।। तत्पुत्रश्च ऋतु-

पर्णः योऽसौ नलसहायोऽक्षहृद्यज्ञोऽभूत् ॥३७॥ ऋतुपर्णपुत्रस्सर्वकामः ।३८। तत्तनयस्सुदासः ।३९। सुदासात्सौदासो मित्रसहनामा ।४०। स चाटव्यां मृगयार्थी पर्यटन् व्याघ्रद्वयमपश्यत् ॥४१॥ ताभ्यां तद्वनमपमृगं कृत मत्वैकं तयोर्बाणेन जघान ।१२। म्रियमाणश्चासावतिभीषणाकृतिरतिकरालवदनो राक्षसोऽभूत् ॥४३॥ द्वितीयोऽपि प्रतिक्रियां ते करिष्यामीत्युक्त्वान्तर्धानं जगाम ॥४४॥

भगीरथ का सुहोत्र हुआ। सुहोत्र से श्रुति, श्रुति से नाभाग, नाभाग से अम्बरीष, अम्बरीष से सिंधुद्वीप, सिंधुद्वीप से अयुतायु और अयुतायु से ऋतुपर्ण हुआ, जो द्यूत क्रीड़ा का ज्ञाता और राजा नल का सहायक था ॥३६॥३७॥ ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम हुआ। सर्वकाम का सुदास और सुदास का सौदास मित्रसह हुआ ॥३८--४०॥ उसने एक मृगया के लिए वन में विचरण करते-करते दो व्याघ्रों को देखा ॥४१॥ उनके सम्पूर्ण वन हीन को मृगहीन हुआ समझकर उनमें से एक को उसने मार दिया। ॥४२॥ मरणकाल में अत्यन्त घोर रूप और विकराल मुख वाला राक्षस बन गया ॥४३॥ और दूसरा जो मरने से बच गया वह "मैं इसका प्रतिशोध लूंगा" कहता हुआ तत्काल अन्तर्धान हो गया ॥४४॥

कालेन गच्छता सौदासो यज्ञमयजत् ॥४५॥ परिनिष्ठितयज्ञे आचार्ये वसिष्ठे निष्क्रान्ते तद्रक्षो वसिष्ठरूपमास्थाय यज्ञावसाने मम नरमांसभोजनं देयमिति तत्संस्क्रियतां क्षणादागमिष्यामीत्युक्त्वा निष्क्रान्तः ॥४६॥ भूयश्च सूदवेषं कृत्वा राजाज्ञया मानुषं मांसं संस्कृत्य राज्ञे न्यवेदयत् ॥४७॥ असावपि हिरण्यपात्रे मांसमादाय वसिष्ठागमनप्रतीक्षकोऽभवत् ॥४८॥ आगताय वसिष्ठायनिवेदितवान् ॥४९॥ स चाप्यचिन्तयदहो अस्य राज्ञो दौश्शील्यं येनैतन्मांसमस्माकं प्रयच्छति किमेतद्द्रव्यजातमिति ध्यानपरोऽभवत् ।५०। अपश्यच्च तन्मांसं मानुषम् ।५१। अतः क्रोधकलुषीकृतचेता राजनि शापमुत्ससर्ज ।५२। यस्मादभोज्यमेतदस्मद्विधानांतपस्विनामवगच्छन्नपि भवान्मह्यं ददाति तस्मात्तवैवात्र लोलुपता भविष्यतीति ॥५३॥

कुछ समय व्यतीत होने पर सौदास ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥४५॥ जब यज्ञ के समाप्त होने पर आचार्य वसिष्ठजी वहाँ चले गए तब वह राक्षस वसिष्ठजी का रूप धारण कर वहाँ आकर कहने लगा— यज्ञ की समाप्ति पर मुझे मनुष्य-माँस युक्त भोजन कराया जाना चाहिए, इसलिए तुम वैसा भोजन बनवाओ, मैं क्षण भर में लौट कर आता हूँ। यह कहता हुआ वह वहाँ से चला गया ॥४६॥ फिर उसने रसोइये का रूप धारण कर राजाज्ञा से मनुष्य माँसमय भोजन बना कर राजा के समक्ष लाया ॥४७॥ राजा ने उसे स्वर्णपात्र में रखा और वसिष्ठजी के आने पर उससे उन्हें वह नरमांस निवेदन किया ॥४८॥४९॥ तब वसिष्ठजी ने मन में विचार किया कि यह राजा कितना कुटिल है जो जानते हुए भी मुझे यह मांस दे रहा है। फिर यह जानने के लिये कि यह किस जीव का मांस है, उन्होंने समाधि का आश्रय लिया और ध्यानावस्था में उन्होंने जान लिया कि मनुष्य का मांस है ॥५०॥५१॥ तब तो वसिष्ठजी अत्यन्त क्रोधित और क्षुब्ध मन हुए और उन्होने तत्काल ही राजा को शाप दे डाला कि तूने इस अत्यन्त अभक्ष्य नर मांस को मेरे जैसे तपस्वी को जान-बूझ कर आहार हेतु दिया है, इसलिये तेरी लोलुपता नर मांस में ही होगी ॥५२॥५३॥

अनन्तरं च तेनापि भगवतैवाभिहितोऽस्मीत्युक्ते किं किं मयाभिहितमिति मुनिः पुनरपि समाधौ तस्थौ ॥५४॥ समाधिविज्ञानावगतार्थश्चानुग्रहं तस्मै चकार नात्यन्तिकमेतद्द्वादशाब्दं तव भोजनं भविष्यतीति ।५५॥ असावपि प्रतिगृह्योदकाञ्जलिं मुनिशापप्रदानायोद्यतो भगवन्नयमस्मद्गुरुर्नार्हस्येनं कुलदेवताभूतमाचार्यं शप्तुमिति मदयन्त्या स्वपत्न्या प्रसादितस्सस्याम्बुदरक्षणार्थं तच्छापाम्बु नोर्व्यां न चाकाशे चिक्षेप किं तु तेनैव स्वपदौ सिषेच ॥५६॥ तेन च क्रोधाश्रितेनाम्बुना दग्धच्छायौ तत्पादौ कल्माषतामुपगतौ ततस्स कल्माषपादसंज्ञामवाप ।५७। वसिष्ठाशापाच्च षष्ठे षष्ठे काले राक्षसस्वभावमेत्याटव्यां पर्यटन्ननेकशो मानुषानभक्षयत् ॥५८॥

फिर जब राजा ने यह कहा कि "भगवन् आपकी ही ऐसी आज्ञा थी" तो वसिष्ठजी ने कहा कि "अरे क्या कहता है, मैंने ऐसा कहा था ? और वह पुनः ध्यानावस्थित हुए ।।५४।। तब उस ध्यानावस्था में उन्हें वास्तविकता का ज्ञान हुआ और वह राजा पर अनुग्रह करते हुए बोले-- तू अधिक समय के लिये नर मांस भोजी नहीं होगा, केवल बारह वर्ष ही ऐसी अवस्था रहेगी ।।५५।। जब वसिष्ठजी का ऐसा वचन सुना तो राजा सौदास ने अपनी अंजलि में जल ग्रहण किया और मुनिवर वसिष्ठ को शाप देने लगा, परन्तु उसकी पत्नी मदयन्ती ने उसे यह कह कर शान्त किया कि हे स्वामिन् ! यह हमारे कुल गुरु हैं, इसलिये इन्हें शाप नहीं देना चाहिये । तब शाप के लिये ग्रहण किये हुये उस जल को राजा ने अन्न और मेघ की रक्षा के लिये पृथिवी या आकाश में नहीं फैंका, किन्तु उसे अपने ही पाँवों पर डाल लिया ।।५६।। उस क्रोधमय जल के पड़ने से उसके पाँव दग्ध होकर चितकबरे वर्ण के हो गये । तभी से वह कल्माषपाद कहा जाने लगा ।।५७।। फिर वसिष्ठजी के शाप के प्रभाव से वह राजा तीसरे दिन के अन्तिम भाग में राक्षस स्वभाव होकर वन में विचरण करने और मनुष्यों को खाने में प्रवृत्त हुआ ।।५८।।

एकदा तु कञ्चिन्मुनिमृतुकाले भार्यासङ्गतं ददर्श ।।५९।। तयोश्च तमतिभीषणं राक्षसस्वरूपमवलोक्य त्रासाद्दम्पत्योः प्रधावितयोर्ब्राह्मणं जग्राह ।।६०।। ततस्सा ब्राह्मणी बहुशस्तमभियाचितवती ।।६१।। प्रसीदेक्ष्वाकुकुलतिलकभूतस्त्वं महाराजो मित्रसहो न राक्षसः ।।६२।। नार्हसि स्त्रीधर्मसुखाभिज्ञो मय्यकृतार्थायामस्मद्भर्त्तारं हन्तुमित्येवं बहुप्रकारं तस्यां विलपन्त्यां व्याघ्रः पशुमिवारण्येऽभिमतं तं ब्राह्मणमभक्षयत् ।।६३।। ततश्चातिकोपसमन्विता ब्राह्मणी तं राजानं शशाप ।।६४।। यस्मादेवं मय्यतृप्तायां त्वयायं तं मत्पतिर्भक्षितःतस्मात्त्वमपि कामोपभोगप्रवृत्तोऽन्तं प्राप्स्यसीति ।।६५।। शप्त्वा चैवं साग्निं प्रविवेश ।।६६।।

एक दिन उस राक्षसत्व प्राप्त राजा ने एक मुनि को ऋतुकाल में अपनी पत्नी से रमण करते हुए देखा ।।५९।। उस अत्यन्त भीषण राक्षस

रूप वाले राजा को देखकर भय से भागते हुए उन दम्पति में से उसने मुनि को पकड़ लिया ।।६०।। उस समय मुनि-पत्नी ने उससे अनेक प्रकार अनुनय विनय करते हुये कहा— हे राजन् ! प्रसन्न होइये । आप राक्षस नहीं, इक्ष्वाकुवंश के तिलक रूप महाराज मित्रसह हैं ।।६१।।६२।। आप संयोग सुख के ज्ञाता हैं, मुझ अतृप्ता के पति की हत्या करना आपके लिए उचित नहीं है । इस प्रकार उस ब्राह्मणी द्वारा अनेक प्रकार से विलाप किये जाने पर भी जैसे व्याघ्र अपने इच्छित पशु को जंगल में पकड़ कर भक्षण कर लेता है, वैसे ही उस ब्राह्मण को पकड़ कर खा लिया।।६३।। तव उस ब्राह्मण पत्नी ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक राजा को शाप दिया कि अरे दुष्ट ! तूने मेरे अतृप्त अवस्था में रहते हुए भी मेरे स्वामी का भक्षण कर लिया है, इसलिये तू भी कामोपभोग में प्रवृत्त होते ही मर जायगा ।।६४।।६५।। राजा को ऐसा शाप देकर वह ब्राह्मणी अग्नि में प्रविष्ट हो गई ।।६६।।

ततस्तस्य द्वादशाब्दपर्यये विमुक्तशापस्य स्त्रीविषयाभिलाषिणो मदयन्ती तं स्मारयामास ।।६७।। ततः परमसौ स्त्रीभोगं तत्याज ।।६८।। वसिष्ठश्चापुत्रेण राज्ञा पुत्रार्थमभ्यर्थितो मदयन्त्यां गर्भाधानं चकार ।।६९।। यदा च सप्तवर्षाण्यसौ गर्भो न जज्ञे तस्ततं गर्भमश्मना सा देवी जघान ।।७०।। पुत्रश्चाजायत ।।७१।। तस्य चाश्मक इत्येव नामाभवत् ।।७२।। अश्मकस्य मूलको नाम पुत्रोऽभवत् ।।७३।। योऽसौ निःक्षत्रे क्ष्मातलेऽस्मिन् क्रियमाणे स्त्रीभिर्विवस्त्राभिः परिवार्य रक्षितः ततस्तं नारीकवचमुदाहरन्ति ।।७४।।

फिर वारह वर्ष व्यतीत होने पर राजा शाप से मुक्त हो गया और जब एक दिन वह कामोपभोग में प्रवृत्त हुआ तब रानी मदयन्ती ने उसे उस ब्राह्मणी के शाप की याद दिलाई । तभी से राजा ने कामोपभोग का सर्वथा त्याग कर दिया ।।६७।।६८।। फिर उस पुत्रहीन राजा द्वारा प्रार्थना करने पर वसिष्ठजी ने उसकी रानी मदयन्ती के गर्भ स्थापित किया । ।।६९।। जब अनेक वर्ष व्यतीत होने पर उससे बालक उत्पन्न नहीं हुआ,

तब मदयन्ती ने उस पर पाषाण से प्रहार किया ।।७०।। ऐसा करने से उसी समय पुत्र उत्पन्न हो गया, जिनका नाम अश्मक पड़ा ।।७१।।७२।। अश्मक का पुत्र मूलक हुआ ।।७३।। जिस समय परशुरामजी इस पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन कर रहे थे, उस समय विवस्त्र स्त्रियों ने उस मूलक को चारों ओर से घेर कर उसकी रक्षा की थी, इसलिए उसका नाम नारी कवच भी हुआ ।।७४।।

मूलकाद्दशरथस्तस्मादिलिविलस्ततश्च विश्वसहः ।।७५।। तस्माच्च खट्वाङ्ग योऽसौ देवासुरसङ्ग्रामे देवैरभ्यर्थितोऽसुराञ्जघान ।।७६।। स्वर्गे च कृतप्रियैर्देवैर्वरग्रहणाय चोदितः प्राह ।।७७।। यद्यवश्यं वरो ग्राह्यः तन्ममायुः कथ्यतामिति ।।७८।। अनन्तरं च तैरुक्तमेकमुहूर्त्तप्रमाणं तवायुरित्युक्तोऽथास्खलितगतिना विमानेन लघिमगुणो मर्त्यलोकमागम्येदमाह ।।७९।। यथा न ब्राह्मणेभ्यस्सकाशादात्मापि मे प्रियतरः न च स्वधर्मोल्लङ्घनं मया कदाचिदप्यनुष्ठितं न च सकलदेवमानुषपशुपक्षिवृक्षादिकेष्वच्युतव्यतिरेकवती दृष्टिर्ममाभूत् तथा तमेवं मुनिजनानुस्मृतं भगवन्तमस्खलितगतिः प्रापयेयमित्यशेषदेवगुरौ भगवत्यनिर्देश्यवपुषि सत्तामात्रात्मन्यात्मानं परमात्मनि वासुदेवाख्ये युयोज तत्रैव च लय मवाय ।।८०।।

अत्रापि श्रूयते श्लोको गीतस्सप्तर्षिभिः पुरा ।
खट्वाङ्गेन समो नान्यः कश्चिदुर्व्यां भविष्यति ।।८१
येन स्वर्गादिहागम्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् ।
त्रयोऽतिसंसिता लोका बुद्धया सत्येन चैव हि ।।८२

मूलक का पुत्र दशरथ हुआ, दशरथ का इलिविल और इलिविल का विश्वसह हुआ। विश्वसह के पुत्र का नाम खट्वांग हुआ जिसने देवासुर संग्राम के उपस्थित होने पर देव-पक्ष में युद्ध करते हुये दैत्यों का संहार कर डाला ।।७५।।७६।। इस प्रकार देवताओं का हित करने के कारण, देवताओं ने उसे वर माँगने को कहा, तब वह उनसे बोला ।।७७।। यदि मुझे वर ही प्राप्त करना है तो प्रथम आप मेरी आयु मुझे बताइये

॥७८॥ तब देवताओं ने कहा कि तुम्हारी आयु केवल एक मुहूर्त शेष रही है, यह सुनकर वह एक अबाध गति वाले यान पर बैठा और द्रुत वेग से मर्त्य लोक में पहुँच कर बोला ॥७९॥ यदि मुझे ब्राह्मणों से अधिक अपनी आत्मा भी कभी प्रिय नहीं हुआ, यदि मैंने कभी अपने धर्म को नहीं छोड़ा, यदि सब देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी और वृक्षादि में भगवान् श्री अच्युत के अतिरिक्त कुछ और नहीं देखा तो मुझे निर्बाध रूप से उन्हीं मुनियों द्वारा वन्दित भगवान् श्री विष्णु की प्राप्ति हो। यह कह कर राजा खट्वांग ने अपना चित्त सर्वदेवगुरु, अवर्णनीय, सत्ता-मात्रतन परमात्मा श्री वासुदेव में लगा कर उन्हीं में लीन हो गये ॥८०॥ इस विषय में प्राचीन कालीन सप्तर्षियों ने यह गीत गाया था—खट्वांग जैसा कोई भी राजा पृथिवी पर नहीं होना है, जिसने केवल एक मुहूर्त्त जीवन के शेष रहते हुए स्वर्ग से पृथिवी पर आकर अपनी बुद्धि से तीनों लोकों को पार किया और सत्यरूप भगवान् श्रीहरि को प्राप्त कर लिया ॥८१॥८२॥

खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुः पुत्रोऽभवत् ॥८३॥ ततो रघुरभवत् ॥८४॥ तस्मादप्यजः ॥८५॥ अजद्दशरथः ॥८६॥ तस्यापि भगवानब्जनाभो जगतः स्थित्यर्थमात्मांशेन रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नरूपेण चतुर्द्धा पुत्रत्वमायासीत् ॥८७॥

रामोऽपि बाल एव विश्वामित्रयागरक्षणाय गच्छंस्ताटकां जघान ॥८८॥ यज्ञे च मारीचमिषुवाताहतं समुद्रे चिक्षेप ॥८९॥ सुबाहुप्रमुखांश्च क्षयमनयत् ॥९०॥ दर्शनमात्रेणाहल्यामपापां चकार ॥९१॥ जनकगृहे च महेश्वरं चापमनायासेन बभञ्ज ॥९२॥ सीतामयोनिजां जनकराजतनयां वीर्यशुल्कां लेभे ॥९३॥ सकलक्षत्रियक्षयकारिणमशेषहैहयकुलधूमकेतुभूतं च परशुराममपास्तवीर्यबलावलेपं चकार ॥९४॥

खट्वांग का पुत्र दीर्घबाहु हुआ। दीर्घबाहु का रघु और रघु का पुत्र अज हुआ। अज के पुत्र दशरथ हुए, जिनके पुत्र रूप में भगवान् पद्मनाभ इस विश्व की रक्षा के निमित्त अपने चार अंशों से राम, लक्ष्मण, भरत,

शत्रुघ्न हुये ॥८३--८७॥ बाल्यकाल में ही श्री राम ने विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षा करने के लिये जाते हुए मार्ग में ही ताटका नाम की राक्षसी का वध किया और यज्ञशाला में पहुँचकर अपने बाण रूपी वायु से मारीच पर आघात कर उसी समुद्र में फेंका और सुबाहु आदि राक्षस को मार डाला ॥८८-९०॥ उनके दर्शन करने से ही मुनि-पत्नी अहिल्या पाप से मुक्त हो गई। उन्होंने राजा जनक के यहाँ पहुँच कर बिना किसी श्रम के ही शिवजी का धनुष तोड़ डाला और केवल पुरुषार्थ से मिलने वाली जनकसुता अयोनिजा सीता को भार्या रूप में प्राप्त किया ॥९१-९३॥ फिर सब क्षत्रियों का संहार कर देने वाले तथा हैहय वंश रूपी पतंगों के लिए अग्नि के समान श्री परशुरामजी का बलवीर्य युक्त गर्व खण्डन किया ॥९४॥

पितृवचनाच्चागणितराज्याभिलाषो भ्रातृभार्यासमेतो वनं प्रविवेश ।९५। विराधखरदूषणादीन् कवन्धवालिनौ च निजघान ।९६। बद्ध्वा चाम्भोनिधिमशेषराक्षसकुलक्षयं कृत्वा दशाननापहृतां भार्यां तद्वधादपहृतकलंकामप्यनलप्रवेशशुद्धामशेषदेवसङ्घैः स्तूयमानशीलां जनकराजकन्यामयोध्यामानिन्ये।९७। ततश्चाभिषेकमङ्गलं मैत्रेय वर्षशतेनापि वक्तुं न शक्यते सङ्क्षेपेण श्रूयताम् ॥९८॥

फिर पिता के वचन से राज्य को तुच्छ मान, वह अपने अनुज लक्ष्मण और भार्या सीताजी के साथ वन में गये ॥९५॥ वहाँ उन्होंने विराध, खर, दूषण, कवंध तथा बाली को मारा और समुद्र पर सेतु बन्धन कर सम्पूर्ण राक्षस-कुल का संहार किया। फिर वह रावण द्वारा हरी गई और निष्कलक होने पर भी अग्नि में प्रवेश करके शुद्ध हुई तथा देवताओं द्वारा प्रशंसित आचरण वाली सीताजी को अपने साथ लेकर अयोध्या में आये ॥९६-९७॥ हे मैत्रेयजी ! तब अयोध्या में राज्याभिषेक जैसा महोत्सव हुआ। उसका वर्णन मैं संक्षेप में करता हूँ ॥९८॥

लक्ष्मणभरतशत्रुघ्नविभीषणसुग्रीवाङ्गदजाम्बवद्धनुमत्प्रभृतिभिस्समुत्फुल्लवदनैश्छत्रचामरादियतैः सेव्यमानो दाशरथिर्ब्रह्मे-

न्द्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशानप्रभृतिभिस्सर्वामरैर्वसिष्ठ-वामदेववाल्मीकिमार्कण्डेयविश्वामित्रभरद्वाजागस्त्यप्रभृतिभिर्मुनि-वरैः ऋग्यजुस्सामाथर्वभिस्संस्तूयमानो नृत्यगीतवाद्याद्यखिललोक-मङ्गलवाद्यैर्वीणावेणुमृदङ्गभेरीपटहशंखकाहलगोमुखप्रभृतिभिस्सु-नादैस्समस्तभूभृतां मध्ये सकललोकरक्षार्थं यथोचितमभिषिक्तो दाशरथिः कौसलेन्द्रो रघुकुलतिलको जानकीप्रियो भ्रातृत्रयप्रिय-सिंहासनगत एकादशाब्दसहस्रं राज्यकरोत् ।।९८।।

श्रीराम राज्य सिंहासन पर बैठे, उस समय लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, विभीषण, अंगद, जाम्बवन्त और हनुमान आदि छत्रचमर आदि से सेवा करने लगे। ब्रह्माजी, इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरण, वायु, कुबेर और ईशानादि सब देवता यथास्थान स्थित हुए। वसिष्ठ, वामदेव, बाल्मीकि, मार्कण्डेय, विश्वामित्र, भरद्वाज और अगस्त्यादि मुनि श्रेष्ठ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के द्वारा स्तुति करने लगे। नृत्य, गीत, वाद्यादि—वीणा, वेणु, मृदंग, भेरी, पटह, शख, कातल, गोमुख आदि बजने लगे। उस समय सभी राजाओं की उपस्थिति में लोक की रक्षा के निमित्त विधि पूर्वक उनका राज्याभिषेक हुआ। इस प्रकार दशरथ नन्दन, कोसलेन्द्र, रघुकुलतिलक, जानकीनाथ, अपने तीनों भाइयों के परमप्रिय भगवान् श्रीराम ने राज्यपद प्राप्त कर ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य किया ।।९९।।

भरतोऽति गन्धर्वविषयसाधनाय गच्छन् संग्रामे गन्धर्वकोटी-स्तिस्रो जघान ।।१००।। शत्रुघ्नेनाप्यमितबलपराक्रमो मधुपुत्रो लवणो नाम राक्षसो निहतो मथुरा च निवेशिता ।।१०१।। इत्येव-माद्यतिबलपराक्रमणैरतिदुष्टसंहारिणोऽशेषस्य जगतो निष्पादित-स्थितयो रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः पुनरपि दिवमारूढाः ।।१०२।। येऽपि तेषु भगवदंशेष्वनुरागिणः कोसलनगरजानपदास्तेऽपि तन्म-नसस्तत्सालोक्यतामवापुः ।।१०३।।

फिर भरतजी गन्धर्वलोक को जीतने के लिये गये और वहाँ युद्ध में उन्होंने तीन करोड़ गन्धर्वों का संहार किया तथा शत्रुघ्नजी ने अत्यन्त

बलवान् एवं महान् पराक्रमी मधुपुत्र लवणासुर को मार कर मथुरा नामक नगर बसाया ॥१००-१०१॥ इस प्रकार अपने महान् बल-पराक्रम से विकराल दुष्टों का संहार करने वाले श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ने सम्पूर्ण विश्व की व्यवस्था की और फिर देवलोक को चले गये ॥१०२॥ जो अयोध्या निवासी उन भगवान् के अंशों में अत्यन्त आसक्त थे वे सब भी उनमें तल्लीन होने के कारण उन्हीं के साथ सालोक्य को प्राप्त हुए ॥१०३॥

अतिदुष्टसंहारिणो रामस्य कुशलवौ द्वौ पुत्रौ लक्ष्मणस्याङ्गद-चन्द्रकेतू तक्षपुष्कलौ भरतस्य सुबाहुशूरसेनौ शत्रुघ्नस्य ॥१०४॥ कुशस्यातिथिरतिथेरपि निषधः पुत्रोऽभूत् ॥१०५॥ निषधस्याप्यन-लस्तस्मादपि नभाः नभसः पुण्डरीकस्तत्तनयः क्षेमधन्वा तस्य च देवानीकस्तस्याप्यहीनकोऽहीनकस्यामि रुरुस्तस्य च पारियात्रकः पारियात्रकाद्देवलो देवलाद्वच्चलः तस्याप्युत्कः उत्काच्च वज्र-नाभस्तस्माच्छंखणस्तस्माद्युषिताश्वस्ततश्च विश्वसहो जज्ञे ।१०६। तस्माद्धिरन्यनाभः यो महायोगीश्वराज्जैमिनेश्शिष्याद्याज्ञवल्क्या-द्योगमवाप ॥१०७॥ हिरण्यानाभस्य पुत्रः पुष्यस्तस्माद्ध्रुवसन्धि-स्ततस्सुदर्शनस्तस्मादग्निवर्णस्ततश्शीघ्रगस्तस्मादपि मरुःपुत्रोऽभ-वत् ।१०८। योऽसौ योगमास्थायाद्यापि कलापग्राममाश्रित्यतिष्ठति ॥१०९॥ आगामियुगे सूर्यवंशक्षत्रप्रवर्त्तयिता भविष्यति ॥११०॥ तस्यात्मजः प्रसुश्रुतस्यापि सुसन्धिस्ततश्चाप्यमर्षस्तस्य च सह-स्वांस्ततश्च विश्वभवः ।१११। तस्य वृहद्बलः तोऽर्जुनतनयेनाभि-मन्युना भारतयुद्धे क्षयमनीयत।११२। एते इक्ष्वाकुभूपालाः प्राधा-न्येन मयेरिताः । एतेषां चरितं शृण्वन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ।११३।

दुष्टों का संहार करने वाले श्रीराम के दो पुत्र हुए, जिनका नाम कुश और लव था । लक्ष्मण के अंगद और चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र हुए । भरत के तक्ष और पुष्कल तथा शत्रुघ्न के सुबाहु और शूरसेन नामक दो-दो पुत्र हुए ॥१०४॥ कुश का पुत्र अतिथि हुआ । अतिथि का निषध, निषध का अनल, अनल का नभ और नभ का पुण्डरीक हुआ । पुण्डरीक का

क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वा का देवलोक, उसका अहीनक, उसका रुरु और रुरु का परियात्रक हुआ। पारिश्रायक का देवल, उसका वच्चल, वच्चल का उत्क और उत्क का वज्रनाभ हुआ। वज्रनाभ का शंखण, उसका पुत्र युषिताश्व तथा युषिताश्व का पुत्र विश्वसह हुआ ॥ १०५-१०६॥ उसी विश्वसह के पुत्र हिरण्यनाभ ने याज्ञवल्क्यजी से योग विद्या ग्रहण की थी ॥१०७॥ हिरण्यनाभ का पुत्र पुष्य हुआ, उसका ध्रुवसन्धि और उसका सुदर्शन हुआ। सुदर्शन का पुत्र अग्निवर्ण, अग्निवर्ण का शीघ्रग और शीघ्रग का मरु हुआ। वह शीघ्रग-पुत्र मरु अब भी कलाप-ग्राम में योगाभ्यास-परायण रहता है ॥ १०८॥१०९॥ आने वाले युग में यही सूर्यवंशी क्षत्रियों का प्रवर्त्तक होगा ॥११०॥ उस मरु का पुत्र प्रसुश्रुत हुआ। प्रसुश्रुत का सुसन्धि, उसका अमर्ष, अमर्ष का सहस्वान्, सहस्वान् का विश्वभव और विश्वभव का वृहद्बल हुआ, जो महाभारत युद्ध में अर्जुन पुत्र अभिमन्यु द्वारा मारा गया था ॥ १११॥११२ ॥ इस प्रकार यह इक्ष्वाकु वंश के सब प्रमुख-प्रमुख राजाओं का वर्णन मैंने किया है। इसके सुनने से सभी पापों से छुटकारा होता है ॥११३॥

पाँचवां अध्याय

इक्ष्वाकुतनयो योऽसौ निमिर्नाम सहस्रं वत्सरं सत्रामारेभे ॥१॥ वसिष्ठं च होतारं वरयामास ॥२॥ तमाह वसिष्ठोऽहमिन्द्रेण पञ्चवर्षशतयागार्थं प्रथमं वृतः ॥३॥ तदन्तरं प्रतिपाल्यतामागतस्तवापि ऋत्विग्भविष्यामीत्युक्ते स पृथिवीपतिर्न किञ्चिदुक्तवान् ॥४॥ वसिष्ठोऽप्यनेन समन्वीप्सितमित्यमरपतेर्यागमकरोत्॥५॥ सोऽपि तत्काल एवान्यैर्गौतमादिभिर्यागमकरोत् ॥६॥

श्री पाराशरजी ने कहा— इक्ष्वाकु-पुत्र निमि ने सहस्र वर्षों में सम्पन्न होने वाला यज्ञ आरम्भ किया ॥१॥ उसमें उसने होता के रूप में वसिष्ठजी का वरण किया ॥२॥ वसिष्ठजी ने उससे कहा कि इन्द्र ने पांच सौ वर्षों में सम्पन्न होने वाले यज्ञ के लिए मुझे पहिले से ही वरण किया हुआ है ॥३॥ अतः तुम इतने समय और रुको मैं वहाँ से लौटकर

तुम्हारा ऋत्विक् बनूँगा। यह सुनकर राजा उन्हें कोई उत्तर न देकर चुप हो गया ॥५॥ वसिष्ठजी ने समझा कि राजा ने उनकी बात मान ली है, इसलिये वह इन्द्र का यज्ञ करने लगे। इधर राजा निमि ने गौतमादि अन्य होताओं द्वारा यज्ञ आरम्भ कर दिया ॥६॥

समाप्ते चामरपतेर्यागे त्वरया वसिष्ठो निमियज्ञं करिष्यामीत्याजगाम ।७। तत्कर्मकर्तृत्वं च गौतमस्य दृष्ट्वा स्वपते तस्मै राज्ञे मां प्रत्याख्यायैतदनेन गौतमाय कर्मान्तरं समर्पितं यस्मात्तस्मादयं विदेहो भविष्यतीति शापं ददौ ।८। प्रबुद्धश्चासाववनिपतिरपि प्राह ॥९॥ यस्मान्मातसम्भाष्याज्ञानत एव शयानस्य शापोत्सर्गमसौ दुष्टगुरुश्चकार तस्मात्तस्यापि देहः पतिष्यतीति शापं दत्त्वा देहमत्यजत् ॥१०॥

उधर वसिष्ठजी सोच रहे थे कि मुझे निमि का यज्ञ कराना है इस लिए इन्द्र का यज्ञ समाप्त होते ही वह शीघ्रतापूर्वक वहाँ आ गये ॥ ७ ॥ उस यज्ञ में अपने स्थान पर गौतम को कर्म करते हुए देखकर सोते हुए राजा निमि को शाप दिया कि इसने गौतम को होता नियुक्त करके मेरा तिरस्कार किया है, इसलिये यह देह रहित हो जायगा ॥८॥ जब राजा निमि सोकर उठा और उसे यह मालूम हुआ कि वसिष्ठजी ने ऐसा शाप दिया कि इस दुष्ट गुरु ने मुझसे सम्भाषण किये विना ही अज्ञानवस मुझ सोते हुए को शाप दिया है इसलिए यह भी देह-रहित होगा। इस प्रकार शाप देकर राजा ने अपना देह त्याग दिया ॥९-१०॥

तच्छापाच्च मित्रावरुणायोस्तेजसि वसिष्ठस्य चेतः प्रविष्टम् ॥११॥ उर्वशीदर्शनाददद्भुतबीजप्रपातयोस्सकाशाद्वसिष्टो देहमपरं लेभे ॥११॥ निमेरपि तच्छरीरमतिमनोहरगन्धतैला दिभिरुपसंस्क्रियमाणं नैव क्लेदादिकं दोषमवाप सद्यो मृत इव तस्थौ ॥१३॥ यज्ञसमाप्तौ भागग्रहणाय देवनागतानृत्विज ऊचुर्यजमानाय वरो दीयतामिति ।१४। देवैश्च छन्दितोऽसौ निमिराह ।१५। भगवन्तोऽखिलसंसारदुःखहन्तारः ॥१६॥ नह्येतादृगन्यद्दुःखमस्ति यच्छरीरात्मनोर्वियोगे भवति ॥१७॥ तदहमिच्छामि सकललोकचनेषु

वस्तुं न पुनश्शरीरग्रहणं कर्तुमित्येवमुक्तै र्देवैरसावशेषभूतानां नेत्रेष्ववतारितः ।१८। ततो भूतान्युन्मेषनिमेषं चक्रुः ।।१६।।

राजा निमि के शाप से वसिष्ठजी का प्राण मित्रावरण के वीर्य में प्रविष्ट हुआ और उर्वशी को देख कर कामवश मित्रावरुण का वीर्य स्खलन होने से वशिष्ठ को उसी से पुनर्देह की प्राप्ति हो गई ।।११-१२।। राजा निमि का देह भी अत्यन्त मनोहर गन्ध और तैल आदि के द्वारा संरक्षित किया जाने से खराब नहीं हुआ और उसी समय मरे हुए के समान बना रहा ।।१३।। जव यज्ञ समाप्त हुआ, तव सब देवता अपना-अपना भाग लेने के लिए वहाँ उपस्थित हुए। उस समय ऋत्विकों ने उनसे कहा कि यजमान को वर प्रदान करिये ।।१४।। यह सुन कर देवताओं ने राजा निमि के शरीर को प्रेरित किया, तब उसने उनसे कहा ।।१५।। हे भगवन् ! आप सम्पूर्ण संसार-दुःख के हरण करने वाले हैं ।।१६।। मैं समझता हूँ कि देह और आत्मा का वियोग होने में दुःख है, वैसा दुःख अन्य कोई भी नहीं है ।।१७।। इसलिए अब मैं देह को पुनः ग्रहण नहीं करना चाहता, सब प्राणियों के नेत्रों में रहना चाहता हूँ। यह सुन कर देवताओं ने राजा निमि को सब प्राणियों के नेत्रों में स्थित कर दिया ।।१८।। उसी समय से प्राणियों में उन्मेष-निमेष का आरम्भ हुआ ।।१६।।

अपुत्रस्य च भूभुजः शरीरमराजकभीरवो मुनयोऽरण्या ममन्थुः ।२०।तत्र च कुमारो जज्ञे ।२१। जननाज्जनकसंज्ञां चावाप ।२२। अभूद्विदेहोऽस्य पितेति वैदेहः मथनान्मिथिरिति।२३। तस्योदावसुः पुत्रोऽभवत् ।२४। उदावसोर्नन्दिवर्द्धनस्ततस्सुकेतुः तस्माद्देवरातस्ततश्च बृहदुक्थः तस्य च महावीर्यस्तस्यापि सुधृतिः ।२५। ततश्च धृष्टकेतुरजायत ।२६। धृष्टकेतोर्हर्यश्वस्तस्य च मनुर्मनो प्रतिकः तस्मात्कृतरथस्तस्य देवमीढः तस्य च विबुधो विबुधस्य महाधृतिस्ततश्च कृतरातः ततो महारोमा तस्य सुवर्णरोमा तत्पुत्रो ह्रस्वरोमा ह्रस्वरोम्णस्सीरध्वजोऽभवत्।२७। तस्य पुत्रार्थं यजनभुवं कृषतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्ना ।।२८।।

फिर अराजकता फैलने की आशंका से मुनियों ने उस पुत्रहीन राजा के देह को अरणि से मथना आरम्भ किया ॥२०॥ उससे एक बालक उत्पन्न हुआ जो स्वयं जन्म लेने के कारण 'जनक' कहा गया ॥२१-२२॥ इसके पिता के विदेह होने के कारण इसका नाम 'वैदेह' हुआ तथा मंथन करने से उत्पन्न होने के कारण 'मिथि' भी कहलाया ॥२३॥ उसके पुत्र का नाम उदावसु हुआ ॥२४॥ उदावसु का पुत्र नन्दिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धन का सुकेतु और सुकेतु का पुत्र देवरात हुआ। देवरात का बृहदुक्थ, उसका महावीर्य और महावीर्य का सुधृति नामक पुत्र हुआ। सुधृति के पुत्र का नाम धृष्टकेतु हुआ। धृष्टकेतु का पुत्र हर्यश्व हुआ, जिससे मनु का जन्म हुआ। मनु से प्रतिक, प्रतिक से कृतरथ, कृतरथ से देवमीढ, देवमीढ से विबुध और विबुध से महाधृति हुआ। महाधृति का पुत्र कृतरात, कृतरात का महारोमा, महारोमा का सुवर्णरोमा, उसका पुत्र ह्रस्वरोमा तथा उसका पुत्र सीरध्वज हुआ ॥२४-२७॥ वह सीरध्वज पुत्र प्राप्ति की इच्छा से यज्ञ भूमि को जोत रहा था, तभी उसके हल के अगले भाग से एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम सीता हुआ ॥२८॥

सीरध्वजस्य भ्राता साङ्काश्याधिपतिः कुशध्वजनामासीत् ॥२९॥ सीरध्वजस्यापत्यं भानुमान् भानुमतश्शतद्युम्नः तस्य तु शुचिः तस्माच्चोर्जनामा पुत्रो जज्ञे ।३०। तस्यापि शतध्वजः ततः कृतिः कृतेरञ्जनः तत्पुत्रः कुरुजित् ततोऽरिष्टनेमिः तस्माच्छ्रुतायुः श्रुतायुषः सुपार्श्वः तस्मात्सृञ्जयः ततः क्षेमावी क्षेमाविनोऽनेनाः तस्माद्भौमरथः तस्य सत्यरथः तस्मादुपगुरुर्गोरुपगुप्तः तत्पुत्रः स्वागतस्तस्य च स्वानन्दः तस्माच्च सुवर्चाः तस्य च सुपार्श्वः तस्यापि सुभाषः तस्य सुश्रुतः तस्मात्सुश्रुताज्जयः तस्य पुत्रो विजयो विजयस्य ऋतः ऋतात्सुनयः सुनायाद्वीतहव्यः तस्माद्धृतिर्धृतेर्बलाश्वः तस्य पुत्रः कृतिः ।३१। कृतौ संतिष्ठतेऽयं जनकवंशः ।३२। इत्येते मैथिलाः ।३३। प्रायेणैते आत्मविद्याश्रयिणो भूपाला भवन्ति ॥३४॥

सांकाश्याधिपति कुशध्वज सीरध्वज का भाई था ॥२६॥ सीरध्वज का पुत्र भानुमान् हुआ। भानुमान् का शतद्युम्न, उसका शुचि, शुचि का ऊर्जनामा, ऊर्जनामा का शतध्वज, शतध्वज का कृति, कृति का अञ्जन, अञ्जन का कुरुजित् और कुरुजित् का अरिष्टनेमि हुआ। अरिष्टनेमि का श्रुतायु, श्रुतायु का सुपार्श्व, सुपार्श्व का सृंजय, सृंजय का क्षेमावी, क्षेमावी का अनेना, अनेना का भौमरथ, भौमरथ का सत्यरथ, सत्यरथ का उपगु, उपगु का उपगुप्त उपगुप्त का स्वागत, स्वागत का स्वानन्द, स्वानन्द का सुवर्चा, सुवर्चा का सुपार्श्व, सुपार्श्व का सुभाष, सुभाष का सुश्रुत और सुश्रुत का जय हुआ। जय के पुत्र का नाम विजय रखा गया। विजय का पुत्र ऋत, ऋत का सुनय, सुनय का वीतहव्य, वीतहव्य का धृति धृति का बहुलाश्व तथा बहुलाश्व का पुत्र कृति हुआ ॥३०-३१॥ कृति पर आकर यह जनक वंश समाप्त हो गया। यह सभी मैथिल देश के राजा गण थे ॥३२-३३॥ तथा यह सब पृथिवी-पालक नरेश आत्म विद्या के आश्रयदाता हुए ॥३४॥

छठा अध्याय

सूर्यस्य वंश्या भगवन्कथिता भवता मम। सोमस्याप्यखिलान्वंश्याञ्छ्रोतुमिच्छामि पार्थिवान् ॥१॥ कीर्त्यते स्थिरकीर्तीनां येषामद्यापि सन्ततिः। प्रसादसुमुखस्तान्मे ब्रह्मन्नाख्यातुमर्हसि ॥२॥ श्रूयतां मुनिशार्दूल वंशः प्रथिततेजसः। सोमस्यानुक्रमात्ख्याता तत्रोर्वीपतयोऽभवन् ॥३॥ अयं हि वंशोऽतिबलपराक्रमद्युतिशीलचेष्टावद्भिरतिगुणान्वितैर्नहुषययातिकार्तवीर्यार्जुनादिभिर्भूपालैरलङ्कृतस्तमहं कथयामि श्रूयताम् ॥४॥

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवन्! आपने सूर्य वंश के राजाओं का वर्णन किया, अब मैं चन्द्रवंश के शासकों का वर्णन सुनने की इच्छा करता हूँ। जिन स्थिर यश वाले राजाओं की सन्तान का श्रेष्ठ यश आज गाया जाता है, उन सभी का प्रसन्नता पूर्वक वर्णन करिये ॥१-२॥

श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने ! अत्यन्त तेजस्वी चन्द्रवंश का वर्णन सुनो। उस वंश में अनेकों प्रसिद्ध कीर्ति वाले राजा हुए हैं ॥३॥ इस वंश को अलंकृत करने वाले राजा नहुष, ययाति, कीर्तवीर्य, अर्जुन आदि अनेक अत्यन्त बली, पराक्रमी, तेजस्वी, क्रिया-शील और सद्गुण-सम्पन्न राजा हुए हैं, उनका वर्णन सुनो ॥४॥

अखिलजगत्स्रष्टुर्भगवतो नारायणस्य नाभिसरोजसमुद्भवाब्जयोनेर्ब्रह्मणः पुत्रोऽत्रिः ।५। अत्रेस्सोमः ।६। तं च भगवानब्जयोनिः अशेषौषधिद्विजनक्षत्राणामाधिपत्येऽभ्यषेचयत् ॥७॥ स राजसूयमकरोत् ॥८॥ तत्प्रभावादत्युत्कृष्टाधिपत्याधिष्ठातृत्वाच्चैनं मद आविवेश ॥९॥ मदावलेपाच्च सकलदेवगुरोर्बृहस्पतेस्तारां नाम पत्नीं जहार ॥१०॥ बहुशश्च बृहस्पतिचोदितेन भगवता ब्रह्मणा चोद्यमानः सकलैश्च देवर्षिभिर्याच्यमानोऽपि न मुमोच ।११। तस्य चन्द्रस्य च बृहस्पतेर्द्वेषादुशना पार्ष्णिग्राहोऽभूत् ।१२। अङ्गिरसश्च सकाशादुपलब्धविद्यो भगवान्रुद्रो बृहस्पतेः साहाय्यमकरोत् ।१३।

सम्पूर्ण विश्व के रचने वाले भगवान् श्री नारायण के नाभि-कमल से अवतीर्ण हुए प्रजापति श्री ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि प्रजापति हुये ॥५॥ इन्हीं अत्रि के पुत्र चन्द्रमा हुये ॥६॥ पद्मयोनि भगवान् ब्रह्माजी ने उनका सब औषधि, द्विजजन और नक्षत्रों के आधिपत्य पर अभिषेक किया ॥७॥ तब चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ किया ॥८॥ अपने अत्यन्त उच्चाधिपत्य के अधिकार और प्रभाव से चन्द्रमा राजमद में भर गया ॥९॥ इस प्रकार मदोन्मत्त हुये उस चन्द्रमा ने देवताओं के पूजनीय गुरु बृहस्पतिजी की पत्नी तारा का अपहरण किया ॥१०॥ फिर उसने बृहस्पतिजी के प्रेरित किये हुये श्री ब्रह्माजी के बहुत बार अनुरोध करने पर तथा देवर्षियों द्वारा माँगे जाने पर भी उसे मुक्त न किया ॥११॥ बृहस्पति से द्वेष होने के कारण शुक्र भी चन्द्रमा के सहायक हुए और अंगिरा से विद्या प्राप्त करने के कारण भगवान् रुद्र बृहस्पति के सहायक हो गये ॥१२—१३॥

यतश्चोशना ततो जम्भकुम्भाद्याः समस्ता एव दैत्यदानव-निकाया महान्तमुद्यमं चक्रुः ।१४। बृहस्पतेरपि सकलदेवसैन्ययुतः सहायः शक्रोऽभवत् ॥१५॥ एवं च तयोरतीवोग्रसंग्राममस्तारा-निमित्तस्तारकामयो नामाभूत् ॥१६॥ ततश्च समस्तशस्त्राण्यसु-रेषु रुद्रपुरोगमा देवा देवेषु चाशेषदानवा मुमुचुः ।१७। एवं देवा-सुराहवसंक्षोभक्षुब्धहृदयमशेषमेव जगद्ब्रह्माणं शरणं जगाम ॥१८॥ ततश्च भगवानब्जयोनिरप्युशनसं शंकरमसुरान्देवांश्च निवार्य बृहस्पतये तारामदापयत् ।१९। तां चान्तःप्रसवामवलोक्य बृहस्पतिरप्याह ।२०। नैष मम क्षेत्रे भवत्यान्यस्य सुतो धार्यस्समु-त्सृजैनममलमलतिधाष्ट्र्येनेति ॥२१॥

शुक्र ने जिधर का पक्ष लिया, उधर से ही जम्भ और कुम्भादि सभी दैत्य-दानवों ने भी सहायता का प्रयत्न किया ॥१४॥ इधर सब देवताओं की सेना के सहित इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता की ॥१५॥ इस प्रकार तारा की प्राप्ति के लिए तारकामय घोर संग्राम उपस्थित हो गया ॥१६॥ तब रुद्रादि देवता दानवों पर और दानव देवताओं पर विभिन्न प्रकार के शस्त्रों से प्रहार करने लगे ॥१७॥ इस प्रकार देवासुर-संग्राम से संत्रस्त हुए सम्पूर्ण विश्व ने भगवान् श्री ब्रह्माजी की शरण ली ॥१८॥ तब उन कमलयोनि भगवान् ने शुक्र, शङ्कर आदि दानवों और दैत्यों को शान्त किया और युद्ध रुकवा कर बृहस्पतिजी को तारा दिलवा दी ॥१९॥ उसके गर्भाधान हुआ देखकर बृहस्पतिजी ने उससे कहा ॥२०॥ मेरे क्षेत्र में दूसरे के पुत्र को धारण करना अनुचित है, इस प्रकार की धृष्टता ठीक नहीं है, इसे निकाल कर फैंक दे ॥२१॥

सा च तेनैवमुक्तातिपतिव्रता भर्तृवचनानन्तरं तमिषीकास्त-म्बे गर्भमुत्ससर्ज ।२२। स चोत्सृष्टमात्र एवातितेजसा देवानां तेजा-स्याचिक्षेप ।२३। बृहस्पतिमिन्दुं च तस्य कुमारस्यातिचारुतया साभिलाषौ दृष्ट्वा देवास्समुत्पन्नसन्देहास्तारां प्रपच्छु ।२४। सत्यं कथयास्माकमिति सुभगे सोमस्याथवा बृहस्पतेरयं पुत्र इति ।२५।

बृहस्पतिजी का यह कथन सुनकर उसने उनकी आज्ञा के अनुसार उस गर्भ को सीकों की झाड़ी में फेंक दिया ॥२२॥ उस फैंके हुए गर्भ ने अपने तेज से सब देवताओं का तेज फीका कर दिया ॥२३॥ तब उस बालक को अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों ही उसे ग्रहण करने के अभिलाषी हुए। यह देखकर देवताओं को संदेह हुआ और उन्होंने तारा से पूछा कि हे सुभगे! यह पुत्र बृहस्पति का है या चन्द्रमा का, यह बात हमें यथार्थ रूप से बता? ॥२४-२५॥

कथय वत्से कस्यायमात्मजः सोमस्य वा बृहस्पतेर्वा इत्युक्ता लज्जमानाह सोमस्येति ।२६। ततः प्रस्फुरदुच्छ्वसितामलकपोलकान्तिर्भगवानुडुपतिः कुमारमालिङ्ग्य साधु साधु वत्स प्राज्ञोऽसीति बुध इति तस्य च नाम चक्रे ।२७। तदाख्यानमेवैतत् स च यथेलायामात्मजं पुरूरवसमुत्पादयामास ।२८। पुरूरवास्त्वतिदानशीलोऽतियज्वातितेजस्वी। यं सत्यवादिनमतिरूपवन्तं मनस्विनं मित्रावरुणशापान्मानुषे लोके मया वस्तव्यमिति कृतमतिरुर्वशी ददर्श ।२९। दृष्टमात्रे च तस्मिन्नपहाय मानमशेषमपास्य स्वर्गसुखाभिलाषं तन्मनस्का भूत्वा तमेवोपतस्थे ॥३०॥ सोऽपि च तामतिशयितसकललोकस्त्रीकान्तिसौकुमार्यलावण्यगतिविलासहासादिगुणामवलोक्य तदायत्तचित्तवृत्तिर्बभूव ॥३१॥

ब्रह्माजी ने तारा से पूछा कि हे वत्से! तू यथार्थ रूप से बतादे कि यह बृहस्पति का पुत्र है या चन्द्रमा का? इस प्रकार उसने लजाते हुए कह दिया कि चन्द्रमा का है ॥२६॥ यह सुनते ही चन्द्रमा ने उस बालक को अपने हृदय से लगा लिया और उससे कहा कि 'वाह, पुत्र! तुम अत्यन्त बुद्धिमान हो' यह कर उसका नाम बुध रख दिया। इस समय उनके स्वच्छ कपोलों की कान्ति अत्यन्त तेजयुक्त हो रही थी ॥२७॥ उसी बुध ने इला से पुरूरवा को उत्पन्न किया था, जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है ॥२८॥ पुरूरवा अत्यन्त दानी, याज्ञिक और तेजस्वी हुआ। उर्वशी को मित्रावरुण का जो शाप था, उसका विचार करते हुए

कि 'मुझे उस शाप के कारण मृत्युलोक में निवास करना होगा' राजा पुरूरवा पर उसकी दृष्टि पड़ी और वह अत्यन्त सत्यभाषी, रूपवन्त और मेधावी राजा पुरूरवा के पास, अपनी मान-मर्यादा और स्वर्ण-सुख की कामना को त्याग कर तन्मयता पूर्वक आकर उपस्थित हुई ॥२९—३०॥ राजा पुरूरवा ने भी उसे सब स्त्रियों में विशिष्ट लक्षण वाली, सुकुमार, कान्तिमयी, सौन्दर्य, चाल-ढाल, मुसकान आदि में श्रेष्ठ देखा तो वह उसमें आसक्त हो गया ॥३१॥

राजा तु प्रागल्भ्यात्तामाह ।३२। सुभ्रु त्वामहमभिकामोऽस्मि प्रशीदानुरागमुद्वहेत्युक्ता लज्जावखण्डितमुर्वशीतं प्राह ।३३। भवत्वेवं यदि मे समयपरिपालन भवान् करोतीत्याख्याते पुनरपि तामाह ॥३४॥ आख्याहि मे समयमिति ।३५। अथ पृष्टा पुनरप्यब्रवीत् ॥३६॥ शयनसमीपे ममोरणकद्वयं पुत्रभूतम् ॥३७॥ भवांश्च मया न नग्नो द्रष्टव्यः ।३८। घृतमात्रं च ममाहार इति ।३९। एवमेवेति भूपतिरप्याह ॥४०॥

उस समय राजा ने सकोच-रहित भाव से कहा--हे श्रेष्ठ भ्रू वाली ! मैं तुम्हें चाहता हूँ, तुम मुझ पर प्रसन्न होकर अपना प्रेम प्रदान करो। राजा की बात सुन कर उर्वशी भी लज्जावश खण्डित स्वर में कहने लगी ॥३२—३३॥ यदि आप मेरी प्रतिज्ञा का परिपालन करा सकें तो, मैं अवश्य ही ऐसा करने को प्रस्तुत हूँ। यह सुन कर राजा बोला कि— तुम अपनी उस प्रतिज्ञा को मेरे प्रति कहो ॥३४-३५॥ उसके इस प्रकार पूछने पर उर्वशी ने कहा—मेरे यह दो मेष शिशु सदा मेरे पास रहेंगे। आप इन्हें मेरी शय्या से कभी न हटायेंगे ? मैं आपको कभी भी नग्न न देख सकूँगी; तथा घृत ही मेरा भोजन होगा। इस पर राजा ने कहा कि 'यही होगा' ॥३६—४०॥

तया सह च चावनिपतिरलकायां चैत्ररथादिवनेष्वमलपद्मखण्डेषु मानसादिसवरस्तिरमणीयेषु रममाणः षष्टिवर्षसहस्राण्यनुदिनप्रवर्द्धमानप्रमोदोऽनयत् ।४१। विना चोर्वश्या सुरलोकोऽप्सरसां सिद्धगन्धर्वाणां च नातिरमणीयोऽभवत् ।४२। ततश्चोर्वं-

शीपुरूरवसोस्समयविद्विश्वावसुर्गन्धर्वसमवेतो निशि शयनाभ्याशादेकमुरणकं जहार ।४३। तस्याकाशे नीयमानस्योर्वशी शब्दमश्रृणोत् ।४४। एवमुवाच च ममानाथायाः पुत्रः केनापह्रियते कं शरणमुपयामीति ।४५। तदाकर्ण्य राजा मां नग्नं देवी वीक्ष्यतीति न ययौ ।४६। अथान्यमप्युरणकमादाय गन्धर्वा ययुः ।४७। तस्याप्यपह्रियमाणस्याकर्ण्य शब्दमाकाशे पुनरप्यानाथास्म्यहमभर्तृका कापुरुषाश्रयेत्यार्त्तराविणी बभूव ।।४८।।

फिर राजा पुरूरवा दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त होते हुए सुख के साथ कभी अलकापुरी के चैत्ररथ आदि वनों में और कभी श्रेष्ठ कमल-खण्डों वाले अत्यन्त रमणीक मानसादि सरोवरों में उसके साथ विहार करते रहे। इस प्रकार उन्होंने साठ हजार वर्ष व्यतीत कर दिए ।।४१।। उधर स्वर्गलोक में अप्सराओं, सिद्धों और गन्धर्वों को उर्वशी के अभाव में उतनी रमणीयता प्रतीत नहीं होती थी ।।४२।। इसलिए उर्वशी और पुरूरवा के मध्य हुई प्रतिज्ञा को जानने वाले विश्ववसु ने एक रात्रि में गन्धर्वों के साथ पुरूरवा के शयनागार में जाकर उसके एक मेष का अपहरण किया और जब वह आकाश-मार्ग से ले जाया जा रहा था, तब उर्वशी उसका शब्द सुन कर बोली कि मुझ अनाथा के पुत्र का अपहरण करके कौन लिए जा रहा है ? अब मैं किसकी शरण में जाऊं ? ।।४३-४५।। परन्तु उर्वशी की पुकार सुन कर भी राजा इस भय से नहीं उठा कि वह मुझे वस्त्र-विहीन स्थिति में देख लेगी ।।४६।। इसी अवसर में गन्धर्वों ने दूसरे मेष का भी हरण कर लिया और वे उसे लेकर चल दिये ।।४७।। उसके भी ले जाने का शब्द सुन कर उर्वशी चीत्कार कर उठी कि 'अरे, मैं अनाथा और स्वामी-विहीन नारी एक कापुरुष के वश में पड़ गई हूँ।' इस प्रकार उर्वशी आर्त्त स्वर में रोने लगी ।।४८।।

राजा प्यमर्षवशादन्धकारमेतदिति खड्गमादाय दुष्ट दुष्ट हतोऽसीति व्याहरन्नभ्यधावत् ।४९। तावच्च गन्धर्वैरप्यतीवोज्ज्वला विद्युज्जनिता ।।५०।। तत्प्रभया चोर्वशी राजानमपगताम्बरं दृष्ट्वापवृत्तसमया तत्क्षणादेवापक्रान्ता ।५१।परित्यज्य तावप्यरण-

कौ गन्धर्वास्सुरलोकमुपागता:।५२। राजापि च तौ मेषावादायातिहृष्टमना:स्वशयनमायातो नोर्वशीं ददर्श ।५३। तांचापश्यन् व्यपगताम्वर एवोन्मत्तरूपो वभ्राम ।५४। कुरुक्षेत्रे चाम्भोजसरस्यन्याभिश्चतसृभिनप्सरोभिस्समवेतामुर्वशीं ददर्श ।५५। ततश्चोन्मत्तरूपो जाये हे तिष्ठ मनसि घोरे तिष्ठ वचसि कपटिके तिष्ठेत्येवमनेकप्रकारं सूक्तमवोचत् ।५६। आह चोर्वशी ।५७। महाराजालमनेनाविवेकचेष्टितेन ।५८। अन्तर्वत्न्यहमब्दान्ते भवतात्रागन्तव्यं कुमारस्ते भविष्यति एका च निशामहं त्वया सह वत्स्यामीत्युक्तः प्रहृष्टस्स्वपुरं जगाम ।।५९।।

उस समय राजा ने सोचा कि अभी अँधेरा है और तब क्रोध पूर्वक तलवार हाथ में लेकर 'अरे दुष्ट तू नष्ट हो गया' कहते हुए शीघ्रतापूर्वक दौड़ पड़ा ।।४९।। तभी गन्धर्वों ने अत्यन्त प्रकाश वाली विद्युत प्रकट कर दी और उसके प्रकाश में उर्वशी ने राजा को वस्त्र-विहीन देख लिया । इस प्रकार प्रतिज्ञा भंग हो जाने के कारण उर्वशी वहाँ से तत्काल चली गई ।।५०-५१।। तब गन्धर्व भी मेषों को वहीं छोड़ स्वर्गलोक को चले गये ।।५२।। जब राजा उन मेषों को लेकर अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ अपने शयनगृह में आया तब वहाँ उसने उर्वशी को न पाया ।।५३।। तो वह उन्मत्त-सा हो कर उस वस्त्र-विहीन अवस्था में ही विचरने लगा ।।५४।। इस प्रकार विचरण करते हुए उसने कुरुक्षेत्र के पद्म-सरोवर में उर्वशी को अन्य चार अप्सराओं के सहित देखा ।।५५।। वह उसे देखते ही बोला—हे जाये ! हे निष्ठुर हृदय वाली ! हे कपटिके ! थोड़ी देर तो ठहर, किंचित् सम्भाषण तो कर ।।५६।। उर्वशी ने कहा – हे महाराज ! इस प्रकार की अविवेक-युक्त चेष्टा न करो । मैं गर्भवती हूँ, इसलिए एक वर्ष के पश्चात् आप यहीं आवें उस समय आपके एक पुत्र होगा और मैं भी एक रात्रि आपके साथ व्यतीत करूंगी । यह सुन कर पुरूरवा प्रसन्न हुआ और अपने नगर में लौट आया ।।५७-५९।।

मासां चाप्सरसामुर्वशी कथयामास ॥६०॥ अयं स पुरुषोत्कृष्टो येनाहमेतावन्तं कालमनुरागाकृष्टमानसा सहोषितेति ॥६१॥ एवमुक्तास्ताश्चाप्सरस ऊचुः ।६२। साधु साध्वस्य रूपमप्यनेन सहास्माकमपि सर्वकालमास्या भवेदिति ।६३। अब्दे च पूर्णे स राजा तत्राजगाम ॥६४॥ कुमारं चायुषमस्मै चोर्वशी ददौ ॥६५॥ दत्त्वा चैकां निशां तेन राज्ञा सहोषित्वा पञ्च पुत्रोत्पत्तये गर्भमवाप ॥६६॥ उवाचैनं राजानमस्मत्प्रीत्या महाराजाय सर्व एव गन्धर्वा वरदास्संवृत्ता व्रियतां च वर इति ।६७। आह च राजा विजितसकलारातिरविहतेन्द्रिय सामर्थ्यो बन्धुमानमितबल कोशोऽस्मि, नान्यदस्माकमुर्वशीसालोक्यात्प्राप्तव्यमस्ति तदहमनया सहोर्वश्या कालं नेतुमभिलषामीत्युक्ते गन्धर्वा राज्ञेऽग्निस्थाली ददुः ।६८। ऊचुश्चैनमग्निमाम्नायानुसारी भूत्वा त्रिधाकृत्वोर्वशीसलोकतामनोरथमुद्दिश्य सम्यग्यजेथाः ततोऽवश्यमभिलषिततमवाप्स्यसीत्युक्तस्तामग्निस्थालीमादाय जगाम ॥६९॥

इसके पश्चात् उर्वशी ने अपने साथ की अप्सराओं से कहा- यही वह पुरुष श्रेष्ठ हैं, जिनके साथ प्रेमासक्त चित्त से मैंने पृथिवी पर निवास किया था ॥६०-६१॥ इस पर अप्सराएँ कहने लगीं — वाह, कैसे सुन्दर और चित्ताकर्षण हैं, इनके साथ तो हम भी कभी रह सकें ॥६२-६३॥ एक वर्ष की समाप्ति पर राजा पुरूरवा पुनः वहाँ पहुँचे ॥६४॥ तब उर्वशी ने उन्हें 'आयु' नामक एक शिशु प्रदान किया ॥६५॥ फिर उसने उनके साथ एक रात्रि रह कर पाँच पुत्रों की उत्पत्ति के लिए गर्भ धारण किया ॥६६॥ फिर बोली कि हमारी पारस्परिक प्रीति के कारण सभी गन्धर्व आपको वर देने के इच्छुक हैं, अतः अपना इच्छित वर माँगिए ॥६७॥ राजा ने कहा—मैंने अपने सभी बैरियों पर विजय प्राप्त की है, मेरी इन्द्रियाँ भी सामर्थ्य युक्त हैं, मेरे पास बन्धु-बाँधव, असंख्य सेना और कोष भी है, अतः उर्वशी के संग के अतिरिक्त और कुछ भी मैं नहीं चाहता। यह सुन कर गन्धर्वों ने उन्हें एक अग्निस्थाली प्रदान करते हुए कहा—वैदिक विधि से इस अग्नि के गार्हपत्य, आह्वनीय और दक्षिणाग्नि

रूप में तीन भाग करके उर्वशी-संग के मनोरथ के साथ इसमें यजन करने पर तुम्हें अपने अभीष्ट की प्राप्ति होगी। यह कहे जाने पर उस अग्नि-स्थाली को ग्रहण करके राजा पुरूरवा वहाँ से चल दिया ॥६८—६९॥

अन्तरटव्यामचिन्तयत् अहो मेऽतीव मूढता किमहकरवम्।७०। वह्निस्थाली मयैषानीता नोर्वशीति ।७१। अथैनामटव्यामेवाग्नि-स्थालीं तत्याज स्वपुरं च जगाम ।७२। व्यतीतेऽर्द्धरात्रे विनिद्रश्चाचिन्तयत् ।७३। ममोर्वशीसालोक्यप्राप्त्यर्थमग्निस्थाली गन्धर्वैर्दत्ता सा च मयाटव्यां परित्यक्ता ।७४। तदहं तत्र तदाहरणाय यास्यामीत्युत्थाय तत्राप्युपगतो नाग्निस्थालीमपश्यत् ।७५। शमीगर्भं चाश्वत्थमग्निस्थालीस्थाने दृष्ट्वाचिन्तयत् ॥७६॥ मयात्राग्निः स्थाली निक्षिप्ता सा चाश्वत्थश्शमीगर्भोऽभूत् ।७७॥ तदेनमेवाहमग्निरूपमादाय स्वपुरमभिगम्यारणिं कृत्वा तदुत्पन्नाग्नेरुपास्तिं करिष्यामीति ॥७८॥

फिर वन में जाते हुए राजा ने सोचा—अरे, मैं भी कितना मूर्ख हूँ, जो इस अग्निस्थाली को ही लेकर चला आया और उर्वशी को साथ नहीं लाया ॥७१-७२॥ यह सोच कर उसने उस अग्निस्थाली को वन में ही छोड़ दिया और अपने नगर को लौट आया ॥७३॥ अर्द्धरात्रि के समय जब राजा की निद्रा भंग हुई, तब उसने पुनः विचार किया—उर्वशी का संग प्राप्त होने के निमित्त ही उन गन्धर्वों ने मुझे वह अग्नि-स्थाली प्रदान की थी, परन्तु मैं उसे वन में ही छोड़ आया ॥७४-७५॥ इसलिये मुझे उसे लेने के लिये वहाँ जाना उचित है। यह सोचकर वह तुरन्त उठ कर उस वन में गया, परन्तु वह स्थाली उसे कहीं भी दिखाई न पड़ी ॥७६॥ उस अग्निस्थाली के स्थान पर एक शमीगर्भ पीपल का वृक्ष उसने देखा और विचार करने लगा कि मैंने वह अग्निस्थाली इसी स्थान पर फेंकी थी, वही अग्नि शमीगर्भ पीपल हो गई जान पड़ती है ॥७७॥ इसलिए अब इस अग्नि रूप पीपल को ही अपने नगर में ले चलना चाहिए, जिससे इसकी अरणि बनाकर उससे उत्पन्न हुए अग्नि की उपासना की जा सके ॥७८॥

एवमेव स्वपुरमभिगम्यारणिं चकार ॥७९॥ तत्प्रमाणं चाङ्गुलैः कुर्वन् गायत्रीमपठत् ।८०। पठतश्चाक्षरसंख्यान्येवाङ्गुलान्यरण्यभवत् ॥८१॥ तत्राग्नि निर्मथ्याग्नित्रयमाम्नायानुसारी भूत्वा जुहाव ॥८२॥ उर्वशीसालोक्यं फलमभिसंहितवान् ॥८३॥ तेनैव चाग्निविधिना बहुविधान् यज्ञानिष्ट्वा गान्धर्वलोकानवाप्योर्वश्या सहावियोगमवाप ।८४। एकोऽग्निरादावभवद् एकेन त्वत्र मन्वन्तरे त्रेधा प्रवर्तिताः ।८५।

यह सोच कर राजा उस पीपल वृक्ष को लेकर अपने नगर में आया और उसने उसकी अरणि बनायी ॥७९॥ फिर उस काष्ठ के एक-एक अंगुल के टुकड़े करके गायत्री-मन्त्र का पाठ किया ॥८०॥ गायत्री पाठ से वे सब गायन्त्री मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतनी अरणियाँ हो गईं ॥८१॥ उनके मन्थन द्वारा तीनों अग्नियों को प्रकट कर उनमें वेद-विधि से अहुतियाँ दीं और उर्वशी का संग प्राप्ति का मनोरथ किया ॥८२-८३॥ फिर उसी अग्नि से अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करते हुए राजा पुरूरवा ने गन्धर्व लोक में जाकर उर्वशी को प्राप्त किया और कभी उसका उससे वियोग नहीं हुआ ॥८४॥ प्राचीन काल में एक ही अग्नि था और इस मन्वन्तर में उसी एक अग्नि से तीन प्रकार के अग्नि प्रवर्तित हुये ॥८५॥

सातवां अध्याय

तस्याप्यायुर्धीमानमावसुर्विश्वावसुः श्रुतायुश्शतायुरयुतायुरितिसंज्ञाः षट् पुत्रा अभवन् ।१। तथामावसोर्भीमनामा पुत्रोऽभवत् ॥२॥ भीमस्य काञ्चनः काञ्चनात्सुहोत्रः तस्यापि जह्नु ॥३॥ योऽसौ यज्ञवाटमखिलं गङ्गाम्भसा प्लावितमवलोक्य क्रोधसंरक्तलोचनो भगवन्तं यज्ञपुरुषमात्मनि परमेण समाधिना समारोप्याखिलामेव गङ्गामपिवत् ॥४॥ अथैनं देवर्षयः प्रसादयामासुः ॥५॥ दुहितृत्वे चास्य गङ्गामनयन् ॥६॥

जह्नोश्च सुमन्तुर्नाम पुत्रोऽभवत् ।७। तस्याप्यजकस्ततो बला-काश्वस्तस्मात्कुशस्तस्यापि कुशाम्बकुशनाभाधूर्त्तरजसो वसुश्चेति चत्वारः पुत्रा बभूवुः ।८। तेषां कुशाम्बः शक्रतुल्यो मे पुत्रो भवेदिति तपश्चकार ।९। तं चोग्रतपसमवलोक्य मा भवत्वन्योऽस्मत्तुल्यवीर्य इत्यात्मनैवास्येन्द्रः पुत्रत्वमगच्छत् ।१०। स गाधिर्नाम पुत्रः कौशिकोऽभवत् ॥११॥

पराशरजी ने कहा—उस राजा पुरूरवा के छः पुत्र हुए जिनका नाम आयु, धीमान, अमावसु, श्रुतायु, शतायु और अयुतायु हुआ ॥१॥ अमावसु का पुत्र भीम हुआ। भीम का कांचन, कांचन का सुहोत्र और सुहोत्र का पुत्र जह्नु हुआ, जिसकी सम्पूर्ण यज्ञशाला गंगाजल से आप्लावित हो गई थी, तब उसने क्रोध से लाल नेत्र करके भगवान् यज्ञ पुरुष को समाधि के द्वारा अपने में स्थापित कर लिया और सम्पूर्ण गंगाजल का पान कर लिया ॥२-४॥ तब देवर्षियों ने इन्हें प्रसन्न करके गगाजी को इनका पुत्रीत्व भाव प्राप्त कराया ॥५-६॥ उसी राजा जह्नु का पुत्र सुमन्त हुआ ॥७॥ सुमंत का अजक, अजक का बलाकाश्व, बलाकाश्व का कुश और कुश के चार पुत्र हुए कुशाम्ब, कुशनाभ, अधूर्त्तरजा और वसु ॥८॥ उनमें से कुशाम्ब ने इन्द्र के समान पुत्र-प्राप्ति की कामना से तप किया ॥९॥ उसकी उग्र तपस्या को देख कर बल में अपने समान होने की आशंका से इन्द्र स्वयं ही कुशाम्ब के यहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ ॥१०॥ उस पुत्र का नाम 'गाधि' हुआ जो बाद में 'कौशिक' कहलाया ॥११॥

गाधिश्च सत्यवतीं कन्यामजनयत् ।१२। तां च भार्गव ऋचीको वव्रे ।१३। गाधिरप्यतिरोषणायातिवृद्धाय ब्राह्मणाय दातुमनिच्छन्नेकतश्श्यामकर्णानामिन्दुवर्चसामनिलरहसामश्वानां सहस्रं कन्याशुल्कमयाचत ।१४। तेनाप्यृषिणा वरुणसकाशादुपलभ्याश्वतीर्थोत्पन्नं तादृशमश्वसहस्रं दत्तम् ॥१५॥ ततस्तामृचीकः कन्यामुपयेमे ।१६। ऋचीकश्च तस्याश्चरुमपत्यार्थं चकार ।१७। तत्प्रसादितश्च तन्मात्रे क्षत्रवरपुत्रोत्पत्तये चरुमपरं साधयामास ॥१८॥

एष चरुर्भवत्या अयमपरश्चरुस्त्वन्मात्रा सम्यगुपयोज्य इत्युक्त्वा वनं जगाम ॥१९॥

गाधि के सत्यवती नाम की कन्या हुई जो भृगुपुत्र ऋचीक को व्याही गई ॥१२-१३॥ गाधि ने अत्यन्त क्रोधी तथा वृद्ध ब्राह्मण को कन्या न देने के विचार से ऋचीक से कन्या के वदले में चन्द्रमा जैसे तेजस्वी और पवन के समान वेग वाले एक हजार श्यामकर्ण अश्वों की माँग की ॥१४॥ इस प्रकार ऋचीक ने अश्वतीर्थ से उत्पन्न वैसे ही गुण वाले एक हजार अश्व वरुण से लेकर गाधि को दे दिये ॥१५॥ फिर उस कन्या से ऋचीक ऋषि का विवाह हुआ ॥१६॥ कालान्तर में सन्तान की कामना करते हुए ऋचीक ने सत्यवती के लिये चरु सिद्ध किया। ॥१७॥ और उस सत्यवती द्वारा प्रसन्न किये जाने पर महर्षि ऋचीक ने एक क्षत्रिय श्रेष्ठ पुत्र की उत्पत्ति के निमित्त एक चरु उसकी माता के लिये सिद्ध किया ॥१८॥ फिर 'यह चरु तुम्हारे लिये और यह दूसरा चरु तुम्हारी माता के लिये है' यह निर्देश करते हुए महर्षि वन को चले गये ॥१९॥

उपयोगकाले च तां माता सत्यवतीमाह ॥२०॥ पुत्रि सर्व एवात्मपुत्रमतिगुणमभिलषति नात्मजायाभ्रातृगुणेष्वतीवादृतो भवतीति ।२१। अतोऽर्हसि ममात्मीयं चरुं दातुं मदीय चरुमात्मनोपयोक्तुम् ॥२२॥ मत्पुत्रेण हि सकलभूमण्डलपरिपालनं कार्यं कियद्वा ब्राह्मणस्य बलवीर्यसम्पदेत्युक्ता सा स्वचरुं मात्रे दत्तवती ॥२३॥

चरुओं के उपयोग के समय सत्यवती की माता ने उससे कहा कि— हे बेटी ! अपने लिये सभी सब से अधिक गुण वाले पुत्र की इच्छा करते हैं, अपनी भार्या के भ्राता के अधिक गुणवान् होने में किसी भी विशेष कामना नहीं होती ॥२०-२१॥ इसलिये तू अपना चरु मुझे देकर मेरा चरु तू ले ले, क्योंकि मेरे जो पुत्र होगा, उसे सम्पूर्ण पृथिवी की रक्षा करनी पड़ेगी और तेरे पुत्र ब्राह्मण कुमार को बल वीर्य और सम्पत्ति

का करना ही क्या है ? माता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सत्यवती ने अपना चरु उसे दे दिया ॥२२-२३॥

अथ वनादागत्य सत्यवतीमृषिरपश्यत् ।२४। आह चैनामतिपापे किमिदमकार्यं भवत्वा कृतम् अतिरौद्रं ते वपुर्लक्ष्यते ॥२५॥ नूनं त्वया त्वन्मातृसात्कृतश्चरुरुपयुक्तो न युक्तमेतत् ।२६। मया हि तत्र चरौ सकलैश्वर्यवीर्यशौर्यवलसम्पदारोपित्ता त्वदीयचरावप्यखिलशान्तिज्ञानतितिक्षादिब्राह्मणगुणसम्पत् ॥२७॥ तच्च विपरीतं कुर्वत्यास्तवातिरौद्रास्त्रधारणपालननिष्ठः क्षत्रियाचारः पुत्रो भविष्यति तस्याश्चोपशमरुचिर्ब्राह्मणाचार इत्याकर्ण्यैव सा तस्य पादौ जग्राह ।२८। प्रणिपत्य चैनमाह ॥२९॥ भगवन्मयैतदज्ञानादनुष्ठितं प्रसादं मे कुरु मैवंविधः पुत्रो भवतु काममेवं विधः पौत्रो भवत्वित्युक्ते मुनिरप्याह ॥३०॥ एवमस्त्विति ॥३१॥

महर्षि ने वन से लौट कर जब अपनी पत्नी को देखा, तब उससे बोले—अरी दुर्मति पापिनी ! तू यह क्या अकार्य कर बैठी है, जिसके कारण तेरा शरीर अत्यन्त भयंकर लगने लगा है ॥२४-२५॥ तूने निश्चय ही अपनी माता के लिये वने हुये चरु का उपयोग कर लिया है जो तेरे लिए उचित नहीं था ॥२६॥ मैंने उसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के साथ पराक्रम, शौर्य, वल आदि को स्थापित किया था और तेरे चरु में शांति, ज्ञान, तितिक्षादि सभी ब्राह्मणोचित गुणों का आरोपण किया था ॥२७॥ परन्तु उन चरुओं के विपरीत उपयोग से तेरे अत्यन्त भयंकर शस्त्रास्त्रों का धारण करने वाला क्षत्रियोचित आचरण युक्त पुत्र उत्पन्न होगा और तेरी माता के ब्राह्मणोचित आचरण वाला शान्ति प्रिय पुत्र की उत्पत्ति होगी । यह सुनकर सत्यवती ने महर्षि के चरण पकड़ लिये और प्रणाम करके अत्यन्त विनयपूर्वक कहा ॥२८-२९॥ हे भगवन् ! मुझसे अज्ञानवश ही ऐसा हो गया है,इस लिए प्रसन्न हूजिये । मेरा पुत्र इस प्रकार का न हो,चाहे पौत्र वैसा हो जाय इस पर ऋषि ने 'एवमस्तु, कहा ॥३०-३१॥

अनन्तरं च सा जमदग्निमजीजनत् ।३२। तन्माता च विश्वामित्रं जनयामास ।३३। सत्यवत्यपि कौशिकी नाम नद्यभवत् ।३४। जमदग्निरिक्ष्वाकुवंशोद्भवस्य रेणोस्तनयां रेणुकामुपयेमे ॥३५॥ तस्यां चाशेषक्षत्रहन्तारं परशुरामसंज्ञं भगवतस्सकललोकगुरोर्नारायणस्यांशं जमदग्निरजीजनत् ॥३६॥ विश्वामित्रपुत्रस्तु भार्गव एव शुनश्शेपो देवैर्दत्तः ततश्च देवरातनामाभवत् ।३७। ततश्चान्ये मधुच्छन्दोधनंजयकृतदेवाष्टककच्छपहारीतकाख्या विश्वामित्रपुत्रा बभूवुः ॥३८॥ तेषां च बहूनि कौशिकगोत्राणि ऋष्यन्यन्तरेषु विवाह्यन्यभवन् ॥३९॥

फिर सत्यवती के उदर से जमदग्नि ने और उसकी माता से विश्वामित्र ने जन्म लिया। फिर सत्यवती कौशिकी नाम की नदी होकर प्रवाहित हो गई ॥३२-३४॥ इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए रेणुका से जमदग्नि का विवाह हुआ ॥३५॥ जमदग्नि ने उससे सम्पूर्ण क्षत्रियों का विनाश करने वाले भगवान् परशुराम को उत्पन्न किया, जो लोक गुरु नारायण के अंश भून थे ॥३६॥ देवगण ने भृगुवंशी शुनःशेप बिश्वामित्रजी को पुत्र रूप से प्रदान किया, इसलिये बाद में उसका नाम देवरात पड़ गया। उसके पश्चात् भी मधुच्छन्द, धनञ्जय, कृतदेव, अष्टक, कच्छप, तथा हारीतक आदि अन्य अनेक पुत्र विश्वामित्रजी के हुए। ॥३७-३८॥ उन पुत्रों के अन्यान्य ऋषिवंशों में विवाहे जाने के योग्य अनेक कौशिक गोत्रीय उत्पन्न हुए ॥३९॥

आठवां अध्याय

पुरूरवसो ज्येष्ठः पुत्रो यस्त्वायुर्नामा स राहोर्दुहितरमुपयेमे ।१। तस्यां च पञ्च पुत्रानुत्पादयामास ।२। नहुषक्षत्रवृद्धरम्भजिसंज्ञास्तथैवानेनाः पञ्चमः पुत्रोऽभूत् ।३। क्षत्रवृद्धात्सुहोत्रः पुत्रोऽभवत् ।४। काश्यकाशगृत्समदास्त्रस्यस्तस्य पुत्रा बभूवुः ।५। गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्यप्रवर्तयिताभूत् ।६। काश्यस्य काशेयः काशिराजः तस्माद्राष्ट्रः राष्ट्रस्य दीर्घतपाः पुत्रोऽभवत् ।७। धन्वन्तरिस्तु

दीर्घतपसः पुत्रोऽभवत् ॥८॥ स हि संसिद्धकार्यकरणस्सकलसम्भूतिष्वशेषज्ञानविद् भगवता नारायणेन चातीतसम्भूतौ तस्मै वरो दत्तः ।९। काशिराजगोत्रेऽवतीर्य त्वमष्टधा सम्यगायुर्वेदं करिष्यसि यज्ञभागभुग्भविष्यसीति ॥१०॥

श्री पाराशर जी ने कहा—पुरूरवा का जो आयु नामक बड़ा पुत्र था, उसका विवाह राहु की पुत्री से हुआ ॥१॥ उससे आयु ने नहुष, क्षत्रवृद्ध, रम्भ, रजि और अनेना नामक पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥२-३॥ क्षत्रवृद्ध का पुत्र सुहोत्र हुआ और सुहोत्र के तीन पुत्र हुए, जिनके नाम काश्य, काश और गृत्समद थे । गृत्समद का पुत्र शौनक चारों वर्णों का प्रवर्त्तक हुआ ॥४-६॥ काश्य का पुत्र काशी नरेश काशेय हुआ । उसका पुत्र राष्ट्र और राष्ट्र का दीर्घतया तथा दीर्घतया का धन्वन्तरि हुआ ॥७-८॥ यह धन्वन्तरि जरादि विकारों से रहित देह और इन्द्रिय वाला तथा सभी जन्मों में सर्व शास्त्र ज्ञाता हुआ था । भगवान् नारायण ने उसे पूर्व जन्म में यह वर प्रकार किया था कि तुम काशिराज के वंश में उत्पन्न होकर आयुर्वेद के आठ भाग करोगे और यज्ञ-भाग के भोक्ता बनोगे ॥९-१०॥

तस्य च धन्वन्तरेः पुत्रः केतुमान् केतुमतो भीमरथस्तस्यापि दिवोदासस्तस्यापि प्रतर्दनः ॥११॥ स च मद्रश्रेण्यवंशविनाशनादशेषशत्रवोऽनेन जिता इति शत्रुजिदभवत् ।१२। तेन च प्रीतिमतात्मपुत्रो वत्स वत्सेत्यभिहितो वत्सोऽभवत् ।१३। सत्यपरतया ऋतध्वजसंज्ञामवाप ।१४। ततश्च कुवलयनामानमश्वं लेभे ततः कुवलयाश्व इत्यस्यां पृथिव्यां प्रथितः ।१५। तस्य च वत्सस्य पुत्रोऽलर्कनामाभवद् यस्यायमद्यापि श्लोको गीयते ।१६। षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । अलर्कादपरो नान्यो बुभुजे मेदिनीं युवा ।१७।

धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् हुआ । केतुमान् का भीमरथ और भीमरथ का दिवोदास हुआ । दिवोदास के पुत्र का नाम प्रतर्दन रखा गया ॥११॥ प्रतर्दन ने मद्रश्रेण्य वंश का विध्वंस करके सब वैरियों को जीत लिया था, इसलिए वह शत्रुजित् नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१२॥ अपने

इस पुत्र को दिवोदास ने स्नेह वश 'वत्स ! वत्स' कह कर पुकारा था, इसलिये यह वत्स भी कहलाया ॥१३॥ अत्यन्त सत्य परायण होने के कारण—इसे ऋतुध्वज भी कहने लगे ॥१४॥ फिर इसे कुवलय नामक अपूर्व अश्व की प्राप्ति हुई, इसलिये यह कुवलयाश्व के नाम से विख्यात हुआ ॥१५॥ इस वत्स नामक राजा का पुत्र अलर्क हुआ, जिसके विषय में यह श्लोक अब तक कीर्तन किया जाता है ॥१६॥ पूर्वकाल में अलर्क के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति ने छियासठ हजार वर्ष तक युवावस्था के स्थित रह कर पृथिवी को नहीं भोगा ॥१७॥

तस्याप्यलर्कस्य सन्नतिनामाभवदात्मजः ।१८। सन्नतेः सुनीथस्तस्यापि सुकेतुस्तस्माच्च धर्मकेतुर्यज्ञे ।१९। ततश्च सत्यकेतुस्तस्माद्विभुस्तत्तनयस्सुविभुस्ततश्च सुकुमारस्तस्यापि धृष्टकेतुस्ततश्च वीतिहोत्रस्तस्माद्भार्गो भार्गस्य भार्गभूमिस्ततश्चातुर्वर्ण्यप्रवृत्तिरित्येते काश्यभूभृतः कथिताः ।२०। रजेस्तु सन्ततिः श्रूयताम् ।२१।

अलर्क का पुत्र सन्नति हुआ, सन्नति का सुनीथ और सुनीथ का सुकेतु हुआ। सुकेतु का धर्मकेतु, धर्मकेतु का सत्यकेतु और सत्यकेतु का पुत्र विभु हुआ। विभु से सुविभू की उत्पत्ति हुई। सुविभु से सुकुमार और सुकुमार से धृष्टकेतु हुआ। धृष्टकेतु का पुत्र वीतिहोत्र, वीतिहोत्र का भार्ग और भार्ग का पुत्र भार्गभूमि हुआ, जिसने चार वर्णों को प्रवृत्त किया। इस प्रकार यह काश्यवंशीय राजाओं का वृत्तान्त कहा गया, रवि की सन्तान का वर्णन श्रवण करो ॥१८-२१॥

नवां अध्याय

रजेस्तु पञ्च पुत्रशतान्यतुलबल पराक्रमसाराण्यासन् ॥१॥ देवासुरसंग्रामारम्भे च परस्पर वधेप्सवो देवाश्चासुराश्च ब्रह्माणमुपेत्य पप्रच्छुः ॥२॥ भगवन्नस्माकमत्र विरोधे कतरः पक्षो जेता भविष्यतीति ॥३॥ अथाह भगवान् ॥४॥ येषामर्थे रजिरात्तायुधो योत्स्यति तत्पक्षो जेतेति ।५। अथ दैत्यैरुपेत्य रजिरात्मसाहाय्य-

दानायाभ्यर्थितः प्राह ।६। योत्स्येऽहं भगतामर्थे यद्यहममरजया-द्भवतामिन्द्रो भविष्यामीत्याकर्ण्यैतत्तैरभिहितम् ।७। न वयमन्यथा वदिष्यामोऽन्यथा करिष्यामोऽस्माकमिन्द्रः प्रह्लादस्तदर्थमेवाय-मुद्यम इत्युक्त्वा गतेष्वसुरेषु देवैरप्यसाववनिपतिरेवमेवोक्तस्ते-नापि च तथैवोक्ते देवैरिन्द्रस्त्वं भविष्यसीति समन्वीप्सितम् ।८।

श्री पराशर जी ने कहा—रजि के अत्यन्त बली और पराक्रमी पाँच सौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥१॥ एक बार देवासुर-संग्राम का आरम्भ होने पर परस्पर में मारने की इच्छा करते हुए देवताओं और दैत्यों ने ब्रह्मा जी के पास जाकर उनसे प्रश्न किया—हे भगवन् ! हमारे पारस्परिक कलह में किस पक्ष की विजय होगी ? ॥२-३॥ इस पर ब्रह्माजी ने कहा कि राजा रजि शस्त्र धारण पूर्वक जिसके पक्ष में युद्ध करेगा वही पक्ष जीतेगा ॥४-५॥ यह सुन कर दैत्यगण ने राजा रजि के पास जाकर उनसे सहायता माँगी, इस पर उन्होंने कहा कि यदि देवताओं पर विजय प्राप्त करके मैं दैत्यों का इन्द्र हो सकता हूँ तो अवश्य ही आपके पक्ष में युद्ध करने को तैयार हूँ ॥६-७॥ यह सुनकर दैत्यगण ने उनसे कहा—हे राजन् ! हम तो कह देते हैं, उससे विपरीत आचरण कभी नहीं करते हैं और उन्हीं के लिए हम इस संग्राम में तत्पर हुए हैं। इतना कह कर दैत्य गण वहाँ से चले गये। तब देवताओं ने वहाँ आकर उनसे वैसी ही प्रार्थना की, जिसे सुनकर उन्होंने जो कुछ दैत्यों से कहा था, वही सब देवताओं के कह दिया। तब देवताओं ने उनकी बात स्वीकार करते हुए कहा—अच्छी बात है, आप ही हमारे इन्द्र होंगे ॥८॥

रजिनापि देवसैन्यसहायेनानेकैर्महास्त्रैस्तदशेषमहासुरबलं निषूदितम् ।९। अथ जितारिपक्षश्च देवेन्द्रो रजिचरणयुगलमात्मनः शिरसा निपीड्याह ।१०। भयत्राणादन्नदानाद्भवानस्मत्पिताशेष-लोकानामुत्तमोत्तमो भवान् यस्याहं पुत्रस्त्रिलोकेन्द्रः ।११। स चापि राजा प्रहस्याह ।१२। एवमस्त्वेवमस्त्वनतिक्रमणीया हि वैरिपक्षा-दप्यनेकविधचाटुवाक्यगर्भा प्रणतिरित्युक्त्वा स्वपुरं जगाम ।१३। शतक्रतुरपीन्द्रत्वं चकार ॥१४॥ स्वर्याते तु रजौ नारदर्षिचोदिता

रजिपुत्राश्शतक्रतुमात्मपितृपुत्रं समाचाराद्राज्यं याचितवन्तः ।१५। अप्रदानेन च विजित्येन्द्रमतिबलिनः स्वयमिन्द्रत्वं चक्रुः ।१६।

इस प्रकार राजा रजि ने देवताओं की सहायता की और युद्ध भूमि में उपस्थित होकर अपने महान् अस्त्रों से दैत्यों की सम्पूर्ण सेना का संहार कर डाला ।।६।। जब शत्रु-पक्ष पर विजय प्राप्त हो गई, तब देवराज इन्द्र ने महाराज रजि के दोनों चरणों को अपने शिर पर धारण करके कहा ।।१०।। हे राजन् ! भय से बचाने और अन्न दान करने के कारण आप हमारे पिता के समान हैं क्योंकि आप तीनों लोकों में सर्वोत्कृष्ट हैं, इसलिए मैं तीनों लोकों का इन्द्र आपका पुत्र ही हूँ ।।११।। इस पर राजा ने हँसते हुए कहा—ऐसा ही हो ! क्योंकि शत्रु-पक्ष का भी अनेक प्रकार की चाटुकारिता पूर्ण प्रार्थनाओं को मान लेना ही उचित समझा जाता है। यह कह कर राजा रजि अपने नगर को चले गये ।।१२-१३।। इस प्रकार शतक्रतु इन्द्र ही इन्द्र पद पर बना रहा। फिर जब राजा रजि की मृत्यु हो गई, तब देवर्षि नारद जी की प्रेरणा से उसके पुत्रों ने अपने पिता के पुत्रभाव को प्राप्त हुए इन्द्र से स्वर्ग के राज्य की माँग की और जब इन्द्र ने उन्हें राज्य न दिया, तब उन रजि-पुत्रों ने इन्द्र पर आक्रमण करके उसे जीत लिया और स्वयं ही इन्द्र पद पर अभिषिक्त होकर स्वर्ग का राज्य भोगने लगे ।।१४-१६।।

ततश्च बहुतिथे काले ह्यतीते बृहस्पतिमेकान्ते दृष्ट्वा अपहृतत्रैलोक्ययज्ञभागः शतक्रतुरुवाच ।।१७।। बदरीफलमात्रमप्यर्हसि ममाप्यायनाय पुरोडाशखण्डं दातुमित्युक्तो बृहस्पतिरुवाच ।१८। यद्येवं त्वयाहं पूर्वमेव चोदितस्स्यां तन्मया त्वदर्थं किमकर्त्तव्यमित्यल्पैरेवाहोभिस्त्वां निजं पदं प्रापयिष्यामीत्यभिधाय तेषामनुदिनमाभिचारिकं बुद्धिमोहाय शक्रस्यतेजोऽभिवृद्धये जुहाव ।१९। ते चापि तेन बुद्धिमोहेनाभिभूयमाना ब्रह्मद्विषो धर्मत्यागिनो वेदवादपराङ्मुखा बभूपुः ।२०। ततस्तानपेतधर्माचारानिन्द्रो जघान ।२१। पुरोहिताप्यायितेजाश्च शक्रो दिवमाक्रमत् ।२२। एतदिन्द्रस्य

स्वपदच्यवनादारोहणं श्रुत्वा पुरुषः स्वपदभ्रंशं दौरात्म्यं च नाप्नोति ॥२३॥

फिर जब बहुत काल व्यतीत हो गया, तब एक दिन अपने गुरु बृहस्पति जी को एकान्त में बैठे हुए देख कर त्रैलोक्य के यज्ञ-भाग से वंचित हुए इन्द्र ने उनके प्रति कहा - क्या मेरी तृप्ति के लिये मुझे आप बदरीफल के बराबर भी पुरोडाश का अंश दे सकते हैं ? यह सुन कर बृहस्पतिजी बोले ॥१७-१८॥ यदि तुम यह चाहते थे तो तुमने मुझे पहिले ही क्यों नहीं बताया ? तुम्हारे लिए मुझे अकर्त्तव्य क्या है ? अब मैं कुछ ही समय में तुम्हें तुम्हारे पद पर बिठा दूंगा। यह कह कर बृहस्पतिजी ने रजि के पुत्रों की बुद्धि को भ्रमित करने के लिये अभिचार कर्म और इन्द्र के तेज को बढ़ाने के लिये भजन करना आरम्भ किया ॥१९॥ बुद्धि को मोहित कर देने वाले उस अभिचार कर्म के प्रभाव वश रजि-पुत्रों ने ब्राह्मणों से द्वेष, धर्म का परित्याग और वैदिक कर्मों से विमुखता आरम्भ की ॥२०॥ इसके पश्चात् धर्माचरण से हीन हुए उन रजि-पुत्रों का इन्द्र ने वध कर दिया ॥२१॥ देव पुरोहित बृहस्पति जी के द्वारा उनकी तेजोवृद्धि की जाने पर ही इन्द्र इस प्रकार स्वर्ग पर अधिकार करने में समर्थ हुआ ॥२२॥ अपने इन्द्र पद से पतित हुए इन्द्र के उस पुनः आरूढ होने वाले इस प्रसंग को जो पुरुष श्रवण करता है, वह अपने पद से कभी नहीं गिरता और न उसमें कभी दौरात्म्य का ही प्रवेश होता है ॥२३॥

रम्भस्त्वनपत्योऽभवत् ॥२४॥ क्षत्रवृद्धसुतः प्रतिक्षत्रोऽभवत् ।२५। तत्पुत्रः सञ्जयस्तस्यापि जयस्तस्यापि विजयस्तस्माच्च जज्ञे कृतः ।२६। तस्य व हर्यंधनो हर्यंधनसुतस्सहदेवस्तस्माददीनस्तस्य जयत्सेनस्ततश्च संस्कृतिस्तत्पुत्रः क्षत्रंधर्मा इत्येते क्षत्रवृद्धस्य वंश्याः ।२७। ततो नहुषवंशं प्रवक्ष्यामि ॥२८॥

आयु-पुत्र रम्भ के कोई सन्तान नहीं थी ॥२४॥ क्षत्रवृद्ध का जो पुत्र हुआ उसका नाम प्रतिक्षत्र था। प्रतिक्षत्र का पुत्र संजय, उसका जय, जय का विजय और विजय का पुत्र कृत हुआ। कृत का हर्यंधन, उसका

सहदेव, महदेव का अदीन और उसका पुत्र जयत्सेन हुआ। जयत्सेन के पुत्र का नाम संस्कृति और संस्कृति का पुत्र क्षत्रधर्मा हुआ। ये सभी क्षत्रवृद्ध के वंशज हुए। अब मैं नहुषवंश के विषय में कहूँगा ॥२५-२८॥

दसवां अध्याय

यतिययातिसंयात्यायातिवियातिकृतिसंज्ञा नहुषस्य षट् पुत्रा महाबलपराक्रमा बभूवुः ।१। यतिस्तु राज्यं नैच्छत ।२। ययातिस्तु भूभृदभवत् ।३। उशनसश्च दुहितर देवयानीं वार्षपर्वणीं च शर्मिष्ठामुपयेमे ।४। अत्रानुवंशश्लीको भवति ॥५॥

यदुं च दुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥६

पराशर ने कहा—नहुष के छः पुत्र हुए, उनका नाम यति, ययाति, संयाति,आयाति,वियाति और कृति था ॥१॥ यति को राज्यपद की कामना नहीं थी, इसलिए ययाति ही राज्यपद पर अभिषिक्त हुआ ॥२-३॥ ययाति ने शुक्राचार्य की कन्या देवयानी और वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा का पाणिग्रहण किया ॥४॥ उनका वंश-विषयक यह श्लोक प्रचलित है— देवयानी के उदर से यदु और दुर्वसु तथा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पूरू उत्पन्न हुए ॥५-६॥

काव्यशापाच्चाकालेनैव ययातिर्जरामवाप ।७। प्रसन्नशुक्रवचनाच्च स्वजरां सङ्क्रामयितुं ज्येष्ठ पुत्रं यदुमुवाच ॥८॥ वत्स त्वन्मातामहशापादियमकालेनैव जरा ममोपस्थिता तामहं तस्यैवानुग्रहादभवतस्सञ्चारयामि ।९। वर्षसहस्रमतृप्तोऽस्मि विषयेषु त्वद्वयसा विषयानहं भोक्तुमिच्छामि ।१०। नात्र भवतां प्रत्याख्यनं कर्त्तव्यमित्युक्तस्स यदुर्नैच्छत्तां जरामादातुम् ॥११॥ तं च पिता शशाप त्वत्प्रसूतिर्न राज्यार्हा भविष्यतीति ॥१२॥

शुक्राचार्य के शाप से ययाति को असमय में ही बुढ़ापा आ गया ॥७॥ कालान्तर में जब शुक्राचार्य प्रसन्न हो गये, तब उनके कहने से

ययाति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु से वृद्धावस्था ग्रहण करने के लिए कहा ॥८॥ हे पुत्र ! मैं तुम्हारे नाताजी के शाप से असमय में ही वृद्ध हो गया हूँ, अब उनकी ही कृपा मुझे प्राप्त हुई है, जिससे अपनी वृद्धावस्था मैं अब तुम्हें देना चाहता हूँ ॥९॥ विषयों के भोग में अभी मेरी तृप्ति नहीं हुई है अतः मैं तुम्हारी युवावस्था का एक हजार वर्ष तक उपभोग करना चाहता हूँ ॥१०॥ तुम इस विषय में कोई विचार न करो। अपने पिता की ऐसी आज्ञा सुन कर भी यदु ने अपने पिता की वृद्धावस्था ग्रहण करने की इच्छा नहीं की ॥११॥ यह देख कर पिता ने उसे शाप दिया कि तेरी संतति राज्याधिकार से वंचित होगी ॥१ ॥

अनन्तरं च तुर्वसुं द्रुह्युमनुं च पृथिवीपतिर्जराग्रहणार्थं स्वयौवनप्रदानाय चाभ्यर्थयामास ।१३। तैरप्येकैकेन प्रत्याख्यातस्ताञ्छशाप ॥१४॥ अथ शर्मिष्ठातनयशेषकनीयांसं पूरुं तथैवाह ।१५। स चातिप्रवणमतिः सबहुमानं पितरं प्रणम्य महाप्रमादोऽयमस्माकमित्युदारमभिधाय जरां जग्राह ॥१६॥ स्वकीयं च यौवनं स्वपित्रे ददौ ॥१७॥ सोऽपि पौरवं यौवनमासाद्य धर्माविरोधेन यथाकामं यथाकालोपपन्नं यथोत्साहं विषयांश्चचार ।१८। सम्यक् च प्रजापालनमकरोत् ॥१९॥ विश्वाच्या देवयान्या च सहोपभोगं भुक्त्वा कामानामन्तं प्राप्स्सामीत्यनुदिनं उन्मनस्को बभूव ।२०। अनुदिनं चोपभोगतः कामानतिरम्यान्मेने ॥२१॥ ततश्चैवमगायत ॥२२॥

फिर ययाति ने अपने द्वितीय पुत्र दुर्वसु से वृद्धावस्था लेने को कहा और उसके अस्वीकार करने पर द्रुह्यु और अनु को वैसा करने का आदेश दिया, परन्तु उन सभी ने वृद्धावस्था ग्रहण करना स्वीकार न किया तो ययाति ने उन सभी को शाप दे दिया ॥१३-१४॥ अन्त में शर्मिष्ठा के सब से छोटे पुत्र पूरू से उन्होंने वृद्धावस्था लेने को कहा, तब वह सादर प्रणाम पूर्वक उदार चित्त से बोला—हे पिताजी ! यह तो आपका मुझ पर परम अनुग्रह ही है। यह कहकर पूरू ने उनकी वृद्धावस्था लेकर अपनी युवावस्था उन्हें दे दी ॥१५-१७॥ राजा ययाति ने

पुरू से यौवन प्राप्त करके समय-समय पर अभीष्ट भोगों को भोगा और अपनी प्रजा के पालन में तत्पर रहे ।।१८-१९।। फिर विश्वाची और देवयानी के साथ अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग करते हुए अपनी कामनाओं को समाप्त करने की बात सोचते-सोचते अनमने से रहने लगे ।।२०।। निरन्तर अपने इच्छित विषयों के भोगते रहने से उन कामनाओं में ही उनकी प्रीति बढ़ती गई तब उन्होंने इस प्रकार कहा ।।२१-२२।।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ।।२३
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत् ।।२४
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम् ।
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वास्सुखमया दिशः ।।२५
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
तां तृष्णां सन्त्यजेत्प्राज्ञस्सुखेनेवाभिपूर्यते ।।२६
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यतः ।।२७
पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयासक्तचेतसः ।
तथाप्यनुदिनं तृष्णा मम तेषूपजायते ।।२८
तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ।
निर्द्वन्द्वो निर्ममो भूत्वा चरिष्यमि मृगैस्सह ।।२९

भोगों के भोगते रहने से उनकी तृष्णा कभी शान्त नहीं होती, किन्तु आज्याहुति से प्रवृद्ध होने वाले अग्नि के समान निरन्तर बढ़ती जाती है ।।२३।। भूमण्डल पर जितने भी धान्य, जौ, स्वर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं वे सब एक मनुष्य के लिए भी तृप्त नहीं कर सकते, इसलिए इस तृष्णा का सर्वथा त्याग करना चाहिए ।।२४।। जब कोई पुरुष किसी भी प्राणी के प्रति पापमयी दृष्टि नहीं रखता तब उस समदर्शी के लिए दिशायें आनन्ददायिनी हो जाती हैं ।।२५।। जो तृष्णा खोटी बुद्धि वालों के लिये अत्यन्त कठिनाई पूर्वक त्यागी जा सकती है और जो वृद्धावस्था में भी

शिथिलता को प्राप्त नहीं होती, उसी तृष्णा को त्याग कर बुद्धिमान् पुरुष पूर्ण रूप से सुखी हो जाता है ॥२६॥ जीर्णावस्था के प्राप्त होने पर बाल और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं, परन्तु धन ओर जीवन की आशा जीर्ण नहीं हो पाती ॥२७॥ विषयों में आसक्त रहते हुए मेरे एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये, फिर भी उनके प्रति नित्य ही इच्छा रहती है। इसलिए, अब मैं इसको त्याग कर अपने चित्त को ब्रह्म में लगाऊँगा और निर्द्वन्द्व तथा निर्मम होकर मृगों के साथ विचरण करूंगा ॥२८-२९॥

पूरोस्सकाशादादाय जरां दत्वा च यौवनम् ।
राज्येऽभिषिच्य पूरुं च प्रययौ तपसे व्रनन् ॥३०
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं च समादिशत् ।
प्रतीच्यां च तथा द्रुह्युं दक्षिणायां ततो यदुम् ॥३१
उदीच्यां च तथैवानुं कृत्वा मण्डलिनो नृपान् ।
सर्वपृथ्वीपतिं पूरुं सोऽभिषिच्य वनं ययौ ॥३२

श्री पाराशरजी ने कहा—इसके अनन्तर राजा ययाति ने पूरू से अपनी वृद्धावस्था वापिस लेकर उसकी युवावस्था उसे लौटा दी और उसका राज्याभिषेक कर स्वयं वन को चले गये ॥३०॥ उन्होंने दक्षिण-पूर्ण में तुर्वसु, पश्चिम में द्रुह्यू, दक्षिण में यदु और उत्तर में अनु को माण्डलिक राज्य दिया और पूरू को समस्त पृथिवी के राज्यपद पर अभिषिक्त कर स्वयं वन के लिये चल दिये ॥३१-३२॥

ग्यारहवाँ अध्याय

अतः परं ययातेः प्रथमपुत्रस्य यदोर्वंशमहं कथयामि ॥१॥ यत्राशेषलोकनिवासो मनुष्यसिद्धगन्धर्वयक्षराक्षसगुह्यककिंपुरुषाप्सरउरगविहगैत्यदानवादित्य रुद्रवस्वश्विमरुद्देवर्षिभिर्मुमुक्षुभिर्धर्मार्थकाममोक्षार्थिभिश्च तत्तत्फललाभाय सदाभिष्टुतोऽपरिच्छेद्यमाहात्म्यांशेन भगवाननादिनिधनो विष्णुरवततार ।२। अत्र श्लोक ।३। यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं

परं ब्रह्म निराकृति ॥४॥ सहस्रजित्क्रोष्टुनलहुषसंज्ञाश्चत्वारो यदुपुत्रा बभूवुः॥५॥ सहस्रजित्पुत्रश्शतजित् ॥६॥ तस्य हैहयहेहय-वेणुहयास्त्रयः पुत्रा बभूवुः ॥७॥ हैहयपुत्रो धर्मनेत्रस्ततः कुन्तिः कुन्तेः सहजित् ॥८॥ तत्तनयो महिष्मान् योऽसौ माहिष्मतीं पुरीं निवासयामास ॥९॥

श्री पराशर जी ने कहा—अब मैं ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु का वंश तुमसे कहता हूँ ॥१॥ जिस वंश में मनुष्य, सिद्ध, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, किंपुरुष, अप्सरा, उरग, विहग, दैत्य, दानव, आदित्य, रुद्र, वसु, अश्विनीद्वय, मरुद्गण, देवर्षि, मुमुक्षुजन और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के अभिलाषीजनों द्वारा सदा स्तुत होने वाले सकल विश्व के आश्रय, आदि अन्त से रहित भगवान् विष्णु ने अवतार धारण किया था ॥२॥ इस विषय में यह श्लोक कहा जाता है ॥३॥ जिस वंश में श्रीकृष्ण नामक निराकार परब्रह्म अवतीर्ण हुये थे, उस यदुवंश को सुनने से सभी पापों से छुटकारा मिलता है ॥४॥ यदु के चार पुत्र हुए, सहस्रजित, क्रोष्टु, नल और नहुष उनके नाम थे। सहस्रजित का पुत्र शतजित् और शत-जित् के हैहय, हैहय और वेणुहय नामक तीन पुत्र हुए ॥५-७॥ हैहय का पुत्र धर्म हुआ, धर्म का धर्मनेत्र,धर्मनेत्र का कुन्ति, कुन्ति का सहजित् और सहजित् का पुत्र महिष्मान् हुआ, जिसने माहिष्मतीपुरी को बसाया था ॥८-९॥

तस्माद्भद्रश्रेण्यस्ततो दुर्दमस्तस्माद्धनको धनकस्य कृतवीर्य-कृताग्निकृतधर्मकृतौजसश्चत्वारः पुत्रा बभूवुः ।१०। कृतवीर्यादर्जु-नस्सप्तद्वीपाधिपतिर्बाहुसहस्रो जज्ञे ॥११॥ योऽसौ भगवदंशमत्रि-कुलप्रसूतं दत्तात्रेयाख्यमाराध्य बाहुसहस्रमधर्मसेवानिवारणं स्व-धर्मसेवित्वं रणे पृथिवीजयं धर्मतश्चानुपालनमरातिभ्योऽपराजय-मखिलजगत्प्रख्यातपुरुषाच्च मृत्युमित्येतान्वरानभिलषितबाँल्लेभे च ॥१२॥ तेनेयमशेषद्वीपवती पृथिवी सम्यक्परपालिता ॥१३॥ दशयज्ञसहस्राण्यसावयजत ।१४। तस्य च श्लोकोऽद्यापि गीयते ।१५

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा प्रश्रयेण श्रुतेन च ॥१६

अनष्टद्रव्यता च तस्य राज्येऽभवत् ॥१७॥ एवं च पञ्चाशीति-वर्षसहस्राण्यव्याहतारोग्यश्रीबलपराक्रमो राज्यमकरोत् ॥१८॥

महिष्मान् का पुत्र भद्रश्रेण्य, भद्रश्रेण्य का दुर्दम. दुर्दम का धनक और धनक के कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतधर्म और कृतौजा नाम चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥१०॥ कृतवीर्य का पुत्र सातों द्वीपों का अधीश्वर सहस्रबाहु अर्जुन हुआ ॥११॥ उसने अत्रिकुलोत्पन्न भगवान् के अंशरूप श्री दत्तात्रेयजी की आराधना कर हजार भुजायें, अधर्माचरण की शान्ति, अपने धर्म का सेवन, संग्राम द्वारा सम्पूर्ण भूमण्डल पर विजय, धर्मानुसार प्रजापालन, शत्रुओं से अजेयता और अखिल जगत् प्रसिद्ध पुरुष के हाथ से मरण आदि अनेक वर प्राप्त किये थे ॥१२॥ उस अर्जुन ने इस सात द्वीप वाली सम्पूर्ण पृथिवी का पालन करते हुए दस हजार यज्ञ किये थे ॥१३-१४॥ उसके विषय में यह श्लोक अब तक गाया जाता है ॥१५॥ यज्ञ, दान, तपस्या, विनम्रता और विद्या में कोई भी राजा कार्तवीर्य के समान नहीं हो सकता ॥१६॥ उसके राज्य काल में कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं हुआ ॥१७॥ उसने बल, पराक्रम, आरोग्य और सम्पत्ति की भले प्रकार सुरक्षा-व्यवस्था पूर्वक पिचासी हजार वर्ष तक इस पृथिवी पर राज्य किया था ॥१८॥

माहिष्मत्यां दिग्विजयाभ्यागतो नर्मदाजलावगाहनक्रीडाति-पानमदाकुलेनायत्नेनैव तेनाशेषदेवदैत्यगन्धर्वेशजयोद्भूतमदावले-पोऽपि रावणः पशुरिवबद्ध्वा स्वनगरैकान्ते स्थापितः ।१६। यश्च पञ्चाशीतिवर्षसहस्रोपलक्षणकालावसाने भगवन्नारायणांशेन परशुरामेणोसंपहृतः ॥२०॥ तस्य च पुत्रशतप्रधानाः पञ्च पुत्रा बभूवुः शूरशूरसेनवृषसेनमधुजयध्वजसंज्ञाः ॥२१॥

जयध्वजात्तालजंघः पुत्रोऽभवत् ॥२२॥ तालजंघस्य ताल-जंघाख्यं पुत्रशतमासीत् ॥२३॥ एषां ज्येष्टो वीतिहोत्रस्तथान्यो भरतः ॥२४॥ भरताद्वृषः ॥२५॥ वृषस्य पुत्रो मधुरभवत् ॥२६॥

तस्यापि वृष्णिप्रमुखं पुत्रशतमासीत् ॥२७॥ यतो वृष्णिसंज्ञामेतद्गोत्रमवाप ॥२८॥ मधुसंज्ञाहेतुश्च मधुरभवत् ॥२९॥ यादवाश्च यदुनामोपलक्षणादिति ॥३०॥

एक दिन वह अत्यन्त मद्य-पान से व्याकुल होकर नर्मदा के जल में क्रीड़ा कर रहा था, तभी सब देवता, दैत्य, गंधर्व और राजाओं को जीतने के मद से उन्मत्त तथा दिग्विजय के अभिलाषी रावण ने उसकी राजधानी पर आक्रमण कर दिया, तब सहस्रार्जुन ने उसे अनायास ही पशु के समान बांधकर अपनी पुरी के एक जन-हीन स्थान में डाल दिया ॥१९॥ पिचासी हजार वर्ष राज्य करने के उपरान्त परशुराम जी ने उसे मार दिया ॥२०॥ इसके सौ पुत्र थे, जिनमें शूर, शूरसेन, वृषसेन, मधु और जयध्वज प्रमुख हुए ॥२१॥ जयध्वज का पुत्र तालजंघ था, उसके सौ पुत्रों में सबसे बड़ा वीतिहोत्र और दूसरा भरत हुआ ॥२२-२४॥ भरत का पुत्र बृष, वृष का मधु और मधु के सौ पुत्र हुए, जिनमें वृष्णि सबसे बड़ा था। उसी के नाम पर यह 'वृष्णि' वंश प्रसिद्ध हुआ ॥२५॥ ॥२८॥ मधु के कारण यह मधु सज्ञक हुआ तदु के कारण इसवंश के पुरुष 'यादव' कहे जाने लगे ॥२९-३०॥

बारहवां अध्याय

क्रोष्टोस्तु यदुपुत्रस्यात्मजो ध्वजिनीवान् ॥१॥ ततश्च स्वातिस्ततो रुशङ्कू रुशंकोश्चित्ररथः ।२। तत्तनयश्शशिबिन्दुश्चतुर्दशमहारत्नेशश्चक्रवर्त्यभवत् ॥३॥ तस्य च शतसहस्रं पत्नीनामभवत् ।४।दशलक्षसंख्याश्च पुत्राः।५।तेषांच पृथुश्रवाः पृथुकर्मा पृथुकीर्तिः पृथुयशाः पृथुजयः पृथुदानः षट् पुत्राः प्रधानाः ।६। पृथुश्रवसश्च पुत्रः पृथुतमः ।७। तस्मादुशना यो वाजिमेधानां शतमाजहार ।८।

श्री पराशरजी ने कहा—यदु के पुत्र क्रोष्ठु का पुत्र ध्वजिनीवान् हुआ ॥१॥ उसका पुत्र स्वाति, स्वाति का सशंकु और सशंकु का पुत्र चित्ररथ हुआ। चित्ररथ का पुत्र शशिविन्दु चतुर्दश महारत्नों का स्वामी और चक्रवर्ती राजा हुआ ॥२--३॥ राजा शशि विन्दु के एक लाख स्त्रियाँ थीं, जिनसे दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥४-५॥ उनमें पृथुश्रवा, पृथुकर्मा, पृथुकीर्ति, पृथुयशा, पृथुजय और पृथुदान—यह छः पुत्र प्रमुख थे ॥६॥ पृथुश्रवा का पुत्र पृथुतम हुआ तथा पृथुतम का पुत्र सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करने वाला उशना हुआ ॥७-८॥

तस्य च शितपुर्नाम पुत्रोऽभवत् ।९। तस्यापि रुक्मकवचस्ततः परावृत् ॥१०॥ परावृतो रुक्मेषुपृथुज्यामघवलितहरितसञ्ज्ञास्तस्य पञ्चात्मजा बभूवुः ।११। तस्यायमद्यापि ज्यामघस्य श्लोको गीयते ॥१२॥

भार्यावश्यास्तु मे केचिद्भविष्यन्त्यथ वा मृताः ।
तेषां तु ज्यामघः श्रेष्ठश्शैव्यापतिरभून्नृपः ॥१३
अपुत्रा तस्य सा पत्नी शैव्या नाम तथाप्यसौ ।
अपत्यकामोऽपि भयान्नान्यां भार्यामविन्दत ॥१४

उशना का जो पुत्र हुआ उसका नाम शितपु था ॥९॥ शितपु का पुत्र रुक्मकवच हुआ, जिसका पुत्र परावृत् हुआ। परावृत् के पाँच पुत्र हुए, जिनके नाम रुक्मेष, पृथु, ज्यामघ, वलित और हस्ति थे ॥१०-११॥ इनमें से ज्यामघ के विषय में यह श्लोक गाया जाता है कि विश्व में रहने वाले जो-जो पुरुष हुए या होंगे, उनमें शैव्या का पति राजा ज्यामघ ही श्रेष्ठ है ॥१२-१३॥ राजा ज्यामघ की भार्या शैव्या संतानहीन थी तो भी सतानेच्छुक राजा ने उसके भय से किसी अन्य स्त्री को भार्या नहीं बनाया ॥१४॥

सत्वेकदा प्रभूतरथतुरगगजसम्मर्दातिदारुणे महाहवे युद्धचमानः सकलमेवारिचक्रमजयत् ॥१५॥ तच्चारिचक्रमपास्तपुत्रबलकोशं स्वमधिष्ठानं परित्यज्य दिशः प्रति विद्रुतम्

।१६। तस्मिंश्च विद्रुतेऽतित्रासलोलायतलोचनयुगलं त्राहि त्राहि मां ताताम्ब भ्रांतरित्याकुलविलापविधुरं स राजकन्यारत्नामद्राक्षीत्।१७।तद्दर्शनाच्च तस्यामनुरागानुगतान्तरात्मा स नृपोऽचिन्तयत् ।१८। साध्विदं ममापत्यरहितस्य वन्ध्याभर्तुः साम्प्रतं विधिनापत्यकारणं कन्या रत्नमुपपादितम् ॥१९॥ तदेतत्समुद्वहामीति ।२०। अथवैनां स्यन्दनमारोप्य स्वमधिष्ठानं नयामि ॥२१॥ तयैव देव्या शैव्ययाहमनुज्ञातस्समुद्वहामीति ॥२२॥

एक समय असंख्य रथ, अश्व, हाथी आदि के सहित अत्यन्त भयंकर युद्ध करते हुए उस राजा ने अपने सभी शत्रुओं को पराजित कर दिया ॥१५॥ उस समय वे सभी शत्रु, पुत्र स्त्री, सेना, बन्धु, वल और कोशादि से हीन होकर अपने स्थानों से निकल कर विभिन्न दिशाओं में भाग गये ॥१६॥ उनके वहाँ से भागने पर राजा ज्यामघ ने—'हे तात ! हे माता ! हे भाई ! मेरी रक्षा करो' आदि बचनों से व्याकुलता पूर्वक विलाप करती हुई एक भयभीता राजकुमारी को देखा ॥१७॥ उसे देखते ही वह उसमें आसक्त चित्त होगया और सोचने लगा कि इसका मिलना ठीक ही हुआ, क्योंकि मैं पुत्रहीना वंध्या स्त्री का पति हूँ, इसलिए यह प्रतीत होता है कि सन्तान की कारण रूपा इस कन्या को विधाता ने ही यहाँ भेज दिया है ॥१८-१९॥ मुझे इसके साथ विवाह कर लेना ही उचित है ॥२०॥ इसे अपने रथ पर चढ़ाकर अपने घर लिए जाता हूँ, वहाँ देवी शैव्या की अनुमति से इसके साथ विवाह करूँगा ॥२१-२२॥

अथैनां रथमारोप्य स्वनगरमगच्छत् ॥२३॥ विजयिनं च राजानमशेषपौरभृत्यपरिजनानात्यसमेता शैव्या द्रष्टमधिष्ठानद्वारमागता ।२४। सा चावलोक्य राज्ञः सव्यपार्श्ववर्तिनी कन्यामीषदद्भुतामर्षस्फुरदधरपल्लवा राजानमवोचत् ।२५। अतिचपलचित्तात्र स्यन्दने केयमारोपितेति ।२६। असावप्यनालोचितोत्तरवचनोऽतिभयात्तामाह स्नुषा ममेयमिति ॥२७॥ अथैनं शैव्योवाच ॥२८॥

नाहं प्रसूता पुत्रेणा नान्या पत्न्यभवत्तव ।
स्नुषासम्बन्धता ह्येषा कतमेन सुतेन ते ॥२६

ऐसा विचार राजा ज्यामघ ने उस राज्यकन्या को अपने रथ पर चढ़ाया और अपने नगर को चल दिये ॥२३॥ विजय प्राप्त करके लौटे हुए राजा के दर्शनार्थ अपने सब पुरजनों, सेवकों कुटुम्बियों और मन्त्रियों के सहित रानी शैव्या स्वयं राजद्वार पर उपस्थि थी ॥२४॥ उसने जैसे ही राजा के वामाङ्ग में उस राज्यकन्या को बैठी हुई देखा, वैसे ही अत्यत क्रोध के कारण कांपते हुए अधरों से कहा ॥२५॥ हे चपलचित्त वाले महाराज ! आपने अपने रथ में किसे बिठा रखा है ? ॥२६॥ यह सुन कर राजा को कोई उत्तर न सूझा और उसने भयपूर्वक कहा—यह मेरी पुत्र-वधू है ॥२७॥ इस पर शैव्या ने कहा—मेरे तो कभी कोई पुत्र ही नहीं हुआ और आपकी कोई अन्य पत्नी भी नही है, फिर यह पुत्र-वधू किस प्रकार से हुई ॥१८-२९॥

इत्यात्मेर्ष्याकोपकलुषितवचनमुषितविवेको भयाद्दुरुक्तपरिहारार्थमिदमवनीपतिराह ।३०। यस्ते जनिष्यत आत्मजस्तस्येयमनागतस्यैव भार्या निरूपितेत्याकर्ण्योद्भूतमृदुहासा तथेत्याह ।३१। प्रविवेश च राज्ञा सहाधिष्ठानम् ॥३२॥ अनन्तर चातिशुद्धलग्नहोरांशकावयवोक्तकृतपुत्रजन्मलाभगुणाद्वयसः परिणाममुपगतापि शैव्या स्वल्पैरेवाहोभिर्गर्भमवाप ॥३३॥ कालेन च कुमारमजोजनत् ।३४। तस्य च विदर्भ इति पिता नाम चक्रे ।३५। च स तां स्नुषामुपयेमे ।३६। तस्यां चासौ क्रथकैशिकसंज्ञौ पुत्रायजनयत् ॥३७॥

श्री पराशरजी ने कहा—रानी शैव्या के इन ईर्ष्या और क्रोध मिश्रित वचनों को सुनकर विवेकहीनता और भय के कारण कहे हुए अपने असम्बद्ध वचनों से उत्पन्न हुए संदेह को मिटाने के विचार से राजा ने कहा—मैंने तुम्हारे होने वाले पुत्र के लिए अभी से यह पत्नी निश्चित कर दी दे । यह सुन कर रानी ने मुसकाते हुए मृदु शब्दों में कहा—ऐसा ही हो । इसके पश्चात् राजा के साथ नगर में प्रविष्ट हुई

॥३१-३२॥ इसके पश्चात् पुत्र प्राप्ति के गुणों वाली उस अत्यन्त शुद्ध लग्न में, होरांशक अवयव के समय जो पुत्र-विषयक सम्भाषण हुआ था, उसके प्रभाव से, गर्भधारण योग्य अवस्था के निकल जाने पर भी शैव्या गर्भवती हो गई और समय प्राप्त होने पर उसके उदर से पुत्र का जन्म हुआ ॥३३-३४॥ पिता ने उसका नामकरण करते हुए 'विदर्भ' संज्ञा दी ॥३५॥ फिर उसी के साथ उस राजकन्या का विवाह हुआ ॥३६॥ विदर्भ ने उससे क्रथ और कैशिक नाम के दो पुत्र उत्पन्न किये ॥३७॥

पुनश्च तृतीय रोमपादसंज्ञं पुत्रमजीजनद्यो नारदादवाप्तज्ञानवानभवत् ।३८। रोमपादाद्बभ्रुर्बभ्रोर्धृतिर्धृतेः कैशिकः कैशिकस्याप चेदिः पुत्रोऽभवद् यस्य सन्ततौ चैद्या भूपालाः ॥३९॥ क्रथस्य स्नुषापुत्रस्य कुन्तिरभवत् ।४०॥ कुन्तेर्धृष्टिर्धृष्टेर्निधृतिर्निधृतेर्दशार्हस्ततश्च व्योमा तस्यापि ज मूस्ततश्च विकृतिस्ततश्च भीमरथः तस्मान्नवरथस्यापि दशरथस्ततश्च शकुनिः तत्तनयः करम्भिः करम्भेर्देवरातोऽभवत् ॥४१॥ तस्माद्देवक्षत्रस्तस्यापि मधुर्मधोः कुमारवंशः कुमारवंशादनुरनोः पुरुमित्रः पृथिवीपतिरभवत् ।४२। ततश्चांशुस्तस्माच्चसत्वतः ।४३। सत्वतादेते सात्वताः ।४४। इत्येतां ज्यामघस्य सन्तति सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः श्रुत्वा पुमान् मैत्रेय स्वपापैः प्रमुच्यते ॥४५॥

इसके पश्चात् एक तीसरा पुत्र और उत्पन्न किया जिसका नाम रोमपाद हुआ। वह नारदजी के उपदेश से ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न हो गया ॥३८॥ रोमपाद का पुत्र वभ्रु बभ्रु का धृति, धृति का कैशिक और कैशिक का चेदि हुआ, जिसकी सन्तान चैद्य कहलाई ॥३९॥ क्रथ का पुत्र कुन्ति हुआ। कुन्ति का धृष्टि, धृष्टि का निधृति निधृति का दशार्ह, दशार्ह का व्योमा, व्योमा का जीमूत और जीमूत का विकृति नामक पुत्र हुआ। विकृति का भीमरथ, भीमरथ का नवरथ, नवरथ का दशरथ, दशरथ का शकुनि, शकुनि का करम्भि और करम्भि का पुत्र देवरात हुआ ॥४०-४१॥ देवरात का पुत्र देवक्षत्र, देवक्षत्र का मधु, मधु का कुमारवंश कुमारवंश का अनु और अनु का पुत्र पृथिवीपति पुरुमित्र

हुआ ॥४२॥ पुरुमित्र का पुत्र अंशु और अंशु का पुत्र सत्वत हुआ ॥४३॥ सम्वत से सात्वत वंश का प्रारम्भ हुआ ॥ ४४ ॥ हे मैत्रेयजी ! ज्यामघ की संतति के इस वर्णन को जो श्रद्धा सहित सुनता है, वह अपने सभी पापों से छूट जाता है ॥४५॥

तेरहवां अध्याय

भजनभजमानदिव्यान्धकदेवावृधमहाभोजवृष्णिसंज्ञास्सत्वतस्य पुत्रा बभूवुः ।१। भजमानस्य निमिकृकणवृष्णयस्तथान्ये द्वैमात्राः शतजित्सहस्रजिदयुतजित्संज्ञास्त्रयः ॥२॥ देवावृधस्यापि बभ्रुः पुत्रोऽभवत् ॥३॥ तयोश्चाय श्लोको गीयते ॥४॥

यथैव शृणुमो दूरात्सम्पश्यामस्तथान्तिकात् ।
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधस्समः ॥५
पुरुषाः षट् च षष्टिश्च षट् सहस्राणि चाष्ट च ।
तेऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ॥६

महाभोजस्त्वतिधर्मात्मा तस्यान्वये भोजा मृत्तिकावरपुरनिवासिनो मार्तिकावरा बभूवुः ॥७॥ वृष्णेः सुमित्रो युधाजिच्च पुत्रावभूताम् ॥८॥ ततश्चानमित्रस्तथानमित्रान्निघ्नः ।९। निघ्नस्य प्रसेनसत्राजितौ ॥१०॥ तस्य च सत्राजितो भगवानादित्यः सखाभवत् ॥११॥

पराशरजी ने कहा—सत्वत के पुत्रों के नाम, भजन, भजमान दिव्य, अन्धक, देव वृक्ष, महाभोज और वृष्णि थे ॥ १ ॥ भजमान् के छः पुत्र हुए—निमि, कृकण और वृष्णि तथा इनके विमाता-पुत्र शतजित् सहस्रजित और अयुतजिति थे ॥ २ ॥ देवावृध के पुत्र का नाम बभ्रु था ॥३॥ इन दोनों के विषय में यह श्लोक गाया जाता है--वैसा दूर से सुना वैसा ही समीप से देख, बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ तथा देवावृध देवताओं के सदृश है। बभ्रु और देवावृध के मार्ग से छः हजार चौहत्तर मनुष्यों को अमृतत्व की प्राप्ति हुए थी ॥४-६॥ महाभोज अत्यन्त

धर्मात्मा पुरुष था, उसकी सन्तान भोजवंशी मार्त्तिकावर राजाओं के रूप में प्रसिद्ध हुई ॥७॥ वृष्णि के दो पुत्र-सुमित्र और युधाजित् हुए। उनमें से सुमित्र का पुत्र अनमित्र, अनमित्र का निघ्न और निघ्न से प्रसेन और सत्राजित् दो पुत्र हुए ॥८-१०॥ भगवान् आदित्य उसी सत्राजित् के मित्र हो गये थे ॥११॥

एकदा त्वम्भोनिधितीरसंश्रयः सूर्यं सत्राजित्तुष्टाव तन्मनस्कतया च भास्वानभिष्टूयमानोऽग्रतस्तस्थौ ॥१२॥ ततस्त्वस्पष्टमूर्तिधरं चैनमालोक्य सत्राजित्सूर्यमाह ॥१३॥ यथैव व्योम्नि वह्निपिण्डोपमं त्वामहमपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किंचिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्षयामीत्येवमुक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्यैकान्ते न्यस्तम् ।१४।

ततस्तमाताम्रोज्ज्वलं ह्रस्ववपुषमीषदापिङ्गलनयनमादित्यमद्राक्षीत् ।१५। कृतप्रणिपातस्तवादिकं च सत्राजितमाह भगवानादित्यस्सहस्रदीधितिर्वरमस्मत्तोऽभिमतं वृणीष्वेति ॥१६॥ स च तदेव मणि रत्नमयाचत ॥१७॥ स चापि तस्मै तद्दत्त्वा दीधितिपतिर्वियति स्वधिष्ण्यमारुरोह ॥१८॥

एक दिन समुद्र के किनारे पर बैठे हुए सत्राजित् ने भगवान् आदित्य की स्तुति की तब उसके तन्मयतापूर्वक आराधन को देखकर भगवान् सूर्य उसके सम्मुख प्रकट हो गए ॥१२॥ उस समय उन्हें अस्पष्ट स्वरूप में देखकर सत्राजित् ने उनसे कहा ॥१३॥ जिस अग्नि पिण्ड के रूप में मैंने आपको आकाश में देखा था; वैसे ही रूप में यहाँ प्रत्यक्ष पधारने पर देख रहा हूँ। इस रूप में आपकी कोई विशेषता मुझे दिखाई नहीं दे रही है। सत्राजित् की बात सुनकर सूर्य ने स्यमन्तक नाम की श्रेष्ठ महामणि को अपने कण्ठ से उतार कर पृथक् रख दिया ॥१४॥ तब सत्राजित् ने उनके स्वरूप को देखा कि वह कुछ ताम्रवर्ण, अत्यन्त उज्वल और छोटा था तथा उनके नेत्र कुछ पीले रङ्ग के से थे ॥१५॥ इसके पश्चात् सत्राजित् ने उन्हें प्रणाम एवं स्तुति आदि से

प्रसन्न किया तव भगवान् भास्कर ने उससे अपना अभीष्ट वर माँगने को कहा ॥ १६ ॥ इस पर सत्राजित ने उस स्यमन्तक मणि की ही याचना की ॥ १७ ॥ भगवान् भास्कर उसे वह मणि प्रदान कर अपने स्थान को अन्तरिक्ष-मार्ग से चले गये ॥१८॥

सत्राजिदप्यमलमणिरत्नसनाथकण्ठतया सूर्य इव तेजोभिरशेषदिगन्तराण्युद्भासयन् द्वारकां विवेश ।१९। द्वारकावासी जनस्तु तमायान्तमवेक्ष्य भगवन्तमादिपुरुषं पुरुषोत्तममवनिभारावतरणायांशेन मानुषरूपधारिणं प्रणिपत्याह ।२०। भगवन् भवन्त द्रष्टुं नूनमयमादित्य आयातीत्युक्तो भगवानुवाच ॥२१॥ भगवान्नायमदित्यः सत्राजिदयमादित्यदत्तस्यमन्तकाख्यं महामणिरत्नं बिभ्रदत्रोपयाति ।२२। तदेनं विश्रब्धाः पश्यतेत्युक्तास्ते तथैव ददृशुः ।२३। स च तं स्यमन्तकमणिमात्मनिवेशने चक्रे ।२४। प्रतिदिनं तन्मणिरत्नतष्टौ कनकभारान्स्रवति ॥२५॥ तत्प्रभावाच्च मकलस्यैवं राष्ट्रस्योपसर्गानावृष्टिव्यालाग्निचोरदुर्भिक्षादिभयं न भवति ।२६। अच्युतोऽपि तद्दिव्यं रत्नमुग्रसेनस्य भूपतेर्योग्यमेतदिति लिप्सां चक्रे ॥२७॥ गोत्रभेदभयाच्छक्तोऽपि न जहार ॥२८॥

इसके पश्चात् उस स्वच्छ मणि रत्न धारण से सुशोभित कंठ वाले सत्राजित् ने सभी दिशाओं को सूर्य के समान प्रकाशित करते हुए द्वारकापुरी में प्रवेश किया ॥१९॥ उस समय द्वारकावासी पुरुषों ने उसे आता देखकर भू-भार हरणार्थ अंश रूप से पृथिवी पर उत्पन्न हुए मनुष्य रूपी आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ॥ २० ॥ हे भगवान् ! भगवान् सूर्य आपके दर्शनों के लिए आ रहे प्रतीत होते हैं। उनके द्वारा ऐसा कहे जाने पर भगवान् ने उनसे कहा ॥२१॥ यह भगवान् भास्कर नहीं सत्राजित है। भगवान् भास्कर से प्राप्त हुई स्यमन्तक नाम की महामणि को धारण करके वह यहाँ आ रहा है ॥२२॥ अब तुम सब उसे ठीक प्रकार से देखो। भगवान् के वचन सुनकर सब द्वारकावासी उसे यथार्थ रूप में देखने लगे ॥२३॥ उस स्यमन्तक मणि को सत्राजित् ने अपने घर में ले जाकर रख दी ॥२४॥ नित्य प्रति वह मणि आठ भार स्वर्ण प्रदान

करती थी ॥२५॥ उसके प्रभाव से सम्पूर्ण राष्ट्र रोग, अनावृष्टि, सर्प विष, अग्नि, चोरी, दुर्भिक्ष आदि भयों से सर्वथा बचा रहता था ॥२६॥ भगवान् अच्युत् की यह इच्छा थी कि वह दिव्य रत्न महाराज उग्रसेन के योग्य है ॥२७॥ परन्तु, जाति में विद्रोह फैलने के डर से उन्होंने समर्थ होते हुए भी उसे उससे नहीं लिया ॥२८॥

सत्राजिदप्यच्युतो मामेतद्याचयिष्यतीत्यवगम्य रत्नलोभाद्-भ्रात्रे प्रसेनाय तद्रत्नमदात् ।२९। तच्च शुचिना ध्रियमाणमशेषमेव सुवर्णस्रवादिकं गुणजातमुत्पादयति अन्यथा धारतन्तमेव हन्तीत्यजानन्नसावपि प्रसेनस्तेन कण्ठसक्तेन स्यमन्तकेनाश्वमारुह्याटव्यां मृगयामगच्छत् ।३०। तत्र च सिंहाद्वधमवाप ।३१। साश्वं च तं निहत्य सिंहोऽप्यमलमणिरत्नमास्याग्रेणादाय गन्तुमभ्युद्यतः ऋक्षाधिपतिना जाम्बवता दृष्टो घातितश्च ।३२। जाम्ववानप्यमलमणिरत्नमादाय स्वदिले प्रविवेश ।३३। सुकुमारसंज्ञाय बालकाय च क्रीडकमकरोत् ॥३४॥

सत्राजित् को ज्ञात हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण उस मणि को उससे लेना चाहते हैं तो उसने लोभ के वश में पड़कर वह रत्न अपने भाई प्रसेन को दे दिया ॥२९॥ परन्तु प्रसेन को यह मालूम नहीं था कि उस मणि के पवित्रता पूर्वक धारण से तो यह स्वर्ण-दान आदि गुण वाली होती है और अपवित्रता से धारण करने पर घातक हो जाती है। इसलिए वह उसे कंठ में धारण कर, अश्व पर बैठ कर मृगया करने के लिए वन को चला गया ॥३०॥ वहाँ वह एक सिंह के द्वारा मार डाला गया ॥३१॥ उसे घोड़े के सहित मार कर सिंह ने उस निर्मल मणि को अपने मुँह में रखा और चलने को उद्यत हुआ, तभी ऋक्षराज जाम्बवान् ने उस सिंह को मार डाला ॥ ३२ ॥ और उस निर्मल मणिरत्न को ग्रहण करके जाम्बवान् अपनी गुफा में पहुँचा ॥३३॥ वहाँ जाकर उसने अपने सुकुमार नामक शिशु के लिए खिलौने के रूप में दे दिया ॥३४॥

अनागच्छति तस्मिन्प्रसेने कृष्णो मणिरत्नमभिलषितवान्स च प्राप्तवन्नूनमेतदस्य कर्मेत्यखिलएव यदुलोकः परस्पर कर्णाकर्ण्यं-

कथयत् ।३५। विदितलोकापवादवृत्तान्तश्च भगवान् सर्वयदुसैन्य-परिवारपरिवृतः प्रसेनाश्वपदवीमनुससार ।३६। ददर्श चाश्वसमवेतं प्रसेनं सिंहेनं विनिहतम् ।३७। अखिलजनमध्ये सिंहपददर्शनकृत-परिशुद्धिः सिंहपदमनुससार ।३८। ऋक्षपतिनिहतं च सिंहमप्यल्पे भूमिभागे दृष्ट्वा ततश्च तद्रत्नगौरवादृक्षस्यापि पदान्यनुययौ ।३९। गिरितटे च सकलमेव तद्यदुसैन्यमवस्थाप्य तत्पदानुसारी ऋक्ष-बिलं प्रविवेश ॥४०॥

जब प्रसेन वन से लौटकर न आया, तब यादवगण परस्पर में चर्चा करने लगे कि—उस मणि को कृष्ण हथियाना चाहते थे, इसलिए इन्हीं ने ले लिया होगा। यह कार्य अवश्य ही कृष्ण ने किया है ॥३५॥ जब इस लोकापवाद को श्रीकृष्ण ने सुना तो वह सम्पूर्ण यादव सेना सहित प्रसेन के घोड़े के पद-चिह्नों पर चल दिये और वन में पहुँच कर देखा कि प्रसेन को उसके अश्व सहित सिंह ने मार डाला है ॥३६-३७॥ इस प्रकार सिंह के चरण चिह्न दिखाई देने पर भी अपने ऊपर लगे आरोप को दूर करने के लिए वे उन चिन्हों का अनुसरण करते हुए सब के सहित आगे बढ़े और कुछ दूर जाने पर ही उन्हें ऋक्षराज द्वारा मारा गया वह सिंह भी मिल गया। फिर उस महामणि की महिमा के कारण उन्होंने ऋक्षराज के पद चिह्नों का भी अनुसरण किया ॥३८-३९॥ उस समय उन्होंने सब यादव-सेना पर्वत के किनारे छोड़ दी और जाम्बवान् के पद-चिह्नों के सहारे चलते हुए उसकी गुफा में प्रविष्ट हो गये ॥४०॥

अन्तः प्रविष्टश्च धात्र्याः सुकुमारकमुल्लालयन्त्या वाणीं शुश्राव ॥४१॥

सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥४२

इत्याकर्ण्योपलब्धस्यमन्तकोऽन्तः प्रविष्टः कुमारक्रीडनकोकृतं च धात्र्या हस्ते तेजोभिर्जाज्वल्यमानं स्यमन्तकं ददर्श ।४३। तं च स्यमन्तकाभिलषितचक्षुषमपूर्वपुरुषमागतं समवेक्ष्य धात्री त्राहि त्राहीति व्याजहार ।४४। तदार्त्तरवश्रवणानन्तरं चामर्षपूर्णहृदयः

स जाम्बवानाजगाम ।४५। तयोश्च परस्परमुद्धतामर्षयोर्युद्धमेकविंशतिदिनान्यभवत् ।४६। ते च यदुसैनिकास्तत्र सप्ताष्टदिनानि तन्निष्क्रान्ति मुदीक्षमाणास्तस्थुः ।४७। अनिष्क्रमणे च मधुरिपुरसाववश्यमत्र बिलेऽत्यन्तं नाशमवाप्तो भविष्यत्यन्यथा तस्य जीवतः कथमेतावन्ति दिनानि शत्रुजये व्याक्षेपो भविष्यतीति कृताध्यवसाया द्वारकामागम्य हतः कृष्ण इति कथयामासुः ।४८। तद्बान्धवाश्च तत्कालोचितमखिलमुत्तरक्रियाकलापं चक्रुः ।४९।

गुफा में पहुँच कर उन्होंने सुकुमार को बहलाती हुई धाय के वचन सुने — सिंह ने प्रसेन को मारा और ऋक्षराज ने सिंह को मार दिया। हे सुकुमार ! अब यह स्यमन्तक मणि तेरी ही है, तू रुदन न कर। ॥४१-४२॥ इस वाणी के सुनने से श्रीकृष्ण को यह पता लग गया कि स्यमन्तक मणि यहीं है तो उन्होंने भीतर जाकर देखा कि धाय के हाथ पर रखी हुई सुकुमार की खिलौना रूपिणी स्यमन्तक मणि अपने तेज से जाज्वल्यमान हो रही है ॥४३॥ तब स्यमन्तक मणि की ओर कामनाभरी दृष्टि से देखते हुए एक अपूर्व पुरुष को वहाँ आया हुआ देखकर 'त्राहि-त्राहि' कहती हुई धाय चीत्कार करने लगी ॥४४॥ उसकी आर्त्त-पुकार को सुनकर क्रोधित हुआ जाम्बवान् वहाँ आ पहुँचा ॥४४॥ फिर दोनों में परस्पर अत्यन्त रोष की वृद्धि हुई और इक्कीस दिनों तक घोर संग्राम होता रहा ॥४६॥ श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा करती हुई यादव-सेना को जब सात-आठ दिन व्यतीत हो गये और लौटकर नहीं आये तब उन्होंने सोचा कि 'कृष्ण अवश्य ही इस गुफा में मृत्यु को प्राप्त हो गये, अन्यथा शत्रु को जीतने में उन्हें इतने दिन कदापि नहीं लग सकते थे।' ऐसा विचार स्थिर कर वे सब द्वारका लौटे और वहाँ श्रीकृष्ण के मारे जाने की बात कह दी ॥ ४७-४८ ॥ यह सुनकर उनके बन्धुओं ने उनकी सम्पूर्ण मरणोत्तर क्रिया सम्पन्न करदी ॥४९॥

ततश्चास्य युद्धयमानस्यातिश्रद्धादत्तविशिष्टोपपात्रयुक्तान्नतोयादिना श्रीकृष्णस्य बलप्राण पुष्टिरभूत ।५०। इतरस्यानुदिनमतिगुरुपुरुष भेद्यमानस्य अतिनिष्ठुरप्रहारपातपीडिताखिलावयवस्य

निराहारतया बलहानिरभूत् ॥५१॥ निर्जितश्च भगवता जाम्बवान्प्रणिपत्य व्याजहार ॥५२॥ सुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसादिभिरप्यखिलैर्भवान्न जेतुं शक्यः किमुतावनिगोचरैरल्पवीर्यैर्नरैर्नरावयवभूतैश्च तिर्यग्योन्यनुसृतिभिः किं पुनरस्मद्विधैरवश्यं भवतास्मत्स्वामिना रामेणेव नारायणस्य सकलजगत्परायणस्यांशेन भगवता भवितव्यमित्युक्तस्तस्मै भगवानखिलावनिभारावतरणार्थमवतरणमाचचक्षे ।५३। प्रीत्यभिव्यञ्जितकरतलस्पर्शनेन चैनमपगतयुद्धखेदं चकार ॥५४॥

इस प्रकार अत्यन्त श्रद्धा सहित प्रदान किए हुए विशिष्ट पात्रों में अन्न और जल दानादि की प्राप्ति से श्रीकृष्ण के दैहिक बल और प्राण पुष्ट हो गये ॥५०॥ तथा अत्यन्त महान् पुरुष के घोर प्रहारों के आघात से मर्दित और पीड़ित देह वाले जाम्बवान् के निराहार रहने से उसका बल नितान्त क्षीण हो गया ॥५१॥ अन्त में जाम्बवान् की हार हुई और तब उसने भगवान् मधुसूदन को प्रणाम करके कहा—हे भगवन्! देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षसादि में से कोई भी आपको नहीं जीत सकता तो भूतल पर रहने वाले अल्प पराक्रमी मनुष्य अथवा हमारे जैसे तिर्यक् योनि में उत्पन्न हुए जीवों का तो कहना ही क्या है? मुझे विश्वास हो गया कि आप हमारे स्वामी भगवान् श्रीराम के समान सकल विश्व के पालक भगवान् नारायण के ही अंश रूप हैं जब जाम्बवान् ने विनम्रता पूर्वक ऐसा कहा तब भगवान् श्रीकृष्ण ने भू-भार हरण करने के निमित्त अपने अवतीर्ण होने का सब वृत्तान्त उससे कहा और प्रीति सहित उसके देह को अपने हाथ के स्पर्श से श्रम-रहित और स्वस्थकर दिया ।५२-५४।

स च प्रणिपत्य पुनरप्येनं प्रसाद्य जाम्बवतीं नाम कन्यां गृहागतायार्घ्यभूतां ग्राहयामास ॥५५॥ स्यमन्तकमणिरत्नमपि प्रणिपत्य तस्मै प्रददौ ।५६। अच्युतोऽप्यतिप्रणतात्तस्मादग्राह्यमपि तन्मणिरत्नमात्मसंशोधनाय जग्राह ॥५७॥ सह जाम्बवत्या स द्वारकामाजगाम ॥५८॥ भगवदागमनोद्भूतहर्षोत्कर्षस्य द्वारका-

वासिजनस्य कृष्णावलोकनात्तत्क्षणमेवातिपरिणतवयसोऽपि नव-यौवनमिवाभवत् ॥५९॥ दिष्ट्यादिष्ट्येति सकलयादवाः स्त्रियश्च सभाजयामासुः ॥६०॥ भगवानपि यथानुभूतमशेषं यादवसमाजे यथा वदाचचक्षे ।६१। स्यमन्तकं च सत्राजिते दत्त्वा मिथ्याभिश-स्तिपरिशुद्धिमवाप ।६२। जाम्बवतीं चान्तःपुरे निवेशयामास ।६३।

तदनन्तर जाम्ववान् ने उन्हें पुनः प्रणाम द्वारा प्रसन्न किया और अपने घर पर आये हुए भगवान् रूप अतिथि को अपनी जाम्ववती नाम की कन्या अर्घ्य रूप से प्रदान की तथा प्रणाम पूर्वक स्यमन्तक मणि भी उन्हें भेंट कर दी ।।५५-५६।। उस अत्यन्त विनीत से ग्रहण करने योग्य न होने पर भी भगवान् ने अपने ऊपर लगे आरोप की सिद्धि के लिए उस मणि को ले लिया और जाम्ववती को साथ लिए हुए द्वारका पहुँचे ।।५७-५८।। उसके आगमन की वात सुनते ही द्वारकावासियों में हर्ष की अत्यन्त वृद्धि हुई और वृद्धावस्था के निकट पहुँचे हुए पुरुष भी मानों उनके दर्शन करके नवयुवक वन गये ।।५९।। उस समय सभी यादवों और उनकी स्त्रियों ने 'अहोभाग्य' कह-कहकर उनका अभिवादन किया ।।६०।। जो घटना जिस प्रकार हुई, उसका सम्पूर्ण विवरण श्रीकृष्ण ने यादवों को सुनाया और सत्राजित को स्यमन्तक मणि लौटाकर मिथ्या-पवाद से मुक्ति प्राप्त की। तदनन्तर जाम्ववती को अपने अन्तःपुर में प्रविष्ट किया ।।६१-६३।।

सत्राजिदपि मयास्याभूतमलिनमारोपितमिति जातसन्त्रासा-त्स्वसुतां सत्यभामां भगवते भार्यार्थं ददौ ॥६४॥ तां चाक्रूरकृत-वर्मशतधन्वप्रमुखा यादवाः प्राग्वरयाम्बभूवुः ।६५। ततस्तत्प्रदाना-दवज्ञातमेवात्मानं मन्यमानाः सत्राजिति वैरानुबन्धं चक्रुः ।६६। अक्रूरकृतवर्मप्रमुखाश्च शतधन्वानमूचुः ॥६७॥ अयमतीव दुरात्मा सत्राजिद् योऽस्माभिर्भवता च प्रार्थितोऽप्यात्मजामस्मान् भव तं गणय्य कृष्णाय दत्तवान् ॥६८॥ तदलमनेन जीवता घातयित्वैनं तन्महारत्नं स्यमन्तकाख्यं त्वया किं न गृह्यते वयमभ्युपपत्स्यामो यद्यच्युतस्तवोपरि वैरानुबन्धं करिष्यतीत्येवमुक्तस्तथेत्यसावप्याह

।६९। जतुगृहदग्धानां पाण्डुतनयानां विदितपरमार्थोऽपि भगवान् दुर्योधनप्रयत्नशैथिल्यकरणार्थं कुल्यकरणाय वारणावत गतः ।७०।

सत्राजित् ने भी यह सोचा कि मैंने व्यर्थ ही श्रीकृष्ण पर मिथ्यापवाद लगाया और फिर उसने अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह उनके साथ कर दिया ॥ ६४ ॥ उस कन्या का वरण पहिले अक्रूर, कृतवर्मा और शतधन्वा आदि यादव कर चुके थे, इसलिये उसका श्रीकृष्ण के साथ विवाह होंने में उन्होंने अपना अपमान समझा और सत्राजित् से बैर करने लगे ॥६५-६६॥ इसके अनन्तर अक्रूर और कृतवर्मा ने शतधन्वा से कहा कि यह सत्राजित अत्यन्त दुष्ट है, इसने हमारे और आपके द्वारा याचना किये जाने पर भी कन्या हमें नहीं दी और हमारा तिरस्कार करके उसे श्रीकृष्ण को दे दिया ॥ ६७-६८ ॥ इसलिए अब इसे जीवित रहने देने से क्या लाभ है ? इसका वध करके उस स्यमन्तक महामणि को आप क्यों नहीं ले लेते ? फिर यदि कृष्ण इस विषय में कुछ विरोध करेंगे तो उसमें हम भी आपको सहायता देंगे। उनकी बात सुन कर शतधन्वा ने स्वीकृति रूप में कहा—अच्छा, ऐसा ही किया जायगा ॥६९॥ इसी अवसर पर पाण्डवों के लाक्षागृह में भस्म होने की बात सुनकर, उसकी वास्तविकता को जानते हुए भी श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के प्रयत्न को ढीला करने के विचार से कुल के अनुरूप कर्म करने के लिए वारणावत नगर को गमन किया ॥७०॥

गते च तस्मिन् सुप्तमेव सत्राजितं शतधन्वा जघान मणिरत्नं चाददात् ॥७१॥ पितृवधामर्षपूर्णा च सत्यभामा शीघ्रं स्यन्दनमारूढा वारणावतं गत्वा भगवतेऽहं प्रतिपादितेत्यक्षान्तिमता शतधन्वनास्मत्पिता व्यापादितस्तच्च स्यमन्तकमणिरत्नमपहृतं यस्यावभासनेनापहृततिमिरं त्रैलोक्य भविष्यति ॥७२॥ तदियं त्वदीयापहासना तदालोच्य यदत्र युक्तं तत्क्रियतामिति कृष्णमाह ॥७३॥ तया चैवमुक्तः परितुष्टान्तः करणोऽपि कृष्णः

सत्यभामाममर्षताम्रनयनः प्राह ।७४। सत्ये सत्यं ममैवैषापहासना नाहमेतां तस्य दुरात्मनस्सहिष्ये ।।७५।। न ह्यनुल्लंघ्य वरपादपं तत्कृतनीडाश्रयिणो विहङ्गमा वध्यन्ते तदलममुनास्मत्पुरतः शोकप्रेरितवाक्यपरिकरेणेत्युक्त्वा द्वारकामभ्येत्यैकान्ते बलदेवं वासुदेवः प्राह ।।७६।।

उनके द्वारका से चले जाने पर शतधन्वा ने सोते हुए सत्राजित् की हत्या कर दी और स्यमन्तक मणि को ग्रहण कर लिया ।। ७१ ।। पिता की हत्या से अत्यन्त रोष में भरी हुई सत्यभामा रथ में बैठकर वारणावत नगर को गई और उसने वहाँ पहुँच कर श्रीकृष्ण से कहा—'हे भगवन् ! मेरे पिता ने मुझे आपके कर-कमलों में अर्पित कर दिया—उसे सहन न करके ही शतधन्वा ने उनकी हत्या कर डाली और उस स्यमन्तक मणि को भी ले लिया, जिसके कारण तीनों लोकों का अन्धकार नष्ट हो जाता है ।। ७२ ।। हे प्रभो ! ऐसा होने में आपका ही उपहास है, इसलिये इस पर विचार करके आप जो चाहें सो करें ।।७३।। सदा प्रसन्न चित्त वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने सत्यभामा का कथन सुना तो उनके नेत्र क्रोध से लाल हो उठे और वह कहने लगे ।। ७४ ।। हे सत्ये ! तुम्हारा कथन सत्य ही है । इसमें मेरा ही उपहास हुआ है । मैं उस दुरात्मा के इस कुकृत्य को कभी सहन नहीं कर सकता । क्योंकि यदि ऊँचे वृक्षों को नहीं लाँघा जा सकता तो उस पर रहने वाले पक्षियों का वध नहीं कर दिया जाता । इसलिये अब इन लोक सन्तप्त वचनों का तुम त्याग कर दो । सत्यभामा को इस प्रकार आश्वासन देकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये और बलदेवजी से उन्होंने एकान्त में कहा ।।७५-७६।।

मृगयागतं प्रसेनमटव्यां मृगपतिर्जघान ।७७। सत्राजिप्यधुना शतधन्वना निधनं प्रापितः ।।७८।। तदुभयविनाशात्तन्मणिरत्नमावाभ्यां सामान्यं भविष्यति ।।७९।। तदुत्तिष्ठरुह्यतां रथः शतधन्वनिधना योद्यमं कुर्वित्यभिहितस्तथेति समन्वीप्सितान् ।।८०।।

वन में मृगया के लिए गये हुए प्रसेन को तो सिंह ने मारा था, परन्तु अब शतधन्वा ने सत्राजित की हत्या कर डाली ।।७७-७८।। इस

प्रकार जब वे दोनों ही मारे गए तो उस स्यमन्तक महामणि पर हम दोनों ही समान रूप से अधिकार करेंगे ।।७९।। इसलिये अब आप यहाँ से उठ कर रथ पर बैठिये और शतधन्वा का वध करने के प्रयत्न में लग जाइए। भगवान् श्रीकृष्ण की बात सुन कर 'बहुत अच्छा' कहते हुए बलदेवजी ने उस कार्य का करना स्वीकार कर लिया ।।८०।।

कृतोद्यमौ च तावुभावुपलभ्य शतधन्वा कृतवर्माणमुपैत्य पार्ष्णिपूरणकर्मनिमित्तमचोदयत् ।८१। आह चैनं कृतवर्मा ।।८२।। नाहं बलदेववासुदेवाभ्यां सह विरोधायालमित्युक्तश्चाक्रूरमचोदयत् ।८३। असावप्याह ।८४। न हि कश्चिद्भगवता पादप्रहारपरिकम्पित जगत्त्रयेण सुररिपुवनितावैधव्यकारिणा प्रबलरिपुचक्राप्रतिहतचक्रेण चक्रिणा मदमुदितनयनावलोकिताखिलनिशातनेनातिगुरुवैरिवारणापकर्षणाविकृतमहिमोरुसीरेणसीरिणा च सह सकलजगद्वन्द्यानाममरवराणमपि योद्धुं समर्थः किमुताहम् ।।८५।। तदन्यश्शरणमभिलष्यतामित्युक्तश्शतधनुराह ।८६। यद्यस्मत्परित्राणासमर्थं भवानात्मानमधिगच्छति तदयमस्मत्तस्तावन्मणिः संगुह्य रक्ष्यतामिति ।।८७।। एवमुक्तः सोऽप्याह ।।८८।। यद्यन्त्यायामप्यवस्थायां न कस्मैचिद्भवान् कथयिष्यति तदहमेतं ग्रहीष्यामीति ।।८९।। तथेत्युक्ते चाक्रूरस्तन्मणिरत्नं जग्राह ।।९०।।

जब शतधन्वा ने कृष्ण-बलदेव को वध के लिए उद्यत हुए जाना तब वह सहायता के लिये कृतवर्मा के पास गया। ।। ८१ ।। इस पर कृतवर्मा ने कहा 'कृष्ण-बलदेव से विरोध करने की सामर्थ्य मुझ में नहीं हैं। यह सुनकर शतधन्वा अक्रूर के पास गया और उससे सहायता माँगी। अक्रूर ने कहा ।।८२-८४।। जिनके पाद-प्रहार से ही तीनों लोक काँप उठते हैं और उसी से देवताओं के शत्रु असुरों की स्त्रियाँ वैधव्य को प्राप्त होती हैं, तथा जिनका चक्र महाबली शत्रुओं की सेना में भी अप्रतिहत रहता है, उन चक्रधारी श्रीकृष्ण से और जो अपने मदोन्मत्त नेत्रों की चितवन से ही शत्रुओं का दमन करने में समर्थ तथा भयङ्कर

शत्रु समूह रूपी हाथियों को भी वश में करने के लिए अखण्ड महिमा वाले प्रचण्ड हल को धारण किए रहते हैं, उन हलधर बलदेव मे अखिल विश्व में वन्दनीय देवताओं में से कोई भी समर्थ नहीं हो सकता तो मैं ही क्या कर सकता हूँ ? ॥८५॥ इसलिए किसी अन्य की शरण लो। इस पर शतधन्वा बोला ॥८६॥ अच्छा, यदि आप मेरी रक्षा करने में असमर्थ हैं, तो लीजिए, इस मणि की ही रक्षा करिये ॥८७॥ अक्रूर बोला—मैं इस मणि को तभी ग्रहण कर सकता हूँ, जब तुम यह प्रतिज्ञा करो कि मरणकाल में भी तुम इसके मेरे पास होने की बात किसी से न कहोगे ॥८९॥ शतधन्वा ने कहा 'ऐसा ही होगा' तब अक्रूर ने उस मणिरत्न को लेकर अपने पास सुरक्षित रखा ॥९०॥

शतधनुरप्यतुलवेगां शतयोजनवाहिनीं वडवामारुह्यापक्रान्तः ॥९१॥ शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाश्वचतुष्टययुक्तरथस्थितौ बलदेववासुदेवौ तमनुप्रयातौ ॥९२॥ स च वडवा शतयोजनप्रमाणमार्गमतीता पुनरपि वाह्यमाना मिथिलावनोद्देशे प्राणानुत्ससर्ज ।९३। शतधनुरपि तां परित्यज्य पदातिरेवाद्रवत् ।९४। कृष्णोऽपि बलभद्रमाह ।९५। तावदत्र स्यन्दने भवता स्थेयमहमेनमधमाचारं पदातिरेव पदातिमनुगम्य यावद्घातयामि अत्र हि भूभागे दृष्टदोषास्सभया अतो नैतेऽश्वा भवतेमं भूमिभागमुल्लङ्घनीयाः ।९६। तथेत्युक्त्वा बलदेवो रथ एव तस्थौ ।९७।

फिर शतधन्वा एक अत्यन्त वेगवती और निरन्तर सौ योजन तक चलने में समर्थ घोड़ी पर चढ़कर भागा ॥९१॥ तब शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक चार घोड़ों से युक्त रथ पर आरूढ़ होकर कृष्ण-बलदेव ने उसका पीछा किया ॥९२॥ सौ योजन मार्ग पूरा हो जाने पर भी शतधन्वा जिसे आगे ले जा रहा था, उस घोड़ी ने मिथिला के वन प्रदेश में अपने प्राण त्याग दिये ॥९३॥ तब उस घोड़ी को वहीं पड़ी छोड़ कर शतधन्वा पैदल ही भागने लगा ॥९४॥ यह देखकर श्रीकृष्ण ने बलदेव से कहा ॥९५॥ अभी आप रथ में ही बैठे रहें, इस

पैदल भागते हुए अधमाचारी को मैं भी पैदल जाकर मार दूँगा ॥९६॥ इस पर बलदेव 'अच्छा' कह कर रथ में ही बैठे रहे ॥९७॥

कृष्णोऽपि द्विक्रोशमात्रं भूमिभागमनुसृत्य दूरस्थितस्यैव चक्रं क्षिप्त्वा शतधनुषश्शिरश्चिच्छेद ।९८। तच्छरीराम्बरादिषु च बहुप्रकारमन्विच्छन्नपि स्यमन्तकमणिं नावाप यदा तदोपगम्य बलभद्रमाह ।९९। वृथैवास्माभिः शतधनुर्घातितो न प्राप्तमखिल-जगत्सारभूतं तन्महारत्नं स्यमन्तकाख्यमित्याकर्ण्योद्भूतकोपो बलदेवो वासुदेवमाह ।१००। धिक्त्वां यस्त्वमेवमर्थलिप्सुरेतच्च ते भ्रातृत्वान्मया क्षान्तं तदयं पन्थास्स्वेच्छया गम्यतां न मे द्वारकया न त्वया न चाशेषबन्धुभिः कार्य्यमलमलमेभिर्ममाग्रतोऽलीकशप-थैरित्याक्षिप्य तत्कथां कथञ्चित्प्रसाद्यमानोऽपि न तस्थौ ।१०१। स विदेहपुरीं प्रविवेश ।१०२।

श्रीकृष्ण ने दो कोस तक उसका पीछा किया और दूर से अपना चक्र चलाकर शतधन्वा का मस्तक काट डाला ॥९८॥ परन्तु बहुत कुछ खोजने पर भी उसके पास स्यमन्तक मणि न मिली, तो बलदेवजी के पास पहुँच कर उन्होंने कहा ॥ ९९ ॥ शतधन्वा का वध व्यर्थ ही हुआ, क्योंकि स्यमन्तक मणि उसके पास नहीं मिली। यह सुनकर बलदेवजी अत्यन्त क्रोधित हुए और श्रीकृष्ण की बात को भेद-पूर्ण समझ कर बोले, ॥१००। तुम्हें धिक्कार है, तुम अत्यन्त धन-लोलुप हो, मैं तुम्हें भाई होने के कारण ही क्षमा कर रहा हूँ। तुम अपने मार्ग पर स्वेच्छा से जा सकते हो, मुझे अब द्वारका से, तुमसे या अन्य सब बन्धु-बाँधवों से कोई प्रयोजन नहीं है। मैं इन सौगन्धों को भी नहीं मानता। इस प्रकार कहते हुए बलदेवजी अनेक प्रकार समझाने और विश्वास दिलाने पर भी वहाँ न रुककर विदेह नगर को चल पड़े ॥१०१-१०१॥

जनकराजश्चार्घ्यपूर्वकमेनं गृहं प्रवेशयामास ।१०३। स तत्रैव च तस्थौ ।१०४। वासुदेवोऽपि द्वारकामाजगाम ।१०५। यावच्च जनकराजगृहे बलभद्रोऽवतस्थे तावद्धार्तराष्ट्रो दुर्योधनस्तत्सकाशा-द्गदाशिक्षामशिक्षयत् ॥१०६॥ वर्षत्रयान्ते च बभ्रुग्रसेनप्रभृति-

भिर्यादवैर्न तद्रत्नं कृष्णेनापहृतमिति कृतावगतिभिर्विदेहनगरीं गत्वा बलदेवस्सम्प्रात्याय्य द्वारकामानीतः ।१०७।

विदेह नगर पहुँचने पर राजा जनक ने अर्घ्यादि से उनका स्वागत किया और उन्हें अपने घर में ठहराया ॥ १०३-१०४ ॥ इधर श्रीकृष्ण द्वारका में लौट आये ॥ १०५ ॥ राजा जनक के यहाँ बलदेवजी ने जितने दिन निवास किया, उतने दिनों तक धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने उनसे गदा-युद्ध सीखा ॥ १०६ ॥ फिर स्यमन्तक मणि के श्रीकृष्ण के पास न होने की बात जानने वाले बभ्रु और उग्रसेन आदि यादवों ने बलदेवजी को शपथ पूर्वक विश्वास दिलाया, तब वह तीन वर्ष व्यतीत होने पर द्वारका लौटे ॥१०७॥

अक्रूरोऽप्युत्तममणिसमुद्भूतसुवर्णेन भगवद्ध्यानपरोऽनवरतं यज्ञानियाज ।१०८। सवनगतौ हि क्षत्रियवैश्यौ निघ्नन्ब्रह्महा भवतीत्येवम्प्रकारं दीक्षाकवचं प्रविष्ट एव तस्थौ ।१०९। द्विषष्टि-वर्षाण्येवं तन्मणिप्रभावात्तत्रोपसर्गदुर्भिक्षमारिकामरणादिकं नाभूत् ।११०। अथाक्रूरपक्षीयैर्भोजैश्शत्रुघ्ने सात्वतस्य प्रपौत्रे व्यापादिते भोजैस्सहाक्रूरो द्वारकामपहायापक्रान्तः ।१११। तदप-क्रान्तिदिनादारभ्य तत्रोपसर्गदुर्भिक्षव्यालानावृष्टिमारिकाद्युपद्रवा बभूवु ।११२।

भगवान् के ध्यान में लगे रहते हुए अक्रूरजी उस मणि-रत्न द्वारा प्राप्त होने वाले सुवर्ण से यज्ञानुष्ठानादि कर्म करने लगे ॥१०८॥ यज्ञ में दीक्षित क्षत्रियों और वैश्यों का वध करने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है, इस कारण अक्रूर ही यज्ञ दीक्षारूपी उस कवच को सदा पहने रहते ॥ १०९ ॥ मणि के प्रभाव से ही द्वारकापुरी में बासठ वर्ष रोग, दुर्भिक्ष, महामारी अथवा मृत्यु आदि का प्रकोप नहीं हुआ ॥११०॥ फिर अक्रूर-पक्ष के भोज-वंशियों के द्वारा सात्वत के प्रपौत्र शत्रुघ्न का वध कर देने पर अन्य भोज-वंशियों के साथ अक्रूर ने भी द्वारका का परित्याग कर दिया ॥१११॥ अक्रूर के वहाँ से जाते ही द्वारका में रोग, दुर्भिक्ष, सर्प, अनावृष्टि और महामारी आदि उपद्रव होने लगे ॥११२॥

अथ यादवबलभद्रोग्रसेनसमवेतो मन्त्रममन्त्रयद्भगवानुरगारिकेतनः ।११३। किमिदमेकदैव प्रचुरोपद्रवागमनमेतदालोच्यतामित्युक्तेऽन्धकनामा यदुवृद्धः प्राह ।११४। अस्याक्रूरस्यपिता श्वफल्को यत्र यत्राभूत्तत्र तत्र दुर्भिक्षमारिकानावृष्ट्यादिकं नाभूत् ।११५। काशिराजस्य विषये त्वनावृष्ट्या च श्वफल्को नीतः ततश्च तत्क्षणादेवो ववर्ष ।११६। काशिराजपत्न्याश्च गर्भे कन्यारत्नं पूर्वमासीत् ।११७। सा च कन्या पूर्णेऽपि प्रसूतिकाले नैव निश्चक्राम ।११८। एव च तस्य गर्भस्य द्वादशवर्षाण्यनिष्क्रामतो ययुः ।११९। काशिराजश्च तामात्मजां गर्भस्थामाह ।१२०। पुत्रि कस्मान्न जायसे निष्क्रम्यतामास्यं ते द्रष्टुमिच्छामि एतां च मातरं किमिति चिरं क्लेशयसीत्युक्ता गर्भस्थैव व्याजहार ।१२१। तात यद्येकैकां गां दिने दिने ब्राह्मणाय प्रयच्छसि तदाहमन्यैस्त्रिमिर्वर्षैरस्माद्गर्भात्तावदवश्यं निष्क्रमिष्यामीत्येतद्वचनमाकर्ण्य राजा दिने दिने ब्राह्मणाय गां प्रादात् ।१२२। सापि तावता कालेन जाता ।१२३।

तब श्रीकृष्ण ने बलदेवजी उग्रसेन आदि प्रमुख यादवों से मंत्रणा की और बोले ॥११३॥ एक साथ ही इतने उपद्रव क्यों उपस्थित हो गये, इस पर विचार करना चाहिए। यह सुनकर अन्धक नाम एक वृद्ध यादव ने कहा ॥११४॥ अक्रूर के पिता श्वफल्क जब-जब जहाँ-जहाँ रहे, तब-तब वहाँ-वहाँ दुर्भिक्ष, महामारी, अनावृष्टि आदि कोई भी उपद्रव कभी नहीं हुआ ॥११५॥ एक बार जब काशिराज के राज्य में वर्षा नहीं हुई, तब श्वफल्क को वहाँ ले जाते ही वर्षा आरम्भ हो गई ॥११६॥ उस समय काशिराज की भार्या गर्भवती थी और कन्या उसमें स्थित थी ॥११७॥ वह कन्या निश्चित अवधि में उत्पन्न न हुई ॥११८॥ उसे गर्भ में रहते-रहते बारह वर्ष व्यतीत हो गये ॥११९॥ तब काशिराज अपनी उस गर्भस्थ कन्या से बोले ॥१२०॥ हे सुते ! तू गर्भ से बाहर क्यों नहीं आती ? तू उत्पन्न हो, मैं तेरे मुख को देखने की इच्छा कर रहा हूँ, ॥१२१॥ अपनी माता को इतने समय से ऐसा कष्ट क्यों दे रही है ? ऐसा कहे जाने पर उस कन्या ने गर्भ में से ही कहा—हे

पिताजी ! यदि आप नित्य प्रति एक गौ किसी ब्राह्मण को प्रदान करें तो तीन वर्ष व्यतीत होने पर मैं अवश्य उत्पन्न हो जाऊँगी। यह सुनकर राजा ने नित्यप्रति एक गाय ब्राह्मण को देना प्रारम्भ किया ॥१२२॥ तब तीन वर्ष व्यतीत हो जाने पर वह कन्या उत्पन्न हुई ॥१२३॥

ततस्तस्याः पिता गान्दिनीति नाम चकार ।१२४। तां च गान्दिनीं कन्यां श्वफल्कायोपकारिणे गृहमागतायार्घ्यभूतां प्रादात् ।१२५। तस्यामयमक्रूरः श्वफल्काञ्जज्ञे ।१२६। तस्यैवङ्गुणमिथुनादुत्पत्तिः ।१२७। तत्कथमस्मिन्नपक्रान्तेऽत्र दुर्भिक्षमारिकाद्युपद्रवा न भविष्यन्ति ।१२८। तदयमत्रानीयतामलमतिगुणवत्यपराधान्वेषणेनेति यदुवृद्धस्यान्धकस्यैतद्वचनमाकर्ण्य केशवोग्रसेनबलभद्रपुरोगमैर्यदुभिः कृतापराधतितिक्षुभिरभयं दत्त्वा श्वफल्कपुत्रः स्वपुरमानीतः।१२९। तत्र चागतमात्र एव तस्य स्यमन्तकमणेः प्रभावादनावृष्टिमारिकादुर्भिक्षव्यालाद्युपद्रवोपशमा बभूवुः ।१३०।

उस कन्या का नाम पिता ने गान्दिनी रखा और उसे अपने उपकारक श्वफल्क को, जब वह काशिराज के यहाँ गये थे; तब अर्घ्य रूप में प्रदान किया ॥१२४-१२५॥ श्वफल्क ने उसी के गर्भ से अक्रूरजी को उत्पन्न किया था ॥१२६॥ इनका जन्म जब ऐसे गुणी माता-पिता से हुआ है, तो उनके इस नगर का त्याग कर देने से यहाँ दुर्भिक्ष और महामारी आदि उपद्रव भला क्यों न होंगे ? ॥१२७-१२८॥ इसलिए अक्रूरजी को यहाँ लिवा लाना चाहिए, अत्यधिक गुण वाले यदि कुछ अपराध हो भी जाँय तो उसका अधिक अन्वेषण उचित नहीं है। अन्धक की बात सुनकर श्रीकृष्ण-बलदेव, उग्रसेन आदि ने अक्रूरजी को क्षमा कर दिया और उन्हें द्वारका में ले आये ॥१२९॥ जैसे ही वह नगर में आये, वैसे ही स्यमन्तक मणि के प्रभाव से अनावृष्टि, महामारी, दुर्भिक्ष, सर्पभय आदि सभी उपद्रवों की शान्ति हो गई ॥१३०॥

कृष्णश्चिन्तयामास ।१३१। स्वल्पमेतत्कारणं यदयं गान्दिन्यां श्वफल्केनाक्रूरो जनितः ।१३२। सुमहांश्चायमनावृष्टिदुर्भिक्षमारि-

काद्युपद्रवप्रतिषेधकारी प्रभावः ।१३३। तन्नूनमस्य सकाशे स महामणिः स्यमन्तकाख्यस्तिष्ठति ।१३४। तस्य ह्येवंवविधाः प्रभावाः श्रूयन्ते ।१३५। अयमपि च यज्ञादनन्तरमन्यत्क्रत्वन्तरं तस्यानन्तर मन्यद्यज्ञान्तरं चाजस्रमविच्छिन्नं यजतीति ।१३६। अल्पोपादानं चास्यासंशयमत्रासौ मणिवरस्तिष्ठतीति कृताध्यवसायोऽन्यत्प्रयोजनमुद्दिश्य सकलयादवसमाजमात्मगृह एवाचीकरत् ।१३७।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण सोचने लगे कि श्वफल्क के द्वारा गान्दिनी के गर्भ से अक्रूर का उत्पन्न होना एक साधारण बात है ।। १३१-१३२ ।। परन्तु उसका अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी आदि उपद्रवों को रोकने वाला प्रभाव अत्यन्त महिमा युक्त है ।। १३३ ।। इसके पास अवश्य ही स्यमन्तक महामणि होनी चाहिये ।।१३४।। क्योंकि उस मणि का ही ऐसा प्रभाव सुना गया है ।।१३५।। इस अक्रूर को एक यज्ञ के पश्चात् दूसरा, दूसरे के पश्चात् तीसरा यज्ञ करते ही देखा जाता है। इसके अनुष्ठानों का क्रम कभी टूटता नहीं ।।१३६।। इसके पास यज्ञ के लिए साधनों की भी न्यूनता है, इसलिए इसके पास स्यमन्तक मणि होने में सदेह नहीं रहता। ऐसा स्थिर कर उन्होंने अपने घर में सभी यादवों को किसी विशेष प्रयोजन के लिए एकत्रित किया ।।१३७।।

तत्र चोपविष्टेष्वखिलेषु यदुषु पूर्वं प्रयोजनमुपन्यस्य पर्यवसिते च तस्मिन् प्रसङ्गान्तरपरिहासकथामक्रूरेण कृत्वा जनार्दनस्तमक्रूरमाह ।१३८। दानपते जानीम एव वय यथा शतधन्वना तदिदमखिलजजगत्सारभूतं स्यमन्तकं रत्नं भवतः समर्पितं तदशेषराष्ट्रोपकारकं भवत्सकाशे तिष्ठति तिष्ठतु सव एव वय तत्प्रभावफलभुजः किं त्वेष बलभद्रो स्मानाशङ्कितवांस्तदस्मत्प्रीतये दर्शयस्वेत्वेत्यभिधाय जोष स्थिते भगवति वासुदेवेसरत्नस्सोऽचिन्तयत् ।१३९। किमत्रानुष्ठेयमन्यथा चेद्ब्रवीम्यहं तत्केवलाम्बरतिरोधानं मन्विष्यन्तो रत्नमेते द्रक्ष्यन्ति अतिविरोधो न क्षेम इति सञ्चिन्त्य तमखिलजगत्कारणभूतं नारायणमाहाक्रूरः ।१४०। भगवन्ममं-

तत्स्यमन्तकरत्नं शतधनुषा समर्पितमपगते च तस्मिन्नद्य श्वः परश्वो वा भगवान् याचयिष्यतीति कृतमतिरतिकृच्छ्रेणैतावन्तं कालमधारयम् ।१४१। तस्य च धारणक्लेशेनाहमशेषोपभोगेष्वसङ्गिमानसो न वेद्मि स्वसुखकलामपि ।१४२। एतावन्मात्रमप्यशेषराष्ट्रोपकारि धारयितुं न शक्नोति भवान्मन्यत इत्यात्मना न चोदितवान् ।१४३। तदिदं स्यमन्तकरत्नं गृह्यतामिच्छया यस्याभिमतं तस्य समर्प्यताम् ।।१४४।।

जब सब यदुवंशी वहाँ आकर बैठ गए तो पहिले उन्हें अपना प्रयोजन बताया और उसका उपसंहार हो गया तब उन्होंने प्रसङ्ग बदल कर अक्रूर के साथ परिहास-पूर्वक कहा ।।१३८।। हे दानपते ! शतधन्वा ने जिस प्रकार वह स्यमन्तक मणि तुम्हें दी थी, वह सब विषय हमें ज्ञात है। वह सम्पूर्ण राष्ट्र का उपकार करती हुई यदि तुम्हारे पास रहती है तो उससे हमें कोई हानि नहीं है, क्योंकि उसके प्रभाव से प्राप्त होने वाले फल को तो हम सभी भोगते हैं। परन्तु, इन बलरामजी का मुझ पर सदेह रहा है इसलिए यदि आप उसे एक बार दिखला दें तो हमें अत्यन्त प्रसन्नता होगी। जब भगवान् श्रीकृष्ण ऐसा कह कर मौन हो गये तब मणि के साथ होने के कारण अक्रूरजी विचार करने लगे ।।१३९।। अब मैं क्या करूँ ? यदि कुछ बहाना बनाता हूँ तो यह मेरे वस्त्रों में टटोल कर ही मणि को देख लेंगे। फिर यदि इनसे विरोध हो गया तो किसी प्रकार भी कुशल नहीं है। इस प्रकार स्थिर कर अक्रूर जी ने सम्पूर्ण संसार के कारण रूप भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ।।१४०।। हे भगवन् ! वह मणि शतधन्वा ने मुझे दे दी थी और उसकी मृत्यु होने पर अत्यन्त सावधानी पूर्वक मैंने इसे रखा है, क्योंकि मैं सोचता था कि आप इसे आज-कल में मुझसे माँग ही लेंगे ।।१४१।। इसकी सुरक्षा के क्लेश से मैं किसी प्रकार के भोग में भी अपना मन न लगा सकने के कारण किंचित् भी सुखी नहीं रहा हूँ। परन्तु आपसे मैंने स्वयं इसलिए नहीं कहा कि कहीं आप यह न सोचने लगें कि यह सम्पूर्ण राष्ट्र का उपकार करने वाले इतने स्वल्प भार को भी सहन नहीं कर सका

॥१४३॥ आपकी यह स्यमन्तक मणि यह है, इसे आप ग्रहण कीजिए और आप जिसे चाहें उसे दीजिए ॥१४४॥

ततः स्वोदरवस्त्रनिगोपितमतिलघुकनकसमुद्रकगतं प्रकटितवान् ।१४५। ततश्च निष्क्राम्य स्यमन्तकमणिं तस्मिन्यदुकुलसमाजे मुमोच ॥१४६॥ मुक्तमात्रे च तस्मिन्नतिकान्त्या तदखिलमास्थानमुद्योतितम् ॥१४७॥ अथाहाक्रूरः स एष मणिः शतधन्वनास्माकं समर्पितो यस्यायं स एनं गृह्णातु इति ।१४८। तमालोक्य सर्वयादवानां साधुसाध्विति विस्मितमनसां वाचोऽश्रूयन्त ।१४९। तमालोक्यातीव बलभद्रो ममायच्युतेनैव मामान्यस्समन्वीप्सित इति कृतस्पृहोऽभूत् ।१५०। ममैवायं पितृधनमित्यतीव च सत्यभामापि स्पृहयाञ्चकार ।१५१। बलसत्यावलोकनात्कृष्णोऽप्यात्मानं गोचक्रान्तरावस्थितमिव मेने ।१५२। सकलयादवसमक्षं चाक्रूरमाह ॥१५३॥

यह कह कर अक्रूरजी ने अपने कटिवसन में छिपी हुई एक छोटी सी स्वर्ण पिटारी में रखी हुई उस स्यमन्तक मणि को, निकाल कर यदुवंशियों के समाज में रख दिया ॥१४५-१४६॥ पिटारी से निकलते ही उस मणि की कांति से वह सम्पूर्ण स्थान अत्यन्त प्रकाशमान हो उठा ॥१४७॥ फिर अक्रूर जी बोले कि यह मणि मुझे शतधन्वा से प्राप्त हुई थी, जिसकी यह हो, वह इसे ग्रहण करले ॥१४८॥ मणि को देखते ही सब यादवगण विस्मय पूर्वक 'साधु' 'साधु' शब्द कहने लगे ॥१४९॥ उसे देखकर इस पर कृष्ण के समान ही मेरा भी अधिकार है, यह सोचते हुए बलदेवजी अधिक स्पृहावान् हुए ॥१५०॥ सत्यभामा ने भी उसे अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर अपनी अधिक उत्कंठा प्रकट की ॥१५१॥ बलदेव और सत्यभामा की अभिलाषा को देखकर श्रीकृष्ण ने अपने को रथ के बैल और पहिये के मध्य पड़े हुए जन्तु के समान सङ्कटग्रस्त पाया ॥१५२॥ तब उन्होंने सब यादवों की उपस्थिति में अक्रूरजी से कहा ॥१५३॥

एतद्धि मणिरत्नमात्मसंशोधनाय एतेषां यदूना मया दर्शितम् एतच्च मम बलभद्रस्य च सामान्यं पितृधनं चैतत्सत्यभामाय

नान्यस्यैतत् ।१५४। एतच्च सर्वकालं शुचिना ब्रह्मचर्यादिगुणवता ध्रियमाणमशेषराष्ट्रस्योपकारकमशुचिना ध्रियमाणमाधारमेव हन्ति ।१५५। अतोऽहमस्य षोडशस्त्रीसहस्रपरिग्रहादसमर्थो धारणे कथमेतत्सत्यभामा स्वीकरोति ।१५६। आर्यबलभद्रेणापि मदिरापानाद्यशेषोपभोगपरित्यागः कार्यः ॥१५७॥ तदलं यदुलोकोऽयं बलभद्रः अहं च त्वां दानपते प्रार्थयामः ।१५८। तद्भवानेव धारयितुं समर्थः ।१५९। त्वद्धृतं चास्य राष्ट्रस्योपकारकं तद्भवानशेषराष्ट्रनिमित्तमे तत्पूर्ववद्धारयत्वन्यन्न वक्तव्यमित्युक्तो दानपतिस्थेत्याह जग्राह च तन्महारत्नम् ।१६०। ततः प्रभृत्यक्रूरः प्रकटेनैव तेनातिजाज्वल्यमानेनात्मकण्ठाववतेनादित्य इवांशुमाली चचार ।१६१। इत्येतद्भगवतो मिथ्याभिशस्तिक्षालनं यः स्मरति न तस्य कदाचिदल्पापि मिथ्याभिशस्तिर्भवति अव्याहताखिलेन्द्रियश्चाखिलपापमोक्षमवाप्नोति ॥१६२॥

इस मणि को अपने ऊपर लगे आरोप को दूर करने के विचार से ही मैंने सबके सामने निकलवाया है। इस पर मेरा और बलदेवजी का तो समान अधिकार है ही, साथ ही सत्यभामा का यह पितृधन है, इनके अतिरिक्त किसी अन्य का अधिकार इस पर नहीं है ॥१५४॥ सदा पवित्र और ब्रह्मचर्यादि धारण पूर्वक रहने से यह मणि सम्पूर्ण राष्ट्र का हित करने वाली होती है, परन्तु अपवित्र अवस्था धारण करने पर यह अपने आश्रयदाता के लिए घातक सिद्ध होती है ॥ १५५ ॥ मेरे सोलह हजार रानियाँ होने के कारण इसे धारण करने में मैं सो असमर्थ हूँ ही साथ ही सत्यभामा भी इसमें समर्थ नहीं है ॥ १५६ ॥ यदि आर्य बलरामजी इसे अपने पास रखते हैं तो उन्हें अपने मदिरापान आदि सभी भोगों को छोड़ना पड़ेगा ॥१५७॥ इसलिए हे दानपते ! यह बलरामजी, यह सभी यादवगण, यह सत्यभामा और मैं—सभी यह मानते हैं कि इस मणि के धारण करने की सामर्थ्य आपमें ही है ॥ १५८ ॥ यदि आप इसे धारण करेंगे तो यह सम्पूर्ण राष्ट्र का हित-साधन करने वाली होगी, इसलिए सम्पूर्ण राष्ट्र के कल्याणार्थ आप ही इसे पहिले के समान धारण करते

रहिए, अब इस विषय में आप कुछ अन्यथा वचन न कहें। श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर दानपति अक्रूर ने उस महामणि को ग्रहण कर लिया। उस समय से अक्रूरजी उस अत्यन्त प्रकाशपुंज रूपी मणि को अपने कंठ में धारण कर भगवान् आदित्य के समान रश्मियों से युक्त हुए सबके सामने विचरण करने लगे ॥१६०-१६१॥ भगवान् श्रीकृष्ण के मिथ्या-कलंक को शुद्ध करने वाले इस प्रसंग को जो मनुष्य स्मरण करेगा, उसे कभी किंचित् भी मिथ्या-कलंक नहीं लगेगा, उसकी सब इन्द्रियाँ सशक्त रहेंगी तथा वह सभी पापों से छूट जायगा ॥१६२॥

चौदहवां अध्याय

अनमित्रय पुत्रः शिनिर्नामाभवत् ॥१॥ तस्यापि सत्यकः सत्यकात्सात्यकिर्युयुधानापरनामा ।२। तस्चादपि संजयः तत्पुत्रश्च कुणिः कुणेर्युगन्धरः ॥३॥ इत्येते शैनेयाः ॥४॥ अनमित्रस्यान्वये पृश्नस्तस्मात् श्वफल्कः तत्प्रभावः कथित एव ।५। श्वफल्कस्यान्याः कनीयांश्चित्रको नाम भ्राता ।६। श्वफल्कादक्रूरो गान्दिन्यामभवत् ।७। तथोपमद्गुमृदामृदविश्वारिमेजयगिरिक्षत्रोपक्षत्रशतघ्नारिम-र्दनधर्मदृग्दृष्टधर्मगन्धमौजवाहप्रतिवाहाख्याः पुत्राः ।८। सुताराख्या कन्या च ।९। देववानुपदेवश्चाक्रूरपुत्रौ ।१०। पृथुविपृथुप्रमुखाश्चित्रकस्य पुत्रा बहवो बभूवुः ।११।

श्री पराशरजी ने कहा—अनमित्र का पुत्र शिनि हुआ, शिनि का पुत्र सत्यक और सत्यक का पुत्र सात्यकि हुआ, इसको युयुधान भी कहते थे ॥१-२॥ सात्यकि का पुत्र संजय, सजय का कुणि और कुणि का पुत्र युगन्धर हुआ। यह सभी शैनेय नाम से प्रसिद्ध थे ॥३-४॥ अनमित्र के वंश में ही पृश्नि उत्पन्न हुआ। पृश्नि का ही पुत्र श्वफल्क हुआ, जिसके विषय में पहिले कह चुके हैं। श्वफल्क का एक छोटा भाई चित्रक था ॥५-६॥ गान्दिनी के गर्भ से श्वफल्क ने अक्रूर को जन्म दिया ॥७॥ फिर उपमृदु, मृदामृद, विश्वारि, मेजय, गिरिक्षत्र, उपक्षत्र, शतघ्न, अरिमर्दन,

धर्मदृक्, दृष्टधर्म, गन्धभोज, वाह और प्रतिवाह नामक पुत्र तथा सुतारा नाम की एक कन्या हुई ॥८-९॥ अक्रूर के देवदान् और उपदेव नामक दो पुत्र हुए ॥१०॥ चित्ररथ के पृथु, विपृथु आदि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥११॥

कुकुरभजमानशुचिकम्बलबर्हिषाख्यास्तथान्धकस्य चत्वारः पुत्राः ।१२। कुकुराद्धृष्टः तस्माच्च कपोतरोमा ततश्च विलोमा तस्मादपि तुम्बुरुसखोऽभवदनुसञ्ज्ञश्च ।१३। अनोरानकदुन्दुभिः ततश्चाभिजित् अभिजितः पुनर्वसुः ।१४। तस्याप्याहुक आहुको च कन्या ।१५। आहुकस्य देवकोग्रसेनौ द्वौ पुत्रौ ।१६। देववानुपदेवः सहदेवो देवरक्षितो च देवकस्य चत्वारः पुत्राः ।१७। तेषां वृक-देवोपदेवा देवरक्षिता श्रीदेवा शान्तिदेवा सहदेवा देवकी च सप्त भगिन्यः ।१८। ताश्च सर्वा वसुदेव उपयेमे ।१९। उग्रसेनस्यापि कंसन्यगोधसुनामानकाह्वशंकुसभूमि राष्ट्रपालयुद्धसुतुष्टितुष्टिमत्सं-ज्ञाः पुत्रा बभूवुः ।२०। कंसाकंसवतीसुतनुराष्ट्रपालिकाह्वाश्चोग्र-सेनस्य तनूजाः कन्याः ॥२१॥

अन्धक के चार पुत्र थे—कुकुर, भजमान, शुचिकम्बल और बर्हिष ॥१२॥ कुकुर का पुत्र धृष्ट हुआ धृष्ट का पुत्र कपोतरोमा, कपोतरोमा का विलोमा और विलोमा का पुत्र अनु हुआ, जो तुम्बरु का मित्र था ॥१३॥ अनु का पुत्र आनकदुंदुभि, उसका पुत्र अभिजित्, उसका पुत्र पुनर्वसु और उसका पुत्र आहुक तथा पुत्री का नाम आहुकी हुआ ॥१४-१५॥ आहुक के दो पुत्र हुए, देवक और उग्रसेन ॥१६॥ देवक के चार पुत्र हुए, जिनके नाम देववान्, उपदेव, सहदेव और देवरक्षित थे ॥१७॥ इन चारों पुत्रों की सात बहिनें हुईं, जिनके नाम वृकदेवा, उपदेवा, देव-रक्षिता, श्रीदेवा, शांतिदेवा, सहदेवा और देवकी हुए ॥१८॥ इन सबका विवाह वसुदेवजी के साथ हुआ था ॥१९॥ उग्रसेन के नौ पुत्र कंस, न्यग्रोध, सुनाम, आनकाह्न, शकु, सुभूमि, राष्ट्रपाल, युद्धतुष्टि और सतुष्टि-मान् हुए और कंसा, कंसवती, सुतनु एवं राष्ट्रपालिका नाम की पुत्रियाँ हुईं ॥२०-२१॥

भजमानाच्च विदूरथः पुत्रोऽभवत् ॥२२। विदूरथाच्छूरः शूराच्छमी शमिनः प्रतिक्षत्रः तस्मात्स्वयंभोजस्ततश्च हृदिकः।२३। तस्यापि कृतवर्मशतधनुर्देवार्हदेवगर्भायाः पुत्रा बभूवुः ।२४। देवगर्भस्यापि शूरः ।२५। शूरस्यापि मारिषा नाम पत्न्यभवत् ।२६। तस्यां चासौ दशपुत्रानजनमद्वसुदेवपूर्वान ।२७। वसुदेवस्यातमात्रस्यैव तद्गृहे भगवदंशावतारमव्याहतदृष्टया पश्यद्भिर्देवैर्दिव्यानकदुन्दुभयो वादिताः ।२८। ततश्चासावानकदुन्दुभिसंज्ञामवाप ।२९। तस्य च देवभागदेवश्रवोऽष्टककुच्चक्रधत्सधारकसृञ्जयश्यामशमिकगण्डूषसञ्ज्ञा नव भ्रातरोऽभवन् ।३०। पृथा श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवा राजाधिदेवी च वसुदेवादीनां पञ्च भगिन्योऽभवत् ।३१।

भजमान का पुत्र विदूरथ हुआ । विदूरथ का पुत्र शूर, शूर का शमी शमी का प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्र का स्वयंभोज और स्वयभोज का पुत्र हृदिक हुआ ॥२२-२३॥ हृदिक के कृतवर्मा, शतधन्वा, देवार्ह तथा देवगर्भ आदि अनेक पुत्र हुए ॥२४॥ देवगर्भ का पुत्र शूरसेन हुआ ॥२५॥ शूरसेन की पत्नी मारिषा हुई, उसके गर्भ से वसुदेवादि दस पुत्रों ने जन्म लिया ॥२६-२७॥ वसुदेव के उत्पन्न होते ही देवताओं ने, यह जानकर कि इनके पुत्र रूप से भगवान् श्रीहरि का अंशावतार होगा, आनक और दुंदुभि आदि वाद्यों को बजाया ॥ २८ ॥ इसीलिए इन वसुदेवजी को आनक और दुंदुभि भी कहा गया ॥२९॥ इनके नौ भाई थे,जिनके नाम देवभाग, देवश्रवा, अष्टक, ककुच्चक्र, वत्सधारक, सृज्य, श्याम, शमिक और गंडूष थे ॥३०॥ तथा इन सबकी पाँच बहिनें थीं, जिनके पृथा, श्रुतादेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नाम थे ॥३१॥

शूरस्य कुन्तिर्नाम सखाभवत् ॥३२॥ तस्मै चापुत्राय पृथामात्मजां विधिना शूरो दत्तवान् ॥३३॥ तां च पाण्डुरुवाह ।३४। तस्यां च धर्मानिलेन्द्रैयुधिष्ठिरभीमसेनार्जुनाख्यास्त्रयः पुत्रास्समुत्पादिताः ।३५। पूर्वमेवानूढायाञ्च भगवता कानीनः कर्णो नाम पुत्रोजन्यत ।३६। तस्याश्च सपत्नी माद्री नामाभूत् ।३७। तस्यां च नासत्यदस्राभ्यां नकुलसहदेवौ पाण्डोः पुत्रौ जनितौ ॥३८॥

शूरसेन का कुन्ति नामक एक मित्र हुआ ॥३२॥ उसके सन्तान-हीन होने के कारण शूरसेन ने अपनी पृथा नाम की कन्या उन्हें दत्तक-विधि से प्रदान कर दी ॥३३॥ उसी पृथा का विवाह राजा पाण्डु के साथ हुआ ॥३४॥ धर्म, वायु और इन्द्र के द्वारा उसके युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥३५॥ इसी पृथा की कन्या-वस्था में, विवाह से पहिले सूर्य के द्वारा कर्ण नामक पुत्र पहिले ही उत्पन्न हो चुका था ॥३६॥ माद्री नाम की इसकी एक सौत थी ॥३७॥ उसके गर्भ से अश्विनीकुमारों द्वारा नकुल और सहदेव की उत्पत्ति हुई। यह सभी पाण्डु पुत्र कहलाये ॥३८॥

श्रुतदेवां तु वृद्धधर्मा नाम कारूष उपयेमे ।३९। तस्यां च दन्तवक्री नाम महासुरो जज्ञे ॥४०॥ श्रुतकीर्तिमपि केकयराज उपयेमे ॥४१॥ तस्यां च सन्तर्दनादयः कंकेयाः पञ्च पुत्रा बभूबुः ।४२। राजाधिदेव्यामावन्त्यौ विन्दानुविन्दौ जज्ञाते ।४३। श्रुतश्रव-समपि चेदिराजो दमघोषनामोपयेमे ॥४४॥ तस्यां च शिशुपाल-मुत्पादयामास ।४५। स वा पूर्वमप्युदारविक्रमो दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुरभवत् ॥४६॥ यश्च भगवता सकललोकगुरुणा नर-सिंहेन घातितः ।४७। पुनरपि अक्षतवीर्यशौर्यसम्पत्पराक्रमगुणस्स-माक्रान्तमकलत्रैलोक्येश्वरप्रभावो दशाननो नामाभूत् ॥४८॥

शूरसेन को दूसरी पुत्री श्रुतदेवा कारूष नरेश वृद्धधर्मा को विवाही गई ॥३९॥ उससे दन्तक नामक एक महादैत्य की उत्पत्ति हुई ॥४०॥ श्रुतकीर्ति का विवाह कैकयराज के साथ हुआ ॥४१॥ उससे कैकयराज ने सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥४२। अवन्ति नरेश को व्याही गई राजाधिदेवी से विन्द और अनुविन्द की उत्पत्ति हुई ॥४३॥ चेदि-राज दमघोष से श्रुतश्रवा का विवाह हुआ, जिसमें शिशुपाल उत्पन्न हुआ ॥४४-४५॥ यही शिशुपाल अपने पूर्व जन्म मे हिरण्यकशिपु नामक दैत्यराज था, जिसका वध लोकगुरु नृसिंह भगवान में किया था ॥४६-॥४७। फिर यही अक्षयवीर्य, शौर्य, वैभव और पराक्रम आदि से युक्त

और त्रैलोक्यपति इन्द्र के प्रभाव को फीका करने वाला दशशिर का रावण हुआ ।।४८।।

बहुकालोपभुक्तभगवत्सकाशावाप्तशरीरपातोद्भवपुण्यफली भगवता राघवरूपिणा सोऽपि निधनमुपपादितः ।४९। पुनश्चेदिराजस्य दमघोषस्यात्मेज शिशुपालनामाभवत् ।५०। शिशुपालत्वेऽपि भगवतो भूभारावतारशायावतीर्णांशस्य पुण्डरीकनयनाख्यस्योपरि द्वेषानूबन्धमतितराञ्चकार ।५१। भगवता च स निधनमुपनीतस्तत्रैव परमात्मभूते मनस एकाग्रतया सायुज्यमवाप ।५२। भगवान् यदि प्रसन्नो यथाभिलषितं ददाति तथा अप्रन्नोऽपि निघ्नन् दिव्यमनुममं स्थानं प्रयच्छति ।।५३।।

स्वयं भगवान् के द्वारा मारे जाने के पुण्य रूपी फल से बहुत काल तक अनेक भोगों को भोग कर अन्त में भगवान् राम के हाथ से मारा गया ।।४९।। फिर यह चेदिराज दमघोष के यहाँ शिशुपाल नाम से उत्पन्न हुआ ।।५०।। इस जन्म में भी वह पृथिवी का भार हरण करने के लिए प्रकट हुए भगवान् पुण्डरीकाक्ष के प्रति वैर-भाव रखने लगा ।।१५।। अन्त में उन परमात्मा के हीं हाथ से मारा जाने के कारण और उन्हीं में तन्मय चित्त होने के कारण उसे सायुज्य मुक्ति की प्राप्ति हुई ।।५२।। प्रसन्न हुए भगवान् जिस प्रकार अभीष्ट फल प्रदान करते हैं, उसी प्रकार अप्रसन्न होकर वध करते हुए भी वे अपने दिव्यलोक को प्राप्त कराते हैं ।।५३।।

पन्द्रहवां अध्याय

हिरण्यकशिपुत्वे च रावणत्वे च विष्णुना ।
अवाप निहतो भोगानप्राप्यानमरैरपि ।।१
न लयं तत्र तेनैव निहतः स कथं पुनः ।
सम्प्राप्तः शिशुपालत्वे सायुज्यं शाश्वते हरौ ।।२

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्वधर्मभृतां वर ।
कौतूहलपरेणैतत्पृष्टो मे वक्तुमर्हसि ॥३

दत्येश्वरस्य वधायाखिललोकोत्पत्तिस्थितिविनाशकारिणा पूर्वं तनुग्रहण कुर्वता नृसिंहरूपमाविष्कृतम् ।४। तत्र च हिरण्यकशिपोर्विष्णुरयमित्येतन्न मनस्यभूत् ।५। निरतिशयपुण्य-समुद्भूतमेतत्सत्त्वजातमिति ।६। रजउद्रेकप्रेरितैकाग्रमतिस्तद्भा-वनायोगात्ततोऽवाप्तवधहेतुकीं निरतिशयामेवाखिलत्रैलोक्याधि-क्यधारिणीं दशाननत्वे भोगसम्पदमवाप ।७। न तु स तस्मिन्नना-दिनिधने परब्रह्मभूते भगवत्यनालम्बिनि कृके मनसस्तल्लयम-वाप ॥८॥

मैत्रेयजी ने कहा--हे भगवन् ! पहिले हिरण्यकशिपु और फिर रावण होने पर यह भगवान् विष्णु द्वारा मारा जाकर देवताओं को भी दुर्लभ भोगों को प्राप्त होकर भी उनमें लीन नहीं हो सका तो इस जन्म में शिशुपाल होकर उन्हीं भगवान् के द्वारा मारा जाकर वह सायुज्य मोक्ष को कैसे प्राप्त हुआ ॥१-२॥ हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ मुने ! मुझे यह जिज्ञासा हुई है और अत्यन्त कुतूहल के वशीभूत होकर मैंने आपसे पूछा है, कृपया बताइये ॥३॥ पराशरजी ने कहा--पूर्व जन्म में इसके हिरण्य-कशिपु नामक दैत्य शरीर का संहार करने के लिए, सब लोकों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करने वाले भगवान् नृसिंह रूप से प्रकट हुए थे ॥४०॥ उस समय हिरण्यकशियु के चित्त में उनके भगवान् विष्णु होने का भाव उत्पन्न नहीं हुआ था ॥५॥ उसने केवल यही समझा कि यह कोई निरतिशय पुण्यों से उत्पन्न जीव है ॥६॥ रजोगुण के उद्रेक की प्रेरणा वाली उसकी मति दृढ़ होने से उसके हृदय में ईश्वरीय-भाव का योग नहीं था, इसलिए केवल भगवान् के हाथ से मारे जाने के पुण्य से ही उसने रावण होकर सबसे अधिक भोगों को प्राप्त किया ॥७॥ और उन आद्यन्त--रहित भगवान् में तन्मय चित्त न होने के कारण वह उनमें लीन नहीं हो सका ॥८॥

एवं दशाननत्वेऽप्यनङ्गपराधीनतया जानकीसमासक्तचेतसा

भगवता दाशरथिरूपधारिणा हतस्य तद्रूपदर्शनमेवासीत् नायमच्युत इत्यासक्तिर्विपद्यतोऽन्तः करणे मानुषबुद्धिरेव केवलमस्याभूत् ।९। पुनरप्यच्युतविनिपातमात्रफलमखिभूमण्डलश्लाघ्यचेदिराजकुले जन्म अव्याहतैश्वर्यं शिशुपालत्वेऽप्यवाप ।१०। तत्र त्वखिलानामेव स भगवन्नाम्नां त्वकारकारणमभवत् ।।११।। ततश्च तत्कालकृतानां तेषामशेषाणामेवाच्युतनाम्नामनवरतमनेकजन्मसु वर्धितविद्वेषानुबन्धिचित्तो विनिन्दनसंतर्जनादिषूच्चारणमकरोत् ।१२। तच्चरूपमुत्फुल्लपद्मदलामलाक्षमत्युज्ज्वलपीतवस्त्रधार्यमलकिरीटकेयूरहारकटकादिशोभितमुदारचतुर्गाहुशंखच--क्रगदाधरमतिप्ररूढवैरानुभावादटनभोजनस्नानासनशयनादिष्वशेषावस्थान्तरेषु नान्यत्रोपययावस्य चेतसः ।।१३।।

जब वह रावण हुआ, तब जानकीजी के प्रति उसके चित्त में कामासक्ति थी और जब रामरूप धारी भगवान् के हाथ से मारा गया, तब केवल उनके रूप को ही देख सका था और उनमें अच्युत-भाव का अभाव तथा केवल मनुष्य-भाव ही रहा आया ।। ९ ।। परन्तु, भगवान् के हाथ से मारा जाने के कारण ही उसने पृथिवी पर प्रशंसित चेदिराज के वंश में शिशुपाल रूप से उत्पन्न होकर अक्षय ऐश्वर्य को प्राप्त किया ।।१०।। इस जन्म में उसने भगवान् के प्रत्येक नाम में तुच्छ भाव ही रखा। क्योंकि उसका हृदय अनेक जन्मों में उनके प्रति द्वेषयुक्त था, इसलिए वह उनकी निन्दा करता हुआ भी निरन्तर नामोच्चारण करता रहता ।।११-१२।: विकसित कमल दल जैसे नेत्र वाले, शुभ्र पीताम्बर, निर्मल करीट, केयूर, हार तथा कटकादि धारण किये, चार दीर्घबाहु, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान् का वह दिव्य स्वरूप घूमते, स्नान, करते, भोजन करते, बैठते और सोते—आदि सभी अवस्थाओं में उसके चित्त से कभी भी अलग नहीं होता था ।।१३।।

ततस्तमेवाक्रोशे षूच्चारयंस्तमेव हृदयेन धारयन्नात्मवधाय यावद्भगवद्धस्तचक्रांशुमालोज्ज्वजमक्षयतेजस्स्वरूपं ब्रह्मभूतमपगतद्वेषादिदोषं भगवन्तमद्राक्षीत् ।१४। तावच्च भगवच्चक्रेणाशु

व्यापादितस्तत्स्मरणदग्धाखिलाघसञ्चयो भगवातान्तमुपनीतस्तस्मिन्नेव लयमुपययौ ।१५। एतत्तवाखिलंमयाभिहितम् ।१६। अयं हि भगवान् कीर्तितश्च षृस्मृश्च द्वेषानुवन्धेनापि अखिलसुरासुरादिदुर्लभं फलं प्रयच्छति किमुत सम्यग्भक्तिमतामिति ।।१७।।

जब वह उन्हें गाली देता, तब उन्हीं के नाम का उच्चारण और हृदय में उन्हीं का ध्यान करता हुआ संहार हेतु हाथ में चक्र धारण किये, अक्षय तेजस्वी, द्वेषादि दोषों से रहित उन ब्रह्मभूत भगवान् का दर्शन कर रहा था ।।१४।। इसी अवस्था में वह भगवान् के चक्र से मारा गया । उनके स्मरण से उसके सभी पाप भस्म हो गये थे । इस लिए जैसे ही उसकी मृत्यु हुई, वैसे ही वह भगवान् में लीन हो गया ।।१५।। यह रहस्य मैंने यथार्थ रूप से वता दिया है ।।१६।। वे भगवान् तो ऐसे दयालु हैं कि द्वेष पूर्वक कीर्तन-स्मरण करने पर भी, सभी दैत्यों और देवताओं को दुर्लभ फल प्रदान करते हैं, फिर भले प्रकार भक्तिमय पुरुषों का तो कहना ही क्या है ? ।।१७।।

वसुदेवस्य त्वानकदुन्दुभेः पौरवीरोहिणीमदिराभद्रादेवकीप्रमुखा वह्वयः पत्न्योऽभवन् ।१८। वलभद्रशठसारणदुर्मदादीन्पुत्रात्रोहिण्यामानकदुन्दुभिरुत्पादयामास ।१९। वलदेवोऽपि रेवत्यां विशठोल्मुकौ पुत्रावजनयत् ।२०। सार्ष्टिमार्ष्टिशिशुसत्यधृतिप्रमुखाः सारणात्मजाः ।२१। भद्राश्वभदवाहुदुर्दमभूताद्या रोहिण्या कुलजा ।२२। नन्दोपनन्दकृतकाद्या मदिरायास्तनयाः ।२३। भद्रायाश्चोपनिधिगदाद्याः ।२४। वैशाल्यां च कौशिकमेकमेवाजनयत् ।२५।

आनकदुन्दुभेर्देवक्यामपि कीर्तिमत्सुषेणोदायुभद्रसेनऋजुदासभद्रदेवाख्याः षट् पुत्रा जज्ञिरे ।२६। तांश्च सर्वानेव कंमो घातितवान् ।२७।

आनक दुन्दुभि नाम वाले वसुदेवजी की पौरवी, रोहिणी, मदिरा, भद्रा, देवकी नाम की अनेक पत्नियाँ थीं ।।१८।। उनमें रोहिणी से बलभद्र, शठ, सारण, दुर्मद आदि अनेक पुत्र हुए ।।१९।। वलभद्रजी की नीपत्ने रेवती विशठ, उल्मुक नामक दो पुत्रों को जन्म दिया ।।२०।।

सारण के पुत्र सार्ष्टि, मार्ष्टि, शिशु, सत्य, धृति आदि हुए ॥२१॥ रोहिणी के भद्राश्व, भद्रबाहु, दुर्दम और भूतादि के नाम से और भी सन्तानें हुईं ॥२२॥ मदिरा के पुत्र नन्द, उपनन्द और कृतक आदि हुए तथा भद्रा ने उपनिधि और गद आदि अनेक पुत्रों को जन्म दिया ॥२३-२४॥ वैशाली के गर्भ से कौशिक नामक एक ही पुत्र हुआ ॥२५॥ देवकी के कीर्तिमान्, सुषेण, उदायु, भद्रसेन, ऋजुदास और भद्रदेव नामक छः पुत्रों को कंस ने मार डाला ॥२६-२७॥

अनन्तरं च सप्तमं गर्भमर्द्धरात्रे भगवत्प्रहिता योगनिद्रा रोहिण्या जठरमाकृष्य नीतवती ।२८। कर्षणाच्चासावपि संकर्षणाख्यामगमत् ।२९। ततश्च सकलजगन्महातरुमूलभूतो भूतभविष्यदादिसकलसुरासुरमुनिजनमनसामप्यगोचरोऽब्जभवप्रमुखैरनलमुखैः प्रणम्यावनिभारहरणाय प्रसादितो भगवाननादिमध्यनिधनो देवकीगर्भमवततार वासुदेवः ।३०। तत्प्रसादविवर्द्धमानोरुमहिमा च योगनिद्रा नन्दगोपपत्न्या यशोदाया गर्भमधिष्ठितवती ।३१।सुप्रसन्नादित्यचन्द्रादिग्रहमव्यालादिभयं स्वस्थमानसमखिलमेवैतज्जगदपास्ताधममभवत्तस्मिंश्च पुण्डरीकनयने जायमाने ।३२। जातेन च तेनाखिलमेवैतत्सन्मार्गवर्त्ति जगदक्रियत ।३३।

फिर भगवान् द्वारा प्रेरित योगमाया से अर्द्ध रात्रि के समय देवकी के सातवें गर्भ को खींचकर रोहिणी की कोख में स्थापित कर दिया ॥२८॥ इस गर्भ का आकर्षण होने के कारण ही संकर्षण नाम पड़ा ॥२९॥ फिर इस संसार वृक्ष के मूल, भूत-भविष्यत-वर्तमान के सभी देवताओं दैत्यों और मुनियों की वृद्धि के लिये अगम्य, ब्रह्मा और अग्नि आदि देवताओं द्वारा पृथिवी का भार हरण करने के लिए प्रसन्न किए हुए, आदि, अन्त, मध्य से रहित भगवान् विष्णु ने देवकी के गर्भ से वसुदेव रूप में अवतार धारण किया और उन्हीं के प्रभाव से योगनिद्रा नन्द-पत्नी यशोदा के गर्भ में अवस्थित हुई ॥३०-३१॥ जब भगवान् प्रकटे, तब सम्पूर्ण विश्व प्रसन्न हुए, आदित्य और चन्द्रमा आदि ग्रहों से परिपूर्ण, सर्पादि के भय से रहित, अधर्मादि दोषों से शून्य तथा स्वस्थ

हृदय हो गया ॥३२॥ उन्होंने अवतीर्ण होकर इस सम्पूर्ण विश्व को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी ॥३३॥

भगवतोऽप्यत्र मर्त्यलोकेऽदतीर्णस्य षोडशसहस्राण्यकोत्तर-शताधिकानि भार्याणामभवन् ।३४। तासां च रुक्मिणीसत्यभामा-जाम्बवतीचारुहासिनीप्रमुखा ह्यष्टौ पत्न्यः प्रधाना बभूवुः ।३५। तासु चाष्टावयुतानि लक्षं च पुत्राणां भगवानखिलमूर्तिरनादिमान-जनयत् ।३६। तेषां च प्रद्युम्नचारुदेष्णसाम्बादयः त्रयोदश प्रधानाः ।३७। प्रद्युम्नोऽपि रुक्मिणस्तनयां रुक्मवतीं नामोपयेमे ।३८। तस्यामनिरुद्धो जज्ञे ।३९। अनिरुद्धोऽपि रुक्मिण एव पौत्रीं सुभद्रां नामोपयेमे ।४०। तस्यामस्य वज्रो जज्ञे ।४१। वज्रस्य प्रतिबाहुस्त-स्यापि सुचारुः ।४२। एवमनेकशतसहस्रपुरुषसंख्यस्य यदुकुलस्य पुत्रसंख्या वर्षशतैरपि वक्तुं न शक्यते ।४३। यतो हि श्लोकावि-मावत्र चरितार्थौ ।४४।

मृत्यु लोक में प्रकट भगवान् वासुदेव की सोलह हजार एक सौ एक रानियाँ हुईं ॥३४॥ उनमें रुक्मिणी, सत्यभामा. जाम्बवती, चारुहासिनी आदि आठ रानियाँ प्रमुख थीं ॥३५॥ उन सब रानियों के उदर से भगवान् ने एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥३६॥ उनमें प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, साम्ब आदि तेरह पुत्र प्रमुख माने जोते थे ॥३७॥ प्रद्युम्न का विवाह रुक्मवती से हुआ ॥३८॥ रुक्मवती से अनिरुद्ध उत्पन्न हुआ ॥३९॥ अनिरुद्ध का विवाह रुक्मी की पौत्री सुभद्रा से हुआ ॥४०॥ उससे वज्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४१॥ वज्र का पुत्र प्रतिबाहु और उसका पुत्र सुचारु हुआ ॥४२॥ इस प्रकार यह यदुवंश सैकड़ों हजार पुरुष संख्यक था, जिसकी गणना सौ वर्षों में भी पूर्ण नहीं हो सकती ॥४३॥ इस विषय में यह दो श्लोक कहे जाते हैं ॥४४॥

तिस्रः कोठ्यस्सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ।
कुमाराणां गृहाचार्याश्चापयोगेषु ये रताः ॥४५
सख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्ममाम् ।
यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते सदाहुकः ॥४६

देवासुरे हता ये तु दैत्येयास्सुमहाबलाः ।
उत्पन्नास्ते मनुष्येषु जनोपद्रवकारिणः ॥४७
तेषामुत्सादनार्थाय भुवि देवा यदोः कुले ।
अवतीर्णाः कुलशतं यत्रैकाभ्यधिकं द्विज ॥४८
विष्णुस्तेषां प्रमाणे च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः ।
निदेशस्थायिनस्तस्य ववृधुस्सर्वयादवः ॥४९
इति प्रसूतिं वृष्णीनां यश्शृणोति नरः सदा ।
स सर्वैः पातकैर्मुक्तो विष्णुलोकं प्रपद्यते ॥५०

यादव कुमारों को धनुर्विद्या सिखाने वाले गृहाचार्य तीन करोड़ अट्ठासी लाख थे, तो फिर उन यादवों की गणना करने में कौन समर्थ है, जिन लाखों करोड़ों के सहित उग्रसेन सदा स्थित रहते थे ॥४५-४६॥ देवासुर युद्ध में जो महाबली दैत्य मारे गये, वे मृत्युलोक में उत्पन्न होकर सभी उपद्रवकारी राजागण हुए ॥४७॥ उनका संहार करने के लिए देवताओं ने एक सौ एक वंश वाले यदुकुल में जन्म धारण किया ॥४८॥ उनका स्वामित्व और व्यवस्था के अधिकार पर भगवान् विष्णु ही अधिष्ठित हुए और उन्हीं की आज्ञा में चलते हुए वे समस्त यादवगण सब प्रकार की वृद्धि को प्राप्त हुए ॥४९॥ इस प्रकार से वृष्णिवंश की उत्पत्ति के वृत्तान्त को जो श्रवण करता है, वह अवश्य ही सब पापों से छूट जाता है और उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है ॥५०॥

सोलहवां अध्याय

इत्येष समासतस्ते यदोर्वंशः कथितः ।१। अथ दुर्वसोर्वंशमवधारय ।२। दुर्वसोर्वह्निरात्मजः वह्नेर्भार्गो भार्गाद्भानुस्ततश्च त्रयीसानुस्तस्माच्च करन्दमस्तस्यापि मरुत्तः ।३। सोऽनपत्योऽभवत् ।४। ततश्च पौरवं दुष्यन्तं पुत्रमकल्पयत् ।५। एवं ययातिशपात्तद्वंशः पौरवमेव वंशं समाश्रितवान् ।६।

पराशरजी ने कहा—इस प्रकार संक्षिप्त रूप से मैंने तुम्हें यदुवंश

का वृत्तान्त सुनाया ॥१॥ अब दुर्वसु के वंश को सुनो ॥२॥ दुर्वसु का पुत्र वह्नि हुआ, उसका पुत्र भार्ग और भार्ग का भानु हुआ। भानु का त्रयीमान्, उसका करन्दम और करन्दम का पुत्र मरुत्त हुआ ॥३॥ मरुत्त संतानहीन था, अतः उसने पुरुवंशोत्पन्न दुष्यन्त को पुत्र रूप से रखा, इस प्रकार ययाति के शाप के कारण दुर्वसु का वंश, पुरुवंश के रूप में चला ॥४-६॥

सत्रहवां अध्याय

द्रुह्योस्तु तनयो बभ्रूः ।१। बभ्रोस्सेतुः ।२। सेतुत्र आरब्धनामा ।३। आरब्धस्यात्मजो गान्धारो गान्धारस्य धर्मो धर्माद् घृत घृताद् दुर्दमस्ततः प्रचेताः ।४। प्रचेतसः पुत्रश्शधर्मो बहुलानां म्लेच्छानामुदीच्यानामाधिपत्यमकरोत् ।५।

पराशरजी बोले—द्रुह्यु का पुत्र बभ्रु और बभ्रु का सेतु, सेतु का आरब्ध, आरब्ध का गांधार, गांधार का धर्म, धर्म का घृत, घृत का दुर्दम, दुर्दम का प्रचेता और प्रचेता का पुत्र शतधर्म हुआ, जो बाद में होने वाले म्लेच्छों का अधिपति हो गया ॥१-५॥

अठारहवां अध्याय

ययातेश्चतुर्थपुत्रस्यानोस्सभानलक्षुः परमेषुसंज्ञास्त्रयः पुत्रा बभूवुः ।१। सभानलपुत्रः कालानलः ।२। कालानलात्सृञ्जयः ।३। सृञ्जयात् पुरञ्जयः ।४। पुरञ्जयाज्जमेजयः ।५। तस्मान्महाशालः ।६। तस्माच्च महामनाः ।७। तस्मादुशीनरतित क्षूद्रौ पुत्रावुत्पन्नौ ।८।

श्री पराशरजी ने कहा—ययातु का जो चौथा पुत्र अनु था, उसके तीन पुत्र हुए—सभानल, चक्षु और परमेषु। सभानल का पुत्र कालानल हुआ ॥१-२॥ कालानल का पुत्र सृञ्जय, सृञ्जय का पुरंजय, पुरंजय का जनमेमय, जनमेजय का महाशाल, महाशाल का महामना के दो पुत्र

हुए—उशीनर और तितिक्षु ॥३-८॥

उशीनरस्यापि शिबिनृगनरकृमिवर्माख्याः पञ्च पुत्रा बभूवुः ।९। पृषदर्भसुवीरकेकयमद्रकाश्चत्वारशिशबिपुत्राः ।१०। तितक्षोरपि रुशद्रथः पुत्रोऽभूत् ।११। तस्यापि हेमो हेमस्यापि सुतपाःसुतपसश्च बलिः ।१२। यस्य क्षेत्रे दीर्घतमसाङ्गवङ्गकलिङ्गसुह्मपौण्ड्राख्यं वालेयं क्षत्रमजन्यत ।१३। तन्नामसन्ततिसंज्ञाश्च पञ्चविषयाबभूवुः ।१४। अङ्गादनपानस्ततो दिविरथस्तस्माद्धर्मरथः ।१५। ततश्चित्र-रथो रोमपादसंज्ञ ।१६। यस्य दशरथो मित्रं जज्ञे ।१७। यस्याज-पुत्रो दशरथश्शान्तां नाम कन्यामनपत्स्य दुहितृत्वे युयोज ।१८।

उशीनर के पाँच पुत्र हुए, जिनके नाम शिवि, नृग, नर, कृमि और वर्म थे ॥९॥ शिवि के पृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक नामक चार पुत्र हुए ॥१०॥ तितिक्षु का पुत्र रुशद्रथ हुआ, उसका हेम, हेम का सुतपा और सुतपा का बलि हुआ ॥११-१२॥ बलि की रानी के उदर में दीर्घतमा मुनि ने गर्भ स्थापित कर अङ्ग, वङ्ग, कलिंग, सुह्य और पौण्ड्र नामक पाँच पुत्र उत्पन्न किए ॥१३॥ इनके नामों पर पांच देशों का नाम पड़ा ॥१४॥ अंग का पुत्र अनपान, अनपान का दिविरथ, दिविरथ का धर्मरथ और धर्मरथ का पुत्र चित्ररथ हुआ, जिसको रोमपाद भी कहा गया । रोमपाद के मित्र अज-पुत्र दशरथ ने रोमपाद के निःसंतान होने के कारण उसे अपनी कन्या शान्ता गोद दे दी ॥१५-१८॥

रोमपादाच्चतुरङ्गस्तस्मात्पृथुलाक्षः ।१९। ततश्चम्पो यश्चम्पां निवेशयामास ।२०। चम्पस्य हर्यङ्गोनामात्मजोऽभूत् ।२१। हर्यङ्गा-द्भद्ररथो भद्ररथाद्बृहद्रथो बृहद्रथाद्बृहत्कर्मा बृहत्कर्मणश्च बृहद्भानुस्तस्तस्माच्च बृहन्मना बृहन्मनसो जयद्रथ, ।२२। जयद्रथो ब्रह्मक्षत्रान्तरालसम्भूत्यां पत्न्यां विजयं नाम पुत्रमजीजनत् ।२३। विजयश्च धृतिं पुत्रमवाप ।२४। तस्यापि धृतव्रतः पुत्रोऽभूत् ।२५। धृतव्रतात्सत्यकर्मा ।२६। सत्यकर्मणस्त्वतिरथः ।२७। यो गङ्गा-ङ्गतो मञ्जूषागतं पृथापविद्धं कर्णं पुत्रमवाप ।२८। कर्णाद्वृष-सेनः इत्येतदन्ता अङ्गवंश्याः ।२९। अतश्च पुरुवंशं श्रोतुमर्हसि ।३०।

फिर रोमपाद का पुत्र चतुरंग और उसका पुत्र पृथुलाक्ष हुआ ॥१९॥ पृथुलाक्ष का पुत्र चम्प हुआ, जिसने चम्पापुरी को बसाया ॥२०॥ चम्प का पुत्र हर्यंग हुआ। हर्यंग का भद्ररथ, भद्ररथ का बृहद्रथ, बृहद्रथ का बृहत्कर्मा, बृहत्कर्मा का बृहद्भानु बृहद्भानु का बृहन्मना और बृहन्मना का पुत्र जयद्रथ हुआ ॥२१-२२॥ जयद्रथ की उत्पत्ति ब्राह्मण और क्षत्रिय के संसर्ग से हुई ॥२३॥ विजय का पुत्र धृति था, उसका पुत्र धृतव्रत हुआ ॥२४-२५॥ धृतव्रत का पुत्र सत्यकर्मा और सत्यकर्मा का पुत्र अतिरथ हुआ, जिसने पृथा द्वारा प्रवाहित किये कर्ण को गंगा-स्नान के समय पुत्र रूप में प्राप्त किया था। कर्ण का पुत्र वृषसेन हुआ। अंग-वंश का वर्णन यहाँ पूर्ण हो गया। अब पुरुवंश का वर्णन सुनो ॥२६—३०॥

उन्नीसवां अध्याय

पुरोर्जनमेजयस्तस्यापि प्रचिन्वान् प्रचिन्वतः प्रवीरः प्रवीरान्मनस्युर्मनस्योश्चाभयदस्तस्यापि सुद्युस्सुद्योर्बहुगतस्तस्यापि संयातिस्संयातेरहंयातिस्ततो रौद्राश्वः ।१। ऋतेषुकक्षेषुस्थण्डिलेषुकृतेषुजलेषुधर्मेषुधृतेषुस्थलेषुसन्नतेषुवनेपुनामानो रोद्राश्वस्य दश पुत्रा बभूवुः ।२। ऋतेषोरन्तिनारः पुत्रोऽभूत् ।३। सुमतिमप्रतिरथं ध्रुवं चाप्यन्तिनारः पुत्रानवाप ।४। अप्रतिरथस्य कण्वः पुत्रोऽभूत् ।५। तस्यापि मेधातिथिः ।६। यतः काण्वायना द्विजा बभूवुः ।७। अप्रतिरथस्यापरः पुत्रोऽभूदैलीनः ।८। ऐलीनस्य दुष्यन्ताद्याश्चत्वारः पुत्रा बभूवुः ।९। दुष्यन्ताच्चक्रवर्ती भरतोऽभूत् ।१०। यन्नामहेतुर्देवैश्श्लोको गीयते ।११।

मात्रा भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ।
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमस्थाश्शकुन्तलाम् ॥१२
रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ।
त्वं शास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥१३

पराशरजी ने कहा—पुरु का पुत्र जनमेजय, जनमेजय का प्रचिन्वान् उसका प्रवीर, प्रवीर का मनस्यु, मनस्यु का अभयद, अभय का सुद्यु-सुद्यु का वहुगत, बहुगत का संयाति सयाति का अहयाति और अहंयाति का रौद्राश्व हुआ ॥१॥ रौद्राश्व के दस पुत्र हुए—ऋतेषु, कक्षेषु, स्थण्डिलेषु. कृतेषु, जलेषु, धर्मेषु, धृतेषु, स्थलेयु, सन्नतेषु और वनेषु ॥२॥ ऋतेषु का पुत्र अन्तिनार और अन्तिनार के सुमति, अप्रतिरथ और ध्रुव नामक तीन पुत्र हुए ॥३-४॥ इनमें से अप्रतिरथ के पुत्र का नाम कण्व था, जिससे मेधातिथि उत्पन्न हुआ। इसी की सन्तान काण्वायन ब्राह्मण हुए ॥५-७॥ अप्रतिरथ का द्वितीय पुत्र ऐलीन हुआ, जिसके दुष्यन्तादि चार पुत्र हुए ॥८-९॥ दुष्यन्त का पुत्र भरत चक्रवर्ती राजा हुआ, जिसके विषय में देवताओं ने गाया था ॥१०-११॥ माता के चर्म-धौंकनी के समान होने के कारण पुत्र पर पिता का ही अधिकार. होता है। पुत्र जिसके द्वारा जन्म पाता है, उसी पिता का रूप होता है। हे दुष्यन्त ! शकुन्तला का तिरस्कार न कर इस पुत्र का पालन करो। क्योंकि अपने वीर्य से उत्पन्न हुआ पुत्र ही पिता को यमालय से निकालता है। शकुन्तला का कथन सत्य है कि इस पुत्र का आधान तुम्हीं ने किया है ॥१२-१३॥

भरतस्य पत्नीत्रये नव पुत्रा बभूवुः ।१४। नैते ममानुरूपा इत्यभिहितास्तन्मातरः परित्यागभयात्तत्पुत्राञ्जघ्नुः ॥१५॥ ततोऽस्य वितथे पुत्रजन्मनि पुत्रार्थिनो मरुत्सोमयाजिनो दीर्घतमसः पार्ष्ण्यपास्ताद्बृहस्पतिवीर्यादुतथ्यपत्न्यां ममतायां समुत्पन्नो भरद्वाजाख्यः पुत्रो मरुद्भिर्दत्तः ।१६। तस्यापि नामनिर्वचनश्लोकः पठ्यते ।१७।

मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते ।
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥१८

रत की तीन भार्याएँ थीं, उन्होंने नौ पुत्र उत्पन्न किए ॥१४॥ भरत ने जब उन्हें अपने अनुरूप न बताया तो उनकी माताओं ने अपने परित्याग किए जाने की आशंका से, उन पुत्रों की हत्या कर दी ॥१५॥

इस प्रकार पुत्रोत्पत्ति के व्यर्थ होने पर पुत्रकामी भरत ने मरुत्सोम नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस यज्ञ की समाप्ति पर मरुद्गण ने भरत को भरद्वाज नामक एक शिशु प्रदान किया। यह बालक बृहस्पति के वीर्य से उतथ्य-पत्नी ममता के गर्भ से उत्पन्न हुआ था ॥१६॥ उसके नामकरण के विषय में एक श्लोक प्रचलित है ॥१७॥ हे मूढ़े ! यह पुत्र द्वाज अर्थात् हम दोनों से उत्पन्न हुआ है, इसलिए तू इसका भरण कर। इसके उत्तर में ममता ने कहा था हे बृहस्पते ! यह पुत्र द्वाज है, इसका भरण तुम करो। इस प्रकार विवाद करते हुए माता-पिताओं के चले जाने पर भरण और द्वाज शब्दों से उसका नाम भरद्वाज हुआ ॥१८॥

भरद्वाजस्स वितथे पुत्रजन्मनि मरुद्भिर्दत्तः ततो वितथ-संज्ञामवाप ।१९। वितथस्यापि मन्युः पुत्रोऽभवत् ।२०। बृहत्क्षत्र-महावीर्यनरगर्गा अभवन्मत्युपुत्राः।२१।नरस्यसंकृतिस्संकृतेर्गुरुप्रीति रन्तिदेवौ ।२२। गर्गाच्छिनिः ततश्च गार्ग्याश्शैन्याः क्षत्रोपेता द्विजातयो बभूवुः ।२३। महावीर्याच्च दुरुक्षयो नाम पुत्रोऽभवत् । ।२४। तस्य त्रय्यारुणिः पुष्करिण्यो कपिश्च पुत्रत्रयमभूत् ।२५। तच्च पुत्रत्रितयमपि पश्चाद्विप्रतामुपजगाम ।२६। बृहत्क्षत्रस्य सुहोत्रः ।२७। सुहोत्राद्धस्ती य इदं हस्तिनापुरमावासयासया-मास ।२८।

पुत्रोत्पत्ति के निष्फल होने पर मरुद्गण ने भरत को भरद्वाज प्रदान किया, इसलिए उसे वितथ भी कहा गया ॥१९॥ वितथ का पुत्र मन्यु था, जिसके बृहत्क्षत्र, महावीर्य नर और गर्गादि अनेक पुत्र हुए ॥२०-२१॥ नर का पुत्र सकृति हुआ, संकृति के दो पुत्र गुरुप्रीति और रन्तिदेव हुए ॥२२॥ गर्ग से शिनि हुआ, उससे गार्ग्य और शैन्य नामक प्रसिद्ध क्षत्रोपेत ब्राह्मण उत्पन्न हुए ॥२३॥ महावीर्य के पुत्र का नाम दुरुक्षय हुआ ॥२४॥ दुरुक्षय के त्रय्यारुणि पुष्करिण्य और कपि नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥२५॥ कालान्तर में यह तीनों, ब्राह्मण हो गये ॥२६॥ बृहत्क्षत्र का पुत्र सुहोत्र हुआ। सुहोत्र के पुत्र हस्ती ने ही हस्तिनापुर नगर बसाया ॥२७-२८॥

अजमीढद्विजमीढपुरुमीढास्त्रयो हस्तिनस्तनयाः ।२९। अजमीढात्कण्वः ।३०। कण्वान्मेधातिथिः ।३१। यतः काण्वायना द्विजाः ।३२। अजमीढस्यान्यः पुत्रो बृहदिषुः ।३३। बृहदिषोर्बृहद्धनुर्बृहद्धनुषश्च बृहत्कर्मा ततश्च जयद्रथस्तस्मादपि विश्वजित्।३४।ततश्च सेनजित् ।३५। रुचिराश्वकाश्यदृढहनुवत्सहनुसशासेनजितः पुत्राः ।३६। रुचिराश्वपुत्रः पृथुसेनः पृथुसेनात्पारः।३७। पारान्नीलः।३८। तस्यैकशतं पुत्राणाम् ।३९। तेषां प्रधानः काम्पिल्याधिपतिस्समरः ।४०। समरस्यापि पारसुपारसदश्वास्त्रयः पुत्राः ।।४१।। सुपारात्पृथुः पृथोस्सुकृतिस्ततो विभ्राजः ।४२। तस्माच्चाणुहः ।४३। यश्शुकदुहितर कीर्ति नामोपयेमे ।४४। अणुहाद्ब्रह्मदत्तः ।४५। ततश्च विष्वक्सेनस्तस्मादुक्सेनः ।४६। भल्लाभस्तस्य चात्मजः ।४७।

हस्ती के अजमीढ़ और पुरमीढ़ नामक तीन पुत्र हुए । अजमीढ का कण्व और कण्व का पुत्र मेधातिथि हुआ, जिससे काण्वायन ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई ।।२९-३२।। अजमीढ का द्वितीय पुत्र बृहदिषु हुआ ।।३३।। उसका पुत्र बृहद्धनु बृहद्धनु का बृहत्कर्मा, बृहत्कर्मा का जयद्रथ, जयद्रथ का विश्वजित्, विश्वजित् का सेनजित् हुआ । सेनजित् के चार पुत्र हुए रुचिराश्व, काश्व, दृढ़हनु और वत्सहनु ।।३४-३६।। रुचिराश्व का पृथुसेन पृथुसेन का पार, पार का नील हुआ । इसी नील के सौ पुत्र हुए, जिनमें काम्पिल्ताधिपति समर प्रमुख था ।।३७-४०।। समर के तीन पुत्र थे—पार, सुपार और सदश्व ।।४१।। सुपार का पुत्र पृथु, पृथु का सुकृति, सुकृति का विभ्राज और विभ्राज का अणुह नामक जो पुत्र हुआ, उसने शुकपुत्री कीर्ति का पाणिग्रहण किया था ।।४२-४४।। अणुह का पुत्र ब्रह्मदत्त हुआ, जिससे विष्वक्सेन, विष्वक्सेन से उदक्सेन हुआ । उदक्सेन का पुत्र भल्लाभ हुआ ।।४५-४७।।

द्विजमीढस्य तु यवीनरसंज्ञः पुत्रः।४८।तस्यापि धृतिमांस्तस्माच्च सत्यधृतिस्ततश्च दृढनेमिस्तस्माचच सुपार्श्वस्ततस्सुमतिस्ततश्च

सन्नतिमान् ।४६। सन्नतिमतः कृतः पुत्रोऽभूत् ।५०। यं हिरण्यनाभो योगमध्यापयामास ।५१। यश्चतुर्विंशतिं प्राच्यसामगानां संहिताश्चकार ।५२। कृताच्चोग्रायुधः ।५३। येन प्राचुर्येण नीपक्षयः कृतः ।५४। उग्रायुधात्क्षेम्यः क्षेम्यात्सुधीरस्तस्माद्रिपुञ्जयस्तस्माच्च बहुरथ इत्येते पौरवाः ।५५। अजमीढस्य नलिनी नाम पत्नी तस्यां नीलसंज्ञः पुत्रोऽभवत् ।५६। तस्मादपि शान्तिः शान्तेस्सुशांतिस्सुमुद्गलसृञ्जयबृहदिषुयवीनरकाम्पिल्यसंज्ञाः पञ्चानामेव तेषां विषयाणां रक्षणायालमेते मत्पुत्रा इति पित्राभिहिताः पाञ्चालाः ।५६।

द्विजमीढ का पुत्र यवीनर हुआ उसका पुत्र धृतिमान्, धृतिमान् का सत्यधृति, सत्यधृति का दृढ़नेमि, दृढ़नेमि का सुपार्श्व, सुपार्श्व का सुमति सुमति, का सन्नतिमान् और सन्नितमान् का पुत्र कृत हुआ। हिरण्यनाभ ने इस कृत को योग विद्या सिखाई और फिर इसने प्राच्य सामग श्रुतियों की चौबीस संहिताओं की रचना की ॥४८-५२॥ कृत का पुत्र उग्रायुध हुआ, जिसने अनेकों नीपवंशीय क्षत्रियों का संहार किया ॥५३-५४॥ उग्रायुध का पुत्र क्षेम्य, क्षेम्य का सुधीर, सुधीर का रिपुञ्जय और रिपुञ्जय का बहुरथ हुआ, यह सब राजाएँ पुरुवंशीय हुए ।'५५॥ अजमीढ़ की नलिनी नाम की पत्नी से नील हुआ ॥५६॥ नील का पुत्र शांति, शांति का सुशांति, सुशान्ति का पुरञ्जय, पुरञ्जय का ऋक्ष और ऋक्ष का पुत्र हर्यश्व हुआ ॥५७-५८॥ हर्यश्व के पाँच पुत्र हुए मुद्गल, सृञ्जय, बृहदिषु, यवीनर और काम्पिल्य। पिता ने उन पुत्रों को अपने आधीन पाँचों देशों की रक्षा में समर्थ बताया, इस लिए वे 'पांचाल' कहे जाने लगे ॥५६॥

मुद्गलाच्च मौद्गल्याः क्षतोपेता द्विजातयो बभूवुः ।६०। मुद्गलाद्बृहदश्वः ।६१। बृहदश्वाद्दिवोदासोऽहल्या च मिथुनमभूत् ।६२। शरद्वतश्चाहल्यायां शतानंदोऽभवत् ।६३। शतानंदात्सत्यधृतिर्धनुर्वेदान्तगो जज्ञे ।६४। सत्यधृतेरप्सरसमुर्वशीं दृष्ट्वा रेत-

स्कंनंशरस्तम्वे पापत ।६५। तच्च द्विधागतमपत्यद्वय कुमारः कन्या चाभवत् ।६६। तौ च मृगयामुपयामश्शांतनुर्दृष्ट्वा कृपया जग्राह ।६७। ततः कुमारः कृपः कन्याच्चाश्वत्थाम्नो जननी कृपी द्रोणाचायस्य पत्न्यभवत् ।६८।

मुद्‌गल से मौद्‌गल नामक क्षत्रोपेत ब्राह्मण उत्पन्न हुए ।।६०।। मुद्‌गल का वृहदश्व नामक जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उससे देवोदास नामक एक पुत्र और अहिल्या नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई ।।६१-६२।। उसी अहिल्या के गर्भ से गौतम द्वारा शतानन्द उत्पन्न हुआ ।।६३।। उस शतानन्द का पुत्र धनुर्वेद का पारदर्शी सत्यधृति नामक पुत्र हुआ ।।६४।। एक बार सत्यधृति ने अप्सराश्रेष्ठ उर्वशी को देखा तो उसके प्रति कामासक्त होने से उनका वीर्य स्खलित होकर सरकण्डे पर जा गिरा ।।६५।। उसके वहाँ दो भागों में विभक्त होने पर पुत्र-पुत्री रूप दो सन्तानें उत्पन्न हो गईं ।।६६।। राजा शान्तनु जब मृगया के लिए वन में गये थे, तब उन्हें अनाथावस्था में देखकर कृपापूर्वक अपने घर ले आये, इससे पुत्र का नाम 'कृप' और कन्या का नाम 'कृपी' रखा गया, वही बाद में अश्वत्थामा को जन्म देने वाली, द्रोणाचार्य की भार्या हुई ।।६७-६८।।

दिवोदासस्य पुत्रो मित्रायुः ।६९। मित्रायोश्च्ववनो नाम राजा ।।७०।। च्यवनात्सुदासः सुदासात्सौदासः सौदासात्सहदेवस्तस्यापि सोमकः ।७१। सोमकाज्जन्तुः पुत्रशतज्येष्ठोऽभवत् ।७२। तेषां यवीयान् पृषतः पृषताद्द्रुपदस्तस्माच्च धृष्टद्युम्नस्तनो धृष्टकेतुः ।७३।

अजमीढस्यान्य ऋक्षनामा पुत्रोऽभवत्।७।तस्य सवरणः ।७५। संवरणात्कुरुः ।७६। य इदं धमक्षत्रं चकार ।७७। सुधनुर्जह्नु परीक्षित्प्रमुखाः करो पुत्रा बभूवुः ।७८। सुधनुषः पुत्रस्सुहोत्रस्तस्माच्च्यवनश्यवनात् कृतकः ।७९। ततश्चोपरिचरो बसुः ।८०। बृहद्रथप्रत्यग्रकुशाम्बुकुचेलामात्स्यप्रमुखा वसोः पुत्रास्सप्ताजायन्त ।८१। बृद्रहथात्कुशाग्रः कुशाग्राद्वृषभो वृषभात् पुष्पवान् तस्मा-

त्सत्यहितस्तस्मात्सुधन्वा तस्य च जतुः ।८२। बृहद्रथाच्चान्यश्शकलद्वयजन्मा जरया संहितो जरासंधनामा ।८३। तस्मात्सहदेवस्सहदेवात्सोमपस्ततश्च श्रुतिश्रवाः।८४। इत्येते मया मागधा भूपाला कथिताः ।८५।

दिवोदास का पुत्र मित्रायु था, जिसका पुत्र राजा च्यवन हुआ ॥६९-७०॥ च्यवन का पुत्र सुदास, सुदास का सौदास, सौदास का सहदेव, और सहदेव का सोमक हुआ इस सोमक के सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम जन्तु और सबसे छोटे पुत्र का नाम पृषत था। पृषत का पुत्र द्रुपद हुआ। द्रुपद का धृष्टद्युम्न और धृष्टद्युम्न का पुत्र धृष्टकेतु हुआ ॥७१-७३॥ आढमीक के ऋक्ष नामक तीसरे पुत्र का संवरण नामक तनय हुआ। संवरण का पुत्र कुरु हुआ, जिसने धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र स्थापित किया ॥७४-७७॥ कुरु के सुधनु, जह्नु और परीक्षित आदि अनेक पुत्र हुए ॥७८॥ सुधनु का पुत्र सुहोत्र हुआ। सुहोत्र का च्यवन, उसका कृतक और उसका पुत्र उपरिचर वसु हुआ ॥७९-८०॥ वसु के बृहद्रथ, प्रत्यग्र, कुशाम्बु, कुचेल, मात्स्य आदि सात पुत्र हुए ॥८१॥ इनमें से बृहद्रथ का कुशाग्र हुआ। कुशाग्र का वृषभ, वृषभ का पुष्पवान्, पुष्पवान् का सत्यहित, सत्यहित का सुधन्वा और सुधन्वा का पुत्र जतु हुआ ॥८२॥ उसी बृहद्रथ के एक पुत्र और हुआ था जो दो खण्डों में था व जरा द्वारा जोड़ देने पर वह जरासन्ध के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥८३॥ उस जरासन्ध का पुत्र सहदेव हुआ, सहदेव का सोमप और सोमप का पुत्र श्रुतिश्रवा हुआ ॥८४॥ इस प्रकार मागध भूपालों का यह वृत्तान्त मैंने तुमसे कह दिया है ॥८५॥

बीसवां अध्याय

परीक्षितो जनमेजयश्रुतसेनोग्रसेनभीमसेनाश्चत्वारःपुत्राः ।१। जह्नोस्त सुरथो नामात्मजो बभूव ।२। तस्यापि विदूरथः ।३। तस्मात्सार्वभौमस्सार्वभौमाज्जयत्सेनस्तस्मादाराधितस्ततश्चायुतायुरयुतायोरक्रोधनः ।४। तस्माद्देवातिथिः ।५। ततश्च ऋक्षोऽन्यो-

ऽभवत ।६। ऋक्षाद्भीमसेनस्ततश्च दिलीपः ।७। दिलीपात् प्रतीपः ।८।

तस्यापि देवापिशांतनुबाह्लीकसंज्ञास्त्रयः पुत्रा बभूवुः ।९। देवापिर्बाल एवारण्यं विवेश ।१०। शांतनुस्तु महीपालोऽभूत् ।११। अयं च तस्य श्लोकः पृथिव्यां गीयते ।१२।

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ।
शांतिं चाप्नोति येनाग्र्यां कर्मणा तेन शांतनुः ॥१३

श्री पराशरजी ने कहा—परीक्षित के चार पुत्र हुए, जिनके नाम जनमेजय, श्रुतसेन और भीमसेन थे ॥१॥ जन्हु के सुरथ नाम का एक ही पुत्र था ॥२॥ सुरथ का पुत्र विदूरथ हुआ। विदूरथ का पुत्र सार्वभौम, सार्वभौम का जयत्सेन, जयत्सेन का आराधित, आराधित का अयुतायु, अयुतायु का अक्रोधन हुआ ॥३४॥ अक्रोधन का पुत्र देवातिथि और देवातिथि का पुत्र द्वितीय ऋक्ष था ॥५-६॥ ऋक्ष का पुत्र भीमसेन, भीमसेन का दिलीप और दिलीप का पुत्र प्रतीप हुआ ॥७-८॥ प्रतीप के तीन पुत्र देवापि, शान्तनु और बाह्लीक हुए ॥९॥ इससे से देवापि के बाल्यकाल में वनवासी हो जाने के कारण शान्तनु राजा हुआ ॥१०-११॥ उसके विषय में पृथिवी पर यह श्लोक गाया जाता है—यह जिस जिसको छू लेते वही-वही वृद्ध पुरुष भी युवावस्था को प्राप्त हो जाते थे और अन्य सभी प्राणी उनके स्पर्श को पाकर महान् शान्ति को प्राप्त होते थे, इसीलिए वे 'शान्तनु' नाम से विख्यात हुए थे ॥१२-१३॥

तस्य च शान्तनो राष्ट्रे द्वादशवर्षाणि देवो नववर्ष ।१४। ततश्चाशेषराष्ट्रविनाशमवेक्ष्यासौ राजा ब्राह्मणानपृच्छत् कस्मादस्माकं राष्ट्रे देवो न वर्षति को ममापराध इति ।१५। ततश्च तमूचुर्ब्राह्मणाः ।१६। अग्रजस्य ते हीयमवनिस्त्वया सम्भुज्यते अतः परिवेत्तात्वमित्युक्तस्स राजा पुनस्तानपृच्छत् ।१७। किं मयात्र विधेयमिति ।१८।

ततस्ते पुनरप्यूचुः।१९।यावद्देवापिर्न पतनादिभिर्दोषैरभिभूयते तावदेतत्तस्यार्हं राज्यम् ।२०। तदलमेतेन तु तस्मै दीयतामित्युक्ते

तस्य मन्त्रिप्रवरेणाश्मसारिणा तत्रारण्ये तपस्विनो वेदवादविरोधवक्तारः प्रयुक्ताः ।२१। तैरस्याप्यतिऋजुतेममंहीपतिपुत्रस्य बुद्धिर्वेदवादविरोधमार्गानुसारिण्यक्रियत ।२२।

शान्तनु के शासन काल में एक समय वारह साल पर्यन्त बरसात नहीं हुई ॥१४॥ तब अपने समस्त राज्य को समाप्त होता देखकर नृप शान्तनु ने विप्रों से पूछा, "मेरे देश में वर्षा का अभाव क्यों है ? इसमें मेरी क्या त्रुटि है ? ॥१५॥ ब्राह्मण बोले—"जिस राज्य को आप भोग रहे हैं, वह आपके ज्येष्ठ भ्राता का है, इसलिए आप तो केवल संरक्षक मात्र हैं।" यह सुनकर शान्तनु ने पुनः पूछा—"इस परिस्थिति में अब मुझे क्या करना अभीष्ट है ? ॥१६-१८॥ ब्राह्मणों ने उत्तर दिया—"आपके ज्येष्ठ भ्राता देवापि किसी प्रकार पतित या अनाचारी होकर राज्य से पदच्युत होने योग्य न हों, तब तक इस राज्य के अधिकारी वही हैं ॥१९-२०॥ इसलिए आप इस राज्य को अपने भाई को ही सौंप दें, आपका इससे कोई सम्बन्ध नहीं। ब्राह्मणों के ऐसे वचन सुनकर महाराज शान्तनु के मन्त्री अश्मसारी ने वेदवाद के विरोधी तपस्वियों को वन में भेज दिया ॥२१॥ जिन्होंने वन में पहुँचकर महान् सरल हृदय राजकुमार देवापि की बुद्धि को भी वेदवाद के विरुद्ध आकृष्ट किया ॥२२॥

राजा च शान्तनुर्द्विजवचनोत्पन्नपरिदेवनशोकस्तान् ब्राह्मणानग्रतः कृत्वाग्रजस्य प्रदानायारण्यं जगाम ।२३। तदाश्रममुपगताश्च तमवनतमवनीपतिपुत्रं देवापिमुपतस्थुः ।२४। ते ब्राह्मणा वेदवादानुवन्धीनि वचांसि राज्यमग्रजेन कर्त्तव्यमित्यर्थवन्ति तमूचुः ।२५। असावपि देवापिर्वेदवाद विरोधयुक्तिदूषितमनेकप्रकारं तानाह ।२६। ततस्ते ब्राह्मणाश्शान्तनुमूचुः ।२७। आगच्छ हे राजन्नलमत्रातिनिर्बन्धेन प्रशान्त एनासावनावृष्टिदोषः पतितोऽयमनादिकालमहितवेदवचनदूषणोच्चारणात् ।२८। पतिते चाग्रजे नैव ते परिवेतृत्वं भवतीत्युक्तश्शान्तनुस्स्वपुरमागम्य राज्यमकरोत् ।२९। वेदवादविरोधनवचनोच्चारणदूषिते च तस्मिन्देवापौ तिष्ठत्स्यपिज्येष्ठभ्रातर्यखिलसस्यनिष्पत्तयेववर्षभगवान्पर्जन्यः।३०।

दूसरी ओर ब्राह्मणों के वचन सुनकर दुखित एवं शोकाकुल राजा शान्तनु ब्राह्मणों को संग लेकर अपने ज्येष्ठ भ्राता को राज्य सौंपने वन को गये ।।२३।। वे सभी सरलमति विनीति व्यवहारी राजकुमार देवापि के आश्रम पर पहुँचे। जहाँ ब्राह्मण उन्हें समझाते रहे और "ज्येष्ठ भ्राता को ही राज्य करना चाहिये।" आदि वेदों के अनुसार नीति एवं उपदेशपूर्ण वचन कहने लगे ।।२४-२५।। लेकिन देवापि ने वेदनीति के विरुद्ध उनसे अनेक प्रकार से दूषित वचन कहे ।।२६।। जिन्हें सुनकर शान्तनु से उन ब्राह्मणों ने कहा---हे नृप ! चलिये, अब अधिक आग्रह करने की आवश्यकता नहीं है। आदि काल से आराध्य वेद वाक्यों के विरुद्ध दूषित वचन कहने से देवापि पतित हो गये हैं। अब आप चलें, अनावृष्टि का दोष समाप्त होकर आपके राज्य में वर्षा प्रारम्भ हो गई है ।।२७।। बड़े भाई के पतित होने के कारण अब आप संरक्षक या परिवेत्ता मात्र नहीं हैं। फिर शान्तनु अपने राज्य में आकर शासन करने लगे ।।२८।। वेदवाद के विरोध में दूषित वचनों का प्रयोग करने के कारण देवापि पतित हो गये और इस प्रकार ज्येष्ठ भ्राता के रहते हुए भी छोटे भाई के शासन में खाद्यान्न उत्पादन हेतु बादल बरसने लगे ।।३०।।

बाह्लीकात्सोमदत्तः पुत्रोऽभूत् ।३१। सोमदत्तस्यापि भूरिभूरिश्रवः शल्यसंज्ञास्त्रयः पुत्रा बभूवुः ।३२। शांतनोरप्यमरनद्यां जाह्नव्यामुदारकीर्तिरशेषशास्त्रार्थविद्भीष्मः पुत्रोऽभूत ।३३। सत्यवत्यां च चित्राङ्गदविचित्रवीर्यौ द्वौ पुत्रावुत्पादयामास शांतनुः ।३४। चित्राङ्गदस्तु बाल एव चित्राङ्गदेनैव गंधर्वेणाहवे निहतः ।३५। विचित्रवीर्योऽपि काशिराजतनये अम्बिकाम्बालिके उपयेमे ।१६। तदुपभोगातिखेदाच्च यक्ष्मणा गृहीतः स पञ्चत्वमगमत् ।१७।सत्यवतीनियोगाच्च मत्पुत्रः कृष्णद्वैपायनो मातुर्वचनमनतिक्रमण त्वमिति कृत्वा विचित्रवीर्यक्षेत्रेधृतराष्ट्रपाण्डू तत्प्रहित भुजिष्यायां विदुरं चोत्पादयामास ।३८।

वाह्लीक के पुत्र सोमदत्त के भूरि, भूरिश्रवा एवं शल्य तीन पुत्र हुए ॥३१-३२॥ शान्तनु का एक पुत्र भीष्म अत्यन्त कीर्तिशाली एवं समस्त शास्त्रों का विद्वान् था और गंगाजी से उत्पन्न हुआ था ॥३३॥ शान्तनु के दो अन्य पुत्र चित्रांगद एवं विचित्रवीर्य सत्यवती से उत्पन्न हुए ॥३४॥ शान्तनु के पुत्र चित्रांगद को वाल्यकाल में ही चित्रांगद नामक एक गन्धर्व ने मार डाला था ॥३५॥ विचित्रवीर्य ने काशी-नरेश की अम्बिका व अम्बालिका नामक कन्याओं से विवाह किया ॥ ३६॥ किंतु पत्नियों के अत्यधिक संसर्ग में रहने से विचित्रवीर्य यक्ष्मा से अकाल ही मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥३७॥ पराशरजी बोले—फिर मेरे पुत्र कृष्ण द्वैपायन ने सत्यवती एवं अपनी माता के निर्देशानुसार विचित्रवीर्य की पत्नियों से धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्रों को एव उनकी दासी से विदुर नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥३८॥

धृतराष्ट्रोऽपि गान्धार्यां दुर्योधनदुश्शासनप्रधानं पुत्रशतमुत्पादयामास ।३९। पाण्डोरप्यरण्ये मृगयायामृषिशापोपहतप्रजाजननसामर्थ्यस्य धर्मवायुशक्रैर्युधिष्ठिरभीमसेनार्जुनाः कुन्त्यां नकुल सहदेवौ चाश्विभ्यां माद्रयां पञ्चपुत्रास्समुत्पादिताः।४०। तेषां च द्रौपद्यां पञ्चैव पुत्रा वभूवुः ।४१। युधिष्ठरात्प्रतिविन्ध्यः भीमसेनाच्छ्रुतसेनः श्रुतकीर्त्तिरर्जुनाच्छ्रुतानीको नकुल च्छ्रुतकर्मा सहदेवात् ॥४२॥

अन्ये च पाण्डवानामात्मजास्तद्यथा ।४३। यौधेयी युधिष्ठिराद्देवकं पुत्रमवाप ।४४। हिडिम्वा घटोत्कचं भीमसेनात्पुत्रं लेभे ।४५। काशी च भीमसेनादेव सर्वगं सुतमवाप ।४६। सहदेवाच्च विजया सुहोत्रं पुत्रमवाप ।४७। रेणुमत्यां च नकुलोऽपि निरमित्रमजीजनत् ।४८।

धृतराष्ट्र द्वारा गान्धारी से दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥३९॥ वन में शिकार करते हुए एक बार एक ऋषि के शाप से पाण्डु संतानोत्पत्ति के अयोग्य हो गये थे, तब उनकी पत्नी कुन्ती से धर्म, वायु व इन्द्र द्वारा क्रमशः युधिष्ठर, भीम व अर्जुन उत्पन्न हुए एवं

उनकी दूसरी पत्नी माद्री से दोनों अश्विनीकुमारों द्वारा नकुल व सहदेव उत्पन्न हुए। इस तरह पाण्डु के पाँच पुत्र कहलाये ॥४०॥ द्रोपदी से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव द्वारा पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। युधिष्ठर द्वारा प्रतिविन्ध्य, भीमसेन द्वारा श्रुतसेन, अर्जुन द्वारा श्रुतकीर्ति नकुल द्वारा श्रुतानीक एवं सहदेव द्वारा श्रुतकर्मा ने जन्म लिया। उपरोक्त पुत्रों के अतिरिक्त द्वारा द्रोपदी के गर्भ से देवक, हिडिम्बा से भीमसेन द्वारा घटोत्कच व काशी से सवर्ग तथा रेणुमती से नकुल द्वारा निरमित्र उत्पन्न हुआ ॥४१-४८॥

अर्जुनस्यायुलूप्यां नागकन्यायामिरावान्नामपुत्रोऽभवत् ।४६। मणिपुरपतिपुत्र्यां पुत्रिकाधर्मेण बभ्रुवाहनं नाम पुत्रमर्जुनोऽजनयत् ।५०। सुभद्रायां चार्भकत्वेऽपि योऽसावतिवलपराक्रमस्समस्तारातिरथजेता सोऽभिमन्युरजायत ।५१। अभिमन्योरुत्तरायां परिक्षीणेषु कुरुष्वश्वत्थामप्रयुक्तब्रह्मास्त्रेग गर्भ एव भस्मीकृतो भगवतस्सकलसुरासुरवन्दितचरणयुगलस्यात्मेच्छया। कारणमानुषरूपधारिणोऽनुभावात्पुनर्जीवितमवाप्य परीक्षिञ्जज्ञे ।५२ योऽयं साम्प्रतमेतद्भूमण्डलमखण्डितायतिधर्मेण पालयतीति ।५३।

अर्जुना द्वारा उसकी उप-पत्नी नाग कन्या उलूपी से इरावान उत्पन्न हुआ ॥४६॥ मणिपुर नरेश की पुत्री से अर्जुन द्वारा पुत्रि धर्म के अनुसार बभ्रुवाहन उत्पन्न हुआ ॥५०॥ अर्जुन द्वारा ही सुभद्रा से अभिमन्यु का जन्म हुआ जो कि महापराक्रमी और वीर्यवान् था ॥५१॥ फिर अश्वत्थामा के ब्राह्मस्त्र-प्रहार से जो परीक्षित गर्भ में ही भस्मीभूत हो गया तथा कुरुकुल क्षीण हो गया, तब अपनी इच्छा से ही मायारूपी मानव देह धारण करने वाले सम्पूर्ण सुर-असुरों द्वारा वन्दित भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र के प्रभाव से परीक्षित पुनः जीवित हुआ और उस काल उसने उत्तरा के गर्भ से अभिमन्यु द्वारा जन्म प्राप्त किया, जो कि इस

प्रकार अब धर्मानुराग सहित समस्त भूमण्डल पर राज्य कर रहा है, जिससे कि भविष्य में भी उसका वैभव वैसा ही बना रहे ।।५२-५३।।

इक्कीसवां अध्याय

अतः परं भविष्यानहं भूपालान्कीर्तयिष्यामि ।१। योऽयं साम्प्रतमवनीपतिः परीक्षितस्यापि जनमेजयश्रुतसेनोग्रसेनभीम-सेनाश्चत्वारः पुत्रा भविष्यन्ति ।२। जनमेजयस्यापि शतानीको भविष्यति ।३। योऽसौ याज्ञवल्क्याद्वेदमधीत्य कृपादस्त्राण्यवाप्य विषमविषयविरक्तचित्तवृत्तिश्च शौनकोपदेशदात्मज्ञानप्रवीणः परं निर्वाणमवाप्स्यति ।४। शतानीकादश्वमेधदत्तो भविता ।५। तस्मा-दप्यधिसीमकृष्णः ।६। अधिसीमकृष्णान्निचक्नुः ।७। यो गङ्गया-पहृते हस्तिनापुरे कौशाम्ब्यां निवत्स्यति ।८।

श्री पराशरजी ने कहा—अब मैं आपसे भविष्य में होने वाले राजाओं के विषय में वर्णन करूंगा ।।१।। इस काल राज्य करने वाले महाराज परीक्षित के चार पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन, भीमसेन होंगे ।।२।। जनमेजय का शतानीक नामक पुत्र याज्ञवल्यक मुनि से वेद-शिक्षा और कृप से शस्त्रास्त्र विद्या प्राप्त करके महर्षि शौनक द्वारा आत्म ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करेगा ।।३-४।। शतानीक का अश्व-मेधदत्त नामक पुत्र होगा ।।५।। अश्वमेधदत्त का पुत्र अधिसीम कृष्ण और अधिसीमकृष्ण का पुत्र निचक्नु होगा, निचक्नु गंगाजी द्वारा हस्तिनापुर बहा ले जाने पर कौशाम्बी में निवास करेगा ।।६-८।।

तस्याप्युष्णः पुत्रो भविता ।९। उष्णाद्विचित्ररथः ।१०। ततः शुचिरथः ।११। तस्माद्वृष्णिमांस्ततस्सुषेणस्तस्यापि सुनीथ-स्सुनीथान्नृपचक्षुस्तस्मादपि सुखावलस्तस्य च पारिप्लवस्ततश्च सुनयस्तस्यापि मेधावी ।१२। मेधाविनो रिपुञ्जयस्ततो मृदुस्त-स्माच्च तिग्मस्तस्मादबृहद्रथो बृहद्रथाद्वसुदामः ।१३। ततोऽपरश-तानीकः ।१४। तस्माच्चोदयन उदयनादहीनरस्ततश्च दण्डपाणि-

स्ततो निरमित्रः ।१५। तस्माच्च क्षेमकः ।१६। अत्रायं श्लोकः ।१७।

ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो राजर्षिसत्कृतः ।
क्षेमक प्राप्य राजानं संस्थानं प्राप्स्यते कलौ ॥१८

निचक्नु का पुत्र उष्ण, उष्ण का विचित्ररथ से शुचिरथ से शुचिरथ, शुचिरथ से वृष्णिमान्, वृष्णिमान् से सुषेण सुषेण से सुनीथ से नृप, नृप से चक्षु चक्षु से सुखावल, सुखावल से पारिप्लव, पारिप्लव से सुनय, सुनय से मेधावी, मेधावी से रिपुञ्जय, रिपुञ्जस से मृदु, मृदु से तिग्म, तिग्म से बृहद्रथ बृहद्रथ से वसुदान वसुदान से द्वितीय शतानीक, शतानीक से उदयन, उदयन से अहीनर, अहीनर से दण्डपाणि, दण्डपाणि से निरमित्र एवं निरमित्र का पुत्र क्षेमक होगा । एक प्रसिद्ध श्लोक है— ॥६-१७॥ वह वंश जो ब्राह्मण और क्षत्रियों की उत्पत्ति का कारण तथा विभिन्न राजर्षियों से शोभायमान् रहा है, कलियुग में राजा क्षेमक की उत्पत्ति के समय वह नष्ट हो जायगा ॥१८॥

बाईसवाँ अध्याय

अतश्चेक्ष्वाकवो भविष्याः पार्थिवाः कथ्यन्ते ।१। बृहद्बलस्य पुत्रो बृहत्क्षणः ।२। तस्मादुरुक्षयस्तस्माच्च वत्सव्यूहस्ततश्च प्रतिव्योमस्तस्मादपि दिवाकरः ॥३॥ तस्मात्सहदेवः सहदेवाद्बृहश्वस्तत्सूनुर्भानुरथस्तस्य च प्रतीताश्वस्तस्यापि सुप्रतीकस्ततश्च मरुदेवस्ततः सुनक्षत्रस्तस्मात्किन्नरः ।४। किन्नरादन्तरिक्षस्तस्मात्सुपर्णस्ततश्चामित्रजित् ।५। ततश्च बृहद्राजस्तस्यापि धर्मी धर्मिणः कृतञ्जयः ।६। कृतञ्जयाद्रणञ्जयः ।७। रणञ्जयात्संजयस्तस्माच्छाक्यश्शाक्याच्छुद्धोदनस्तस्माद्राहुलस्ततः प्रसेनजित् ।८। ततश्च क्षुद्रकस्ततश्च कुण्डकस्तस्मादपि सुरथः ।६। तत्पुत्रश्च सुमित्रः ।१०। इत्येते चेक्ष्वाकवो बृहद्बलान्वयाः ॥११॥ अत्रानुवंशश्लोकः ।१२।

इक्ष्वाकूणामयं वंशस्सुमित्रान्तो भविष्यति ।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥१३

पराशरजी ने कहा—हे भूपते ! मैं अब भविष्य में आने वाले इक्ष्वाकु वंशज राजाओं के विषय में कहता हूँ ॥१॥ बृहद्बल का पुत्र बृहत्क्षण, बृहत्क्षण का उरुक्षय, उरुक्षय का वत्सव्यूह, वत्सव्यूह का प्रतिव्योम, प्रतिव्योम का दिवाकर, दिवाकर का सहदेव, सहदेव का बृहदश्व, बृहदश्व का भानुरथ, भानुरथ का प्रतीताश्व, प्रतीताश्व का सुप्रतीक, सुप्रतीक का मरुदेव, मरुदेव का सुनक्षत्र, सुनक्षत्र का किन्नर किन्नर का अंतरिक्ष, अंतरिक्ष का सुपर्ण सुपर्ण का अमित्रजित्, अमित्रजित् को बृहद्राज, बृहद्राज का धर्मी, धर्मी का कृतञ्जय, कृतञ्जय का रणञ्जय, रणञ्जय का सञ्जय, सञ्जय का शाक्य, शाक्य का शुद्धोदन, शुद्धोदन का राहुल, राहुल का प्रसेनजित्, प्रसेनजित् का क्षुद्रक, क्षुद्रक का कुण्डक, कुण्डक का सुरथ, एवं सुरथ का सुमित नामक पुत्र होगा। इक्ष्वाकु वंश में यह सभी नृप बृहद्बल की संताने होंगे ॥२-११॥ इक्ष्वाकु वंश के लिए एक श्लोक प्रसिद्ध है - इक्ष्वाकु वंश का राज्य कलियुग में सुमित्र तक रहेगा, सुमित्र के जन्म के पश्चात् यह वंश समाप्त हो जायगा ॥१२-१३॥

तेईसवां अध्याय

मागधानां बार्हद्रथानां भाविनामनुक्रमं कथयिष्यामि ॥१॥ अत्र हि वंशे महाबलपराक्रमा जरासन्ध प्रधाना बभूवुः ।२। जरासन्धस्य पुत्रः सहदेवः ।३। सहदेवात्सोमापि स्तस्य श्रुतश्रुवास्तस्याप्ययुतायुस्ततश्च निरमित्रस्तत्तनयस्सुनेत्रस्तस्मादपि बृहत्कर्मा ।४। ततश्च सेनजित्ततश्च श्रुतयंजस्ततो विप्रस्तस्य च पुत्रश्शुचिनामा भविष्यति ।५। तस्यापि क्षेम्यस्ततश्च सुव्रतस्सुव्रताद्धर्मस्ततस्सुश्रवाः ।६। ततो दृढसेनः ।७। तस्मात्सुबलः ।८। सुबलात्सुनीतो भविता ।९। ततस्सत्यजित् ।११। तस्यापि

रिपुञ्जयः ।१२। इत्येते बार्हद्रथा भूपतयो वर्षसहस्रमेकं भविष्यन्ति ।१३।

पराशरजी ने कहा--हे भूपते ! अब मैं मगधवंश के प्रवर्त्तक बृहद्रथ की भावी सन्तानों के विषय में कहता हूँ ॥१॥ इस वंश के महापराक्रमी और तेजस्वी राजाओं में जरासन्ध इत्यादि प्रधान थे ॥२॥ जरासन्ध का पुत्रसहदेव, सहदेव का सोमापि, सोमापि का श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवा का अयुतायु, अयुतायु का निरमित्र, निरमित्र का सुनेत्र, सुनेत्र का बृहत्कर्मा, बृहत्कर्मा का सेनजित, सेनजित का श्रुतञ्जय, श्रुतञ्जय का विप्र और विप्र का शुचि होगा ॥४-५॥ शुचि का क्षेम्य, क्षेम्य का सुव्रत, सुव्रत का धर्म, धर्म का सुश्रवा, सुश्रवा का दृढ़सेन, दृढ़सेन का सुबल, सुबल का सुनीत, सुनीत का सत्यजित्, सत्यजित् का विश्वजित् एवं विश्वजित् का रिपुञ्जय होगा ॥६-१२॥ यह बहद्रथ वंशीय राजा मगध में एक हजार वर्ष तक राज्य करेंगे ॥१३॥

चौबीसवां अध्याय

योऽयं रिपुञ्जयो नाम बार्हद्रथोऽन्त्यस्तस्यामात्यो सुनिको नाम भविष्यति ।१। स चैनं स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रं प्रद्योतनामानमभिषेक्ष्यति ।२। तस्यापि बलाकनामा पुत्रो भविता ।३। पतश्च विणाखयूपः ।४। तत्पुत्रो जनकः ।५। तस्य च नन्दिवर्द्धनः ।६। ततो नन्दी ।७। इत्येतेऽष्टत्रशदुत्तरमब्दशतं पञ्च प्रद्योताः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ।८।

ततश्च शिशुनाभः ।९। तत्पुत्रः काकवर्णो भविता ।१०। तस्य च पुत्र क्षेमधर्मा ।११। तस्यापि क्षतौजाः ।१२। तत्पुत्रो विधिसारः ।१३। ततश्चाजातशत्रुः ।१४। तस्मादर्भकः ।१५। तस्माच्चोदयनः ।१६। तस्मादपि नन्दिवर्द्धनः ।१७। ततो महानन्दी ।१८। इत्येते शैशुनाभा भूपालास्त्रीणि वर्षशतानिद्विष्टयधिकानि भविष्यन्ति ।१९।

पराशरजी ने कहा—बृहद्रथ के वंश का अन्तिम राजा रिपुंजय होगा, जिसके मन्त्री का नाज सुनिक होगा ।।१।। वह अपने स्वामी की हत्या करके अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनायेगा ।।२।। प्रद्योत का पुत्र वलाक और वलाक का पुत्र विशाखयूप होगा ।।३-४।। विशाखयूप का पुत्र जनक, जनक का नन्दिवर्द्धन और उसका पुत्र नन्दी होगा ।।५-७।। प्रद्योत वंश के यह पाँच राजा एक सौ अड़तालीस वर्ष तक पृथिवी का राज भोगेंगे ।।८।। नन्दी का पुत्र शिशुनाभ, शिशुनाभ का काकवर्ण और उसका पुत्र क्षेमधर्मा होगा ।९-११।। क्षेमधर्मा का पुत्र क्षतौजा, उसका पुत्र विधिसार, उसका अजातशत्रु और उसका अर्भक होगा ।।१२-१५।। अर्भक का पुत्र उदयन, उदयन का नन्दिवर्द्धन तथा नन्दिवर्द्धन का महानन्दी होगा ।१६-१८।। यह सब राजा शिशुनाभ वंश के कहे जायेंगे और तीन सौ बासठ वर्ष तक पृथिवी पर राज्य करेंगे । १९।।

महानन्दिनस्ततश्शूद्रागर्भोद्भवोऽतिलुब्धोऽतिबलो महापद्मनामा नन्दः परशुराम इवापरोऽखिलक्षत्रान्तकारो भविष्यति ।२०। ततः प्रभृति शूद्रा भूपाला भविष्यन्ति ।२१। स चैकच्छत्रामनुल्लङ्घितशासनो महापद्मः पृथिवीं भोक्ष्यते ।२२। तस्याप्यष्टौ सुतास्सुमाल्याद्या भवितारः ।२३। तस्य महापद्मस्यानु पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ।२४। महापद्मपुत्राश्चैकं वर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति ।२५। ततश्च नव चैतान्नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणस्समुद्धरिष्यति ।२६। तेषामभावे मौर्याः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ।२७। कोटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्पन्नं राज्येऽभिषेक्ष्यति ।२८।

तस्यापि पुत्रो विन्दुसारो भविष्यति ।२९। तस्याप्यशोकवर्द्धनस्ततस्सुयशास्ततश्च दशरथस्ततश्च संयुतस्ततश्शालिशूकस्तस्मात्सोमशर्मा तस्यापि सोमशर्मणश्शधन्वा ।३०। तस्यापि बृहद्रथनामा भविता ।३१। एवमेते मौर्या दश भूपतयो भविष्यन्ति अब्दशतं सप्तत्रिंशदुत्तरम् ।३२।

महानन्दी का पुत्र महापद्म शूद्रा के गर्भसे उत्पन्न होकर परशुराम जी के समान सब क्षत्रियों का अंत करने वाला होगा ॥२०॥ उस समय से उसके जैसे शूद्र राजा पृथिवी पर राज्य करेंगे। वह महापद्म इस सम्पूर्ण पृथिवी को बिना किसी प्रकार की बाधा के एक छत्र भोगेगा ॥२१-२२॥ उसके सुमाली आदि आठ पुत्र उत्पन्न होंगे जो उसकी मृत्यु होने पर शासन करेंगे ॥ २३-२४ ॥ महापद्म और उसके पुत्रों का शासन-काल सौ वर्ष होगा। फिर एक कौटिल्य नामक ब्राह्मण इन नौओं का अन्त कर देगा। उनके पश्चात् मौर्य नामक राजागण राज्य करेंगे ॥२५-२७॥ वही कौटिल्य ब्राह्मण चन्द्रगुप्त को राज्य पर अभिषिक्त करेगा ॥२८॥ चन्द्रगुप्त का पुत्र विन्दुसार होगा। विन्दुसार का अशोकवर्द्धन और अशोकवर्द्धन का सुयशा, सुयशा का दशरथ, दशरथ का संयूक्त, संयुक्त का शालिशूक, शालिशूक का सोमशर्मा और सोमशर्मा का पुत्र शतधन्वा होगा ॥२९-३०॥ शतधन्वा का पुत्र वृहद्रथ होगा। इस प्रकार मौर्यवंश के यह दस राजा एक सौ तिहत्तर वर्ष तक पृथियी पर राज्य करेंगे ॥३१-३२॥

तेषामन्ते पृथिवीं दश शुङ्गा भोक्ष्यन्ति ।३३। पुष्यमित्रास्सेनापतिस्स्वामिनं हत्वा राज्य करिष्यति तस्यात्मजोऽग्निमित्रः ।३४। तस्मात्सुज्येष्ठस्ततो वसुमित्रस्तस्मादप्युदंकस्ततः पुलिन्दकस्ततो घोषवसुस्तस्मादपि वज्रमित्रस्ततो भागवतः ।३५।तस्माद्देवभूतिः ।३६। इत्येते शुङ्गा द्वादशोत्तरं वर्षशतं पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ।३७।

ततः कण्वानेषा भूर्यास्यति ।३८। देवभूतिं तु शुङ्गराजानं व्यसनिनं तस्यैवामात्यः काण्वो वसुदेवनामा तं निहत्य स्वयमवनीं भोक्ष्यति ।३९। तस्य पुत्रो भूमित्रस्तस्यापि नारायणः ॥४०॥ नारायणात्मजस्सुशर्मा ।४१। एते काण्वायनाश्चत्वारः पञ्चचत्वारिंशद्वर्षाणि भूपतयो भविष्यन्ति ।४२।

उनका अन्त होने पर पृथिवी पर दस शुङ्गवंशीय राजा राज्य करेंगे। पुष्यमित्र नामक सेनापति अपने स्वामी की हत्या करके राज्य-

शासन करेगा । उसका पुत्र अग्निमित्र होगा । उसका पुत्र सुज्येठ, सुज्येष्ठ का पुत्र वसुमित्र, वसुमित्र का उदंक, उदंक का पुलिन्दक,पुलिन्दक का घोषवषु, घोसवसु का वज्रमित्र, वज्रमित्र का भागवत, उसका देवभूति होगा । यह सभी शुङ्ग राजागण पृथियी पर एक सौ बारह वर्ष राज्य करेंगे ॥३३-३७॥ शुङ्गवंश के पश्चात् कण्व नरेशों का राज्य होगा । शुंगवंश के व्यसनों में आसक्त राजा देवभूति का कण्ववंशीय वसुदेव नामक मन्त्री, उसकी हत्या करके स्वयं राज्य करेगा ॥३८-३९॥ वसुदेव का पुत्र भूमित्र, भूमित्र का नारायण और नारायण का पुत्र सुशर्मा होगा । कण्व वंश के यह चारों राजा पेंतालीस वर्ष पृथिवी पर राज्य करेंगे ॥४०-४२॥

सुशर्माणं तु काण्वं तद्भृत्यो बलिपुच्छकनामा हत्वान्ध्रजातीयो वसुधां भोक्ष्यति ।४३। ततश्च कृष्णनामा तद्भ्राता पृथिवीपतिर्भविष्यति ।४४। तस्यापि पुत्रः शान्तकर्णिस्तस्यापि पूर्णोत्सङ्गस्तत्पुत्रश्शातकर्णिस्तस्माच्च लम्बोदरस्माच्च पिलकस्ततो मेघस्वातिस्ततः पटुमान् ।४५। ततश्चारिष्टकर्मा ततो हालाहलः ।४६। हालाहलात्पललकस्ततः पुलिन्दसेनस्ततः सुन्दरस्ततश्शातकर्णिस्ततश्शिवस्वातिस्ततश्च गोमतिपुत्रस्तत्पुत्रोऽलिमान् ।४७। तस्यापि शान्तकर्णिस्ततः शिवश्रितस्ततश्च शिवस्कन्धस्तस्मादपि यज्ञश्रीस्ततो द्वियज्ञस्तस्माच्चन्द्रश्रीः ।४८। तस्मात्पुलोमाचिः ।४९। एवमेते त्रिंशच्चत्वार्यब्दशतानि षट् पञ्चाशब्दधिकानि पृथिवीं भोक्ष्यन्ति आन्ध्रभृत्याः ।५०। सप्ताभीरप्रभृतयो दश गर्दभिलाश्च भूभुजो भविष्यन्ति ।५१। ततष्षोडश शका भूपतयो भवितारः ।५२। ततश्चाष्टौ यवनाश्चतुर्दश तुरुष्कारा मुण्डाश्च त्रयोदश एकादश मौना एते वै पृथिवीपतयः पृथिवीं दशवर्षणतानि नवत्यधिकानि भोक्ष्यन्ति ।५३। ततश्च एकादश भूपतयोऽब्दशतानि त्रीणि पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ।५४।

कण्ववंश के राजा सुशर्मा को उसका बलिपुच्छक नामक आंध्रजातीय

भृत्यु हत्या करके स्वयं पृथिवी का राज्य भोगेगा ॥४३॥ उसके पश्चात् उसका कृष्ण नामक भाई पृथिवी का शासक होगा ॥४४॥ कृष्ण का पुत्र शान्तकर्णि होगा। उसका पुत्र पूर्णोत्संग,पूर्णोत्सग का पुत्र शातकर्णि,शातकर्णि का लम्बोदर,उसका पिलक, पिलक का मेघ, स्वाति, मेघस्वाति का पटुमान्, पटुमान् का पुत्र अरिष्टकर्मा और उसका पुत्र हालाहल होगा ॥४५-४३॥ हालाहल का पुत्र पललक, उसका पुलिन्दसेन, उसका पुत्र सुन्दर, सुन्दर का शातकर्णि, शातकर्णि का शिवस्वाति, उसका पुत्र गोमति और गोमति का पुत्र अलिमान् होगा ॥४७॥ अलिमान् का पुत्र शान्तकर्णि, शान्तकर्णि का शिवश्रित, शिवश्रित का शिवस्कंध, शिवस्कंध का यज्ञश्री, यज्ञश्री का द्वियज्ञ द्वियज्ञ का पुत्र चन्द्रश्री और चन्द्रश्री का पुत्र पुलोमाचि होगा ॥४८-४९॥ इस प्रकार तीस आन्ध्रभृत्य राजा होंगे जो चार सौ छप्पन वर्ष पृथिवी पर राज्य करेंगे ॥५०॥ उनके पश्चात् सात आभीर तथा गर्दभिल भू-भोगी नरेश होंगे। तदनन्तर सोलह शक राजा राज्य करेंगे। फिर आठ यवन, चौदह तुर्क, तेरह मुण्ड और ग्यारह मौन राजा होंगे। यह सब एक हजार नब्बे वर्ष पृथिवी का राज्य भोगेंगे ॥५१-५३॥ इनमें से मौन राजाओं का र ज्य काल तीन सौ वर्ष तक रहेगा ॥५४॥

तेषूत्सन्नेषु कङ्किला यवना भूपतयो भविष्यन्त्यमूर्द्धाभिषिक्ताः ।५५। तेषामपत्यं विन्ध्यशक्तिस्ततः पुरञ्जयस्तस्माद्रामचन्द्रस्तस्माद्धर्म वर्मा ततो बङ्गस्ततोऽभून्नन्दनस्ततस्सुनन्दी तद्भ्राता नन्दियशाश्शुक्रः प्रवीर एते वर्ष शत षड्वर्षाणि भूपतयो भविष्यन्ति ।५६। ततस्तत्पुत्रास्त्रयोदशैतेबाह्लिकाश्च त्रयः ।५७। ततः पुष्पमित्राः पटुमित्राः पद्ममित्रास्त्रयोदशैकलाश्च सप्तान्ध्राः ।५८। ततश्च कोशलायां तु नव चैव भूपतयो भविष्यन्ति ।५९। नैषधास्तु त एव ।६०।

मगधायां तु विश्वस्फटिकसंज्ञोऽन्यान्वर्णान्करिष्यति ।६१। कैवर्त्तवटुपुलिन्दब्राह्मणान्राज्ये स्थापयिष्यति ।६२। उत्साद्या-

खिलक्षत्रजातिं नव नागाः पद्मावत्यां नाम पुर्यामनुगङ्गाप्रयागं गयायाञ्च मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति ।६३। कोशलान्ध्रपुण्ड्रताम्रलिप्तसमुद्रतटपुरीं च देवरक्षितो रक्षिता ।६४। कलिङ्गमाहिषमहेन्द्रभौमान् गुहा भोक्ष्यन्ति ।६५। नैषधनैमिषककालकोशकाञ्जनपदान्मणिधान्यकवंशा भोक्ष्यन्ति ।६६। त्रैराज्यमुषिकजनपदान्कनकाह्वयो भोक्ष्यति ।६७। सौराष्ट्रावन्तिशूद्राभीरान्नर्मदामरुभूविषयांश्च व्रात्यद्विजाभीरशूद्राद्या भोक्ष्यन्ति ।६८। सिन्धुतटदाविकोर्वीचन्द्रभागाकाश्मीरविषयांश्च व्रात्यम्लेच्चशूद्रादयो भोक्ष्यन्ति ।६९।

इनका अन्त होने पर कैंकिल नामक यवन अभिषेकहीन राजा होंगे ॥५५॥ उनकी सन्तान में विन्ध्यशक्ति राजा होगा। उसका पुत्र पुरंजय, पुरंजय का रामचन्द्र, रामचन्द्र का धर्मवर्मा, धर्मवर्मा का वंग, वंग का नन्द और नन्द का सुनन्दी होगा। सुनन्दी के तीन भाई होंगे—नन्दियशा शुक्र, और प्रवीर। इन सब का राज्य-काल एक सौ छः वर्ष रहेगा।५६। तत्पश्चात् इन्हीं के वंश के तेरह राजा और होंगे, फिर तीन वाह्लिक राजा होंगे। तदनन्तर पुष्पमित्र और पटुमित्र आदि तेरह राजागण होंगे, फिर सात आन्ध्र राजा होंगे ॥५७-५८॥ फिर कोशल देश में सात राजा होंगे जो निषध देश का भी राज्य करेंगे ॥५९-६०॥ विश्वस्फटिक नामक मगध देश का राजा अन्य वर्णों का प्रवर्त्तक होगा ॥६१॥ वह कैवर्त्त, वटु पुलिन्द और ब्राह्मणों को राज्य देगा ॥६२॥ सब क्षत्रियों को नष्ट पद्मावतीपुरी में नाग और गंगा के समीपवर्ती प्रदेश प्रयाग और गया में मगध तथा गुप्त राजागण राज्य करेंगे ॥६३॥ कोशल, आन्ध्र, पुण्ड्र, ताम्रलिप्त और समुद्र किनारे पर स्थित पुरी का रक्षक देव रक्षित नामक एक राजा होगा ॥६४॥ कलिंग, माहिष, महेन्द्र और भौमादि देशों का राज्य गुह नामक राजा करेंगे ॥६५॥ नैषध, नैमिषक और कालकोशक आदि जनपदों का राज्य मणिधान्यक वंश के राजा करेंगे ॥६६॥ त्रैराज्य और मुषिक देशों पर कनक नामक राजागण राज्य करेंगे ॥६७॥ सौराष्ट्र, अवन्ति, शूद्र, आभीर, और नर्मदा नदी के

समीप की मरुभूमि पर व्रात्य, द्विज, आभीर और शूद्रादि का राज्य होगा ॥६८॥ समुद्र के किनारे के क्षेत्र दाविकोर्वि चन्द्रभागा और काश्मीर आदि पर व्रात्य, म्लेच्छ और शूद्रादि राजाओं का राज्य शासन होगा ॥६९॥

एते च तुल्यकालास्सव पृथिव्यां भूभुजो भविष्यन्ति ।७०। अल्पप्रसादा वृहत्कोपास्सर्वकालमनृताधर्मरुचयः स्त्रीबालगोवध-कर्त्तारः पर स्वादानरुचयोऽल्पसारास्तमिस्रप्राया उदितास्तमित-प्राया अल्पायुषो महेच्छा ह्यल्पधर्मा लुब्धाश्च भविष्यन्ति ।७१। तैश्च विमिश्रा जनपदास्तच्छीलानुवर्तिनो राजाश्रयशुष्मिणो म्लेच्छाश्चार्याश्च विपर्ययेण वर्त्तमानाः प्रजा क्षपयिष्यन्ति ।७२।

ततश्चानुदिनमल्पाल्पह्रासव्यवच्छेदाद्धर्मार्थयोर्जगतस्सङ्क्षयो भविष्यति ।७३। ततश्चार्थ एवाभिजनहेतुः ।७४। बलमेवाशेषधर्म हेतु ।७५। अभिरुचिरेव दाम्पत्यसम्बन्धहेतुः ७६। स्त्रीत्वमेवोप-भोगहेतुः ।७७। अनृतमेव व्यवहारजहेतुः ।७८। उन्नताम्बुतैव पृथिवीहेतुः ।७९। ब्रह्मसूत्रमेव विप्रत्वहेतुः ।८०। रत्नधातुतैव श्लाघ्यताहेतुः ।८१। लिङ्गधारणमेवाश्रमहेतुः ।८२। अन्याय एव वृत्तिहेतुः ।८३। दौर्बल्यमेवावृत्तिहेतुः ।८४। अभयप्रगल्भोच्चारणमेव पाण्डित्यहेतुः ।८५। अनाढ्यतैव साधुत्वहेतुः ।८६। स्नानमेव प्रसाधनहेतुः ।८७। दानमेव धर्महेतुः ।८८। स्वीकरणमेव विवाह-हेतुः ।८९। सद्वेषधार्यैव पात्रम् ।९०। दूरायतनोदकमेव तीर्थहेतुः ।९१। कपटवेषधारणमेव महत्त्वहेतुः ।९२। इत्येवमनेकदोषोत्तरे तु भूमण्डले सर्ववर्णेष्वेव यो यो बलवान्स स भूपतिर्भविष्यति ।९३।

यह सभी राजा एक ही काल में पृथिवी पर होंगे ॥७०॥ यह अल्प प्रसन्नता वाले, अधिक क्रोध वाले, अधर्म और असत्यभाषण में रुचि वाले स्त्री, बालक और गौओं का वध करने वाले, पर-धन-हारी, न्यून शक्ति वाले, तमयुक्त, विकसिक होते ही पतन को प्राप्त होने वाले, अल्पायु, अल्प पुण्य, बड़ी अभिलाषा वाले और महान् लोभी होंगे ॥७१॥ यह

सब देशों को परस्पर में एक कर देने वाले होंगे। इन राजाओं के आश्रय में रहने वाले बलवान् म्लेच्छ और अनार्य व्यक्ति, उनके स्वभाव के अनुसार आचरण करते हुए सम्पूर्ण प्रजा को ही नष्ट कर डालेंगे ॥७२॥ इससे दिनों दिन धर्म और अर्थ की धीरे-धीरे करके हानि होती जायगी और जब यह क्षीण हो जायेंगे तो सम्पूर्ण विश्व ही नष्ट हो जायगा ॥७३॥ उस समय धन ही कुलीनता का सूचक होगा, बल ही सब धर्मों का चिह्न होगा, परस्पर की चाहना ही दाम्पत्य-सम्बन्ध को करने वाली होगी, स्त्रीत्व ही भोग साधन होगा ॥७४-७७॥ झूठ ही व्यवहार में जीत कराने वाला होगा, जलवायु की श्रेष्ठता ही पृथिवी की श्रेष्ठता का लक्षण होगा, यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणत्व का कारण होगा, रत्नादि धारण ही श्लाघा का हेतु होगा, बाह्य-चिह्न ही आश्रमों के सूचक होंगे, अन्याय ही वृत्ति का साधन होगा, दुर्बलता ही जीविका से वंचित रहेगी, निर्भयता और धृष्टता पूर्वक भाषण ही पाण्डित्य होगा, निर्धनता ही साधुत्व का कारण समझा जायगा। स्नान साधन का हेतु, दान धर्म का हेतु और स्वीकृति ही विवाह का हेतु होगा ॥७८-८९॥ सजधज कर रहना ही सुपात्रता का द्योतक होगा, दूर देश का जल ही तीर्थ-जल होगा, छद्मवेश ही गौरव होगा। इस प्रकार सम्पूर्ण भूमण्डल में नाना प्रकार के दोषों के फैलने से सब वर्णों में जो-जो बली होंगे, वही-वही राजा राज्य हो हथिया लेंगे ॥९०-९३॥

एव चातिलुब्धकराजासहाश्शैलानामन्तरद्रोणीः प्रजास्संश्रयिष्यन्ति ।९४। माधुशाकमूलफलपत्रपुष्पाद्याहाराश्च भविष्यन्ति ।९५। तरुवल्कलपर्णचीरप्रावरणाश्चातिबहुप्रजाश्शीतवातातपवर्षसहाश्च भविष्वन्ति ।९६। न च कश्चित्त्रयोविंशतिवर्षाणि जीविष्यति अनवरतं चात्र कलियुगे क्षयमायात्यखिल एवैष जनः ।९७। श्रौते स्मार्ते च धर्मे विप्लवमत्यन्तमुपगते क्षीणप्राये च कलावशेषजगत्स्रष्टुश्चराचरगुरोरादिमध्यान्तरहितस्य ब्रह्ममयस्यात्मरूपिणो भगवतो वासुदेवस्यांशश्शम्बलग्रामप्रधानब्राह्मणस्य विष्णुयशसो

गृहेऽष्टगुणर्द्धिसमन्वित कल्किरूपी जगत्यत्रावतीयं सकलम्लेच्छ-दस्युदुष्टाचरणचेतसामशेषाणामपरिच्छिन्नशक्तिमाहात्म्यः क्षयं करिष्यति स्वधर्मेषु चाखिलमेव संस्थापयिष्यति ।९८। अनन्तरं चाशेषकलेरवसाने निशावसाने विबुद्धानामिव तेषामेव जनपदानाममलस्फटिकविशुद्धा मतयो भविष्यन्ति ।९९। तेषां च बीज-भूतानामशेषमनुष्याणां परिणतानामपि तत्कालकृतापत्यप्रसूतिर्भविष्यति ।१००। तानि च तदपत्यानि कृतयुगानुसारीण्येव भविष्यन्ति ।१०१।

इस प्रकार अत्यन्त लोभी राजाओं के कर-भार से दबी हुई प्रजा, उससे बचने के लिए पर्वतों की गुफाओं में जाकर रहने लगेगी और मधु, शाक, मूल, फल, पत्ते और पुष्पादि का भक्षण करती हुई जीवन का समय व्यतीत करेगी। वृक्षों के पत्तों और वल्कल वस्त्रों को पहिने-ओढ़ेगी। उनकी अधिक सन्तानें होंगी और सभी को शीत, वायु धूप, वर्षा आदि के कष्ट सहन करने होंगे ॥९४।९६ तेईस वर्ष से अधिक आयु किसी की भी न होगी। इस प्रकार कलियुग में सभी मनुष्य क्षीणता को प्राप्त होते रहेंगे ॥९७॥ जब श्रौत और स्मार्त्त धर्म की अत्यन्त हानि हो जायगी और कलियुग प्रायः समाप्ति पर होगा तभी शम्बल ग्राम के रहने वाले विप्रश्रेष्ठ विष्णुयश के यहाँ सम्पूर्ण विश्व के कारण, चराचर के गुरु, आदि-मध्य अन्त से हीन, ब्रह्ममय एवं आत्मरूप भगवान अपने अंश से अष्टगुण युक्त कल्कि रूप से अवतार धारण करेंगे। वही अपनी असीम शक्ति और महिमा से सम्पन्न होकर सब म्लेच्छों, दस्युओं, दुष्टहृदयों और दुराचारियों को नष्ट कर सभी प्रजा को अपने-अपने धर्म में स्थापित करेंगे ॥९८॥ फिर सब कलियुग का नितान्त क्षय हो जायगा, सब रात्रि के अवसान पर जगने वालों के समान सब प्राणियों की बुद्धि स्फटिक मणि के समान स्वच्छ हो जायगी ॥९९॥ वे सब बीजभूत मनुष्य अधिक आयु वाले होकर भी सन्तानोत्पादन में समर्थ होंगे ॥१००॥ उनकी सन्तानें भी सत्ययुग के समान ही धर्माचरण प्रवृत्त होने वाली होंगी ॥१०१॥

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यो बृहस्पतिः ।
एकराशौ समेष्यन्ति तदा भवतिवै कृतम् ॥१०२
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।
एते वशेषु भूपालाः कथिता मुनिसत्तम ॥१०३
यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ।
एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञयं पञ्चशतोत्तरम् ॥१०४
सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येतेह्युदितौ दिवि ।
तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्सम निशि ॥१०५
तेन सप्तर्षयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम् ।
ते तु पारीक्षिते काले मघास्त्रासन्द्विजात्तम ॥१०६
तदा प्रवृत्तश्च कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥१०७
यदैव भगवान्विष्णोरशो यातो दिवं द्विज ।
वसुदेवकुलोद्भूतस्तदैवात्रागतः कलिः ॥१०८
यावत्स पादपद्माभ्यां पस्पर्शेमां वसुन्धराम् ।
तावत्पृथ्वीपरिष्वङ्गे समर्थो नाभवत्कलिः ॥१०९
गते सनातनस्यांशे विष्णोस्तत्र भुवो दिवम् ।
तत्याज सानुजो राज्य धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥११०
विपरीतानि दृष्ट्वा च निमित्तानि हि पाण्डवः ।
याते कृष्णे चकाराथ सोऽभिषेक परीक्षितः ॥१११
प्रयास्यन्ति तदा चैते पूर्वाषाढां महर्षयः ।
तदा नन्दात्प्रभृत्येष गतिवृद्धि गमिष्यति ॥११२
यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगं तस्य संख्यां निबोध मे ॥११३

जब चन्द्र सूर्य और पुष्यनक्षत्र में स्थित होकर एक साथ एक राशि पर आवेंगे तभी सत्ययुग का प्रारम्भ हो जायगा ॥१०२॥ हे मुनिश्वर ! इस प्रकार यह सभी वंशों के भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालीन सब राजाओं का वर्णन मैंने तुम से कर दिया है ॥१०३॥ परीक्षित् के जन्म काल से नन्द के अभिषेक पर्यन्त का समय डेढ़ हजार वर्ष का समझो

॥१०४॥ सप्तर्षियों में से जो दो नक्षत्र आकाश में पहिले दीखते हैं, उनके मध्य में रात्रिकाल, में जो नक्षत्र समदेश में स्थित रहते हैं, उनमें से प्रत्येक नक्षत्र पर एक-एक सौ वर्ष तक सप्तर्षियों का निवास रहता है। हे द्विजश्रेष्ठ ! परीक्षितकाल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे, उसी समय बारह सौ वर्ष प्रमाण के कलियुग का प्रारम्भ हुआ था। जब भगवान् विष्णु के अंशावतार श्रीकृष्ण अपने धाम को चले गये, तभी से पृथिवी पर कलियुग आ गया ॥१०५-१०८॥ जब तक वह अपने चरण कमलों के पुण्य स्पर्श से इस पृथिवी को पवित्र किये रहे, तब तक पृथिवी का संग करने में कलियुग समर्थ नहीं हो सका ॥१०६॥ जब सनातन पुरुष भगवान् विष्णु के अंशावतार श्रीकृष्ण देवलोक चले गये तब महाराज युधिष्ठिर ने भाइयों सहित अपने राज्य का त्याग कर दिया ॥११०॥ भगवान् कृष्ण के अन्तर्धान होने पर जब पाण्डवों को विरुद्ध लक्षण दिखाई दिये, तब उन्होंने परीक्षित का राज्याभिषेक कर दिया ॥१११॥ जब पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र पर सप्तर्षियों का गमन होगा, तब राजानन्द के शासन-काल में कलियुग की बल-वृद्धि होगी ॥११२॥ जब श्रीकृष्ण अपने धाम को चले गये थे, तभी से कलियुग आ गया था, अब उस कलियुग की वर्ष गणना श्रवण करो ॥११३॥

त्रीणि लक्षाणि वर्षाणां विज मानुष्यसंख्यया ।
षष्ठिश्चैव सहस्राणि भविष्यत्येष वै कलिः ॥११४
शतानि तानि दिव्यानां सप्त पञ्च च संख्यया ।
निश्शेषेण गते तस्मिन् भविष्यति पुनः कृतम् ॥११५
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्शूद्राश्च द्विजसत्तम ।
युगे युगे महात्मानः समतीतास्सहस्रशः ॥११६
बहुत्वान्नामधेयानां परिसंख्या कुले कुले ।
पौनरुक्त्याद्धि साम्याच्च न मया परिकीर्तिता ॥११७
देवापिः पौरवो राजा मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ।
महायोगबलोपेतौ कलापग्रामसंश्रितौ ॥११८

कृते युगे त्विहागम्य क्षत्रप्रवर्त्तकौ हि तौ ।
भविष्यतो मनोर्वंशबीजभूतौ व्यवस्थितौ ।।११९
एतेन क्रमयोगेन मनुपुत्रैर्वसुन्धरा ।
कृतत्रेताद्वापराणि युगानि त्रीणि भुज्यते ।।१२०
कलौ ते बीजभूता वै केचित्तिष्ठन्ति वै मुने ।
यथैव देवापिमरू साम्प्रतं समधिष्ठितौ ।।१२१

मनुष्यों के वर्ष के अनुसार कलियुग की आयु तीन लाख साठ हजार वर्ष होगी ।।११४।। फिर बारह सौ दिव्य वर्षों के व्यतीत होने तक सत्ययुग उपस्थित रहेगा ।।११५।। हे विप्रश्रेष्ठ ! प्रत्येक युग में ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णों के हजारों संत महात्मा हो गये हैं ।।११६।। उनके अतिसंख्यक होने तथा कर्म में समानता होने के कारण वंश-वर्णन में कहीं पुनरोक्ति न हो जाय, इस भय से उन सबके नाम यहाँ नहीं कहे हैं ।।११७।। पुरुवंश के राजा देवापि और इक्ष्वाकु वंश के राजा मरु—यह दोनों ही महान् योगबल से युक्त हुए, कलापग्राम में निवास करते हैं ।।११८।। जब सत्ययुग आरम्भ हो जायेगा, तब यह पुनः मर्त्यलोक में जन्म लेकर क्षत्रिय-वंश के प्रवर्त्तक होंगे । यही भविष्य में होने वाले मनुवंश के बीज स्वरूप हैं ।।११९।। सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में भी मनु पुत्र पृथिवी का इसी प्रकार उपभोग करते हैं ।।१२०।। उन्हीं में से कोई-कोई कलियुग में होने वाली मनु-सन्तान के बीज रूप में देवापि और मरु के समान ही स्थित हैं ।।१२१।।

एष तद्देशतो वंशस्तवोक्तो भूभुजां मया ।
निखिलो गदितुं शक्यो नैष वर्षशतैरपि ।।१२२
एते चान्ये च भूपाला यैरत्र क्षितिमण्डले ।
कृतं ममत्वं मोहान्धैर्नित्यं हेयकलेवरे ।।१२३
कथं ममेयमचला मत्पुत्रस्य कथं मही ।
मद्वंशस्येति चिन्तार्त्ता जग्मुरन्तमिमे नृपाः ।।१२४

तेभ्यः पूर्वतराश्चान्ये तेभ्यस्तेभ्यस्तथा परे ।
भविष्याश्चैव यास्यन्ति तेषामन्ये च येऽप्यनु ।।१२५
विलोक्यात्मजयोद्योगं यात्राव्यग्रान्नराधिपान् ।
पुष्पप्रहासैश्शरदि हसन्तीव वसुन्धरा ।।१२६
मैत्रेय पृथिवीगीताञ्छ्लोकांश्चात्र निबोध मे ।
यानाह धर्मध्वजिने जनकायासितो मुनिः ।।१२७

इस प्रकार मैंने तुमसे सब राजवंशों को संक्षेप में वर्णन कर दिया है, इनका पूर्ण वृत्तान्त तो सौ वर्षों में भी नहीं कहा जा सकता ।।१२२।। इस हेय कलेवर के मोह में अन्धे और इस पृथिवी में ममता करने वाले यह तथा अन्य अनेक राजागण हुए हैं ।।१२३।। यह पृथिवी मेरे, मेरे पुत्र अथवा वंश के अधिकार में स्थायी रूप से किस प्रकार रहेगी । इस प्रकार की चिन्ता करते-करते ही यह सब राजा मरण को प्राप्त हो गये ।।१२४।। ऐसी ही चिन्ता में निमग्न रहकर इन सब राजाओं के पूर्व पुरखे और उनके भी पुरखे इस संसार से कूँच कर गये और इसी चिन्ता में मग्न रह कर भविष्य में होने वाले राजागण भी काल के गाल में समा जायेंगे । यह वसुन्धरा भी अपने पर विजय प्राप्त करने के उद्योग में अथक रूप से लगे हुए राजाओं को देख कर जैसे उन पर हँसती है ।।१२६।। हे मैत्रेयजी ! अब तुम पृथिवी द्वारा कहे हुए कुछ श्लोकों को श्रवण करो । यह श्लोक पूर्वकाल में असित मुनि ने धर्मध्वज रूप राजा जनक के प्रति कहे थे ।।१२७

कथमेष नरेन्द्राणां मोहो बुद्धिमतामपि ।
येन फेनसधर्माणोऽप्यतिविश्वस्तचेतसः ।।१२८
पूर्वमात्मजयं कृत्वा जेतुमिच्छन्ति मन्त्रिणः ।
ततो भृत्यांश्च पौरांश्च जिगीषन्ते तथा रिपून् ।।१२९
क्रमेणानेन जेष्यामो वयं पृथ्वीं ससागराम् ।
इत्यासक्तधियो मृत्युं न पश्यन्त्यविदूरगम् ।।१३०

समुद्रावरणं याति भूमण्डलमथो वशम् ।
क्रियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥१३१

उत्सृज्य पूर्वजा याता यां नादाय गतः पिता ।
तां मामतीवमूढत्वाज्जेतमिच्छन्ति पार्थिवाः ॥१३२

मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः ।
जायतेऽत्यन्तमोहेन ममत्वादृतचेतसाम् ॥१३३

पृथ्वी ममेयं सकला ममैषा मदन्वयस्यापि च शाश्वतीयम् ।
यो यो मृतो ह्यत्र बभूव राजा कुबुद्धिरासीदिति तस्य तस्य ॥

पृथिवी का कहना है—अहो, यह राजागण बुद्धमान् होकर भी कैसे मोहित हो रहे हैं, जिसके कारण यह अपनी क्षणभंगुरिता को भूलकर अपने स्थायी होने का विश्वास किये बैठे हैं ॥१२८॥ पहिले यह अपनी विजय प्राप्त करते, फिर मन्त्रियों को वश में कर लेते हैं और इसके पश्चात् भृत्यों, पुरवासियों और शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त करना चाहते हैं ॥१२९॥ इसी प्रकार इस सम्पूर्ण पृथिवी को हम समुद्र तक अपने वश में कर लेंगे, ऐसी ही आसक्ति में भ्रमित हुए यह राजागण निकट भविष्य में ही प्राप्त होने वाली मृत्यु को नहीं देख पाते ॥१३०॥ यदि समुद्र के आवरण वाले इस सम्पूर्ण पृथिवी मंडल पर विजय प्राप्त भी हो जाय, तो भी मन को जीतने के समान इसका फल नहीं हो सकता, क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति तो मन के जीतने पर ही संभव है ॥१३१॥ इनके पूर्वज और पिता भी जिसे साथ लिये बिना ही चले गये और जो यहां ही स्थिर रूप से रही आई, उस मुक्त पृथिवी को महामूर्ख बने हुए राजागण जीत लेना चाहते हैं ॥१३२॥ अत्यन्त ममत्व वाले पिता पुत्र, भ्राता आदि में भी मोह के वशीभूत होकर मेरे ही कारण विग्रह उपस्थित होता है ॥१३३ ॥ यहाँ जितने भी राजा हुए हैं, वे सभी इस कुबुद्धि से ओत प्रोत रहे हैं कि यह सम्पूर्ण पृथिवी मेरी है और फिर यह सदैव मेरे वन्शधरों की रहेगी ॥१३४॥

दृष्ट्वा ममत्वादृतचित्तमेकं विहाय मां मृत्युवशं व्रजन्तम् ।
तस्यानु यस्तस्य कथं ममत्वं हृयद्यास्पदं मत्प्रभवं करोति॥१३५

पृथ्वी ममैषाशु परित्यजैनां वदन्ति ये दूतमुखैस्स्वशत्रून् ।
नराधिपास्तेषु ममातिहासः पुनश्च मूढेषु दयाभ्युपैति ॥१३६

इत्येते धरणीगीताश्लोका मैत्रेय यैश्श्रुताः ।
ममत्वं विलयं याति तपत्यर्के यथा हिमम् ॥१३७
एत्येष कथितः सम्यङ् मनोर्वंशो मया तव ।
यत्र स्थितिप्रवृत्तस्य विष्णोरंशांशका नृपाः ॥१३८
शृणोति य इमं भक्त्या मनोर्वंशमनुक्रमात् ।
तस्य पाहमशेषं वै प्रणश्यत्यमलात्मनः ॥१३९
धनधान्यर्द्धिमतुलां प्राप्नोत्यव्याहतेन्द्रियः ।
श्रुत्वैवमखिलं वंश प्रशस्तं शशिसूर्ययोः ॥१४०
इक्ष्वाकुजह्नु मान्धातृसगराविक्षितान्रघून् ।
ययातिनहुषाद्यांश्च ज्ञात्वा निष्ठामुपागतान् ॥१४१
महाबलान्महावीर्याननन्तधनसञ्चयान् ।
कृतान्कालेन बलिना कथाशेषान्नराधिपान् ॥१४२
श्रुत्वा न पुत्रदारादौ गृहक्षेत्रादिके तथा ।
द्रव्यादौ वा कृतप्रज्ञो ममत्वं कुरुते नरः ॥१४३

इस प्रकार मुझ में ममता करने वाले एक राजा को मुझे यहीं छोड़कर मरता हुआ देखकर भी उसका वंशज न जाने क्यों अपने चित्त में मेरे प्रति इतनी ममता रखे रहता है ? ॥१३५॥ जो भूपाल अपने शत्रु को दूत द्वारा यह सन्देश देते हैं कि यह वसुन्धरा मेरी है, तुम इसे छोड़कर तुरन्त हट जाओ, उन मूर्खों की उस बात पर मुझे अत्यन्त हँसी तथा दया आने लगती है ॥१३६॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! पृथिवी द्वारा गाए हुए इन श्लोकों को सुनने वाले पुरुष की ममता सूर्य-ताप से पिघल जाने वाले बर्फ के समान नष्ट हो जायगी ॥१३७॥ इस प्रकार उस मनु-वंश का मैंने तुमसे वर्णन कर दिया, जिसमें उत्पन्न हुए राजागण भगवान् विष्णु के ही अंश थे ॥१३८॥

इस मनुवंश के क्रमपूर्वक श्रवण करने वाले मनुष्य के सभी पापों का क्षय होता है ॥१३९॥ इन्द्रियों को वश में करके जो पुरुष इन सूर्य, चन्द्र वंशों का पूर्ण वृत्तान्त सुनता है, उसे असीमित धन-धान्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥१४०॥ अत्यन्त बली, महावीर्यवान्, अनन्त धनी और परम निष्ठा-सम्पन्न इक्ष्वाकु, जन्हु, मान्धाता, सगर, मरुत्त, रघुकुल मे उत्पन्न राजागण, नहुष तथा ययाति आदि के जो चरित्र काल के कारण कथा मात्र ही शेष हैं उनको सुनकर बुद्धिमान पुरुष, पुत्र, स्त्री, घर, खेत, तथा धन आदि में ममत्व न रखेगा ॥१४१-१४३॥

तप्तं तपो यैः पुरुषप्रवीरैरुब्दाहुभिर्वर्षगणाननेकान् ।
इष्ट्वासुयज्ञैर्बलिनोऽतिवीर्याः कृता नु कालेन कथावशेषाः ॥१४४
पृथुस्समस्तान्विचचार लोका-
नव्याहतो यो विजितारिचक्रः ।
स कालवाताभिहतः प्रणष्टः
क्षिप्तं यथा शाल्मलितूलमग्नौ ॥१४५
यः कार्तवीर्यो बुभुजे समस्ता-
न्द्वीपान्समाक्रम्य हतारिचक्रः ।
कथाप्रसंगेष्वभिधीयमान् —
स्स एव सङ्कल्पविकल्पहेतुः ॥१४६
दशाननाविक्षितराघवाणामैश्वर्यमुद्भासितदिङ्मुखानाम् ।
भस्मापि शिष्टं न कथं क्षणेन भ्रूभङ्गपातेन धिगन्तकस्य ।१४७
कथाशरीरत्वमवाप यद्वै मान्धातृनामा भुवि चक्रवर्ती ।
श्रुत्वापि तत्को हि करोति साधुर्ममत्वमात्मन्यपि मन्दचेताः ।१४८
भगीरथाद्यास्सगरः ककुत्स्थो दशाननो राघवलक्ष्मणौ च ।
युधिष्ठराद्याश्च बभूवुरेते सत्यं न मिथ्या क्वनु तेन विद्मः ।१४९
ये साम्प्रतं ये च नृपा भविष्याः प्रोक्ता मया विप्रवरोग्रवीर्याः ।
एते तथान्ये च तथाभिधेयाः सर्वे भविष्यन्ति यथैव पूर्वे ॥१५०

एतद्विदित्वा न नरेण कार्यं ममत्वमात्मन्यपि पण्डितेन ।
तिष्ठन्तु तावत्तनयात्मजाद्याः क्षेत्रादयो ये च शरीरिणोऽन्ये ॥१५१

ऊर्ध्वबाहु होकर जिन श्रेष्ठपुरुषों ने बहुत वर्षों तक घोर तप और अनेकों यज्ञ किये थे, उन अत्यन्त बली और वीर्यशाली राजाओं की कथा मात्र ही काल के प्रभाव से शेष बची है ॥१४४॥ जो राजा पृथु अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर स्वच्छन्द गति से सभी लोकों में विचरण करता था, वही अग्नि में गिर कर भस्म हुई रुई के समान ही विलीन हो गया ॥१४५॥ जिस कार्तवीर्य ने अपने सब वैरियों को मारकर सब द्वीपों को जीता और उनका भोग किया था, वही आज ऐसा प्रतीत होता है कि कभी हुआ था या नहीं ॥१४६॥ सभी दिशाओं को प्रकाशमान् करने वाले रावण, मरुत्त तथा रघुवंशियों का ऐश्वर्य भी व्यर्थ ही हुआ, क्योंकि काल के कटाक्ष मात्र से वह ऐसा मिट गया कि उसकी भस्म भी शेष नहीं बची ॥१४७॥ जो मान्धाता सम्पूर्ण पृथिवी का चक्रवर्ती राजा था, उसकी भी कथा ही रह गई है। इस सब को सुनकर भी अपने देह के प्रति कौन मन्द बुद्धि वाला ममता करेगा? ॥१४८॥ भगीरथ, सगर, ककुत्स्थ, रावण, लक्ष्मण युधिष्ठिर आदि का होना नितान्त सत्य है, इसमें मिथ्या किंचित् भी नहीं है, परन्तु अब वे सब कहाँ हैं, इसे नहीं जानते ॥१४९॥ हे विप्रश्रेष्ठ! वर्तमान अथवा आगे होने वाले जिन अत्यन्त वीर्यवान् राजाओं के विषय में मैंने कहा है तथा अन्य राजागण भी, पहले कहे हुए राजाओं के समान कथा मात्र ही रहेंगे ॥१५०॥ इस प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य को पुत्र-पुत्री, क्षेत्र तथा अन्य प्राणी तो क्या, अपने देह में भी ममता कभी नहीं करनी चाहिए ॥१५१॥

श्री विष्णु पुराण

* पञ्चम अंश *

पहला अध्याय

नृपाणां कथितस्सर्व्वो भवता वंशविस्तरः ।
वंशानुचरितं चैव यथावदनुवर्णितम् ॥१
अंशावतारो ब्रह्मर्षे योऽयं यदुकुलोद्भवः ।
विष्णोस्तं विस्तरेणाहं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥२
चकार यानि कर्माणि भगवान्पुरुषोत्तमः ।
अन्शांशेनावतीर्योर्व्यां तत्र तानि मुने वद ॥३
मैत्रेय श्रूयतामेतद्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।
विष्णोरंशांशसम्भूतिचरितं जगतो हितम् ॥४
देवकस्य सुतां पूर्वं वसुदेवो महामुने ।
उपयेमे महाभागां देवकी देवतोपमाम् ॥५
कंसस्तयोर्वररथं चोदयामास सारथिः ।
वसुदेवस्य देवक्याः सयोगे भोजनन्दनः ॥६
अथान्तरिक्षे वागुच्चैः कंसमाभाष्य सादरम् ।
मेघगम्भीरनिर्घोषं समाभाष्येदमब्रवीत् ॥७

मैत्रेयजी बोले--हे ब्रह्मन् ! आपने सभी राजवंशों और उनके चरित्रों को यथा रूप कहा है ॥१॥ हे ब्रह्मर्षि ! भगवान् का जो अवतार यदुकुल में हुआ था, उसे ही अब मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ ॥२॥ हे मुने ! भगवान् ने अपने अंशांशों सहित अवतार धारण करके जो कुछ

किया, वही सब सुनाइये ।।३।। पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! भगवान् के जिस अंशांश रूप के विषय में तुमने पूछा है, उस संसार के हित में हुए अवतार का वृत्तान्त सुनो ।।४।। पूर्व काल की बात है—देवक की महाभागा पुत्री देवकी का विवाह वसुदेवजी के साथ हुआ था ।।५।। वसुदेव-देवकी का विवाह होने के पश्चात् उनके माङ्गलिक रथ को भोजनन्दन कंस ने स्वयं चलाया ।।६।। उसी अवसर पर मेघ के समान गम्भीर वाणी में कंस को उच्च स्वर से सबोधन करती हुई देवगिरा ने कहा ।।७।।

यामेतां वहसे मूढ़ सह भर्त्रा रथे स्थिताम् ।
अस्यास्तवाष्टमो गर्भः प्राणानपहरिष्यति ।।८
इत्याकर्ण्य समुत्पाट्य खड्गं कंसो महाबलः ।
देवकी हन्तुमारब्धो वसुदेवोऽब्रवीदिदम् ।।९
न हन्तव्या महाभाग देवकी भवतानघ ।
समर्पयिष्ये सकलान्गर्भानस्योदरोद्भवान् ।।१०
तथेत्याह ततः कंसो वसुदेवं द्विजोत्तमः ।
न घातयामास च तां देवकीं सत्यगौरवात् ।।११
एतस्मिन्नेव काले तु भूरिभारावपीडिता ।
जगाम धरणी मेरौ समाजं त्रिदिवौकसाम् ।।१२
सब्रह्मकान्सुरान्सर्वान्प्रणिपत्याथ मेदिनी ।
कथयामास तत्सर्वं खेदात्करुणभाषिणी ।।१३

अरे मूर्ख ! तू पति के साथ बैठी हुई जिस देवकी को पहुँचाने जा रहा है, इसी का आठवाँ गर्भ तेरे प्राण का हरण करेगा ।।८।। यह सुनते ही महाबली कंस ने तलवार खींच ली और जैसे ही देवकी को मारने के लिए उद्यत हुआ. वैसे ही वसुदेवजी ने उसे रोकते हुए कहा ।।९।। हे महाभाग ! हे निष्पाप ! इस देवकी को मत मारिए, मैं इसके सभी गर्भों को उत्पन्न होते ही आपको समर्पित कर दूँगा ।।१०।। पराशरजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! यह सुनकर कंस ने सत्य के गौरव

से प्रभावित होकर वसुदेवजी की बात मान ली और देवकी को छोड़ दिया ॥११॥ इसी अवसर वोझ से अत्यन्त पीड़ित हुई पृथिवी सुमेरु पर्वत स्थित देवताओं की सभा में पहुँची ॥१२॥ वहाँ जाकर उसने ब्रह्माजी सहित सब देवताओं को प्रणाम किया और खेद तथा करुणा भरे स्वर में उसने अपना सब कष्ट उन्हें कह सुनाया ॥१३॥

अग्निस्सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्यः परो गुरुः ।
ममाप्यखिललोकानां गुरुर्नारायणो गुरुः ॥१४
प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा पूर्वेषामपि पूर्वजः ।
कलाकाष्ठानिमेषात्मा कालश्चाव्यक्तमूर्त्तिमान् ॥१५
तदंशभूतस्सर्वेषां समूहो वस्सुरोत्तमाः ।
आदित्या मरुतस्साध्या रुद्रावस्वश्विवह्नयः ॥१६
पितरो ये च लोकानां स्रष्टारोऽत्रिपुरोगमाः ।
एते तत्याप्रमेयस्य विष्णो रूपं महात्मनः ॥१७
यक्षराक्षसदैतेयपिशाचोरगदानवाः ।
गन्धर्वाप्सरश्चैव रूपं विष्णोर्महात्मनः ॥१८
ग्रहर्क्ष तारकाचित्रगगनाग्निजलानिलाः ।
अहं च विषयाश्चैव सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥१९
तथाप्यनेकरूपस्य तस्य रूपाण्यहर्निशम् ।
वाध्यवाधकतां यान्ति कल्लोला इव सागरे ॥२०

पृथिवी ने कहा—जैसे स्वर्ण का गुरु अग्नि और रश्मियों का सूर्य है, वैसे ही सम्पूर्ण विश्व-गुरु भगवान् श्री नारायण मेरे गुरु हैं ॥१४॥ वही प्रजापतियों के पति, पूर्वजों के पूर्वज ब्रह्मा हैं और वही कला, काष्ठा और निमेष रूप वाला अव्यक्त रूप काल है ॥१५॥ हे श्रेष्ठ देवताओ ! आप सब भी उन्हीं के अश रूप हैं । सूर्य, मरुद्गण, साध्य-गण, रुद्र, वसु, अश्विनीद्वय, अग्नि, पितरगण और लोक सृष्टा अत्रि आदि प्रजापति—सब उन्हीं भगवान् के स्वरूप हैं ॥१६-१७॥ यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, उरग, दानव, गन्धर्व और अप्सरा भी उन्हीं के

स्वरूप हैं ।।१८।। ग्रह, नक्षत्र और तारागण वाला यह अद्भुत आकाश, अग्नि, जल, पवन, मैं तथा सम्पूर्ण विषय युक्त यह विश्व भी विष्णुमय ही है ।।१९।। फिर भी उन अनेक रूपात्मक भगवान् विष्णु के यह रूप अहर्निश समुद्र की तरङ्गों के समान परस्पर टकराते रहते हैं ।।२०।।

तत्साम्प्रतममी दैत्याः कालनेमिपुरोगमाः ।
मर्त्यलोकं समाक्रम्य बाधन्तेऽहर्निशं प्रजाः ।।२१
कालनेमिर्हतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना ।
उग्रसेनसु ।ः कंसस्सम्भूतस्स महासुरः ।।२२
अरिष्टो धेनुकः केशी प्रलम्बो नरकस्तथा ।
सुन्दोऽसुरस्तथात्युग्रो बाणश्चापि बलेस्सुतः ।।२३
तथान्ये च महावीर्या नृपाणां भवनेषु ये ।
समुत्पन्ना दुरात्यानस्तान्न संख्यातुमुत्सहे ।।२४
अक्षौहिण्योऽत्र बहुला दिव्यमूर्तिधरास्सुराः ।
महाबलानां दृप्तानां दैत्येन्द्राणां ममोपरि ।।२५
तद्भूरिभारपीडार्त्ता न शक्नोम्यमरेश्वराः ।
विभर्त्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि वः ।।२६
क्रियतां तन्महाभागा मम भारावतारणम् ।
यथा रसातल नाहं गच्छेयमतिविह्वला ।।२७

इस समय मर्त्यलोक पर कालनेमि आदि दैत्यों ने अधिकार कर लिया है और वे दिन-रात राजा को पीड़ित करते रहते हैं ।।२१।। सर्व शक्तिवन्त भगवान् विष्णु ने जिस कालनेमि का संहार किया था, वही इस समय उग्रसेन के पुत्र रूप में कंस नाम से पृथिवी पर उत्पन्न हुआ है ।।२२।। अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द, बलिपुत्र बाणासुर तथा अन्यान्य महावीर्यशाली दुरात्मा दैत्य पृथिवी पर राज-गृहों में उत्पन्न हुए हैं, जिनकी गणना करना भी संभव नहीं है ।।२३-२४।। हे दिव्याकार देवगण ! इस समय महाबली और अहंकारी दैत्य राजाओं की अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ मुझे दबाये हुए हैं ।।२५।। हे

अमरेश्वरो ! मैं आपसे निवेदन करती हूँ कि उनके अत्यन्त बोझ को न सहने के कारण अब मैं अपने को धारण करने में भी समर्थ नहीं हो रही हूँ ॥२६॥ इसलिए हे महाभाग वालो ! मेरे बोझ को दूर करिये, जिससे मैं अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक रसातल में धँसने से बच सकूँ ॥२७॥

इत्याकर्ण्य धरावाक्यशेषैस्त्रिदशेश्वरैः ।
भुवो भारावतारार्थं ब्रह्मा प्राह प्रचोदितः ॥२८
यथाह वसुधा सर्वं सत्यमेव दिवौकसः ।
अहं भवो भवन्तश्च सर्वे नारायणात्मकाः ॥२९
विभूतयश्च यास्तस्य तासामेव परस्परम् ।
आधिक्यं न्यूनता बाध्यबाधकत्वेन वर्तते ॥३०
तदागच्छत गच्छाम क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम् ।
तत्राराध्य हरिं तस्मै सर्वं विज्ञापयाम वै ॥३१
सर्वथैव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मयः ।
सत्त्वांशेनावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ॥३२
इत्युक्त्वा प्रययौ यत्र सह देवैः पितामहः ।
समाहितमनाश्चैवं तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥३३
द्वे विद्ये त्वमनाम्नाय परा चैवापरा तथा ।
त एव भवतो रूपे मूर्तामूर्तात्मिके प्रभो ॥३४
द्वे ब्रह्मणी त्वणीयोऽतिस्थूलात्मन्सर्व सर्ववित् ।
शब्दब्रह्म परं चैव ब्रह्म ब्रह्ममयस्य यद् ॥३५

पृथिवी की बात सुनकर सब देवताओं की प्रेरणा से उसके बोझ को दूर करने विषयक वचनों को ब्रह्माजी ने इस प्रकार कहा ॥२८॥ ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ ! पृथिवी का कथन सत्य है, मैं शिवजी, आप सभी यथार्थ में तो नारायण के ही स्वरूप हैं ॥२९॥ उनकी विभूतियों की पारस्परिक न्यूनता एवं अधिकता ही बाध्य-बाधक स्वरूप होती है ॥३०॥ इसलिए चलो, हम सब क्षीर सागर के किनारे चलकर भगवान् विष्णु की आराधना करें और उनको यह सब वृत्तान्त सुनावें ॥३१॥ क्योंकि वे

विश्वरूप सर्वात्मा विश्व के हितार्थ हो अपने सत्याँश से उद्भूत होकर धर्म की सदैव स्थापना करते हैं ॥३२॥ श्री पाराशरजी ने कहा—यह कहकर ब्रह्माजी ने सब देवताओं को साथ लिया और वहाँ जाकर एकाग्र मन से गरुडध्वज भगवान् को प्रसन्न करने लगे ॥३३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे प्रभो ! आप वाणी से परे हैं। परा और अपरा नाम की दोनों विद्या आप ही हैं, क्योंकि वे दोनों आपके ही मूर्त्त और अमूर्त्त रूप हैं ॥३४॥ हे अत्यन्त स्थूल एवं सूक्ष्म ! हे सर्व ! हे सर्वज्ञाता ! शब्द ब्रह्म और परब्रह्म भी आप ही हैं ॥३५॥

ऋग्वेदस्त्वं यजुर्वेदस्सामवेदस्त्वथर्वणः ।
शिक्षाकल्पो निरुक्तं चच्छन्दो ज्योतिषमेव च ॥३६
इतिहासपुराणे च तथा व्याकरणं प्रभो ।
मीमांसा न्यायशास्त्रं च धर्मशास्त्राण्यधोक्षज ॥३७
आत्मात्मदेहगुणवद्विचाराचारि यद्वचः ।
तदप्याद्यपते नान्यदध्यात्मात्मस्वरूपवत् ॥३८
त्वमव्यक्तमनिर्देश्यमचिन्त्यानामवर्णवत् ।
अपाणिपादरूप च शुद्धं नित्यं परात्परम् ॥३९
शृणोष्यकर्णः परिपश्यसि त्वमचक्षुरेको बहुरूपरूपः ।
अपादहस्तो जवनो ग्रहीता त्वं वेत्सि सर्वं न च सर्ववेद्यः ॥४०
अणोरणीयांसमसत्स्वरूपं त्वां पश्यतोऽज्ञाननिवृत्तिरग्र्या ।
धीरस्य धीरस्य विभर्ति नान्यद्वरेण्यरूपात्परतः परात्मन् ॥४१
त्वं विश्वनाभिर्भुवनस्य गोप्ता सर्वाणि भूतानि तवांतराणि ।
यद्भूतभव्यं यदणोरणीयः पुमांस्त्वमेकः प्रकृतेः परस्तात् ॥४२

आप ही, ऋक्, यजु, साम, अथर्व रूप चारों वेद हैं, आप ही शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष शास्त्र हैं ॥३६॥ इतिहास, पुराण, व्याकरण, मीमांसा, न्याय और धर्मशास्त्र भी आप ही हैं ॥३७॥ हे आद्यपते ! जीवात्मा, परमात्मा, स्थूल, सूक्ष्म और उनका कारण अव्यक्त तथा उनके विचार वाला वेदान्त भी आपसे अभिन्न ही है ॥३८॥ आप

ही अव्यक्त, अनिर्देश्य, अचिन्त्य, नाम-वर्ण से हीन, अंग तथा रूपादि से रहित, शुद्ध सनातन और पर से भी पर हैं ॥३९॥ आप ही विना श्रोत के सुनने वाले, विना नेत्र देखने वाले; एक होकर भी अनेक दिखाई देने वाले, अंग-रहित होकर भी अत्यन्त वेग वाले और अवेद्य होकर भी सबके जानने वाले हैं ॥४१॥ हे परमात्मन् ! जिस धीर पुरुष की मति आपके रूप के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं देखती, उस आपके अणु से भी सूक्ष्म रूप का दर्शन करने वाले का अज्ञान नितान्त रूप से नष्ट हो जाता है ॥४१॥ आप ही विश्व की नाभि और तीनों लोकों के रक्षक हैं, सब प्राणियों की स्थिति भी आप में ही है तथा विगत और आगामी सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जो कुछ भी है, वह सब आप ही प्रकृत्यातीत एक मात्र परम पुरुष हैं ॥४२॥

एकश्चतुर्द्धा भगवान्हुताशो वर्चोविभूतिं जगतो ददासि ।
त्वं विश्वतश्चक्षुरनन्तमूर्ते त्रेधा पदं त्वं निदधासि धातः ॥४३
यथाग्निरेको बहुधा समिध्यते विकारभेदैरविकाररूपः ।
तथा भवान्सर्वगतैकरूपी रूपाण्यशेषाण्यनुपुष्यतीश ॥४४
एकं त्वमग्र्यं परमं पदं यत्पश्यन्ति त्वां सूरयो ज्ञानदृश्यम् ।
त्वत्तोनान्यत्किञ्चिदस्तिस्वरूपं यद्वा भूतं यच्च भव्यं परात्मन्॥
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपस्त्वं समष्टिव्यष्टिरूपवान् ।
सर्वज्ञस्सर्ववित्सर्वशक्तिज्ञानबलर्द्धिमान् ॥४६
अन्यूनश्चाप्यवृद्धिश्च स्वाधीनो नादिमान्वशी ।
कलमतन्द्राभयक्रोधकामादिभिरसंयुतः ॥४७

आप ही चार प्रकार के अग्नि रूप से विश्व को तेज प्रदान करते हैं। हे अनन्तमूर्ते ! आपके चक्षु सब ओर विद्यमान हैं तथा आप ही त्रैलोक्य को तीन पग में नापते हैं जैसे एक ही अग्नि विकार भेद से अनेक रूप वाला होता है वैसे एक मात्र आप सर्वगत रूप से सभी रूपों को धारण करते हैं। आप ही एकमात्र श्रेष्ठ परम पद हैं, आप ही ज्ञान-दृष्टि के द्वारा दर्शनीय हैं, इसलिए ज्ञानी पुरुष आपको ही देखा करते

हैं। हे परात्मन् ! भूत-भविष्यत् जो कुछ भी है, वह आपसे भिन्न नहीं है। आप ही व्यक्त तथा अव्यक्त रूप हैं, समष्टि और व्यष्टि रूप भी आप ही हैं, आप ही सर्वज्ञ, सबके देखने वाले, सर्वशक्तिमान तथा सभी ज्ञान, बल और ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं। आपका कभी ह्रास वृद्धि नहीं होता, आप ही स्वाधीन, अनादि और जितेन्द्रिय हैं, आप ही श्रम, तन्द्रा, भय, क्रोध और काम से भी परे हैं ॥४३-४७॥

निरवद्यः परः प्राप्तेर्निरधिष्टोऽक्षरः क्रमः।
सर्वेश्वरः पराधारो धाम्नां धामात्मकोऽक्षयः ॥४८
सकलावरणातीत निरालम्बनभावन।
महाविभूतिसंस्थान नमस्ते पुरुषोत्तम ॥४९
नाकारणात्कारणाद्वा कारणाकारणान्न च।
शरीरग्रहणं वापि धर्मत्राणाय केवलम् ॥५०
इत्येवं संस्तवं श्रुत्वा मनसा भगवानजः।
ब्रह्माणमाह प्रीतेन विश्वरूपं प्रकाशयन् ॥५१
भो भो ब्रह्मंस्त्वया मत्तस्सह देवैर्यदिष्यते।
तदुच्यतामशेषं च सिद्धमेवावधार्यताम् ॥५२
ततो ब्रह्मा हरेर्दिव्यं विश्वरूपमवेक्ष्य तत्।
तुष्टाव भूयो देवेषु साध्वसावनतात्मसु ॥५३

आप निरवद्य, पर, अप्राप्य, अधिष्ठान-रहित और अव्याहत गति वाले, सर्वेश्वर, दूसरों के आधार, तेजों के तेज तथा विनाश-रहित हैं, आप सब आचरणों से परे, आश्रयहीनों के अवलम्ब तथा महा विभूतियों के आधार हैं, ऐसे आप पुरुषोत्तम को नमस्कार है ॥४९॥ आप किसी कारण से अकारण से अथवा कारण-अकारण दोनों से ही नहीं, किन्तु धर्म-रक्षा के हेतु अवतीर्ण होते हैं ॥५०॥ ब्रह्माजी के द्वारा की गई ऐसी स्तुति को सुनकर अजन्मा भगवान् ने अपना विश्वरूप प्रकट किया और ब्रह्माजी से हर्ष पूर्वक बोले ॥५१॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन् ! देवताओं सहित आपकी जो कामना हो, उसे सिद्ध हुई समझकर मुझसे

कहो ॥५२॥ पराशरजी ने कहा—भगवान् विष्णु के उस दिव्य विश्व-रूप को देखकर देवगण विनीत हो गये और ब्रह्माजी ने उनकी इस प्रकार स्तुति की ॥५३॥

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः सहस्रबाहो बहुवक्त्रपाद ।
नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्तिविनाशसंस्थानकराप्रमेय ॥५४
सूक्ष्मातिसूक्ष्मातिबृहत्प्रमाण गरीयसामप्यतिगौरवात्मन् ।
प्रधानबुद्धीन्द्रियवत्प्रधानमूलात्परात्मन्भगवन्प्रसीद ॥५५
एषा मही देव महीप्रसूतैर्महासुरैः पीडितशैलबन्धा ।
परायणं त्वां जगतामुपैति भारावतारार्थमपारसार ॥५६
एते वयं वृत्ररिपुस्तथाय नासत्यदस्रो वरुणस्तथैव ।
इमे च रुद्रा वसवस्यसूर्यास्समीरणाग्निप्रमुखास्तथान्ये ॥५७
सुरास्समस्तास्सुरनाथ कार्यमेभिर्मया यच्च तदीश सर्वम् ।
आज्ञापयाज्ञां परिपालयन्तस्तवैव तिष्ठाम सदास्तदोषाः ॥५८
एवं संस्तूयमानस्तु भगवान्परमेश्वरः ।
उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने ॥५९
उवाच सुरानेतौ मत्केशो वसुधातले ।
अवतीर्य भुवो भार क्लेहानिं करिष्यतः ॥६०

ब्रह्माजी ने कहा—हे सहस्रबाहो ! हे अनन्त मुख एवं अनन्त पाद वाले प्रभो ! आपको नमस्कार है। हे सृष्टि स्थिति और प्रलय करने वाले अप्रमेय ईश्वर ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥५४॥ हे प्रभो ! आप सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, अत्यन्त वृहद् तथा भारी से भारी हैं, प्रधान, महत्तत्व और अहंकार में मूलभूत पुरुषों से भी परे हैं, आप हम पर प्रसन्न हों ॥५५॥ हे देव ! इस पृथिवी के शैल बन्धन, इस पर उत्पन्न हुए महान् दैत्यों के भार से ढीले होते जा रहे हैं, इसलिए उस बोझ को उतरवाने की प्रार्थना सहित वह आपकी शरण में उपस्थित हुई है ॥५६॥ हे देवताओं के स्वामिन् ! मैं, इन्द्र, अश्विनीकुमार, वरुण, रुद्र, वसु, सूर्य, वायु, और अग्नि आदि जो भी देवता यहाँ उपस्थित हैं, उनके करने कार्यों का इन्हें निर्देश करिये। हे प्रभो ! हम सब आपकी आज्ञा में चल

कर ही सब दोषों से छुटकारा प्राप्त कर सकेंगे ॥५७-५८॥ श्री पराशर जी ने कहा— हे महामुने ! इस प्रकार स्तुत हुए भगवान् विष्णु ने अपने दो केश उखाड़े जिनमें एक श्वेत और दूसरा काला था ॥५९॥ फिर उन्होंने देवताओं से कहा— मेरे यह दोनों बाल पृथिवी पर अवतीर्ण होकर उसका भार उतारेंगे ॥६०॥

सुराश्च सकलास्स्वांशैरवतीर्य महीतले ।
कुर्वन्तु युद्धमुन्मत्तैः पूर्वोत्पन्नैर्महासुरैः ॥६१
ततः क्षयमशेषावते दैतेया धरणीतल ।
प्रयास्यन्ति न सन्देहो मद्दृक्पातविचूर्णिताः ॥६२
वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा ।
तत्रायमष्टमो गर्भो मत्केशो भविता सुराः ॥६३
अवतीर्य च तत्रायं कंसं घातयिता भुवि ।
कालनेमि समुद्भूतमित्युक्त्वान्तर्दधे हरिः ॥६४
अदृश्याय ततस्तस्मै प्रणिपत्य महामुने ।
मेरुपृष्ठं सुरा जग्मुरवतेरुश्चं भूतले ॥६५
कंसाय चाष्टमो गर्भो देवक्या धरणीधरः ।
भविष्यतीत्याचचक्षे भगवन्नारदो मुनिः ॥६६
कंसोऽपि तदुपश्रुत्य नारदात्कुपितस्ततः ।
देवकीं वसुदेवं च गृहे गुप्तावधारयत् ॥६७

अब सब देवताओं को अंशों सहित पृथिवी पर प्रकट होकर पहिले ही उत्पन्न हुए असुरों से संग्राम करना चाहिए ॥६१॥ तब मेरे दृष्टि-पात मात्र से निस्तेज हुए वे दैत्य अवश्य ही नष्ट होंगे ॥६२॥ वसुदेव जी की देवकी नाम की पत्नी के आठवें गर्भ रूप में मेरे इस श्याम केश का अवतार होगा ॥६३॥ इस प्रकार अवतरित हुआ वह केश ही कस रूप में उत्पन्न हुए कालनेमि को मारेगा । यह कहकर भगवान् वहीं अंतर्धान हो गये ॥६४॥ हे महामुने ! भगवान् विष्णु को अदृश्य होता हुआ देखकर सब देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया और सुमेरु पर्वत पर चले गये । फिर उन्होंने पृथ्वी पर देह धारण किया ॥६५॥ इसी

अवसर पर महर्षि नारद ने कंस के पास जाकर कहा कि देवकी के आठवें गर्भ के रूप में भगवान् विष्णु अवतीर्ण होंगे ॥६६॥ नारद जी की बात सुनकर कंस क्रोधित हुआ और उसने वसुदेव को कारागार में डाल दिया ॥६७॥

वसुदेवेन कंसाय तेनैवोक्तं यथा पुरा ।
तथैव वसुदेवोऽपि पुत्रमर्पितवान्द्विजः ॥६८
हिरण्यकशिपोः पुत्राष्षड् गर्भा इति विश्रुताः ।
विष्णुप्रयुक्ता तान्निद्रा क्रमाद्गर्भानियोजयत् ॥६९
योगनिद्रा महामाया वैष्णवी मोहित यया ।
अविद्यया जगत्सर्वं तामाह भगवान्हरिः ॥७०
निद्रेगच्छ ममादेशात्पातालतलसंश्रयान् ।
एकैकत्वेन षड् गर्भान्देवकीजठरं नय ॥७१
हतेषु तेषु कसेन शेषाख्योऽशस्ततो मम ।
अं शांशेनोदरे तस्यांस्सप्तमः सम्भविष्यति ॥७२
गोकुले वसुदेवस्य भार्यान्या रोहिणी स्थिता ।
तत्यास्य सम्भूतिसमं देवि नेयस्त्वयोदरम् ॥७३
सप्तमो भोजराजस्य भयाद्रोधोपरोधतः ।
देवक्याः पतितो गर्भ इति लोको वद्रिष्यति ॥७४
गर्भ संकर्षण तसोऽथ लोके संकर्षणेति वै ।
संज्ञामवाप्स्यते वीरश्वेताद्रिशिखरोपमः ॥७५

हे प्रिय ! वसुदेव जी अपने पूर्व वचनों के अनुसार, अपने प्रत्येक पुत्र को कंस के लिए अर्पित कर दिया ॥५८॥ सुनते हैं कि देवकी के प्रथम छः गर्भ हिरण्यकशिपु के पुत्र थे, विष्णु भगवान् द्वारा प्रेरित योगनिद्रा उन्हें गर्भ में स्थापित करती रही थी ॥६९॥ जिस अविद्या स्वरूपिणी योगमाया से सम्पूर्ण विश्व मोहित है, वही भगवान् की माया है, उससे भगवान् विष्णु ने कहा ॥७०॥ श्री भगवान् बोले—हे निद्रे ! तू यहाँ से जाकर पाताल में स्थित छः गर्भों को एक-एक करके देवकी के गर्भ में स्थापित कर ॥७१॥ जब कंस उन सबका वध कर डालेगा

तब मेरा अंश रूप शेष अपने अंशांशों के सहित देवकी का सातवाँ गर्भ होगा ॥७२॥ वसुदेव जी की एक दूसरी पत्नी रोहिणी गोकुल में निवास करती हैं, उस सातवें गर्भ को ले जाकर तू उसी की कोख में स्थापित कर देना, जिससे कि वह उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ प्रतीत हो ॥७३॥ उस गर्भ के विषय में सब लोग यही समझेंगे कि कारागृह में पड़ी हुई देवकी का सातवाँ गर्भ कंस के भय से गिर गया ॥७४॥ जिसमें शुभ्र पर्वत शिखर के समान वीर पुरुष का गर्भ से आकर्षण होने के कारण 'संकर्षण' नाम पड़ेगा ॥७५॥

ततोऽहं सम्भविष्यामि देवकीजठरे शुभे ।
गर्भे त्वया यशोदाया गन्तव्यमविलम्बितम् ॥७६
प्राक्टकाले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहं निशि ।
उत्पत्स्यामि नवुभ्यां तु प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि ॥७७
यशोदाशयने मां तु देवक्यास्त्वामनिन्दिते ।
मच्छक्तिप्रेरितमतिर्वसुदेवो नयिष्यति ॥७८
कंसश्च त्वामुपादाय देवि शैलशिलातले ।
प्रक्षेप्स्यत्यन्तरिक्षे च संस्थानं त्वमवाप्स्यसि ॥७९
ततस्त्वां शतहक्छक्रः प्रणम्य मम गौरवात् ।
प्रणिपातानतशिरा भगिनीत्वे ग्रहीष्यति ॥८०
त्वं च शुम्भनिशुम्भादीन्हत्वा दैत्यान्सहस्रशः ।
स्थानैरनेकैः पृथिवीमशेषां मण्डयिष्यसि ॥८१
त्यं भूतिः सन्नतिः क्षान्तिः कान्तिद्यौः पृथिवी धृतिः ।
लज्जा पुष्टिरुषा या तु काचिदन्या त्वमेव सा ॥८२

हे शुभे ! फिर मैं देवकी के उदर में आठवाँ गर्भ होऊँगा उस समय तू भी यशोदा के गर्भ में स्थित हो जाना ॥७६॥ वर्षा ऋतु के भादों मास की कृष्णाष्टमी को रात्रिकाल में अवतीर्ण होऊँगा और तुझे नवमी के प्राप्त होने पर जन्म लेना है ॥७७॥ उस समय मेरी प्रेरणा से वसुदेव जी की मति ऐसी हो जायगी, जिससे वह मुझे यशोदा के शयनागार में पहुँचाकर तुझे देवकी के पास ले जायेंगे ॥७८॥ हे देवि !

फिर कंस तुझे पत्थर की शिला पर दे मारेगा और तू पछाड़ी जाते ही अन्तरिक्ष में चली जायगी ॥७९॥ उस समय हजार नेत्र वाला इन्द्र मेरी महिमा से तुझे वहिन मानता हुआ प्रणाम करेगा ॥८०॥ तू भी शुम्भ, निशुम्भादि हजारों दैत्यों का वध करती हुई अपने अनेक स्थान बनाकर पृथिवी को अलंकृत करेगी ॥८१॥ तू भूति, सन्नति, क्षान्ति, कान्ति, आकाश और पृथिवी है तथा तू ही धृति, लज्जा एवं उषा है अथवा इनके अतिरिक्त भी जो कोई शक्ति है, वह सब कुछ तू ही है ॥८२॥

ये त्वामार्येति दुर्गेति वेदगर्भाम्बिकेति च ।
भद्रेति भद्रकालीति क्षेमदा भाग्यदेति च ॥८३
प्रातश्चैवापराह्णे च स्तोष्यन्तन्त्यानम्रमूर्त्तयः ।
तेषां हि प्रार्थितं सर्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥८४
सुरामांसोपहारैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च पूजिता ।
नृणामशेषकामांस्त्वं प्रसन्ना सम्प्रदास्यसि ॥८५
ते सर्वे सर्वदा भद्रे मत्प्रसादादसंशयम् ।
असन्दिग्धा भविष्यन्ति गच्छ देवि यथोदितम् ॥८६

प्रातःकाल और अपराह्न काल में जो मनुष्य तेरी स्तुति करते हुए विनम्रता से तुझे आर्ये ! दुर्गे ! वेदगर्भे ! अम्बिके ! भद्रे ! भद्रकाली ! कल्याण दायिनी, भाग्य प्रदायिनी ! आदि कहकर पुकारेंगे, उनकी सभी अभिलाषाएँ मेरी कृपा से पूर्ण हो जायेंगी ॥८३-८४॥ भोज्य-भक्ष्य पदार्थों द्वारा पूजन किये जाने पर प्रसन्न हुई तू सब मनुष्यों की कामनाएँ सिद्ध करेगी ॥८५॥ तेरे द्वारा प्रदत्त वे सभी काम्य-फल मेरी कृपा से अवश्य ही सिद्ध होंगे । इसलिए हे देवि ! तू मेरे द्वारा निर्दिष्ट स्थान को गमन कर ॥८६॥

दूसरा अध्याय

यथोक्तं सा जगद्धात्री देवदेवेन वै तथा ।
षड्गर्भगर्भविन्यासं चक्रे चान्यस्य कर्षणम् ॥१

सप्तमे रोहिणीं गर्भे प्राप्ते गर्भं ततो हरिः ।
लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश ह ।।२
योगनिद्रा यशोदायास्तस्मिन्नेव तथा दिने ।
सम्भूता जठरे यद्वद्यथोक्त परमेनिष्ठना ।।३
ततो ग्रहगस्सम्यक्प्रचचार दिवि द्विज ।
विष्णोरंशे भूवं याते ऋतवश्चाबभुश्शुभाः ।।४
न सेहे देवकीं द्रष्टुं कश्चिदप्यतितेजसा ।
जाज्वल्यमानां तां दृष्ट्वा मनांसि क्षोभमाययुः ।।५
अदृष्टाः पुरुषैस्स्त्रीभिर्देवकी देवतागणाः ।
विभ्राणां वपुषा विष्णुं तुष्टुवुस्तामहर्निशम् ।।६

श्री पाराशर जी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! देवाधिदेव भगवान् विष्णु के आदेशानुसार जगद्धात्री योगमाया ने देवकी के गर्भ में छः गर्भ स्थित किए और सातवें गर्भ को खींच लिया ।।१।। इस प्रकार जब सातवाँ गर्भ खिचकर रोहिणी के उदर में स्थापित हो गया तब भगवान् तीनों लोकों की हित-कामना से देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हुए ।।२।। भगवान् विष्णु के कथनानुसार ही योग माया ने उसी दिन यशोदा के गर्भ में प्रवेश किया ।।३।। हे द्विज जब भगवान् का यह अंश पृथिवी पर अवस्थित हुआ, तभी से आकाशस्थ ग्रहों की गति नियमित हो गई और ऋतुएँ भी मंगलमयी होकर सुशोभित होने लगीं ।।४।। उस समय देवकी इतनी तेजोमयी हो गई थीं, उनकी ओर देख सकना भी कठिन था, उन्हें देख कर मनों में क्षोभ होता था ।।५।। उस समय देवगण किसी स्त्री-पुरुष को दिखाई न दे सके, इस प्रकार अप्रकट रहकर दिन-रात देवकी की स्तुति करने लगे ।।६।।

प्रकृतिस्त्वं परा सूक्ष्मा ब्रह्मगर्भाभवः पुरा ।
ततो वाणी जगद्धातुर्वेदगर्भासि शोभने ।।७
सृज्यस्वरूपगर्भासि सृष्टिभूता सनातने ।
बीजभूता तु सर्वस्य यज्ञभूताभवस्त्रयी ।।८

फलगर्भा त्वमेवेज्या वह्निगर्भा तथा रणिः ।
आदितिर्देवगर्भा त्व दैत्यगर्भा तथा दितिः ॥९
ज्योत्स्ना वासरगर्भा त्वं ज्ञानगर्भासि सन्नतिः ।
नयगर्भा परा नीतिर्लज्जा त्वं प्रश्रयोद्वहा ॥१०
कामगर्भा तथेच्छा त्वं तुष्टिः सन्तोषगर्भिणी ।
मेघा च बोधगर्भासि धैर्यगर्भोद्वहा धृतिः ॥११

देवगण ने कहा—हे शोभने ! पहिले तू ब्रह्म-प्रतिविम्व को धारण करने वाली मूल प्रकृति थी, विश्वसृष्टा की वेदगर्भा वाणी हुई ॥७॥ हे सनातने ! तू ही उत्पन्न होने योग्य पदार्थों की कारण रूपा है, तू ही सब की बीजभूता, यज्ञमयी और वेदत्रयी है ॥८॥ तू ही फल को उत्पन्न करने वाली यज्ञ क्रिया तथा अग्नि की उत्पादिका अरणि है । तूं ही देवमाता अदिति और दैत्यजननी दिति है ॥९॥ तू ही दिन को प्रकट करने वाली ज्योत्स्ना, ज्ञान को उत्पन्न करने वाली गुरु-सुश्रूषा, न्याय-गर्भा परमनीति और विनय को उत्पन्न करने वाली लज्जा है ॥१०॥ तू ही काल को उत्पन्न करने वाली इच्छा, सन्तोष को उत्पन्न करने वाली तुष्टि, बोध-दायिनी मेधा और धैर्यगर्भा धृति है ॥११॥

ग्रहर्क्षतारकागर्भा द्यौरस्याखिलहैतुकी ।
एता विभूतयो देवि तथान्याश्च सहस्रशः ॥१२
तथासंख्या जगद्धात्रि साम्प्रतं जठरे तव ।
समुद्राद्रिनदीद्वीपपवनपत्तनभूषणा ॥१३
ग्रामखर्वटखेटाढ्या समस्ता पृथिवी शुभे ।
समस्तवह्नयोऽम्भांसि सकलाश्च समीरणाः ॥१४
ग्रहर्क्ष तारकाचित्रं विमानशतसंकुलम् ।
अवकाशमशेषस्य यद्ददाति नभःस्थलम् ॥१५
भूर्लोकश्च भुवर्लोकस्स्वर्लोकोऽथ महर्जनः ।
तपश्च ब्रह्मलोकश्च ब्रह्माण्डमखिलं शुभे ॥१६
तदन्तरे स्थिता देवा दैत्यगन्धर्वचारणाः ।
महोरगास्तथा यक्षा राक्षसाः प्रेतगुह्यकाः ॥१७

मनुष्याः पशवश्चान्ये च जीवा यशस्विनि ।
तैरन्तः स्थैरनन्तोऽसौ सर्वगः सर्वभावनः ॥१८
रूपकर्मस्वरूपाणि न परिच्छेदगोचरे ।
यस्याखिलप्रमाणानि स विष्णुर्गर्भगस्तव ॥१९
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा विद्या सुधा त्वं ज्योतिरम्बरे ।
त्वं सर्वलोकरक्षार्थमवतीर्णा महीतले ॥२०
प्रसोद देवि सर्वस्य जगतश्शं शुभे कुरु ।
प्रीत्या तं धारयेशानं धृतं येनाखिलं जगत् ॥२१

तू ही ग्रहों, नक्षत्रों, और तारों को धारण करने वाला आकाश है । यह तथा अन्यान्य हजारों विभूतियाँ तेरे जठर में स्थित हैं । समुद्र, पर्वत, नदी, द्वीप, वन और नगर, ग्राम खर्वट खेतादि से सुशोभित सम्पूर्ण पृथिवी, सभी अग्नियाँ, जल, सब पवन ग्रह-नक्षत्र और तारों से चित्रित हुआ, सैकड़ों विमानों से परिपूर्ण और सबको अवकाश देने वाला आकाश, भूर्लोक, भुवर्लोक, मह, जन, तप और ब्रह्मलोक तक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और उसमें स्थित देवता, दैत्य, गधर्व, चारण, नाग, यक्ष, राक्षस, प्रेत, गुह्यक, मनुष्य, पशु तथा अन्यान्य प्राणियों के कारण रूप जो सर्वत्र गमनशील और सर्व भावन श्री अनन्त भगवान् हैं तथा जिनके रूप, कर्म, स्वभाव और समस्त परिणाम परिच्छेद से परे हैं वही भगवान् विष्णु तेरे गर्भ में प्रतिष्ठित हैं ॥१२-१९॥ स्वाहा, स्वधा, विद्या, सुधा और आकाश में स्थित ज्योति तू सभी लोकों की रक्षा के लिये ही पृथिवी पर अवतीर्ण हुई हैं ॥२०॥ हे देवि ! तू प्रसन्न होकर सम्पूण विश्व का मंगल कर । जिस भगवान् ने इस सम्पूर्ण विश्व को धारण किया हुआ है, उसे तू भी प्रीति सहित धारण कर ॥२१॥

तीसरा अध्याय

एवं संस्तूयमाना सा देवैर्देवमधारयत् ।
गर्भेण पुण्डरीकाक्षं जगतस्त्राणकारणम् ॥१

ततोऽखिलजगत्पद्मबोधायाच्युतभानुना ।
देवकीपूर्व सन्ध्यायामाविर्भूतं महात्मना ॥२
तज्जन्मदिनमत्यर्थमाह्लाद्यमलदिङ्मुखम् ।
बभूवः सर्वलोकस्य कौमुदी शशिनो यथा ॥३
सन्तस्सन्तोषमधिकं प्रशमं चण्डमारुताः ।
प्रसादं निम्नगा याता जायमाने जनार्दने ॥४
सिन्धवो निजशब्देन वाद्यं चक्रुर्मनोहरम् ।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥५
ससृजुः पुष्पवर्षाणि देवा भुव्यन्तरिक्षगाः ।
जज्वलुश्चाग्नयश्शान्ता जायमाने जनार्दने ॥६
मन्दं जगर्जुर्जलदाः पुष्पवृष्टिमुचो द्विज ।
अर्द्धरात्रेऽखिलाधारे जायमाने जनार्दने ॥७

श्री पराशर जी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुत हुई देवकी ने जगत् की रक्षा के निमित्त भगवान् को अपने गर्भ में धारण किया ॥१॥ फिर सम्पूर्ण विश्व रूप कमल के विकासार्थ देवकी रूपिणी सन्ध्या में भगवान् अच्युत रूप भास्कर प्रकट हुए ॥२॥ भगवान् का वह जन्म-दिवस चन्द्रमा की चाँदनी के समान सम्पूर्ण विश्व को आनन्दित करने वाला हुआ तथा उस समय सम्पूर्ण दिशाएँ अत्यन्त स्वच्छ हो गईं ॥३॥ भगवान् का जन्म होने पर साधुजनों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई, प्रचन्ड पवन शान्त हो गया और सभी नदियाँ निर्मल हो गईं ॥४॥ समुद्र का शब्द भी मनोहर बाजों का घोष बन गया, गंधर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥५॥ भगवान् के उत्पन्न होने पर आकाश में गमन करने वाले देवता पुष्प वृष्टि करने लगे और शान्त यज्ञाग्नि पुनः प्रज्वलित हो उठी ॥६॥ उस आधी रात के समय प्रकट हुए जनार्दन पर पुष्प वृष्टि करते हुए मेघ मन्द घोष करने लगे ॥७॥

फुल्लेन्दीवरपत्राभं चतुर्बाहुमुदीक्ष्यतम् ।
श्रीवत्सवक्षसं जातं तुष्टावानकदुन्दुभिः ॥८

अभिष्टूय च तं वाग्भिः प्रसन्नाभिर्महामतिः ।
विज्ञापयामास तदा कंसाद्भीतो द्विजोत्तम ॥६
जातोऽसि देवदेवेश शंखचक्रगदाधरम् ।
दिव्यरूपमिदं देव प्रसादेनोपसंहार ॥१०
अद्यैव देव कंसोऽयं कुरुते मम घातनम् ।
अवतीर्णं इति ज्ञात्वा त्वदस्मिन्मम मन्दिरे ॥११
योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो
गर्भेऽपि लोकान्वपुषा बिभर्ति ।
प्रसीदतामेष स देवदेवो
यो माययाविष्कृतबालरूपः ॥१२
उपसंहर सर्वात्मन्रूपमेतच्चतुर्भुजम् ।
जानातु मावतारं ते कंसोऽयं दितिजन्मजः ॥१३
स्तुतोऽहं यत्त्वया पूर्वं पुत्रार्थिन्यातदद्य ते ।
सफलं देवि सञ्जातं जातोऽहं यत्तवोदरात् ॥१४

विकसित कमल-दल जैसी कान्ति वाले, चार भुजाओं और हृदय में श्री वत्स चिह्न वाले भगवान् को उत्पन्न हुआ देखकर वसुदेवजी उनकी स्तुति करने लगे ॥८॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! महामति वसुदेवजी ने प्रसन्न करने वाली वाणी से स्तुति करते हुए कंस के भय के कारण इस प्रकार कहा ॥६॥ वसुदेवजी बोले—हे देवदेवेश ! यद्यपि आप उत्पन्न हुए हैं, फिर भी अपने इस शंख चक्र-गदा युक्त दिव्य स्वरूप को छुपा लीजिये ॥१०॥ हे प्रभो ! आपके मेरे घर में उत्पन्न होने की सूचना प्राप्त होते ही कंस मेरे विनाश में तत्पर होगा ॥११॥ देवकी जी ने कहा—जो अखिल विश्वेश्वर अनन्त रूप मेरे गर्भ में स्थित होकर भी सब लोकों के धारण करने वाले हैं और जिन्होंने अपनी ही माया से यह बाल रूप धारण किया है, वह देवदेवेश्वर भगवान् हम पर प्रसन्न हों ॥१२॥ हे सर्वात्मन् ! अपने इस चतुर्भुज रूप को छुपा लीजिए, जिससे दैत्यवंश कंस को आपके इस अवतार का ज्ञान न हो सके ॥१३॥ श्री

भगवान् ने कहा—हे देवि ! पूर्व जन्म में मुझसे पुत्र का मनोरथ करने के कारण ही मैं तेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ ॥१४॥

इत्युक्त्वा भगवांस्तूष्णीं बभूव मुनिसत्तम ।
वसुदेवोऽपि तं रात्रावादाय प्रययौ बहिः ॥१५
मोहिताश्चाभवंस्तत्र रक्षिणो योगनिद्रया ।
मथुराद्वारपालाश्च व्रजत्यानकदुन्दुभौ ॥१६
वर्षतां जलदानां च तोयमत्युल्वणं निशि ।
संवृत्यानुययौ शेषः फणैरानकदुन्दुभिम् ॥१७
यमुनां चातिगम्भीरां नानावर्त्तशताकुलाम् ।
वसुदेवो वहन्विष्णुं जानुमात्रवहां ययौ ॥१८
कंसस्य करदानाय तत्रैवाभ्यागतांस्तटे ।
नन्दादीन् गोपवृद्धांश्च यमुनाया ददर्श सः ॥१९
तस्मिन्काले यशोदापि मोहिता योगनिद्रया ।
तामेव कन्यां मैत्रेय प्रसूता मोहते जने ॥२०
वसुदेवो हि विन्यस्य बालमादाय द्वारिकाम् ।
यशोदा शयनात्तूर्णमाजगामामितद्युतिः ॥२१
ददृशे च प्रबुद्धा सा यशोदा जातमात्मजम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं तयोऽत्यर्थं मुदं ययौ ॥२२

श्री पराशरजी ने कहा—हे मुनिसत्तम ! यह कहकर भगवान् चुप हो गये और उस रात्रिकाल में ही वसुदेवजी उन्हें लेकर बाहर चल दिये ॥१५॥ जिस समय वसुदेवजी जा रहे थे, उस समय कारागार-रक्षक और मथुरापुरी के द्वार-रक्षक योगनिद्रा के वशीभूत होकर चेतना-हीन हो गये ॥१६॥ भगवान् शेष उस रात्रि काल में वर्षा करते हुए मेघों के जल को रोकने के लिये अपने फण को उनके ऊपर करके पीछे-पीछे गये ॥ ७॥ भगवान को ले जाते हुए वसुदेवजी ने विविध प्रकार की भँवरों से परिपूर्ण यमुनाजी को जिस समय पार किया, उस समय उनके घुटनों तक ही जल रह गया ॥१८॥ उसी समय कंस के लिए कर देने के निमित्त आये हुए नन्दादि वृद्धि गोपों को भी उन्होने यमुनाजी

के किनारे पर देखा ॥१९॥ हे मैत्रेय जी ! उस काल योगनिद्रा के प्रभाव से सभी मनुष्य मोहित हो गये थे, जिससे मोहित हुई यशोदा ने भी कन्या उत्पन्न की ॥२०॥ तब अत्यन्त तेजस्वी वसुदेवजी ने अपने बालक को वहाँ शयन कराकर उस कन्या को उठाया और शयनागार से बाहर निकल आये ॥२१॥ जब यशोदा की नींद खुली तब उसने श्याम वर्ण वाला पुत्र उत्पन्न हुआ देखा, तो उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई ॥२२॥

आदाय वसुदेवोऽपि दारिकां निजमन्दिरे ।
देवकीशयने न्यस्य यथापूर्वमतिष्ठत ॥२३
ततो बालध्वनि श्रुत्वा रक्षिणोऽसहसोत्थिताः ।
कंसायावेदयामासुर्देवकीप्रसवं द्विज ॥२४
कसस्तूर्णमुपेत्यैनां ततो जग्राह बालिकाम् ।
मुञ्च मुञ्चेति देवक्या सन्नकण्ठ्या निवारितः ॥२५
चिक्षेप च शिलापृष्ठे सा क्षिप्ता बियति स्थिता ।
अवाप रूपं सुमहत्सायुधाष्टमहाभुजम् ॥२६
प्रजहास तथैवोच्चैः कंसं च रुषिताब्रवीत् ।
किं मया क्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां वधिष्यति ॥२७
सर्वस्वभूतो देवानामासीन्मृत्युपुरा च ते ।
तदेतत्सम्प्रधार्याशु क्रियतां हितमात्मनः ॥२८
इत्युक्त्वा प्रययौ देवी दिव्यस्रग्गन्धभूषणा ।
पश्यतो भोजराजस्य स्तुता सिद्धैर्विहायसा ॥२९

इधर कन्या को लेकर आये हुए वसुदेवजी ने उसे देवकी के शयनागार में शयन करा दिया और फिर पहिले के समान ही स्थित हो गये ॥२३॥ फिर बालक का रुदन सुनकर कारागार रक्षक सचेत हो गए और उन्होंने तुरन्त ही देवकी के सन्तान उत्पन्न होने की कंस को सूचना दी ॥२४॥ यह सुनते ही कंस ने शीघ्रतापूर्वक वहाँ जाकर उस कन्या को पकड़ लिया और देवकी के रोकने पर भी उसे शिला पर पछाड़ दिया। उसके ऐसा करते ही वह कन्या आकाश में जाकर शस्त्रास्त्र युक्त अष्ट

भुज रूप से स्थित हो गई ॥२५-२६॥ फिर उसने भीषण अट्टहास करते हुए क्रोध पूर्वक कंस से कहा—अरे कंस ! मुझे पछाड़ने से तेरा क्या-क्या बना ? तुझे मारने वाला तो उत्पन्न हो चुका है ॥२७॥ तेरे पूर्व जन्म में भी वही देवताओं के सर्वस्व भगवान् विष्णु तेरे लिए मृत्यु रूप थे, यह बात जानकर अब तू अपनी रक्षा का उपाय कर ॥२८॥ वह दिव्य-माला और मलयादि से विभूषिता तथा सिद्धों द्वारा स्तुता देवी यह कहकर, कंस के देखते-देखते आकाश मार्ग में अन्तर्धान हो गई ॥२९॥

चौथा अध्याय

कंसस्तदोद्विग्नमनाः प्राह सर्वान्महासुरान् ।
प्रलम्बकेशिप्रमुखानाहूयासुरपुङ्गवान् ॥१॥
हे प्रलम्ब महाबाहो केशिन् धेनुक पूतने ।
अरिष्टाद्यास्तथैवान्ये श्रूयतां बचन मम ॥२
मां हन्तुममरैर्यत्नः कृतः किल दुरात्मभिः ।
मद्वीर्यतापितान्वीरो न त्वेतान्गणयाम्यहम् ॥३
किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण किं हरेणैकचारिणा ।
हरिणा वापि किं साध्य छिद्रेष्वसुरघातिना ॥४
किमादित्यैः किं वसुभिरल्पवीर्यैः किमग्निभिः ।
किं वान्यैरमरैः सर्वैर्मद्बाहुबलनिर्जितैः ॥५
किं न दृष्टोऽमरपतिर्मया संयुगमेत्य सः ।
पृष्ठेनैव वहन्बाणानपागच्छन्न वक्षसा ॥६
मद्राष्ट्रे वारिता वृष्टिर्यदा शक्रेण किं तदा ।
मद्बाणाभिन्नै र्जलदैर्नापो मुक्ता यथेप्सिताः ॥७
किमुर्व्यामवनीपाला मद्बाहुबलभीरवः ।
न सर्वे सन्नति याता जरा सन्धमृते गुरुम् ॥८
अमरेषु ममावज्ञा जायते दैत्यपुङ्गवाः ।
हास्यं मे जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि ॥९

श्री पाराशरजी ने कहा—फिर खिन्न चित्त हुए कंस ने प्रलम्ब और केशी आदि अपने सभी प्रमुख असुरों को बुलाकर उनसे कहा ॥१॥ हे प्रलम्ब ! हे केशिन् ! हे धेनुक ! हे पूतने ! हे अरिष्ट ! तथा अन्यान्य वीरो ! मेरी बात सुनो ॥२॥ यह चर्चा फैल रही है कि दुष्ट देवताओं ने मेरा संहार करने की कोई योजना बनाई है। परन्तु मैं वीर पुरुष हूँ, इसलिये इन्हें कुछ भी नहीं समझता ॥३॥ अल्प वीर्य इन्द्र, एकांकी विचरण करने वाले रुद्र या छिद्र खोजकर असुरों को मारने वाले विष्णु उनके किस प्रयोजन को सिद्ध कर सकते हैं? ॥४॥ मेरे भुजबल से पीड़ित हुए आदित्यों, अल्प वीर्य वसुओं, अग्नियों और सब देवताओं के सम्मिलित प्रयत्न से भी मेरा क्या बिगड़ सकता है? ॥५॥ क्या तुम सबने यह नहीं देखा कि मुझसे युद्ध करता हुआ इन्द्र रणभूमि में पीठ दिखाकर और बाणों के आघात सहकर भाग गया था ॥६॥ इन्द्र ने जब मेरे राज्य में वर्षा करना रोक दिया था, तब क्या मेरे बाणों से बिंधे हुए बादलों ने वृष्टि नहीं की थी? ॥७॥ मेरे बड़े जरासन्धु के अतिरिक्त क्या अन्य सभी भूपाल गण मेरे भुजबल से डरकर मेरे सामने मस्तक नहीं झुकाते? ॥८॥ हे दैत्य पुङ्गवो ! देवताओं के प्रति मेरे हृदय में तिरस्कार भर रहा है और उन्हें मेरी हिंसा का उपाय करते हुए देखकर तो मुझे हँसी आ रही है ॥९॥

तथापि खलु दुष्टानां तेषामप्यधिकं मया ।
अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम् ॥१०
तद्ये यशस्विनः केचित्पृथिव्यां ये च याजकाः ।
कार्यो देवापकाराय तेषां सर्वात्मना वधः ॥११
उत्पन्नश्चापि मे मृत्युर्भूतपुर्वस्स वै किल ।
इत्येयद्दारिका प्राह देवकीगर्भसम्भवा ॥१२
तस्माद्वालेषु च परो यत्नः कार्यो महीतले ।
यत्रोद्रिक्तं वलं बाले स हन्तव्यः प्रयत्नतः ॥१३
इत्याज्ञाप्यासुरान्कंसः प्रविश्याशु गृहं ततः ।
मुमोच वसुदेवं च देवकीं च निरोधतः ॥१४

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवैते मयाधुना ।
कोऽप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः ।।१५
तदलं परितापेन नूनं तद्भाविनो हि ते ।
अर्भका युवयोर्दोषाच्चायुषो यद्वियोजिताः ।।१६
इत्याश्वास्य विमुक्त्वा च कंसस्तौ परिशंकितः ।
अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठ प्रविवेश ततः स्वकम् ।।१७

फिर भी हे दैत्य श्रेष्ठो ! उन दुष्ट दुरात्मा देवगण का अहित करने के लिए अब मुझे अधिक प्रयत्नशील रहना चाहिए ।।१०।। इसलिए पृथिवी पर जो भी यशस्वी पुरुष यज्ञ करने वाले हों, उन्हें देवताओं के अहित के निमित्त मार डालना चाहिए ।।११।। देवकी के गर्भ से जो कन्या उत्पन्न हुई थी उसने यह भी कहा था कि मेरी पूर्व जन्म की मृत्यु उत्पन्न हो चुकी है ।।१२।। इसलिए पृथिवी पर उत्पन्न हुए बालकों पर विशेष दृष्टि रखते हुए, जो अधिक बलवान् बालक प्रतीत हो, उसका वध कर देना चाहिए ।।६३।। कंस ने असुरों को इस प्रकार की आज्ञा दी और कारागार में जाकर वसुदेव-देवकी को बन्धन मुक्त कर दिया ।।१४।। उस समय कंस ने कहा—आपके बालकों को अब तक मैंने व्यर्थ ही मारा, क्योंकि मेरा मारने वाला तो कोई अन्य बालक उत्पन्न हो चुका है ।।१५।। परन्तु उन बालकों का ऐसा ही भविष्य था, यह मानकर आप दुःखी न हों । आपका प्रारब्ध दोष भी उन बालकों की मृत्यु का कारण हुआ है ।।१६।। श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विजवर ! कंस ने उन दोनों को इस प्रकार धैर्य बँधाया और कारागार से छोड़कर स्वयं शंकाकुल होते हुए अपने अन्तर्गृह में पहुँचा ।।१७।।

—००—

पाँचवां अध्याय

विमुक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शकटं गतः ।
प्रहृष्टं दृष्टवान्नन्दं पुत्रो जातो ममेति वै ।।१

वसुदेवोऽपि तं प्राह दिष्टचा दिष्टचेति सादरम् ।
वार्द्धकेऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽयं तवाधुना ॥२
दत्तो हि वार्षिकस्सर्वो भवद्भिर्नृपतेः करः ।
दयर्थमागतास्तस्मान्नात्र स्थेय महाधनैः ॥३
यदर्थमागताः कार्यं तन्निष्पन्नं किमास्यते ।
भवद्भिर्गम्यतां नन्द तच्छीघ्रं निजगोकुलम् ॥४
ममापि वालकस्तत्र रोहिणीप्रभवो हि यः ।
स रक्षणीयो भवता यथायं तनयो निजः ॥५
इत्युक्ताः प्रययुर्गोपा नन्दगोपपुरोगमाः ।
शकटारोपितैर्भाण्डैः करं दत्त्वा महाबलाः ॥६
वसतां गोकुले तेषां पूतना बालघातिनी ।
सुप्तं कृष्णमुपादाय रात्रौ तस्मै स्तन ददौ ॥७

श्री पाराशरजी ने कहा—कारागार से मुक्त होते ही वसुदेवजी ने नन्दजी के पास जाकर उन्हें पुत्र-जन्म वाले समाचार से प्रसन्न होते हुए देखा ॥१॥ इस पर वसुदेवजी ने उनसे कहा कि आपके वृद्धावस्था में पुत्र उत्पन्न हुआ, यह अत्यन्त प्रसन्नता की वात हुई ॥२॥ आप लोग राजा का वार्षिक कर देने के लिए थे, वह दे चुके हैं, इसलिए आप जैसे धनिक को अब यहाँ अधिक ठहरना उचित नहीं है ॥३॥ जिस लिए आप यहाँ आये थे, जव वह कार्य हो ही चुका तो अव यहाँ किसलिए रुके हुए हैं ? हे नन्दजी ! अव आप अपने गोकुल को शीघ्र ही गमन कीजिए ॥४॥ वहाँ आप रोहिणी से उत्पन्न हुए मेरे पुत्र की भी अपने इस वालक के समान ही रक्षा करते रहना ॥५॥ छकड़ों मे भरकर लाये गये बर्तनों में से कर का धन चुका कर निश्चित हुए नन्दादि महाबली गोप वसुदेव जी की बात सुनकर वहां से चले गये ॥६॥ उनके गोकुल में निवास करते हुए भी वालकों का घात करने वाली पूतना ने रात्रि के समय सोते हुए कृष्ण को गोद में उठाया और उन्हें अपना स्तन पान कराने लगी ॥७॥

यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना यम्प्रयच्छति ।
तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं बालकस्योपहन्यते ॥८
कृष्णस्तु तत्स्तनं गाढं कराभ्यामतिपीडितम् ।
गृहीत्वा प्राणसहितं पपौ क्रोधसमन्वितः ॥९
सातिमुक्तमहारावा विच्छिन्नस्नायुबन्धना ।
पपात पूतना भूमौ म्रियमाणाति भीषणा ॥१०
तन्नादश्रुतिसन्त्रस्ताः प्रबुद्धास्ते व्रजौकसः ।
ददृशुः पूतनोत्सङ्गे कृष्णं तां च निपातिताम् ॥११
आदाय कृष्णं सन्त्रस्ता यशोदापि द्विजोत्तम ।
गोपुच्छभ्रामणेनाथ बालदोषमपाकरोत् ॥१२
गोपुरीषमुपादाय नन्दगोपोऽपि मस्तके ।
कृष्णस्य प्रददौ रक्षां कुर्वंश्चैतदुदीरयन् ॥१३

वह पूतना रात्रि काल में जिस बालक के मुख में अपना स्तन देती थी, वह बालक उसी समय मर जाता था ॥८॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके स्तन को क्रोध पूर्वक अपने हाथों से दबाया और उसके प्राण सहित ही स्तन-पान में तत्पर हुए ॥९॥ इससे पूतना के सभी स्नायु-बन्धन शिथिल हो गए और अत्यन्त भयंकर रूप वाली होकर घोर शब्द करती हुई धराशायिनी हुई ॥१०॥ उसके घोर चीत्कार को सुनकर भय के कारण व्याकुल हुए ब्रजवासी उठ पड़े और उन्होंने देखा कि मरी हुई पूतना की गोद में श्रीकृष्ण स्थित हैं ॥११॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! भय से त्रस्त हुई यशोदा ने तुरन्त ही कृष्ण को गोदमें उठाया और उन पर गो की पूँछ से झाड़ा देकर ग्रह-दोष को शान्त किया ॥१२॥ नन्द ने भी विधि पूर्वक रक्षा-स्तोत्र पढ़ते हुए, बालक के मस्तक पर गोबर लगाया ॥१३॥

रक्षतु त्वामशेषाणां भूतानां प्रभवो हरिः ।
यस्य नाभिसमुद्भूतपंकजादभवज्जगत् ॥१४
येन दंष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनिर्जगत् ।
वराहरूपधृग्देवस्स त्वां रक्षतु केशवः ॥१५

नस्वाङ्कुरविनिर्भिन्नवैरिवक्षस्स्थलो विभुः ।
नृसिंहरूपी सर्वत्र रक्षतु त्वां जनार्दनः ।।१६
वामनो रक्षतु सदा भवन्त यः क्षणादभूत् ।
त्रिविक्रमः क्रमाक्रान्तत्रैलोक्यः स्फुरदायुधः ।।१७
शिरस्ते पातु गोविन्दः कण्ठ रक्षतु केशवः ।
गुह्यं च जठरं विष्णुजंघं पादौ जनार्दनः
मुखं बाहू प्रवाहू च मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
रक्षत्वव्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्यय ।।१९
शार्ङ्ग चक्रगदापाणेश्शंखनादहताः क्षयम् ।
गच्छन्तु प्रेतकूष्माण्डराक्षसा ये तवाहिताः ।।२०
त्वां पातु दिक्षु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदनः ।
हृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वां महीधरः ।।२१
एवं कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालकः ।
शायितश्शकटस्याधो बालपर्याङ्किकातले ।।२२
ते च गोपा महद् दृष्टा पूतनाय कलेवरम् ।
मृतायाः परमः त्रासं विस्मयं च तदा ययुः ।।२३

नन्दजी ने कहा—जिनके नाभि-कमल से यह सम्पूर्ण संसार प्रकट हुआ है वे सभी भूतों के कर्त्ता भगवान् हरि तेरी रक्षा करें ।।१४।। जिनकी दाढ़ों के अगले भाग पर स्थित हुई पृथ्वी सम्पूर्ण विश्व को धारण करती है, वे वराह रूपी श्री केशव भगवान तेरी रक्षा करें ।।१५।। जिन्होंने अपने नखाग्र से ही शत्रु का वक्षःस्थल चीर दिया था, वे नृसिंह रूप धारी भगवान् जनार्दन तेरी सब ओर से रक्षा करें ।।१६।। जिन्होंने क्षणमात्र में शस्त्रास्त्र युक्त त्रिविक्रम रूप धारण कर अपने तीन पगों में ही तीनों लोकों को नाप लिया था, वे श्री वामन भगवान तेरी सदा रक्षा करें ।।१७। तेरे शिर की रक्षा गोविन्द करे, कण्ठ की रक्षा केशव करें, गुह्य और जठर की विष्णु तथा जांघों और पाँवों की रक्षा जनार्दन करें ।।१८।। तेरे मुख, बाहु, प्रबाहु, मन तथा सब इन्द्रियों की रक्षा अखण्ड ऐश्वर्यशाली एवं अव्यय भगवान श्री नारायण करें ।।१९।।

तेरे अनिष्ट कर्ता प्रेत, कूष्माण्ड, राक्षसादि जो हों वे सब शार्ङ्ग चक्रपाणि भगवान् विष्णु के शंखनाद से नाश को प्राप्त हों ॥२०॥ दिशाओं में भगवान वैकुण्ठ रक्षा करें, विदिशाओं में मधुसूदन, आकाश में हृषीकेश और पृथिवी में महीधर श्री शेष भगवान् तेरी रक्षा करें ॥२१॥

श्री पराशरजी ने कहा-नन्दजी ने इस प्रकार बालक का स्वस्तिवाचन किया और फिर उसे एक छकड़े के नीचे स्थित खटोले पर शयन करा दिया ॥२२॥ मरण को प्राप्त हुई उस पूतना के विशाल शरीर को देख कर उन सब गोपों को अत्यन्त भय और आश्चर्य हुआ ॥२३॥

छठा अध्याय

कदाचिच्छकटस्याधश्शयानो मधुसूदनः ।
चिक्षेप चरणावूर्ध्वं स्तन्यार्थी प्ररुरोद ह ॥१
तस्य पादप्रहारेण शकटं परिवर्तितम् ।
विध्वस्तकुम्भभाण्डं तद्विपरीतं पपात वै ॥२
ततो हाहाकृतं सर्वो गोपगोपीजनो द्विज ।
आजगामाथ ददृशे बालमुत्तानशायिनम् ॥३
गोपाः केनेति केनेदं शकटं परिवर्तितम् ।
तत्रैव बालकाः प्रोचुर्बालेनानेन पातितम् ॥४
रुदता दृष्टमस्माभिः पादविक्षेपपातितम् ।
शकटं परिवृत्तं वै नैतदन्यस्य चेष्टितम् ॥५
ततः पुनरतीवासन्गोपा विस्मयचेतसः ।
नंदगोपोऽपि जग्राह बालमत्यंतविस्मितः ॥६
यशोदा शकटारूढभग्नभाण्डपालिकाः ।
शकटं चार्चयामास दधिपुष्पफलाक्षतैः ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—एक समय छकड़े के नीचे शयन करते हुए बालक मधुसूदन ने स्तन-पान की इच्छा से रोते-रोते ऊपर की ओर

पैर मारा ॥१॥ उनके पैर के लगते ही छकड़ा उल्टा हो गया और उसमें रखे हुए घड़े आदि फूट गये तथा वह एक ओर को औंधा गिर पड़ा ॥२॥ हे द्विज ! उससे सब ओर हाहाकार मच उठा, सभी गोप-गोपियों ने वहाँ आकर बालक को सीधा शयन करते हुए देखा ॥३॥ तब गोपों ने पूछा कि इस छकड़े को किसने औंधा कर दिया ? इस पर वहाँ पहले से ही खेलते हुए बालकों ने उत्तर दिया कि इसी बालक ने लात मार कर गिराया है ॥४॥ हमने स्वयं देखा है कि इसने रोते-रोते ही छकड़े से लात मार दी, जिससे यह औंधा होकर गिर गया, और किसी ने भी यह कार्य नहीं किया है ॥५॥ यह सुनकर गोपों को बड़ा आश्चर्य हुआ और नन्द ने विस्मय पूर्वक श्रीकृष्ण को उठा लिया ॥६॥ फिर यशोदा ने उस छकड़े का तथा छकड़े में रखे हुए फूटे बर्तनों का दही, पुष्प, फल और अक्षत से पूजन किया ॥७॥

गर्गश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदितः ।
प्रच्छन्न एव गोपानां संस्कारानकरोत् तयोः ॥८
ज्येष्ठं च राममित्याह कृष्णं चैव तथावरम् ।
गर्गो मतिमतां श्रेष्ठो नाम कुर्वन्महामतिः ॥९
स्वल्पेनैव तु कालेन रिङ्गिणौ तौ तदाव्रजे ।
धृष्ठजानुकरौ विप्र बभूवतुरुभावपि ॥१०
करीषभस्मदिग्धाङ्गौ भ्रममाणावितस्ततः ।
न निवारयितुं शेके यशोदा तौ न रोहिणी ॥११
गोवाटमध्ये क्रीडन्तौ वत्सवाटं गतौ पुनः ।
तदहर्जातगोवत्सपुच्छाकर्षणतत्परौ ॥१२

तभी वसुदेवजी द्वारा प्रार्थना करने पर गर्गाचार्यजी ने गोकुल में आकर उन दोनों बालकों का नामकरण संस्कार किया ॥८॥ उन दोनों का नामकरण करते हुए गर्गाचार्य ने बड़े बालक का नाम राम और छोटे बालक का कृष्ण रखा ॥९॥ कुछ दिनों में ही वे दोनों बालक गौओं के गोष्ठ में घिसटते हुए घुटनों से चलने लगे ॥१०॥ जब वे गोबर और धूल

में लथपथ होकर इधर-उधर घूमते थे, तब उन्हें यशोदा और रोहिणी भी नहीं रोक पातीं ॥११॥ वे कभी गौओं के गोष्ठ में और कभी बछड़ों के बीच में चले जाते तथा नवजात बछड़ों की पूँछ पकड़कर खींचने लगते ॥१२॥

यदा यशोदा तौ वालवेकस्थानचरावुभौ।
शशाक नो तारयितुं क्रीडन्तावतिचञ्चलौ ॥१३
दाम्ना मध्ये ततो बद्ध्वा ववन्ध तमुलूखले।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमाह चेदमर्मर्षिता ॥१४
यदि शक्नोषि गच्छ त्वमयिचञ्चलचेष्टित।
इत्युक्त्वाथ निजं कर्म सा चकार कुटुम्बिनी ॥१५
व्यग्रायामथ तस्यां स कर्षमाण उलूखलम्।
यमलार्जुनमध्येन जगाम कमलेक्षणः ॥१६
कर्षता वृक्षयोर्मध्ये तिर्यग्यतमुलूखलम्।
भग्नावुत्तुङ्गशाखाग्रौ तेन तौ यमलार्जुनौ ॥१७
ततः कटकटाशब्दसमाकर्णनतत्परः।
आजगाम व्रजजनो ददर्श च महाद्रुमौ ॥१८
नवौद्गताल्पदन्तांशुसियहासं च बालकम्।
तयोर्मध्यगतं दाम्ना बद्धं गाढं यथोदरे ॥१९
ततश्च दामोदरतां स ययौ दामबंधनात् ॥२०

एक दिन की बात है—जब यशोदाजी उन एक साथ क्रीड़ा करने वाले वालकों को रोकने में असमर्थ रहीं तो उन्होंने निष्पाप कर्म वाले कृष्ण के कटि भाग को रस्सी से जकड़कर उलूखल से बाँध दिया और क्रोध सहित बोलीं ॥१३-१४॥ अरे चंचल ! अब तू इससे छूट सके तो छूट जा, यह कहकर यशोदाजी अपने अन्य कार्य में व्यस्त हो गईं ॥१५॥ जब वह गृह कार्य में लग गईं, तब पद्मलोचन श्रीकृष्ण उस उलूखल को खींचते हुए यमलार्जुन वृक्षों के मध्य में ले गये ॥१६॥ तथा उन दोनों वृक्षों के मध्य से तिरछे फँसे हुए उलूखल को खींचते

हुए उन्होंने उच्च शाखाओं वाले यमलार्जुन वृक्ष को उखाड़ कर गिरा दिया ।।१६।। तब उनके उखड़ कर गिरने के शब्द को सुनकर आये हुए व्रज-वासियों ने गिरे हुए उन दोनों विशाल वृक्षों को और उनके मध्य में कटि में रस्सी से बँधे हुए बालक कृष्ण को अपने छोटे-छोटे दाँतों से मृदु हास करते हुए देखा। दाम के उदर में बँधने के कारण तभी से उस बालक का नाम दामोदर हो गया।।१८—२०।।

गोपवृद्धास्ततः सर्वे नन्दगोपपुरोगमाः ।
मंत्रयामासुरुद्विग्ना महोत्पातातिभीरवः ।।२१
स्थानेनेहनः कार्यं व्रजामोऽन्यन्महावनम् ।
उत्पाता बहवो ह्यत्र दृश्यन्ते नाशहेतवः ।।२२
पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्ययः ।
विना वातादिदोषेण द्रुमयोः पतनं तथा ।।२३
वृन्दावनमितः स्थानात्तस्माद्गच्छाम मा चिरम् ।
यावद्भौममहोत्पातदोषो नाभिभवेद्व्रजम् ।।२४
इति कृत्वा मतिं सर्वे गमने ते व्रजौकसः ।
ऊचुस्स्वंस्वं कुलं शीघ्रं गम्यतां मा विलम्बथ ।।२५
ततः क्षणेन प्रययुः शकटैर्गोधनैस्तथा ।
यूथशो वत्सपालाश्च कालयन्तो व्रजौकसः ।।२६
द्रव्यावयवनिर्धूतं क्षणमात्रेण तत्तथा ।
काकभाससमाकीर्णं व्रजस्थानमभूद्द्विज ।।२७

तब नन्दादि सब वृद्ध गोपों ने उन महान् उत्पातों से डर कर परस्पर में परामर्श किया ।।२१।। अब इस स्थान से हमें कोई कार्य नहीं है, हम किसी अन्य महावन में चलें। क्योंकि यहाँ विनाश की कारण रूपा पूतना का आना शकट का औंधा होना, आँधी आदि के न होने पर भी वृक्षादि का गिर जाना आदि- अनेकों उत्पात देखे गये हैं ।।२२-२३।। इसलिए किसी भूमि सम्बन्धी महा उत्पात से इस व्रज के नष्ट होने से पहिले ही हम वहाँ से वृन्दावन के लिए प्रस्थान कर दें ।।२४।। इस प्रकार चलने का विचार स्थिर कर वे सभी ब्रजवासी अपने-अपने

कुटुम्बियों को शीघ्र ही चलने और विलम्ब न करने की बात कहने लगे ॥२५॥ फिर वे व्रजवासीगण समूहबद्ध होकर क्षणभर में ही गौओं और छकड़ों को साथ लेकर वहाँ से चल पड़े ॥२६॥ हे द्विज ! उनके जाने पर वहाँ अवशिष्ट पड़ी हुई वस्तुओं वाली वह व्रज भूमि क्षण भर में ही कौए और मांसादि पक्षियों से युक्त हो गई ॥२७॥

वृन्दावनं भगवता कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
शुभेन मनसा ध्यातं गवां सिद्धिमभीप्सता ॥२८
ततस्तत्रातिरूक्षेऽपि धर्मकाले द्विजोत्तम ।
प्रावृट्काल इवोद्भूतं नवशष्पं समन्ततः ॥२९
स समावासितः सर्वो ब्रजो वृन्दावने ततः ।
शकटीवाटपर्यन्तश्चन्द्राद्धाकारसंस्थितिः ॥३०
वत्सपालौ च संवृत्तौ रामदामोदरौ ततः ।
एकस्थानस्थितौ गोष्ठे चेरतुर्बाललीलया ॥३१
बर्हिपत्रकृतापीडौ वन्यपुष्पावतंसकौ ।
गोपवेणुकृतातोद्यपत्रवाद्यकृतस्वनौ ॥३२
काकपक्षधरौ बालौ कुमाराविव पावकौ ।
हसन्तौ च रमन्तौ च चरेतुः स्म महावनम् ॥३३
क्वचिद्वहन्तावन्योन्यं क्रीडमानौ तथा परैः ।
गोपपुत्रैस्समं वत्सांश्चारयन्तौ बिचेरतुः ॥३४
कालेन गच्छता तौ तु सप्तवर्षौ महाव्रजे ।
सर्वस्य जगतः पालौ वत्सपालौ बभूवतुः ॥३५

फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने गौओं की प्रसन्नता के लिये अपने शुद्ध चित्त से वृन्दावन का ध्यान किया ॥२८॥ हे द्विजोत्तम ! उनके ऐसा करने से अत्यन्त रूखे ग्रीष्म काल में वर्षाकाल के समान ही नवीन घास वहाँ उत्पन्न होने लगी ॥२९॥ तब चारों ओर से अर्द्ध चन्द्राकार में छकड़ों की पंक्ति लगाकर बसाया गया ॥३०॥ इसके पश्चात् राम और कृष्ण भी बछड़ों के पालनकर्त्ता होकर एक स्थान में स्थित हुए गौओं के गोष्ठ में बाल क्रीड़ा करने लगे ॥३१॥ सिर पर मोर पंख का

मुकुट और कानों में वन के पुष्पों के कुन्डल धारण कर ग्वालोचित बंशी आदि की ध्वनि करते और पत्तों के वाजे बजाते हुए, स्कंध के कुमारों के समान हास-परिहास करते हुए वे दोनों बालक उस महावन में क्रीड़ा करने लगे ॥३२-३३॥ वे दोनों कभी तो परस्पर ही एक दूसरे पर चढ़ जाते और कभी अन्य गोप बालकों के साथ खेलते और कभी बछड़ों को चराते हुए विचरण करते रहते थे ॥३४॥ इस प्रकार उस महाव्रज में निवास करते हुए उन्हें कुछ काल व्यतीत हो गया और वे सम्पूर्ण लोकों के पालन वत्सपाल रूप में सात वर्ष की आयु के हो गये ॥३५॥

प्रावृट्कालस्ततोऽतीवमेघौघस्थगियाम्बरः ।
बभूव वारिधाराभिरैक्यं कुर्वन्दिशामिव ॥३६
प्ररूढनवशष्पाढ्या शक्रगोपाचितामही ।
तथा मारकतीवासीत्पद्मरागविभूषिता ॥३७
ऊहुरून्मार्गवाहीनि निम्नगाम्भांसि सर्वतः ।
मनांसि दुर्विनीतानां प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव ॥३८
न रेजेऽन्तरितश्चन्द्रो निर्मलो मलिनैघनैः ।
सद्वादिवादो मूर्खाणां प्रगल्भाभिरिवोक्तिभिः ॥३९
निर्गुणेनापि चापेन शक्रस्य गगने पदम् ।
अवाप्यताविवेकस्य नृपस्येव परिग्रहे ॥४०
मेघपृष्ठे वलाकानां रराज विमला ततिः ।
दुर्वृत्ते वृत्तचेष्टेव कुलीनस्यातिशोभना ॥४१
न बबन्धाम्बरे स्थैर्यं विद्युदत्यन्तन्त चञ्चला ।
मैत्रीव प्रवरे पुंसि दुर्जनेन प्रयोजिता ॥४२
मार्गा बभूवुरस्पष्टास्तृणशष्पचयावृता ।
अर्थान्तरमनुप्राप्ताः प्रजडानामिवोक्तयः ॥४३

फिर मेघों से आकाश को ढकता हुआ और अत्यन्त जलधारों की बर्षा से दिशाओं को एक समान करता हुआ वर्षाकाल आ उपस्थित हुआ ॥३६॥ उस दूब के अधिक बढ़ने और वीरवहूटियों से व्याप्त होने

के कारण व्रज वसुन्धरा पद्मराग से सुसज्जित तथा मरकतमयी-सी प्रतीत होने लगी ॥३७॥ जैसे नवीन ऐश्वर्य को प्राप्त हुए दुष्ट पुरुष उच्छृंखल हो जाते हैं, वैसे ही नदियों का जल वृद्धि को प्राप्त होकर सर्वत्र प्रवाहित होने लगा ॥३८॥ जैसे मूर्खों के भ्रष्ट वचनों के सामने श्रेष्ठ वक्ता की वाणी भी फीकी हो जाती है, वैसे ही मलीन मेघों से स्वच्छ चन्द्रमा की कान्ति भी फीकी पड़ गई ॥३९॥ जैसे अविवेकी राजा की संगति को प्राप्त कर गुणहीन मनुष्य भी प्रतिष्ठित हो जाता है, वैसे ही आकाश में गुणहीन इन्द्र धनुष प्रतिष्ठित हो गया ॥४०॥ जैसे दुराचारियों के मध्य स्थित हुआ कुलीन पुरुष शोभा पाता है, वैसे ही अस्वच्छ मेघ मण्डल में स्थित हुए बगुलों की स्वच्छ पंक्ति सुशोभित हुई ॥४१॥ जैसे श्रेष्ठ पुरुष किसी दुर्जन से हुई मित्रता स्थायी नहीं होती, वैसे ही अत्यन्त चञ्चला विद्युत की स्थिरता स्पष्ट होने लगी ॥४२॥ जैसे महामूर्खों की उक्तियाँ स्पष्ट नहीं होतीं, वैसे ही तिनके और दूब से ढक कर मार्ग की स्पष्टता नष्ट हो गई ॥४३॥

उन्मत्तशिखिसारङ्गे तस्मिन्काले महावने ।
कृष्णरामौ मुदा युक्तौ गोपालैश्चेरतुस्सह ॥४४
क्वचिद्गोभिस्समं रम्यं गेयतानरतावुभौ ।
चेरतुः क्वचिदत्यर्थं शीतवृक्षतलाश्रितौ ॥४५
क्वचित्कदम्बस्रक्चित्रौ मयूरस्रग्विराजितौ ।
विलिप्तौ क्वचिदासातां विविधैर्गिरिधातुभिः ॥४६
पर्णशय्यासु संसुप्तौ क्वचिन्निद्रान्तरैषिणौ ।
क्वचिद्गर्जति जीमूते हाहाकाररवाकुलौ ॥४७
गायतामन्यगोपानां प्रशंसापरमौ क्वचित् ।
मयूरकेकानुगतौ गोपवेणुप्रवादकौ ॥४८
इति नानाविधैर्भावैरुत्तमप्रीतिसंयुतौ ।
क्रीडन्तौ तौ वने तस्मिंश्चेरतुस्तुष्टमानसौ ॥४९
विकाले च समं गोभिर्गोपवृन्दसमन्वितौ ।
विहृत्याथ यथायोगं व्रजमेत्य महाबलौ ॥५०

गोपैस्समानैस्सहितौ क्रीडन्तावमराविव ।
एवं तावूषतुस्तत्र रामकृष्णौ महाद्युती ॥५१

ऐसे उस मोरों और चातकों से सुशोभित हुए महावन में गोप-बालकों के साथ राम और कृष्ण घूमने लगे ॥४४॥ वे कभी गीत गाते, कभी ध्वनि निकालते, कभी वृक्ष के नीचे वैठते और कभी विचरण करते थे ॥४५॥ कभी कदम्ब के फूलों के हार धारण कर अद्भुत वेश बनाते और कभी मोरपंखों की माला बनाकर पहिनते और कभी विभिन्न प्रकार की पर्वतीय धातुओं से अपने देह को सजाते ॥४६॥ कभी नींद लेने की इच्छा से पत्तों पर लेटकर झपकी लेते और कभी मेघों का गर्जन सुनकर कोलाहल करने लगते ॥४७॥ कभी अन्य ग्वालों के गाने सुनकर उनकी प्रशंसा करते, कभी गौओं के समान वंशी वजाते और कभी मोरों की सी बोली बोलते थे ॥३८॥ इस प्रकार परस्पर में अत्यन्त प्रीति रखते हुए वे विभिन्न प्रकार के खेल खेलते और वन में घूमते थे ॥४९॥ सायंकाल होने पर वे अत्यन्त बलवान् बालक वन में विहार करके गौओं और गोप-ब्रालकों के साथ ब्रज में लौट आते ॥५०॥ इस प्रकार अपनी समान आयु के ग्वाल-बालों के साथ खेलते हुए वे महान् तेज वाले राम और कृष्ण वहाँ निवास करने लगे ॥५१॥

सातवाँ अध्याय

एकदा तु विना रामं कृष्णो वृन्दावनं ययौ ।
विचचार वृतो गोपैर्वन्यपुष्पस्रगुज्ज्वलः ॥१
स जगामाथ कालिन्दीं लोलकल्लोलशालिनीम् ।
तीरसंलग्नफेनौघैर्हसन्तीमिव सर्वतः ॥२
तस्याञ्चातिमहाभीमं विषाग्निश्रितवारिकम् ।
ह्रदं कालियनागस्य ददर्शातिविभीषणम् ॥३
विषाग्निना प्रसरता दग्धतीरमहीरुहम् ।
वाताहताम्बुविक्षेपस्पर्शदग्धविहङ्गमम् ॥४

तमतीव महारौद्रं मृत्युवक्त्रमिवापरम् ।
विलोक्य चिन्तयामास भगवान्मधुसूदनः ।।५
अस्मिन्वसति दुष्टात्मा कालियोऽसौ विषायुधः ।
यो मया निर्जितस्त्यक्त्वा दुष्टो नष्टः पयोनिधिम् ।।६
तेनेयं दूषिता सर्वा यमुना सागरसङ्गमाः ।
न नरैर्गोधनैश्चापि तृषार्तैरुपभुज्यते ।।७

श्री पराशरजी ने कहा—एक दिन राम को छोड़ कर कृष्ण अकेले ही वृन्दावन में चले गये और वहाँ वन के पुष्पों की मालाओं को धारण कर गोपों के साथ घूमने लगे ।।१।। इस प्रकार घूमते हुए वे चंचल तरगों वाली कालिन्दी के किनारे जा निकले । उस समय तटों पर एकत्रित हुए फेन से ऐसा प्रतीत होता था जैसे यमुनाजी हँस रही हों ।।२।। उसी यमुना में उन्होंने विषाग्नि से उत्तप्त कालिय नाग के एक भयंकर कुण्ड को देखा ।।३।। उसकी विषाग्नि इतनी तीव्र थी कि उससे तट के वृक्ष जल गये थे तथा वायु के अघात से उछलते हुए जल-विन्दुओं के स्पर्श से पक्षी भी जब कभी जल जाते थे ।।४।। जैसे मृत्यु का दूसरा मुख हो, उस प्रकार का अत्यन्त भयंकर कुण्ड देखकर भगवान् श्रीकृष्ण विचार करने लगे ।।५।। इसमें दुरात्मा कालियनाग निवास करता है, इसका विष भी शस्त्र के समान है । यह दुष्ट पहिले मुझसे हार कर समुद्र से चला आया है ।।५।। इसने समुद्र में जाने वाली पूरी यमुना को ही दूषित कर रखा है । इसी के कारण यह यमुना जल पिपासु मनुष्यों और गौओं को अशोभनीय है ।।७।।

तदस्य नागराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया ।
निस्त्रासास्तु सुखं येन चरेयुर्व्रजवासिनः ।।८
एतदर्थं तु लोकेऽस्मिन्नवतारः कृतो मया ।
यदेषामुत्पथस्थानां कार्याशान्तिर्दुरात्मनाम् ।
तदेतं नातिदूरस्थं कदम्बमुरुशाखिनम् ।
अधिरुह्य पतिष्यामि ह्रदेऽस्मिन्ननिलाशिनः ।।१०

इत्थं विचिन्त्य बध्वा च गाढं परिकरं ततः ।
निपपात ह्रदे तत्र नागराजस्य वेगतः ।।११
तेनातिपतता तत्र शोभितस्य महाह्रदः ।
अत्यर्थं दूरजातांस्तु समसिञ्चन्महीरुहान् ।।१२
तेऽहिदुष्टविषज्वालातप्ताम्बुपवनोक्षिताः ।
जज्वलुः पादपास्सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तराः ।।१३

इसलिये नागराज का निग्रह करना मेरा कर्त्तव्य है। ऐसा होने पर ही ब्रजवासीगण भय-रहित और सुख से निवास कर सकेंगे ।।८।। ऐसे दुरात्माओं का दमन करना आवश्यक है और इसीलिये मैं इस लोक में अवतीर्ण हुआ हूँ ।।९।। इसलिये अब इस उच्च शाखा वाले विशाल कदम्ब पर चढ़कर मैं उस वायु का भक्षण करने वाले नागराज के कुण्ड में कूद पड़ूँगा ।।१०।। श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार स्थिर कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी कटि को कसा और सवेग उस कालिय कुंड में कूद गये ।।११।। उनके कूदने के कारण क्षुब्ध हुए उस महान् कुण्ड ने दूर पर खड़े हुए वृक्षों को भी भिगो दिया ।।१२।। नाग के भयानक विष की अग्नि से उष्ण हुए उस जल से भीग कर वे वृक्ष दग्ध होने लगे और उनसे निकलती हुई ज्वालाओं से सभी दिशाएँ भर उठीं ।।१३।।

आस्फोटंयामास तदा कृष्णो नागह्रदे भुजम् ।
तच्छब्दश्रवणाच्चाशु नागराजोऽभ्युपागमत् ।।१४
आताम्रनयनः कोपाद्विषज्वालाकुलैर्मुखैः ।
वृतो महाविषैश्चान्यैरुरगैरनिलाशनैः ।।१५
नागपत्न्यश्च शतशो हारिहारोपशोभिताः ।
प्रकम्पिततनुक्षेपचलत्कुण्डलकान्तयः ।।१६
ततः प्रवेष्टितस्सर्पैस्स कृष्णो भोगबन्धनैः ।
ददशुस्तेऽपि तं कृष्णं विषज्वालाकुलैर्मुखैः ।।१७
तं तत्र पतितं दृष्ट्वा सर्पभोगैर्निपीडितम् ।
गोपा व्रजमुपागम्य चुक्रुशुः शोकलालसाः ।।१८

एष मोहं गतः कृष्णो मन्नो वै कालियह्रदे ।
भक्ष्यते नागराजेन तमागच्छत पश्यत ॥१६

तच्छ्रुत्वा तत्र ते गोपा वज्रपातोपमं वचः ।
गोप्यश्चत्वरिता जग्मुर्यशोदाप्रमुखा ह्रदम् ॥२०

उस कालिय कुण्ड में पहुँच कर श्रीकृष्ण ने अपनी भुजाओं को ठोंक कर शब्द किया, जिसे सुनकर वह नागराज तुरन्त ही उनके सामने आया ॥१४॥ क्रोध के कारण उनके नेत्र ताम्रवर्ण के हो रहे थे और मुख से ज्वाला की लपटें निकल रही थीं । उस समय वह अत्यन्त विषैले वायुभक्षी अन्य नागों से घिर रहा था ॥१५॥ तथा मनोहर हीरों और हिलते हुए कान्ति से सुशोभित सैकड़ों नाग-पत्नियाँ भी उसके साथ थीं ॥१६॥ उन नागों ने कुंडलाकार होकर श्रीकृष्ण को अपनी देह में बाँधकर विषाग्नि युक्त मुखों से दंशिद करना आरम्भ किया ॥१७॥ इस के अनन्तर जब गोपों ने श्रीकृष्ण को नाग कुंड में गिरे हुए और नागों के फणों से काटे जाते हुए देखा तो वह शोक से अत्यन्त व्याकुल होकर रोते हुए व्रज में लौट आये ॥१८॥ उन गोपों ने कहा—अरे, चलकर देखो, कालीदह में गिरकर कृष्ण अचेत पड़ा है और नागराज उसका भक्षण किये जा रहा है ॥१६॥ उनके इस अमङ्गल सूचक वचनों को वज्रपात के समान समझकर सभी गोपगण और यशोदा आदि गोपियाँ उसी समय कालीदह की ओर शीघ्रता से दौड़ पड़ीं ॥२०॥

हा हा क्वासाविति जनो गोपीनामतिविह्वलः ।
यशोदया समं भ्रान्तो द्रुतप्रस्खलितं ययौ ॥२१

नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ।
त्वरितं यमुनां जग्मुः कृष्णदर्शनलालसाः ॥२२

ददृशुश्चापि ये तत्र सर्पराजवशङ्गतम् ।
निष्प्रयत्नीकृतं कृष्णं सर्पभोगविवेष्टितम् ॥२३

नन्दगोपोऽपि निश्चेष्टो न्यस्य पुत्रमुखे दृशम् ।
यशोदा च महाभागा वभूव मुनिसत्तम ॥२४

गोप्यस्त्वन्या रुदन्त्यश्चददृशुः शोककातरा. ।
प्रोकुश्च केशवं प्रीत्या भयकातर्यं गद्‌गदम् ।।२५

उस समय वे सभी गोपियाँ 'हाय, कृष्ण कहाँ है?' कहती हुई व्याकुलता से रुदन करतीं और गिरती पड़ती हुई वहाँ गईं ।।२१।। सभी गोपों को साथ लिए हुए अद्‌भुत बल वाले बलरामजी भी श्रीकृष्ण को देखने की इच्छा से तुरन्त ही यमुना के किनारे जा पहुँचे ।।२२।। वहाँ पहुँचकर उन्होंने श्रीकृष्ण को नागराज के वश में पड़े हुए तथा उसके लिपटने से निष्प्रयत्न हुए देखा ।।२३।। हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय नन्द और यशोदा भी उनके मुख को एकटक देखते हुए अचेत हो गये ।।२४।। अन्य गोपियों ने भी श्रीकृष्ण की ऐसी दशा देखी तो शोक से व्याकुल होकर रुदन करने लगीं और भय-कम्पित वाणी में गद्‌गद् कण्ठ से प्रीतिपूर्वक बोलीं ।।२५।।

सर्वा यशोदया सार्द्धं विशामोऽत्र महाह्लदम् ।
सर्पराजस्य नो गन्तुमस्माभिर्युज्यते व्रजम् ।।२६
दिवसः को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा ।
विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को ब्रजः ।।२७
विनाकृता न यास्यामः कृष्णेनानेन गोकुलम् ।
अरम्य नातिसेव्यं च वारिहीनं यथा सरः ।।२८
यत्र नेन्दीवरदलश्यामकान्तिरयं हरिः ।
तेनापि मातुर्वासेन रतिरस्तीति विस्मयः ।।२९
उत्फुल्लपंकजदलस्पष्टकान्तिविलोचनम् ।
अपश्यन्त्यो हरिं दीनाः कथं गोष्ठे भविष्यथ ।।३०
अत्यन्तमधुरालापहृताशेषमनोरथम् ।
भ विना पुण्ड्रीकाक्ष यास्यामो नन्दगोकुलम् ।।३१
भोगेनावेष्टितस्यापि सर्पराजस्य पश्यत ।
स्मितशोभि मुखं गोप्य कृष्णस्यास्मद्विलोकने ।।३२

गोपियों ने कहा—अब यशोदाजी के साथ हम सभी सर्पराज के इस कुंड में डूबेंगी, व्रज में कदापि नहीं जायेंगी ।।२६।। सूर्य ही नहीं तो

दिन कैसा ? चन्द्रमा नहीं तो रात ही क्या ? बैल नहीं तो गाय कैसी ? इसी प्रकार कृष्ण ही नहीं तो व्रज कैसा ? ।।२७।। कृष्ण को साथ लिए बिना हम गोकुल के लिए कभी नहीं जा सकतीं, क्योंकि कृष्णहीन गोकुल तो जलहीन सरोवर के समान ही निरर्थक है ।।२८।। जहाँ नील कमल की सी कान्ति वाले कृष्ण नहीं उस मातृगेह से प्रीति होना भी विस्मय की बात होगी ।।२९।। अरी गोपियो ! विकसित कमल के समान आभा वाले जिनके नेत्र हैं, ऐसे श्री हरि के दर्शन बिना दीनता को प्राप्त हुई तुम अपने गोष्ठ में कैसे रहोगी ? ।।३०।। जिन्होंने अपने मधुर आलाप से हमारी सब कामनाओं को अपने ही वश में कर लिया है, उन पुण्डरीकाक्ष के बिना नन्दजी के गोकुल को हम कदापि नहीं जा सकतीं ।।३१।। हे गोपियो ! सर्पराज के फण से ढककर भी श्रीकृष्ण का मुख हमें देख-देखकर मुस्कान युक्त हो गया है ।।३२।।

इति गोपीवचः श्रुत्वा रौहिणेयो महाबलः ।
गोपांश्च त्रासविधुरान्विलोक्य स्तिमितेक्षणान् ।।३३
नन्दं च दीनमत्यर्थं न्यस्तदृष्टिं सुतानने ।
मूर्च्छाकुलां यशोदां च कृष्णमाहात्म्यसंज्ञया ।।३४
किमिदं देवदेवेश भावोऽयं मानुषस्त्वया ।
व्यज्यतेऽत्यन्तमात्मानं किमनन्तं न वेत्सियत् ।।३५
त्वमेव जगतो नाभिरराणामिव संश्रयः ।
कर्त्तापहर्त्ता पाता च त्रैलोक्यं त्वं त्रयीमयः ।।३६
सेन्द्रै रुद्राग्निवसुभिरादित्यैर्मरुदश्विभिः ।
चिन्त्यसे त्वमचिन्त्यात्मन् समस्तैश्चैव योगिभिः ।।३७
जगत्यर्थं जगन्नाथ भारावतरणेच्छया ।
अवतीर्णोऽसि मर्त्येषु तवांशश्चाहमग्रजः ।।३८
मनुष्यलीलां भगवन् भजता भवता सुराः ।
विडम्बयन्तस्त्वल्लीलां सर्वं एव सहासते ।।३९

श्रीपराशरजी ने कहा—गोपियों का इस प्रकार कथन सुनकर रोहिणी पुत्र बलरामजी ने सन्तप्त नेत्र वाले गोपों, अपने पुत्र को एकटक

देखते हुए नन्द और मूर्च्छा से आकुल हुई यशोदा को देखकर श्रीकृष्ण ने संकेत में कहा ।।३३-३४।। हे देवदेवेश ! आप यह मनुष्य भाव किस लिए प्रकट कर रहे हो ? क्या अपने को अनन्त नहीं जान पाते ? ।।३५।। जैसे चक्र-नाभि ही अरों का आधार होती है, वैसे ही आप इस संसार के आधार, कर्त्ता, अपहर्त्ता और रक्षा करने वाले हैं। आप ही त्रैलोक्य रूप तथा वेदत्रयात्मक हैं ।।३६।। हे अचिन्त्यात्मन् ! इन्द्र, रुद्र, अग्नि, वसु, आदित्य, मरुद्गण, अश्विदय तथा सभी योगीजन आपका ही ध्यान किया करते हैं ।।३७।। हे जगन्नाथ ! जगत् का कल्याण करने और भू-भार हरने की इच्छा से ही आप मृत्यु लोक में अवतीर्ण हुए हैं और आपका मैं अग्रज भी आपका अश रूप ही हूँ ।।३८।। हे भगवन् ! जब आप मनुष्य रूप मे लीला करते हैं, तब यह सभी देवता आपकी लीलाओं के अनुकरण में सदा आपके साथ रहते हैं ।।३९।।

अवतार्य भवान्पूर्वं गोकुले तु सुराङ्गनाः ।
क्रीडार्थमात्मानः पश्चावदतीर्णोऽसि शाश्वत ।।४०
अत्रावतीर्णयोः कृष्ण गोपा एव हि बान्धवाः ।
गोप्यश्च सीदतः कस्मादेतान्वन्धूनुपेक्षसे ।।४१
दर्शितो मानुषो भावो दर्शितं बालचापलम् ।
तदयं दम्यतां कृष्ण दुष्टात्मा दशनायुधः ।।४२
इति संस्मारितः कृष्णः स्मितभिन्नोष्ठसम्पुटः ।
आंस्फोट्य मोचयामास स्वदेहं भोगिवन्धनात् ।।४३
आनम्य चापि हस्ताभ्यामुभाभ्यां मध्यमं शिरः ।
आरुह्याभुग्नशिरसः प्रणनर्त्तोरुविक्रमः ।।४४
प्राणाः फणेऽभवंश्चास्य कृष्णस्याङ्घ्रिनिकुट्टनैः ।
यत्रोन्नतिं च कुरुते ननामास्य ततश्शिरः ।।४५
मूर्च्छामुपाययौ भ्रान्त्या नागः कृष्णस्य रेचकैः ।
दंडपातनिपातेन ववाम रुधिरं बहु ।।४६
तं विभुग्नशिरोग्रीवमास्येभ्यस्स्रुतशौणितम् ।
विलोक्य करुणं जग्मुस्तत्पन्यो मधुसूदनम् ।।४७

हे शाश्वत ब्रह्म ! आपने क्रीड़ा करने के लिये पहले देवनारियों को गोकुल में प्रकट किया और फिर स्वयं अवतीर्ण हुए हैं ।।४०।। हे कृष्ण ! यहाँ पर उत्पन्न हुए हम दोनों के बांधवगण तो यह गोप-गोपियाँ ही हैं, फिर आप इन दुखियों की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? ।।४१।। हे कृष्ण! यह मानुष-भाव और बाल-चपलता तो आपने बहुत दिखा दी, अब तो इस दाँत रूप शस्त्रधारी दुरात्मा नाग का दमन करिये ।।४२।। श्री पराशरजी ने कहा—बलरामजी द्वारा इस प्रकार याद दिलाने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सम्पुट को खोलकर मधुर मुस्कान फैलाते हुए, अकस्मात् उछल कर अपने को सर्प के बन्धन से मुक्त किया ।।४३।। फिर उन्होंने अपने दोनों हाथों से उसके मध्य फण को झुकाया और स्वयं उस पर चढ़कर नृत्य करने लगे ।।४४।। श्रीकृष्ण के पदाघात से उसके प्राण मुख पर आ गये । वह अपने जिस फण को ऊँचा करता, उसी पर ठोकर मारकर नीचे झुका देते ।।४५।। श्रीकृष्ण की भ्रान्ति, रेचक और दण्डपात के आघात से वह नाग मूच्छित हो गया और बहुत-सा रक्त वमन करने लगा ।।४६।। उसके शिर और ग्रीवाओं को भग्न तथा मुखों से रक्त गिरता देखकर नाग-पत्नियाँ श्रीकृष्ण से बोलीं ।।४७।।

ज्ञातोऽसि देवदेवेश सर्वज्ञस्त्वमनुत्तमः ।
परं ज्योतिरचिन्त्यं यत्तदंशः परमेश्वरः ।।४८
न समर्थाः सुरास्स्तोतुं यमनन्तभवं विभुम् ।
स्वरूपवर्णनं तस्य कथं योषित्करिष्यति ।।४९
यस्याखिलमहीव्योमजलाग्निपवनात्मकम् ।
ब्रह्माण्डमल्पकल्यांशः स्तोष्यामस्तं कथं वयम् ।।५०
यतन्तो न विदुर्नित्यं यत्स्वरूपं हि योगिनः ।
परमार्थमणोरल्पं स्थूलात्स्थूलं नताः स्म तम् ।।५१
न यस्य जन्मने धाता तस्य चान्ताय नान्तकः ।
स्थितिकर्त्ता न चान्योऽस्ति यस्य तस्मै नमस्सदा ।।५२
कोपः स्वल्पोऽपि ते नास्यि स्थितिपालनमेव ते ।
कारणं कालियस्यास्य दमने श्रूयतां वचः ।।५३

स्त्रियोऽनुकम्प्यास्साधूनां मूढा दीनाश्च जन्तवः ।
यतस्तोऽस्य दीनस्य क्षम्यता क्षमता वर ।।५४
समस्तजगदाधारो भवानल्पबलः फणी ।
त्वत्पादपीडिततो जह्यान्मुहुर्त्तार्द्धेन जीवितम् ।।५५

नाग पत्नियों ने कहा—हे देवदेवेश ! अब हम आपको जान गईं, आप सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्ञ एवं अचिन्त्य परम ज्योति के अंश रूप परमेश्वर ही हैं ।।४८।। जिन स्वयम्भ् भगवान् की स्तुति करने का सामर्थ्य देवताओं को भी नहीं है, उनके रूप का वर्णन हम नारियाँ किस प्रकार कर सकती हैं ? ।।४६।। पृथिवी, आकाश, जल, अग्नि और पवन रूप यह ब्रह्मांड जिनका अल्पतम अंश है, हम उनकी स्तुति किस प्रकार करें ।।५०।। जिनके नित्य रूप को योगीजन यत्नपूर्वक भी नहीं जान सकते और जो सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा स्थूल से स्थूल हैं, उन परमार्थ स्वरूप को हम नमस्कार करते हैं ।।५१।। जिन्हें विधाता जन्म नहीं देता और काल जिनका अन्त नहीं कर सकता तथा जिनका स्थिति कर्त्ता भी कोई दूसरा नहीं है, उन प्रभु को हमारा नमस्कार है ।।५२।। आपने इस कालियानाग का दमन क्रोध से नहीं, किन्तु संसार की स्थिति और पालन के लिये ही किया है, इसलिये हमारे वचन सुनिये ।।५३।। हे क्षमाशील श्रेष्ठ ! साधुजन को स्त्रियों, मूर्खों और दीन जन्तुओं पर अनुकम्पा ही करनी चाहिए, इसलिये आप भी इस दीन के अपराध को क्षमा करिये ।।५४।। आप सम्पूर्ण विश्व के आधार के चरण प्रहार से पीड़ित होकर अल्प बल वाला यह नाग आधे मुहूर्त्त तक ही जीवित रह सकता है ।।५५।।

क्व पन्नगोऽल्पवीर्योऽयं क्व भवान्भुवनाश्रयः ।
प्रीतिद्वेषौ समोत्कृष्टगोचरौ भवतोऽव्यय ।।५६
ततः कुरु जगत्स्वामिन्प्रसादमवसीदतः ।
प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तृभिक्षां प्रदीयताम् ।।५७
भुवनेश जगन्नाथ महापुरुष पूर्वज ।
प्राणांस्तमजति नागोऽयं भर्तृभिक्षां प्रयच्छ नः ।।५८

वेदान्तवेद्य देवेश दुष्टदैत्यनिबर्हण ।
प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तृभिक्षा प्रदीयताम् ॥५९
इत्युक्ते ताभिराश्वस्य क्लान्तदेहोऽपि पन्नगः ।
प्रसीद देवदेवेति प्राह वाक्यं शनैः शनैः ॥६०

हे अव्यय ! प्रीति अपने समान से और वैर अपने से श्रेष्ठ से होती देखते हैं, तो कहाँ यह अल्पवीर्य वाला नाग और कहाँ आप सब लोकों के आश्रय ? ॥५६॥ इसलिए हे जगन्नाथ ! इस दीन पर कृपा करिये । यह नाग अपने प्राणों का त्याग करने वाला है, इसलिये हमें हमारे भर्तार को भिक्षा रूप में प्रदान करिये ॥५७॥ हे भुवनेश ! हे जगन्नाथ! हे महापुरुष ! हे पूर्वज ! इस नाग से प्राण जाना ही चाहते हैं, इसलिये आप हमें हमारे पति की भिक्षा दीजिये ॥५८॥ हे वेदान्त से जानने योग्य देवेश ! हे दुष्टों और दैत्यों के विनाशक ! अब यह नाग अपना प्राण त्याग करने वाला है, हमें पति की भिक्षा दीजिये ॥५९॥ श्री पराशर जी ने कहा—नागिनों द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर क्लान्त शरीर वाले नाग को भी कुछ धैर्य हुआ और वह मन्द स्वर में कहने लगा—हे देव देवेश्वर ! प्रसन्न हो जाइये ॥६०॥

तवाष्टगुणमैश्वर्यं नाथ स्वाभाविकं परम् ।
निरस्तातिशयं यस्य तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम् ॥६१
त्वं परस्त्वं परस्याद्य परं त्वत्तः परात्मक ।
परस्मात्परमो यस्त्वं तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम् ॥६२
यस्माद्ब्रह्मा च रुद्रश्च चन्द्रेन्द्रमरुदश्विनः ।
वसवश्च सहादित्यैस्तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम् ॥६३
एकावयवसूक्ष्मांशो यस्यैतदखिलं जगत् ।
कल्पनावयवस्यांशस्तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम् ॥६४
सदसद्रूपिणो यस्य ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः ।
परमार्थं न जानन्ति तस्य स्तोष्यामि किन्न्वहम् ॥६५
ब्रह्माद्यैरर्चितो यस्तु गन्धपुष्पानुलेपनैः ।
नन्दनादिसमुद्भूतैस्सोऽर्च्यते वा कथं मया ॥६६

यस्यावताररूपाणि देवराजस्सदार्चति ।
न वेत्ति परमं रूपं सोऽच्र्यंते वा कथं मया ॥६७

कालिय नाग ने कहा—हे नाथ ! आपका अष्ट गुण विशिष्ट परम ऐश्वर्य स्वाभाविक एवं समता—रहित है, इसलिए मैं आपकी स्तुति किस प्रकार कर सकता हूँ ? ॥६१॥ आप पर तथा पर के भी आदि कारण हैं, और हे परात्मक ! पर की प्रवृत्ति भी आपके द्वारा ही हुई है । इस लिये आप पर से परे की स्तुति मैं किस प्रकार करूँ ? ॥६२॥ जिनसे ब्रह्मा, रुद्र, चन्द्र, इन्द्र, मरुत्, अश्विनी, वसु और आदित्यों की उत्पत्ति हुई है, उन आपकी स्तुति मैं कैसे कर सकता हूँ ? ॥६३॥ यह विश्व जिनके काल्पनिक अवयव का एक सूक्ष्म अंश है, ऐसे आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ ? ॥६४॥ जिन सत्-असत् रूप के यथार्थ स्वरूप को ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी जानने में समर्थ नहीं हैं, उन आपकी स्तुति मैं किस प्रकार कर सकूंगा ? ॥६५॥ ब्रह्मा आदि देवता नन्दन कानन के पुष्पों, गन्ध और अनुलेपन आदि के द्वारा जिनको पूजते हैं, उन आपका पूजन मैं कैसे कर सकता हूं ? ॥६६॥ जिनके अवतार रूपों का पूजन करते हुए देवराज इन्द्र भी वास्तविक रूप को नहीं जान पाते, उन आपका पूजन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ ॥६७॥

विषयेभ्यस्समावृत्य सर्वाक्षाणि च योगिनः ।
यमर्चयन्ति ध्यानेन सोऽर्च्यते वा कथं मया ॥६८
हृदि संकल्प्य यद्रूपं ध्यानेनार्चन्ति योगिनः ।
भावपुष्पादिना नाथः सोऽर्च्यते वा कथं मया ॥६९
सोऽहं ते देवदेवेश नार्चनादौ स्तुतौ न च ।
सामर्थ्यवान् कृपामात्रमनोवृत्तिः प्रसीद मे ॥७०
सर्पजातिरियं क्रूरा यस्यां जातोऽस्मि केशव ।
तत्स्वभावोऽयमत्रास्ति नापराधो ममाच्युत ॥७१
सृज्यते भवता सर्वं तथा संह्रियते जगत् ।
जातिरूपस्वभावाश्च सृज्यन्ते सृजता त्वया ॥७२

यथाहं भवता सृष्टो जात्या रूपेण चेश्वर।
स्वभावेन च संयुक्तस्तथेदं चेष्टितं मया ॥७३
यद्यन्यथा प्रवर्तेयं देवदेव ततो मयि।
न्याय्यो दण्डनिपातो व तवैव वचनं यथा ॥७४
तथाप्यज्ञे जगत्स्वामिन्दण्डं पातितवान्मयि।
स श्लाघ्योऽयं परो दण्डस्त्वत्तो मे नान्यतो वरः ॥७५
हतवीर्यो हतविषो दमितोऽहं त्वयाच्युत।
जीवितं दीयतामेकमाज्ञापय करोमि किम् ॥७६

अपनी इन्द्रियों को सम्पूर्ण विषयों से हटाकर योगीजन जिनका चिन्तन और पूजन करते हैं, उन आपका पूजन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ ? ॥६८॥ चित्त में जिनके रूप का संकल्प करके योगीजन जिनका ध्यान करते हुए भावमय पुष्पादि से पूजन करते हैं, मैं उनका पूजन किस प्रकार कर सकता हूँ ॥६९॥ हे देव देवेश ! मैं आपके पूजन अथवा स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ, मैं तो आपकी कृपापात्र का अभिलाषी हूँ, इसलिये आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥७०॥ हे केशव ! मैं जिस सर्प जाति में उत्पन्न हुआ हूँ, वह अत्यन्त क्रूर होती है, इसलिये मेरा जातीय स्वभाव होने के कारण मेरा इसमें कोई अपराध मत मानिए ॥७१॥ इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि और प्रलय करने वाले आप ही हैं और आप ही सृष्टि-रचना के समय सब जातियों के रूप और स्वभाव को भी स्वयं रचते हैं ॥७२॥ हे प्रभो ! आपने मुझे जिस जाति, रूप और स्वभाव से युक्त किया है, उसी के अनुरूप मेरी चेष्टा हुई है ॥७३॥ हे देव देव ! यदि मैंने उसके विपरीत कोई आचरण किया हो तो मैं अवश्य ही दण्ड के योग्य हो सकता हूँ ॥७४॥ फिर भी आपने मुझ अज्ञानी को जो दण्ड दिया है, वह भी मेरी भलाई के लिये ही हो सकता है। परन्तु हे जगदीश्वर ! किसी अन्य से प्राप्त वर भी मेरे लिए ठीक नहीं होता ॥७५॥ हे अच्युत ! आपने मेरे वीर्य और विष का भले प्रकार दमन कर दिया है, इसलिए अब तो आप मुझे प्राण-दान दीजिये और अब मुझे क्या करना है, यह निर्देश करिये ॥७६॥

नात्र स्थेयं त्वया सर्प कदाचिद्यमुनाजले ।
सपुत्रपरिवारस्त्वं समुद्रसलिलं व्रज ॥७७
मत्पदानि च ते सर्प दृष्ट्वा मूर्द्धनि सागरे ।
गरुडः पन्नगरिपुस्त्वयि न प्रहिरिष्यति ॥७८
इत्युक्त्वा सर्पराजं तं ममोच भगवान्हरिः ।
प्रणम्य सोऽपि कृष्णाय जगाम पयसां निधिम् ॥७९
पश्यतां सर्वभूतानां सभृत्यसुतबान्धवः ।
समस्तभार्यासहितः परित्यज्य स्वकं ह्रदम् ॥८०
गते सर्पे परिष्वज्य मृतं पुनरिवागतम् ।
गोपा मूर्द्धनि हार्देन सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥८१
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमन्ये विस्मितचेतसः ।
तुष्टुवुर्मुदिता गोपा दृष्ट्वा शिवजलां नदीम् ॥८२
गीतमानः स गोपीभिश्चरितैस्साधुचेष्टितैः ।
संस्तूयमानो गोपैश्च कृष्णो ब्रजमुपागमत् ॥८३

श्री भगवान् ने कहा—हे नाग! अब इस यमुना जल में तेरा निवास उचित नहीं है। इसलिए तू अपने पुत्रादि कुटुम्ब के सहित समुद्र के लिए प्रस्थान कर ॥७७॥ तेरे सिर पर मेरे चरण-चिह्न बन गये हैं, उन्हें देख कर सर्पों का वैरी गरुड़ तुझे नहीं सतायेगा ॥७८॥ श्री पराशर जी ने कहा—सर्पराज के प्रति ऐसा कहकर भगवान् ने उसे मुक्त कर दिया और वह भी उन्हें प्रणाम करके सब जीवों को देखते ही अपने भृत्य, पुत्र, बांधव और सब स्त्रियों के सहित उस कुण्ड का त्याग कर समुद्र में रहने के लिए चल दिया ॥७९-८०॥ सर्प के वहाँ चले जाने पर मरकर जी उठने वाले मनुष्य के समान श्रीकृष्ण को प्राप्त करके गोपों ने प्रीति पूर्वक उनका आलिंगन किया और अपने आँसुओं से उनके मस्तक को भिगोने लगे ॥८१॥ यमुनाजी को स्वच्छ जल से युक्त देखकर कुछ अन्य गोपगण प्रसन्न चित्त होकर श्रीकृष्ण की आश्चर्य पूर्वक स्तुति करने लगे ॥८२॥ फिर अपने श्रेष्ठ चरित्रों के कारण गोपियों की गीतमय

प्रशंसा और गोपों द्वारा स्तुतियों को प्राप्त होते हुए श्रीकृष्ण व्रज में लौट आये ।।८३।।

आठवाँ अध्याय

गाः पालयन्तौ च पुनः सहितौ बलकेशवौ ।
भ्रममाणौ वने तस्मिन्नम्यं तालवनं गतौ ।।१
तत्तु तालवनं दिव्यं धेनुको नाम दानवः ।
मृगमांसकृताहारः सदाध्यास्ते खराकृतिः ।।२
तत्तु तालवनं पक्वफलसम्पत्समन्वितम् ।
दृष्ट्वा स्पृहान्विता गोपाः फलादानेऽब्रुवन्वचः ।।३
हे राम हे कृष्ण सदा धेनुकेनैष रक्ष्यते ।
भूप्रदेशो यतस्तस्मात्पक्वानीमानि सन्ति वै ।।४
फलानि पश्य तालानां गन्धयोदितदीशि वै ।
वयमेतान्यभीप्सामः पात्यन्तां यदि रोचते ।।५

श्री पराशरजी ने कहा—एक दिन बलरामजी के सहित भगवान् केशव गौएँ चराते हुए अत्यन्त रमणीक तालवन में जा पहुँचे ।।१।। उस दिव्य वन में गर्दभाकार धेनुकासुर मृगमांस का आहार करता था ।।२।। वह तालवन पके फलों से सम्पन्न था, जिन्हें तोड़ने की इच्छा करते हुए गोपों ने कहा ।।३।। गोपगण बोले—हे राम ! हे कृष्ण ! इस भू प्रदेश का रक्षक धेनुकासुर है, इसलिए यहाँ पके हुए फलों की भरमार है ।।४।। यह तालफल अपनी गंध से सब दिशाओं में आमोद उत्पन्न कर रहे हैं, हम भी इनके खाने की इच्छा कर रहे हैं, यदि तुम्हारी भी रुचि हो तो इनमें से कुछ फल गिरा लो ।।५।।

इति गोपकुमाराणां श्रुत्वा संकर्षणो वचः ।
एदत्कर्त्तव्यमित्युक्त्वा पातयामास तानि वै ।
कृष्णश्च पातयामास भुवि तानि फलानि वै ।।६
फलानां पततां शब्दमाकर्ण्य सुदुरासदः ।
आजगाम स दुष्टात्मा कोपाद् दैतेयगर्दभः ।।७

पद्भ्यामुभाभ्यांस तदा पश्चिमाभ्यां बलं बली ।
जघानोरसि ताभ्यां च स च तेनाभ्यगृह्यत ॥८
गृहीत्वा भ्रामयामास सोऽम्बरे गतजीवितम् ।
तस्मिन्नेव स चिक्षेप वेगेन तृणराजनि ॥९
ततः फलान्यनेकानि तालाग्रान्निपतन्खरः ।
पृथिव्यां पातयामास महावातो घनानिवः ॥१०
अन्यानथ सजातीयानागतान्दैत्यगर्दभान् ।
कृष्णश्चिक्षेप तालाग्रे बलभद्रश्च लीलया ॥११
क्षणेनालङ्कृता पृथ्वी पक्वैस्तालफलैस्तदा ।
दैत्यगर्दभदेहैश्च मैत्रेय शुशुभेऽधिकम् ॥१२
ततो गावो निराबाधास्तस्मितालवने द्विज ।
नवशष्पं सुखं चेरुर्यन्न भुक्तमभूत्पुरा ॥१३

श्री पराशरजी ने कहा—ग्वाल-बालों के ऐसे वचन सुनकर बलराम जी ने भी उनका अनुमोदन किया और कुछ फल गिराये, फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने भी उन वृक्षों से कुछ फल झाड़ दिये ॥६॥ फलों के गिरने का शब्द सुनकर वह दुर्द्धर्ष, दुरात्मा गर्दभ रूपी असुर क्रोध करता हुआ वहाँ आ गया ॥७॥ उस महाबली असुर ने अपने पीछे के दो पाँवों से बलरामजी के हृदय पर आघात किया तब उन्होंने उसके दोनों पाँव पकड़ लिये ॥८॥ फिर उसे आकाश में घुमाने लगे और जब वह निष्प्राण हो गया तब उन्होंने अत्यन्त वेग पूर्वक उसे ताल वृक्ष पर ही पछाड़ दिया ॥९॥ उस गर्दभ के गिरने से ताल वृक्ष के फल इस प्रकार झड़ गये, जैसे प्रचण्ड पवन से मेघ झड़ने लगते हैं ॥१०॥ उसके अन्य सजातीय बांधव भी जब क्रोध पूर्वक वहाँ आये, तब उन्हें भी उठा-उठाकर बलराम और कृष्ण ने ताल वृक्षों पर ही दे मारा ॥११॥ हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार एक क्षण में ही ताल के पके हुए फलों और गधे रूपी असुरों के शरीरों से अलंकृत हुई पृथिवी अत्यन्त शोभा पाने लगी ॥१२॥ हे द्विज ! उस समय से ही उस ताल वन में निर्भय हुई गौएँ सुख पूर्वक

चरने लगीं, जिसे पहिले कभी चरने का सौभाग्य उन्हे प्राप्त नहीं हुआ था ॥१३॥

नवाँ अध्याय

तस्मिन्नासभदैतेये सानुगे विनिपातिते ।
सौम्यं तद्गोपगोपीनां रम्यं तालवनं बभौ ॥१
ततस्तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ ।
हत्वा धेनुकदैतेयं भाण्डीरवटमागतौ ॥२
क्ष्वेलमानौ प्रगायन्तौ विचिन्वन्तौ च पादपान् ।
चारयन्तौ च गा दूरे व्याहरन्तौ च नामभिः ॥३
निर्योगपाशस्कन्धौ तौ वनमालाविभूषितौ ।
शुशुभाते महात्मानौ बालश्रृङ्गाविवर्षभौ ॥४
सुवर्णाञ्जनचूर्णाभ्यां तौ तदा रुषिताम्बरौ ।
महेन्द्रायुधसयुक्तौ श्वेतकृष्णाविवाम्बुदौ ॥५
चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरितरेतरम् ।
समस्तलोकनाथानां नाथभूतौ भुवं गतौ ॥६
मनूष्यधर्माभिरतौ मानयन्तौ मनुष्यताम् ।
तज्जातिगुणयुक्ताभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—जब वह गर्दभ रूपी असुर अपने अनुचरों सहित मारा गया, तब वह रमणीक तालवन गोपों और गोपियों के लिए सौम्य हो गया ॥१॥ फिर उस दैत्य को मार कर वे दोनों वसुदेव नन्दन हर्षित चित्त से भाण्डीर वट के पास आये ॥२॥ तब गौओं को बांधने की रस्सी को अपने कंधे पर लटकाये और वनमाला धारण किये वे दोनों बालक नाद करते, गाते, वृक्षों पर चढ़ते— उतरते, गौओं को चराते हुए, उनको पुकारते हुए, नवीनोत्पन्न सींग वाले बछड़ों के समान शोभा पा रहे थे ॥३-४॥ उन दोनों के वस्त्र स्वर्णिम और श्याम रङ्ग के होने के कारण वे दोनों इन्द्र धनुष पड़े हुए श्वेत और श्याम वर्ण के बादलों जैसे प्रतीत होते थे ॥५॥ वे सभी लोकपालों के स्वामी पृथिवी पर प्रकट होकर विभिन्न लौकिक क्रीडाएँ कर रहे थे ॥६॥

मानव-धर्म का पालन करते और मानवी-क्रीड़ाएँ करते हुए वे वन में विचरण कर रहे थे ॥७॥

ततस्त्वान्दोलिकाभिश्च नियुद्धैश्च महावलौ ।
व्यायाम चक्रतुस्तत्र क्षेपणीयस्तथाश्मभिः ॥८
तल्लिप्सुरसुरस्तत्र ह्य भयो रममाणयोः ।
आजगाम प्रलम्बाख्यो गोपवेषतिरोहितः ॥९
सोऽवगाहत निश्शंकस्तेषां मध्यममानुषः ।
मानुषं वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥१०
तयोश्छिद्रान्तरप्रेप्सुरविसह्यममन्यतः ।
कृष्णं ततो रौहिणेय हन्तुं चक्रे मनोरथम् ॥११
हरिणाक्रीडनं नाम बालक्रीडनक ततः ।
प्रकुर्वन्तो हि ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्थितौ ॥१२
श्रीदाम्ना सह गोविंदः प्रलम्बेन तथा बलः ।
गोपालैरपरैश्चान्ये गोपालाः पुप्लुवुस्ततः ॥१३
श्रीदामानं ततः कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसुतः ।
जितवान्कृष्णपक्षीयैर्गोपैरन्ये पराजितः ॥१४

कभी झूले में झूलते, कभी परस्पर मल्ल युद्ध करते और कभी पत्थर फेंक कर विभिन्न प्रकार का अभ्यास करते ॥८॥ ऐसे ही समय में उन क्रीड़ा करते हुए दोनों बालकों को उठा ले जाने की इच्छा करता हुआ प्रलम्ब नामक एक असुर गोप वेश धारण कर वहाँ आया ॥९॥ दानवों में श्रेष्ठ प्रलम्बासुर मनुष्य वेश में शंका-रहित भाव से उन बालकों में जा मिला ॥१०॥ वे दोनों कब असावधान होते हैं, इसका अवसर देखते हुए उस असुर ने श्रीकृष्ण को वश में न आने वाला समझ कर बलरामजी को ही मारने का विचार स्थिर किया ॥११॥ फिर उन सब ग्वाल-बालकों ने हरिणाक्रीडन नामक खेल की इच्छा की और उनमें से दो-दो बालक एक साथ उठ-उठकर चलने लगे ॥१२॥ उस समय श्रीदामा के साथ कृष्ण, प्रलम्ब के साथ बलराम तथा अन्याय ग्वालों

की दो-दो की जोड़ी इसी प्रकार हिरन की भाँति उछलती हुई चली अन्त में कृष्ण से श्रीदामा, बलराम से प्रलम्ब और कृष्ण-पक्ष के अन्यान्य ग्वालों ने अपने प्रतिपक्षियों पर विजय प्राप्त करली ।।१४।।

ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं भाण्डीरं वटमेत्य वै ।
पुनर्निववृतुस्सर्वे ये ये तत्र पराजिताः ।।१५
संकर्षणं तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानवः ।
नभस्स्थलं जगामाशु सचन्द्र इव वारिद ।।१६
असहन्नौहिरणेयस्य स भारं दानवोत्तमः ।
ववृधे स महाकायः प्रावृषीव बलाहकः ।।१७
संघर्षणस्तु वं दृष्टा दग्धशैलोपमाकृतिम् ।
स्रग्दामलम्बाभरणं मुकुटाटोपमस्तकम् ।।१८
रौद्रं शकटचक्राक्षं पादन्यासचलत्क्षितिम् ।
अभीतमनसा तेन रक्षसा रोहिणीसुतः ।
ह्रियमाणस्ततः कृष्णमिदं वचनमब्रवीत् ।।१९
कृष्ण कृष्ण ह्रिये ह्येष पर्वतोदग्रमूर्त्तिना ।
केनापि पश्य दैत्येन गोपालच्छद्मरूपिणा ।।२०
यदत्र साम्प्रतं कार्यं मया मधुनिषूदन ।
तत्कथ्यतां प्रयात्येष दुरात्मातित्वरान्वितः ।।२१

उस खेल में जिन बालकों की हार हुई वे अपने-अपने विजेताओं को कन्धों पर चढ़ाकर भाण्डीर वट तक ले गये और लौट आये ।।१५।। परन्तु प्रलम्बासुर बलरामजी को अपने कन्धे पर चढ़ाकर जैसे चन्द्रमा युक्त मेघ होता है वैसी ही शोभा को प्राप्त होता हुआ अत्यन्त वेग पूर्वक आकाश में उड़ चला ।।१६।। किन्तु वह दानवोत्तम प्रलम्ब बलरामजी के भार को न सह सका और वर्षा काल में बादल बढ़ जाता है, वैसे ही वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अत्यन्त स्थूल हो गया ।।१७।। उस समय मालादि आभूषणों से विभूषित, सिर पर मुकुट धारण किये, रथ चक्र के समान भयानक नेत्र वाले, अपनी चाल से भूमण्डल को कम्पित करने वाले तथा जले हुए पर्वत जैसे आकार वाले उस निःशंक असुर द्वारा

आकाश की ओर ले जाये जाते हुए बलरामजी ने कृष्ण से इस प्रकार कहा ॥१८-१९॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! गोप का छद्मवेश बनाये हुए पर्वताकार यह दैत्य मेरा हरण कर रहा है ॥२०॥ हे मधुनिषूदन! यह दुरात्मा अत्यन्त द्रुतवेग से मुझे लिये जा रहा हैं, इसलिये, शीघ्र बताओ कि मैं क्या करूँ? ॥२१॥

तमाह रामं गोविन्दः स्मितभिन्नोष्ठसम्पुटः।
महात्मा रौहिणेयस्य बलवीर्यप्रमाणवित् ॥२२
किमयं मानुषो भावो व्यक्तमेवावलम्ब्यते।
सर्वात्मन् सर्वगुह्यानां गुह्यगुह्यात्मना त्वया ॥२३
स्मराशेषजगद्बीजकारणं कारणाग्रजम्।
आत्मानमेकं तद्वच्च जगत्येकार्णवे च यत् ॥२४
किं न वेत्सि यथाहं च त्वं चैकं कारणं भुवः।
भारावतारणार्थाय मर्त्यलोकमुपागतौ ॥२५
नभश्शिरस्तेऽम्बुवहाश्च केशाः पादौ क्षितिर्वक्त्रमनन्त वह्निः।
मोमो मनस्तेश्ववसितं समारणोदिशश्चतस्रोऽव्यय बाहवस्ते।२६
सहस्रवक्त्रो भगवन्महात्मा सहस्रहस्ताङ्घ्रिशरीरभेदः।
सहस्रपद्मोद्भवयोनिराद्य स्सहस्रशस्त्वां मुनयो गृणन्ति ॥२७
दिव्यं हि रूपं तव वेत्ति नान्यो देवैरशेषैरवताररूपम्।
तदर्च्यंते वेत्सि न किं यदन्ते त्वय्येव विश्वं लयमभ्युपत्ति ॥२८

श्री पराशरजी ने कहा – यह सुनकर बलरामजी के बल-वीर्य से परिचित श्रीकृष्ण ने मधुर मुस्कान पूर्वक अपने ओष्ठों को खोला और बलरामजी से बोले ॥३२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे सर्वात्मन्! आप तो गुह्य से भी अत्यन्त गुह्य हैं, फिर इस मनुष्य भाव का आश्रय लेने का क्या कारण है? ॥२३॥ आपका जो रूप संसार के कारण के भी कारण तथा उसका भी कारण है और प्रलयकाक में भी स्थित रहता है, उसका आप स्मरण कीजिए ॥२४॥ क्या आपको ज्ञात नहीं है कि आप और मैं दोनों ही इस विश्व के कारण रूप हैं और भू-भार हरण करने के लिए हमने पृथिवी हर अवतार धारण किया है ॥२४॥ हे अनन्त! आकाश

आपका मस्तक, मेघ आपके केश, पृथिवी आपके चरण, अग्नि आपका मुख, चन्द्रमा आपका मन, पवन आपका श्वास-प्रश्वास तथा सब दिशाएं आपकी भुजाएं हैं ॥२६॥ हे भगवन् ! आप दीर्घ देह वाले, सहस्र मुख, सहस्र हाथ और सहस्र चरणादि अवयव वाले हैं। हजारों ब्रह्माओं के कारण रूप आपकी मुनिजन हजारों प्रकार से स्तुति करते हैं ॥२७॥ आपके दिव्य रूप को जानने वाला कोई भी नहीं हैं, इसलिए देवता भी आपके अवतार रूप की ही आराधना करते हैं। क्या अपको यह स्मरण नहीं है कि अन्तकाल में यह सम्पूर्ण जगत् आप में ही लीन हो जाता हैं ॥२८॥

त्वया धृतेयं धरणी विभर्ति चराचरं विश्वमनन्तमूर्त्ते ।
कृतादिभेदैरज कालरूपो निमेषपूर्वो जगदेतदत्सि ॥२६
अत्तं यथा बाडववह्निनाम्बु हिमस्वरूपं परिगृह्यकास्तम् ।
हिमाचले भानुमतोंऽशुसङ्गाज्जलत्वमभ्येति पुनस्तदेव ॥३०
एवं त्वया संहरणेऽत्तमेतज्जगत्समस्तं त्वदधीनक पुनः ।
तवैव सर्गाय समुद्यतस्य जगत्त्वमभ्येत्यनुकल्पमीश ॥३१
भवानहं च विश्वात्मन्नेकमेव च कारणम् ।
जगतोऽस्य जगत्यर्थे भेदेनावां व्यवस्थितौ ॥३२
तत्स्मर्यतानमेयात्मंस्त्वयात्मा जहि दानवम् ।
मानुष्यमेवावलम्ब्य बन्धूनां क्रियतां हितम् ॥३३
इति संस्मारितो विप्र कृष्णेन सुमहात्मना ।
विहस्य पीडयामास प्रलम्बं बलवान्बलः ॥३४
मुष्टिना सोऽहनन्मूर्ध्नि कोपसरक्तलोचनः ।
तेन चास्य प्रहारेण बहिर्यातेि विलोचने ॥३५
स निष्कासितमस्तिष्को मुखाच्छोणितमुद्वमन् ।
निपपात महीपृष्टे दैत्यवर्यो ममार च ॥३६
प्रलम्बं निहतं दृष्ट्वा बलेनाद्भुतकर्मणा ।
प्रहृष्टास्तुष्टुवुर्गोपास्साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥३७

संस्तूयमानो गोपैस्तु रामा दैत्ये निपातिते ।
प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययौ ।।३८

हे अनन्त मूर्ते ! सम्पूर्ण चराचर जगत को धारण करने वाली पृथिवी के आप ही धारण करने वाले हैं। आप ही अजन्मा निमेषादि काल रूप होकर सत्ययुग आदि के भेद से इस विश्व का स्वयं ही ग्रास कर लेते हैं ।।२६।। जैसे वड़वानल का जलवायु के द्वारा हिमालय पर पहुँच कर बर्फ बन जाता है और सूर्य रश्मियों के संयोग से पिघल कर पुनः जल रूप होता है, वैसे ही यह विश्व आपके द्वारा संहार को प्राप्त होकर आपके ही आश्रय में रहता है और जब आप पुनः सृष्टि करने में तत्पर होते हैं, तब यह स्थूल विश्व रूप हो जाता है ।।३०-३१।। हे विश्वात्मन् ! आप और मैं दोनों ही इस विश्व के अकेले कारण हैं और लोकहित के लिए ही हमने पृथक्-पृथक् रूप धारण किया है ।।३२।। इसलिए आप अपने यथार्थ रूप को याद करिये और मानव-भाव के आश्रय में ही इस दैत्य का वध करके जनहित को सिद्ध कीजिए ।।३३।। श्री पराशरजी ने कहा—महात्मा श्रीकृष्ण ने जब उन्हें इस प्रकार याद दिलाई, तब महाबली बलरामजी ने हँसकर प्रलम्बासुर को पीड़ित करना आरम्भ किया ।।३४।। उन्होंने क्रोध पूर्वक लोहित वर्ण के नेत्र करके उसके सिर पर मुष्टिका से प्रहार किया, जिससे आहत होने पर उसके दोनों नेत्र बाहर की ओर निकल पड़े ।।३५।। फिर मस्तिष्क के फटने से वह महादैत्य रुधिर वमन करता हुआ धरती पर गिरकर मृत्यु को प्राप्त हुआ ।।३६।। अद्भुत कर्म वाले बलरामजी के द्वारा प्रलम्बासुर का वध हुआ देखकर सभी गोप उन्हें साधुवाद देने लगे ।।३७।। प्रलम्बासुर के मरने पर गोपों द्वारा प्रशंसित होते हुए बलरामजी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गोकुल में लौट आये ।।३८।।

दसवाँ अध्याय

तयोर्विहरतोरेवं रामकेशवयोर्व्रजे ।
प्रावृड्व्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत् ।।१

अवापुस्तापमत्यर्थं शफर्यः पल्वलोदके ।
पुत्रक्षेत्रादिसक्तेन ममत्वेन यथा गृही ॥२
मयूरामौनमातस्थुः परित्यक्तमदा वने ।
असारतां परिज्ञाय संसारस्येव योगिनः ॥३
उत्सृज्य जलसर्वस्वं विमलास्सितमूर्त्तयः ।
तत्यजुश्चाम्बरं मेघा गृहं विज्ञानिनो यथा ॥४
शरत्सूर्यांशुतप्तानि ययुश्शोषं सरांसि च ।
बह्वलम्बममत्वेन हृदयानीव देहिनाम् ॥५
कुमुदैश्शरदम्भांसि योग्यतालक्षणं ययुः ।
अवबोधैर्मनांसीव समत्वममलात्मनाम् ॥६
तारकाविमले व्योम्नि रराजाखण्डमण्डलः ।
चन्द्रश्चरमदेहात्मा योगी साधुकुले यथा ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—राम और कृष्ण के इस प्रकार व्रज में क्रीडा करते हुए वर्षा काल समाप्त हो गया और विकसित पद्मों से सम्पन्न शरद् ऋतु आ उपस्थित हुई ॥१॥ जैसे गृहस्थजन पुत्र और खेत आदि की ममता में पड़ कर दुःख पाते हैं, वैसे ही गड्ढों के जल में मछलियाँ सन्तप्त होने लगीं ॥२॥ जैसे योगीजन संसार की सार हीनता को जानकर शान्त हो जाते हैं, वैसे ही इस समय मोरों ने मद को त्याग कर मौन धारण कर लिया ॥३॥ जैसे ज्ञानीजन घर को छोड़ देते हैं, वैसे ही जल रूप सर्वस्व को त्याग कर स्वच्छ हुए मेघों ने आकाश मंडल को छोड़ दिया ॥४॥ जैसे नाना पदार्थों में ममता करने वाले प्राणियों के हृदय सार-हीन हो जाते हैं, वैसे ही शरद् काल के सूर्य के ताप के कारण सरोवर भी जल-हीन हो गये ॥५॥ जैसे स्वच्छ चित्त वाले पुरुषों को ज्ञान के द्वारा समता की प्राप्ति होती है, वैसे ही शरद् काल के जलों को भी कुमुदों की प्राप्ति हो जाती है ॥६॥ जैसे साधुजनों में योगी शोभा पाता है, वैसे ही तारामण्डल से युक्त स्वच्छ आकाश में पूर्णचन्द्र सुशोभित होता है ॥७॥

शनैकैश्शनकैस्तीरं तत्यजुश्च जलाशयाः ।

ममत्वं क्षेत्रपुत्रादिरूढमुच्चैर्यथा बुधाः ॥८
पूर्वं त्यक्तैस्सरोऽम्भोभिर्हंसा योगं पुनर्ययुः ।
क्लेशैः कुयोगिनोऽशेषैरन्तरायहता इव ॥९
निभृतोऽभवदत्यर्थं समुद्रः स्तिमितोदकः ।
क्रमावाप्तमहायोगो निश्चलात्मा यथा यतिः ॥१०
सर्वत्रातिप्रसन्नानि सलिलानि तथाभवन् ।
ज्ञाते सर्वगते विष्णौ मनांसीव सुमेधसाम् ॥११
बभूव निर्मलं व्योम शरदा ध्वस्ततोयदम् ।
योगाग्निदग्धक्लेशौधं योगिनामिव मानसम् ॥१२
सूर्यांशुजनितं तापं निन्ये तारापतिः शमम् ।
अहंमानोद्भवं दुःखं विवेकः सुमहानिव ॥१३
नभसोऽब्दं भुवः पंकं कालुष्यं चाम्भसश्शरत् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रत्याहार इवाहरत् ॥१४
प्राणायाम एवाम्भोभिस्सरसां कृतपूरकैः ।
मभ्यस्यतेऽनुदिवसं रेचकाकुम्भकादिभिः ॥१५

जैसे विवेकी पुरूष पुत्र और वैभव में बढ़ते हुए ममत्व को धीरे-धीरे छोड़ देते हैं, वैसे ही जलाशयों का जल भी अपने किनारों को धीरे-धीरे त्यागने लगा ॥८॥ जैसे विघ्नों से विचलित हुए कुयोगियों को क्लेशों की पुनः प्राप्ति होती है. वैसे ही पूर्व में त्यागे हुए सरोवर के जल से हंस पुनः मिल गये ॥९॥ जैसे महायोग की उपलब्धि पर यदि निश्चलात्मा हो जाता है, वैसे ही जल की स्थिरता से समुद्र निश्चल हो गया ॥१०॥ जैसे भगवान् विष्णु का ज्ञान होने पर ज्ञानियों के चित्त स्वच्छ हो जाते हैं, वैसे ही शरद् ऋतु को प्राप्त होकर जलाशयों का जल स्वच्छ हो गया ॥११॥ जैसे योगाग्नि द्वारा नष्ट क्लेश योगियों के चित्त स्वच्छ हो जाते हैं, वैसे ही मेघों के न रहने से आकाश स्वच्छ हो गया ॥१२॥ जैसे अहंकार से उत्पन्न हुए दुःख की शान्ति विवेक से हो जाती है, वैसे ही चन्द्रमा से सूर्य रश्मियों से उत्पन्न ताप की शान्ति हो गई ॥१३॥ जैसे इन्द्रियों के विषयों को प्रत्याहार दूर कर देता है, वैसे

ही आकाश से बादलों को, पृथिवी से धूलि को और जल से मल को शरद् काल ने उपस्थित होकर दूर कर दिया है ॥१४॥ उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि सरोवरों के जल पूरक करके अब कुम्भक और रेचक क्रिया करते हुए प्राणायाम के अभ्यास में लगे हैं ॥१५॥

विमलाम्बरनक्षत्रे काले चाभ्यागते व्रजे ।
ददर्शेन्द्रमहारम्भायोद्यतांस्तान्व्रजौकसः ॥१६
कृष्णस्तानुत्सुकान्दृष्ट्वा गोपानुत्सवलालसान् ।
कौतूहलादिदं वाक्यं प्राह वृद्धान्महामतिः ॥१७
कोऽयं शक्रमखो नाम येन वो हर्ष आगतः ।
प्राह तं नन्दगोपश्च पृच्छन्तमतिसादरम् ॥१८
मेघानां पयसां चेशो देवराजश्शतक्रतुः ।
तेन सञ्चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बुमय रसम् ॥१९
तद्वृष्टिजनितं सस्यं वयमन्ये च देहिनः ।
वर्त्तयामोऽपभुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः ॥२०
क्षीरवत्य इमा गावो वत्सवत्यश्च निर्वृताः ।
तेन सर्वर्द्धितैस्सस्यैस्तुष्टाः पुष्टा भवन्ति वै ॥२१
नासस्या नातृणा भूमिर्न बुभुक्षार्दितो जनः ।
दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहकाः ॥२२
भौममेतत्पयो दुग्ध गोभिः सूर्यस्य वारिदैः ।
पर्जन्यस्सर्वलोकस्योद्भवाय भुवि वर्षति ॥२३
तस्मात्प्रावृषि राजानस्सर्वे शक्रं मुदा युताः ।
मखैस्सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च मानवाः ॥२४

इस प्रकार व्रजमण्डल में जब आकाश स्वच्छ हो गया और शरद् काल का आगमन हुआ तब श्रीकृष्ण ने सब व्रजवासियों को इन्द्रोत्सव की तैयारी में लगे हुए देखा ॥१६॥ उन गोपों को उत्सव की उमग में भरे हुए देखकर श्रीकृष्ण ने अपने वृद्धजनों से कौतूहल पूर्वक पूछा ॥१७॥ आप लोग जिसे करने के लिए इतने उत्साहित हैं, वह इन्द्रयज्ञ कैसा होगा ? आदर सहित ऐसा प्रश्न किए जाने पर नन्दजी ने उनसे कहा

॥१८॥ नन्द गोप बोले—मेघ और जल दोनों के ही स्वामी इन्द्र हैं, उन्हीं की प्रेरणा से मेघ जल रूप रस की वृष्टि करते हैं ॥१६॥ हम तथा अन्य प्राणी वर्षा से प्राप्त हुए अन्न का ही व्यवहार करते हैं। उसका स्वयं उपभोग करते और उसी से देवताओं को तृप्त करते हैं ॥२०॥ वृष्टि-जल से वृद्धि को प्राप्त हुए तृण से ही यह गौएँ तृप्ति और पुष्टि को प्राप्त करती हैं। उसी से बछड़ों वाली और दुधारू होती हैं ॥२१॥ जिस भूमि पर वर्षणशील बादल दिखाई देते थे, वहाँ अन्न या घास की कमी नहीं होती जिससे वहाँ क्षुधा से किसी को भी पीड़ित नहीं होना होता है ॥२२॥ यह इन्द्र ही सूर्य-रश्मियों के द्वारा पृथिवी के जल को खींचते और मेघों के द्वारा उसी जल को पुनः पृथिवी पर बरसाते हैं ॥२३॥ इसीलिए सब राजा लोग, हम तथा अन्य सब मनुष्य यज्ञों के द्वारा इन्द्र का ही प्रसन्नता पूर्वक पूजन किया करते हैं ॥२४॥

नन्दगोपस्य वचनं श्रुत्वेत्थं शक्रपूजने।
रोषाय त्रिदशेन्द्रस्य प्राह दामोदरस्तदा ॥२५
न वयं कृषिकर्त्तारो वाणिज्याजीविनो न च।
गावोऽस्मद्दैवतं तात वयं वनचरा यतः ॥२६
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्तादण्डनीतिस्तथा परा।
विद्याचतुष्टयं चैतद्वार्त्तामात्र शृणुष्व मे ॥२७
कृषिर्वणिज्या तद्वच्च तृतीयं पशुपालनम्।
विद्या ह्येका महाभाग वार्त्ता वृत्तित्रयाश्रया ॥२८
कर्षकाणां कृषिवृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम्।
अस्माकं गौः परा वृत्तिर्वार्त्ता भेदैरियं त्रिभिः ॥२६
विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दवतं महत्।
सैव पूज्यार्चनीया च सैव तस्योपकारिका ॥३०
यो यस्य फलमश्नन्वै पूजयत्यपरं नरः।
इह च प्रत्य चैवासौ न तदाप्नोति शोभनम् ॥३१
कृष्यान्ता प्रणिता सीमा सीमान्त च पुनर्वनम्।
वनान्ता गिरयस्सर्वे ते चास्माकं परा गतिः ॥३२

न द्वारवन्धावरणा न गृहक्षेत्रिणस्तथा ।
सुखिनस्त्वखिले लोके यथा वै चक्रचारिणः ॥३३

श्री पराशरजी ने कहा—इन्द्र के पूजन विषयक यह विचार सुनकर भगवान् दामोदर ने इन्द्र को रुष्ट करने के विचार से ही नन्दजी के प्रति कहा ॥२५॥ हे तात ! हम न तो कृषि जीवी हैं, न वाणिज्य जीवी, हम वनचरों के देवता तो यह गौएँ ही हैं ॥२६॥ तर्क, कर्मकाण्ड, दण्डनीति और वार्त्ता—यह चार विद्याएँ कही जाती हैं, इनमें से केवल वार्त्ता के विषय में ही घाप से कहता हूँ, उसे सुनिये ॥२७॥ हे महाभाग ! कृषि, वाणिज्य और पशु पालन रूप तीनों वृत्तियों की आश्रय भूता वार्त्ता नाम की विद्या ही है ॥२८॥ वार्त्ता के इन तीनों भेदों के कारण किसानों की वृत्ति कृषि, व्यापारियों की वृत्ति वाणिज्य और हमारी वृत्ति गोपालन है ॥२९॥ जो व्यक्ति जिस विद्या की वृत्ति को करता है, उसकी इष्ट देवता वही विद्या है, उसे अपनी उस परम उपकारिणी विद्या का ही पूजन करना चाहिये ॥३०॥ एक देवता से फल लाभ करके दूसरे देवता का पूजन करने वाले मनुष्य के इहलोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं ॥३१॥ खेतों की समाप्ति पर सीमा आती है और सीमा के अन्त होने पर वन आता है और जव वन भी समाप्त हो जाता है, तव पर्वत आतें हैं, इसलिए पर्वत ही हमारे लिए तो परमगति स्वरूप हैं ॥३२॥ हम न तो घर की भीत में रहते हैं, न किवाड़ लगाते हैं और न घर या खेत वाले ही हैं, हम तो भ्रमणशील मुनियों के समान ही अपने जनों के समाज में सुख से रहते हैं ॥३३॥

श्रूयन्ते गिरयश्चैव वनेऽस्मिन्कातरूपिणः ।
तत्तद्रूपं समास्थाय रमन्ते स्वेषु सानुषु ॥३४
यदा चेतैः प्रबाध्यन्ते तेषां ये काननौकसः ।
तदा सिंहादिरूपैस्तान्धातयन्ति महीधराः ॥३५
गिरियज्ञस्त्वयं तस्माद्गोयज्ञश्च प्रवर्त्यताम् ।
किमस्माकं महेन्द्रेण गावश्शैलाश्च देवताः ॥३६
मन्त्रयज्ञपरा विप्रास्सीरयज्ञाश्च कर्षकाः ।

गिरिगोयज्ञशीलाश्च वयमद्रिवनाश्रयाः ॥३७
तस्माद्गोवर्धनश्शैलो भवद्भिर्विविधार्हणैः ।
अर्च्यतां पूज्यतां मेध्यान्पशूत्हत्वा विधानतः ॥३८
सर्वघोषस्य सन्दोहो गृह्णतां मा विचार्यताम् ।
भोज्यन्तां तेन वै विप्रास्तथा ये चाभिवाञ्छकाः ॥३९
तत्रार्चिते कृते होमे भोजितेषु द्विजातिषु ।
शरष्पुष्पकृतापीड़ाः परिगच्छन्तु गोगणाः ॥४०
एतन्मम मतं गोपास्सम्प्रीत्या क्रियते यदि ।
ततः कृता भवेत्प्रीतिर्गवामद्रेस्तथा मम ॥४१

सुनते हैं कि इस वन के पर्वत इच्छित रूप धारण करके अपने-अपने मस्तक पर विहार करते रहते हैं ॥३४॥ जब कोई वनवास इन पर्वत देवताओं के विहार में किसी प्रकार बाधक होते हैं, तब यह सिंहादि रूप को धारण करके उनकी हत्या कर डालते हैं ॥३५॥ इसलिए आज से गिरियज्ञ अथवा गोयज्ञ करने की तैयारी करिये । हमारे देवता तो पर्वत और गोएँ ही हैं, इन्द्र से हमें क्या लेना है ? ॥३६॥ विप्रगण मंत्र यज्ञ और कृषकगण सीर यज्ञ करते हैं, इसलिए हम पर्वतों और वनों में निवास करने वालों के लिए तो गिरियज्ञ अथवा गोयज्ञ करना ही श्रेयस्कर है ॥३७॥ इसलिए आप मेध्य वलि देकर विविध पदार्थों के द्वारा विधि पूर्वक गोवर्धन पर्वत का पूजन करिये ॥३८॥ आज ही आप ब्रज भर का सब दूध इकट्ठा करके उससे ब्राह्मणों और भिखारियों को भोजन कराइये, इस विषय में अधिक विचार की आवश्यकता नहीं है ॥३९॥ गोवर्धन का पूजन, हवन और ब्राह्मण-भोजन की समाप्ति पर शरत्कालीन पुष्पों से सुशोभित मस्तक वाली गोएँ गोवर्धन की प्रदक्षिणा करें ॥४०॥ हे गोपो ! यदि आप मेरे इस मत का अनुसरण करेंगे तो मुझे, गोवर्धन पर्वत को और गौओं को इससे अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होगी ॥४१॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नन्दाद्यास्ते व्रजौकसः ।
प्रीत्युत्फुल्लमुखा गोपास्साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥४२

शोभनं ते मतं वत्स वदेतद्भवतोदितम् ।
तत्करिष्यामहे सर्वं गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ।।४३
तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञं व्रजौकसः ।
दधिपायसमांसाद्यैर्ददुश्शैलबलिं ततः ।।४४
द्विजांश्च भोजयामासुश्शतशोऽथ सहस्रशः ।।४५
गावश्शैलं ततश्चक्रुरर्चितास्ताः प्रदक्षिणम् ।
वृषभाश्चातिनर्दन्तस्सतोया जलदा इव ।।४६
गिरिमूर्द्धनि कृष्णोऽहमिति मूर्तिमान् ।
बुभुजेऽन्नं बहुतरं गोपवर्याहृतं द्विज ।।४७
स्वेनैव कृष्णो रूपेण गोपैस्सह गिरेश्शिरः ।
अधिरुह्यार्चयामास द्वितीयामात्मनस्तनुम् ।।४८
अन्तर्द्धानं गते तस्मिन्गोपा लब्ध्वा ततो वरान् ।
कृत्वा गिरिमखं गोष्ठं निजमभ्याययुः पुनः ।।४९

श्री पराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण ने ऐसे वचन सुनकर नन्दादि गोपों ने प्रसन्नता से प्रफुल्लित हुए मुख से उन्हें साधुवाद दिया ।।४२।। वे कहने लगे– हे वत्स ! तुम्हारा विचार अत्युत्तम है, हम सब उसी के अनुसार करेंगे । अब हम गिरियज्ञ का प्रवर्तन करेंगे ।।४३।। फिर उन सब व्रजवासियों ने गिरियज्ञ प्रारम्भ किया और पर्वतराज गोवर्धन को दही, खीर आदि पदार्थों से बलि दी ।।४४।। सैकड़ों हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् पुष्पादि से सजी हुई गौओं और जलयुक्त मेघों के समान गर्जनशील बैलों ने गिरि गोवर्धन की परिक्रमा की ।।४५-४६।। हे द्विज ! उस समय गिरिराज के शिखर पर अन्य रूप से मूर्तिमान् हुए श्रीकृष्ण ने गोपों द्वारा अर्पित विविध भोजन सामग्री को ग्रहण किया ।।४७।। गोपों के साथ गिरिराज के शिखर पर चढ़ कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने ही द्वितीय स्वरूप की पूजा की ।।४८।। इस प्रकार गिरियज्ञ की समाप्ति पर उनसे अपना इच्छित वर प्राप्त करके सभी गोपगण उनके अन्तर्धान होने के पश्चात् अपने-अपने गोष्ठों में चले गये ।।४९।।

ग्यारहवां अध्याय

मखे प्रतिहते शक्रो मैत्रेयातिरुषान्वितः ।
संवर्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत् ॥१
भो भो मेघा निशम्यैतद्वचनं गदतो मम ।
आज्ञानन्तरमेवाशु क्रियतामविचारितम् ॥२
नन्दगोपस्सुदुर्बुद्धिर्गोपैरन्यैस्सहायवान् ।
कृष्णाश्रयबलाध्मातो मखभङ्गमचीकरत् ॥३
आजीवो यः परस्तेषां गावस्तस्य च कारणम् ।
ता गावो वृष्टिवातेन पीडयन्तां वचनान्मम ॥४
अहमप्यद्रिशृङ्गाभं तुङ्गमारुह्य वारणम् ।
साहाय्यं वः करिष्यामि वाय्वम्बूत्सर्गयोजितम् ॥५
इत्याज्ञप्तास्ततस्तेन मुमुचुस्ते वलाहकाः ।
वातवर्षं महाभीममभावाय गवां द्विज ॥६
ततः क्षणेन पृथिवी ककुभोऽम्बरमेव च ।
एकं धारामहासारपूरणेनाभवन्मुने ॥७
विद्युल्लताकशाघातत्रस्तैरिव घनैर्घनम् ।
नादापूरितदिक्चक्रैर्धारासारमपात्यत ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! अपने यज्ञ के इस प्रकार रुकने से इन्द्र को अत्यन्त क्रोध हुआ और संवर्तक नामक अपने मेघों से कहने लगा ॥१॥ हे मेघगण ! मेरा वचन सुन कर तुम मेरी आज्ञा पर बिना किसी प्रकार का सोच विचार करके तुरन्त उसका पालन करो ॥२॥ दुर्बुद्धि नन्द ने कृष्ण के अवलम्ब से अन्य सब गोपों के सहित मेरे यज्ञ को नष्ट कर दिया है ॥३॥ इसलिये उनकी परम जीविका और गोपत्व के कारण रूप गौओं को वृष्टि और पवन के द्वारा उत्पीड़ित करो ॥४॥ मैं भी अपने पर्वताकार ऐरावत पर चढ़कर जल और पवन के प्रयोग के समय तुम्हारा सहायक होऊँगा ॥५॥ श्री पराशरजी ने कहा-- हे द्विज ! इन्द्र की आज्ञा प्राप्त करके उन मेघों ने गौओं का क्षय करने के लिये वर्षा और वायु का प्रयोग किया ॥६॥ हे मुने ! मेघों द्वारा

प्रयुक्त महान् जल धाराओं से यह पृथिवी, दिशाएँ और आकाश क्षण भर में ही जल से परिपूर्ण दिखाई देने लगे ॥७॥ उस समय ऐसा प्रतीत होता था जैसे विद्युत रूपी लता का आघात होने के डर से भीत हुए मेघ अपने घोर गर्जन से सब दिशाओं को गुंजाते हुए घनघोर वृष्टि कर रहे हों ॥८॥

अन्धकारीकृते लोके वर्षद्भिरनिशं घनैः ।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च जगदाप्यमिवाभवत् ॥९
गावस्तु तेन पतता वर्षवातेन वेगिना ।
धूताः प्राणाञ्जहुस्सन्नत्रिकसक्थिशिरोधराः ॥१०
क्रोडेन वत्सानाक्रम्य तस्थुरन्या महामुने ।
गावो विवत्साश्च कृता वारिपूरेण चापराः ॥११
वत्साश्च दीनवदना वातकम्पितकन्धराः ।
त्राहि त्राहीत्यल्पशब्दाः कृष्णमूचुरिवातुराः ॥१२
ततस्तद्गोकुलं सर्वं गोगोपीगोपसंकुलम् ।
अतीवार्तं हरिर्दृष्ट्वा मैत्रयाचिन्तयत्तदा ॥१३
एतत्कृतं महेन्द्रेण मखभङ्गविरोधिना ।
तदेतदखिलं गोष्ठं त्रातव्यमधुना मया ॥१४
इयमद्रिमहं धैर्यादुत्पाट्योरुशिलाघनम् ।
धारयिष्यामि गोष्ठस्य पृथुच्छत्रमिवोपरि ॥१५

इस प्रकार रात-दिन निरन्तर जल-वृष्टि और विश्व के अंधकारमय हो जाने पर ऊपर, नीचे इधर, उधर सर्वत्र ही यह सब लोक जल रूप ही होगया ॥९॥ घोर वर्षा और प्रचंड वायु के वेगपूर्वक चलने से गौओं के सर्वांग—कटि, जंघा, ग्रीवा आदि निश्चेष्ट हो गये और वे कम्पायमान होती हुईं प्राण त्याग करती हुई-सी प्रतीत होने लगीं । ॥१०॥ हे महामुने किसी गौ ने तो अपने बछड़े को नीचे करके ढक लिया और कोई-कोई जल के वेग के कारण अपने बछड़े से ही बिछुड़ गई ॥११॥ दीन शरीर वाले बछड़े वायु के वेग से कम्पायमान होते हुए व्याकुलता पूर्वक 'त्राहि-त्राहि' पुकारने लगे ॥१२॥ हे मैत्रेयजी ! उस समय गौओं, गोपियों और

गोपों के सहित गोकुल को अत्यन्त व्यग्रावस्था में देख कर भगवान् श्री हरि विचार करने लगे ।।१३।। यज्ञ-भंग होने के विरोध में इन्द्र ही यह सब कर्म कर रहा है, इसलिए मुझे भी इस व्रज की रक्षा का उपाय करना चाहिए ।।१४।। अब मैं विशाल शिलाओं वाले इस महान् पर्वत को उखाड़ कर इससे एक वृहद् छत्र के समान व्रज को ढक लूँगा ।।१५।।

इति कृत्वा मतिं कृष्णो गोवर्धनमहीधरम् ।
उत्पाट्यैककरेणैव धारयामास लीलया ।।१६
गोपांश्चाह हसञ्छौरिस्समुत्पाटितभूधर ।
विशध्वमत्र त्वरिताः कृतं वर्षनिवारणम् ।।१७
सुनिवातेषु देशेषु यथा जोषमिहास्यताम् ।
प्रविश्यतां न भेतव्यं गिरिपाताच्च निर्भयैः ।।१८
इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविशुर्गोधनैस्सह ।
शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्चासारपीडताः ।।१९
कृष्णोऽपि तं दधारैव शैलमत्यन्तनिश्चलम् ।
व्रजैकवासिभिर्हर्षविस्मिताक्षैर्निरीक्षितः ।।२०
गोपगौपीजनैर्हृष्टैः प्रीतिविस्तारितेक्षणैः ।
संस्तूयमानचरितः कृष्णश्शैलमधारयत् ।।२१
सप्तरात्रं महामेघा ववर्षुर्नन्दगोकुले ।
इन्द्रेण चोदिता विप्र गोपानां नाशकारिणा ।।२२
ततो धृते महाशैले परित्राते च गोकुले ।
मिथ्याप्रतिज्ञो बलभिद्वारयामास तान्घनान् ।।२३
व्यभ्रे नभसि देवेन्द्रे वितथात्मवचस्यथ ।
निष्क्रम्य गोकुलं हृष्टं स्वस्थानं पुनरागमत् ।।२४
मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहाचलम् ।
स्वस्थाने विस्मितमुखैर्दृष्टस्तैस्तु प्रजौकसैः ।।२५

श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर लीला पूर्वक ही अपने एक हाथ पर रख

लिया ॥१६॥ पर्वत को उखाड़ लेने के पश्चात् उन्होंने सब गोपों से हँसते हुए कहा—आप सब लोग इस पर्वत के नीचे आ जाइये, मैंने वर्षा से बचने के लिये ही यह उपाय किया है ॥१७॥ इस निर्वात स्थान में निर्भय होकर घुस आओ और सुख पूर्वक बैठो। पर्वत के गिरने की आशंका न करो ॥१८॥ श्रीकृष्ण की यह बात सुन कर जलधार से त्रस्त हुए गोप-गोपिकाएँ अपने वर्तनों को छकड़ों में लाद कर और गौओं को भी साथ लेकर पर्वत के नीचे आ गये ॥१६॥ सभी व्रजवासी श्रीकृष्ण को हर्ष और आश्चर्य मिश्रित दृष्टि से एकएक देख रहे थे और वह भी निश्चल भाव से खड़े रह कर पर्वत को धारण किये रहे ॥२०॥ पर्वत-धारण करते हुए श्रीकृष्ण प्रीति पूर्वक विस्फारित नेत्रों वाले हर्षित चित्त गोप-गोपियों से अपने चरित्र का स्तवन सुनते रहे ॥२१॥ हे विप्र ! गोपों के नाश की कामना वाले इन्द्र की प्रेरणा से नन्द के गोकुल में सात रात तक घनघोर वर्षा होती रही ॥२२॥ परन्तु श्रीकृष्ण द्वारा गिरिराज के धारण किये जाने से जब उसने अपनी प्रतिज्ञा को भंग होते देखा तब उसने अपने मेघों को निवारण किया ॥२३॥ जब आकाश बादलों से हीन एवं स्वच्छ हो गया, तब इन्द्र की प्रतिज्ञा के टूटने पर सभी गोकुल निवासी पर्वत से निकल कर सहर्ष अपने-अपने स्थान पर आये ॥२४॥ फिर उन व्रजवासियों के आश्चर्य सहित देखते हुए श्रीकृष्ण ने उस महाचल गोवर्धन को उसके अपने स्थान पर स्थापित कर दिया ॥२५॥

बारहवां अध्याय

धृते गोवर्धने शैले परित्राते च गोकुले ।
रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनः ॥१
सोऽधिनगिरौ कृष्णं ददर्श त्रिदशेश्वरः ।
गोवर्धनगिरौ कृष्णं ददर्श त्रिदशेश्वरः ॥२
चारयन्तं महावीर्यं गास्तु गोपवपुर्धरम् ।
कृत्स्नस्य जगतो गोपं वृतं गोपकुमारकैः ॥३

गरुडं च ददर्शोच्चैरन्तर्द्धानगतं द्विज ।
कृतच्छायं हरेर्मूर्ध्नि पक्षाभ्यां पक्षिपुङ्गवम् ।।४
अवरुह्य स नागेन्द्रादेकान्ते मधुसूदनम् ।
शक्रस्सस्मितमाहेदं प्रीतिविस्तारितेक्षणः ।।५

श्री पाराशरजी ने कहा—इस प्रकार गोवर्धन पर्वत धारण पूर्वक गोकुल की रक्षा करने के कारण श्रीकृष्ण के दर्शन की इन्द्र ने इच्छा की ।।१।। इसलिए शत्रुओं के विजेता इन्द्र अपने ऐरावत पर आरूढ़ होकर गिरि गोवर्धन पर आये और वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने वाले श्रीकृष्ण को ग्वाल-बालों के साथ गोपवेश में गोचारण करते हुए देखा ।।२-३।। उस समय उन्हें पक्षिराज गरुड अपने पंखों से उनके ऊपर अदृश्य रूप से छाया करते हुए दिखाई दिये ।।४।। फिर वे ऐरावत से नीचे उतर कर श्रीकृष्ण की ओर बढ़े और एकान्त में उनको प्रीति पूर्वक देखते हुए कहने लगे ।।५।।

कृष्ण कृष्ण शृणुष्वेदं यदर्थमहमागतः ।
त्वत्समीपं महाबाहो नैतच्चिन्त्य त्वयान्यथा ।।६
भारावतारणार्थाय पृथिव्याः पृथिवीतले ।
अवतीर्णोऽखिलाधार त्वमेव परमेश्वर ।।७
मखभङ्गविरोधेन मया गोकुलनाशकाः ।
समादिष्टा महोमेघास्तैश्चेदं कदनं कृतम् ।।८
त्रातास्ताश्चत्वया गावस्समुत्पाटच महीधरम् ।
तेनाहं तोषितो बीर कर्मणात्वद्भुतेन ते ।।९
साधितं कृष्ण देवानामहं मन्ये प्रयोजनम् ।
त्वयायमद्रिप्रवरः करेणैकेन यद्धृतः ।।१०
गोभिश्च चोदितः कृष्ण त्वत्सकाशमिहागतः ।
त्वया त्राताभिरत्यर्थं युष्मत्सत्कारणात् ।।११
सत्वां कृष्णाभिषेक्ष्यामि गवां वाक्यप्रचोदितः ।
उपेन्द्रत्वे गवामिन्द्रो गोविन्दस्त्वं भविष्यसि ।।१२

इन्द्र ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! हे कृष्ण ! आपके पास मेरे आने का

कारण सुनिए। हे महाबाहो ! मेरे कथन को अन्यथा न मानें ॥६॥ हे अखिलेश्वर ! आप पृथिवी का भार उतारने के लिए इस भूतल पर अवतीर्ण हुए हैं ॥७॥ मेरे यज्ञ के नष्ट होने के विरोध में ही मैंने महामेघों को गोकुल को नष्ट करने के लिये आज्ञा दी थी और इसलिए उन्होंने यह जल-रूप संहार उपस्थित किया था ॥८॥ परन्तु, आपने पर्वत को उखाड़ कर गौओं की रक्षा की, आपके इस अद्‌भुत पराक्रम को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ ॥९॥ हे कृष्ण ! आपने अपने एक ही हाथ पर पर्वत को साध लिया था। आपके इस कर्म को देखकर मैं देवताओं के उद्देश्य को सिद्ध हुआ समझता हूँ ॥१०॥ आपके द्वारा रक्षित हुई गौओं की प्रेरणा से ही आपको विशेष रूप से सम्मानित करने के लिए मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ॥११॥ हे कृष्ण ! गौओं के वचनों से प्रेरित हुआ मैं अब आपको उपेन्द्र पद पर अभिषिक्त करूँगा। अब से आप गौओं के स्वामी का 'गोविन्द' नाम भी विख्यात होगा ॥१२॥

अथोपवाह्यादादाय घण्टामैरावताद् गजात् ।
अभिषेकं तया चक्रे पवित्रजलपूर्णया ॥१३
क्रियमाणेऽभिषेके तु गावः कृष्णस्य तत्क्षणात् ।
प्रस्रवोद्भूतदुग्धार्द्रा सद्यश्चक्रुर्वसुन्धराम् ॥१४
अभिषिच्य गवां वाक्यादुपेन्द्रं वै जनार्दनम् ।
प्रीत्या सप्रश्रयं वाक्यं पुनराह शचीपतिः ॥१५
गवामेतत्कृतं वाक्यं तथान्यदपि मे शृणु ।
यद्‌ब्रवीमि महाभाग भारावतरणेच्छया ॥१६
ममांशः पुरुषव्याघ्र पृथिव्यां पृथिवीधरः ।
अवसीर्णोऽर्जुनो नाम संरक्ष्यो भवता सदा ॥१७
भारावतरणे साह्यं स ते वीरः करिष्यति ।
संरक्षणीयो भवता यथात्मा मधुसूदन ॥१८

श्री पराशरजी ने कहा—फिर अपने वाहन ऐरावत का घण्टा लेकर इन्द्र ने उसे पवित्र जल से परिपूर्ण किया और उससे श्रीकृष्ण का अभिषेक किया ॥१३॥ जिस समय श्रीकृष्ण का अभिषेक हो रहा था, उस

समय गौओं ने भी अपने स्तनों से स्रवित होने वाले दूध से पृथिवी का सिंचन किया ।।१४।। इस प्रकार गौओं के वचनानुसार इन्द्र ने श्रीकृष्ण को उपेन्द्र पद पर अभिषिक्त कर उसने प्रीतिपूर्वक पुनः निवेदन किया ।।१५।। हे महाभाग ! मैंने तो यह गौओं के वचनों का पालन किया है। अब भू-भार-हरण के अभिप्राय से मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे भी सुनिये ।।१६।। हे भूधर ! हे पुरुष व्याघ्र ! अर्जुन नाम से मेरा एक अंश पृथिवी पर अवतरित हुआ है, आप उसके सदा रक्षक रहें ।।१७।। हे मधुसूदन ! भूमि का भार उतारने में वह आपका सहायक होगा, इसलिए जैसे अपने शरीर की रक्षा की जाती है, वैसे ही आप उसकी रक्षा करें ।।१८।।

जानामि भारते वंशे जातं पार्थं तवांशतः ।
तमहं पालयिष्यामि यावत्स्थास्यामि भूतले ।।१९

यावन्महीतले शक्र स्थास्याम्यहमरिन्दम ।
न तावदर्जुनं कश्चिद्देवेन्द्र युधि जेष्यति ।।२०

कंसो नाम महाबाहुर्दैत्योऽरिष्टस्तथासुरः ।
केशी कुवलयापीडो नपकाद्यास्तथा परे ।।२१

हतेषु तेषु देवेन्द्र भविष्यति महाहवः ।
तत्र विद्धि सहस्राक्ष भारावतरणं कृतम् ।।२२

स त्वं गच्छ न सन्तापं पुत्राथ कर्तुमर्हसि ।
नार्जुनस्य रिपुः कश्चिन्माग्रे प्रभविष्यति ।।२३

अर्जुनार्थे त्वहं सर्वान्युधिष्ठिरपुरोगमान् ।
निवृत्ते भारते युद्धे कुन्त्यै दास्याम्यविक्षतान् ।।२४

इत्युक्तः सम्परिष्वज्य देवराजो जनार्दनम् ।
आरुह्यैरावतं नागं पुनरेव दिवं ययौ ।।२५

कृष्णो हि सहितो गोभिर्गोपालैश्च पुनर्व्रजम् ।
आजगामाथ गोपीनां दृष्टिपूतेन वर्त्मना ।।२६

श्री भगवान् ने कहा—मुझे यह ज्ञात है कि पृथा-पुत्र अर्जुन तुम्हारे अंश से भरतवंश में अवतीर्ण हुआ है। जब तक मैं इस भूतल पर रहूँगा,

तब तक उसकी रक्षा करूँगा ॥१९॥ हे देवेन्द्र ! मेरे पृथिवी पर रहते हुए उस अर्जुन को कोई भी मनुष्य संग्राम में न हरा सकेगा ॥२०॥ महाबाहु कंस, अरिष्ट, केशी, कुवलयापीड और नरक आदि असुरों के मारे जाने के पश्चात् इस पृथिवी पर महाभारत नामक युद्ध होगा। हे सहस्राक्ष ! उसी युद्ध के द्वारा भू-भार उतरा हुआ समझो ॥२१-२२॥ तुम अपने पुत्र अर्जुन के विषय में किसी प्रकार की चिन्ता न करते हुए प्रसन्न चित्त से गमन करो, मैं जब तक यहाँ हूँ, तब तक अर्जुन का कोई भी शत्रु सफल नहीं होगा ॥२३॥ अर्जुन के निमित्त ही मैं महाभारत युद्ध की समाप्ति पर सब पाण्डवों को सकुशल रूप में कुन्ती को सौंप दूँगा ॥२४॥ श्री पराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण के द्वारा इस प्रकार कहा जाने पर इन्द्र ने उनका आलिंगन किया और ऐरावत पर चढ़कर अपने लोक को गये ॥२५॥ फिर श्रीकृष्ण भी ग्वाल-बालकों और गौओं को साथ लिये व्रजाङ्गनाओं के देखने से पवित्र हुए मार्ग द्वारा ब्रज में लौट आये ॥२६॥

तेरहवां अध्याय

गते शक्रे तु गोपालाः कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
ऊचुः प्रीत्या धृतं दृष्ट्वा तेन गोवर्धनाचलम् ॥१

वयमस्मान्महाभाग भगवन्महतो भयात् ।
ग.वश्च भवता त्राता गिरिधारणकर्मणा ॥२

बालक्रीडेयमतुला गोपालत्वं जुगुप्सितम् ।
दिव्यं च भवतः कर्म किमेतत्तात कथ्यताम् ॥३

कालियो दमितस्तोये धेनुको विनिपातितः ।
धृता गोवर्धनश्चायं शंकितानि मनांसि नः ॥४

सत्यं सत्यं हरेः पादौ शपामोऽमितविक्रम ।
यथावद्वीर्यमालोक्य न त्वां मन्यामहे नरम् ॥५

प्रीतिः सस्त्रीकुमारस्य व्रजस्य त्वयि केशव ।
कर्म चेदमशक्यं यत्समस्तैस्त्रिदशैरपि ॥६

बालत्वं चातिवीर्यत्वं जन्म चास्मास्वशोभनम् ।

चिन्त्यमानममेयात्मञ्छंकां कृष्ण प्रयच्छति ॥७
देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा ।
किमस्माकं विचारेण बान्धवोऽसि नमोऽस्तु ते ॥८

श्री पराशरजी ने कहा —जब इन्द्र चले गये, तब निर्दोष कर्म वाले श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत धारण किये जाने के कारण गोपों ने उनसे प्रेम पूर्वक कहा ॥१॥ हे भगवन् ! हे महाभाग ! आपने गिरिराज धारण का जो कर्म किया, उससे हमारी और गौओं की महान् भय से रक्षा हुई है ॥२॥ कहाँ यह उपमा रहित बालक्रीडा, कहाँ यह निन्दित गोपत्व और यह दिव्य कर्म ? हे तात ! वह क्या लीला है, सो सब हमारे प्रति कहिए ॥३॥ आपने कालियनाग का मर्दन किया, धेनुकासुर का वध किया और फिर इस गिरि गोवर्धन को धारण कर लिया—आपके यह अद्भुत कर्म हमारे मन में शङ्का उत्पन्न कर रहे हैं ॥५॥ हे असीमित विक्रम वाले ! भगवान् हरि के चरणों की शपथ पूर्वक हम आपसे कहते हैं कि आपके ऐसे सामर्थ्य को देखकर आपको मनुष्य नहीं माना जा सकता ॥५॥ स्त्री-बालकों के सहित सभी व्रजवासी आपको अत्यन्त प्रेम करते हैं । हे केशव ! आपके जैसा कर्म तो देवताओं के लिए भी सम्भव नहीं है ॥६॥ आपका यह बालकपन, यह अत्यन्त वीर्यत्व और हम जैसे अशोभन व्यक्तियों में जन्म-इन सब बातों पर जब हम विचार करने लगते हैं तब हे अमेयात्मन् ! हम शंका में पड़ जाते हैं ॥७॥ आप देवता, दानव, यक्ष अथवा गन्धर्व —कोई भी हों, हमें इस पर विचार करने से क्या लाभ है ? हमतो आपको अपना बन्धु ही मानते हैं, इसलिए आपको नमस्कार है ॥८॥

क्षणं भूत्वा त्वसौ तूष्णीं किञ्चत्प्रणयकोपवान् ।
इत्येवमुक्तस्तैर्गोपैः कृष्णोऽप्याह महामतिः ॥९
मत्सम्बन्धेन वो गोपा यदि लज्जा न जायते ।
श्लाघ्यो वाहं ततः किं वो विचारेण प्रयोजनम् ॥१०
यदि वोऽस्ति मयि प्रीतिः श्लाघ्योहं भवतां यदि ।
तदात्माब धुसदृशी बुद्धिर्वः क्रियतां मयि ॥११

नाहं देवो न गन्धर्वो न यक्षो न च दानवः ।
अहं वो वान्धवो जातो नैतच्चिन्त्यमितोऽन्यथा ।।१२
इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं बद्धमौनास्ततो वनम् ।
ययुर्गोपा महाभाग तस्मिन्प्रयकोपिनि ।।१३
कृष्णस्तु विमलं व्योम शरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम् ।
तदा कुमुदिनीं फुल्लामामोदितदिगन्तराम् ।।१४
वनराजिं तथा कूजद्भृङ्गमालामनोहराम् ।
विलोक्य सह गोपीभिर्मनश्चक्रे रतिं प्रति ।।१५

श्री पराशरजी ने कहा—गोपों के ऐसा कहने पर कुछ देर तक चुप रहने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने कुछ प्रणयात्मक क्रोध के साथ कहा ।।९।। श्री भगवान् बोले—हे गोपो ! यदि मुझसे सम्बन्ध होने के कारण आपको किसी प्रकार से लज्जित न होना पड़ता हो तो मैं आप लोगों की प्रशंसा का पात्र हूँ, ऐसा सोचने में ही क्या प्रयोजन है ।।१०।। यदि आप मुझसे प्रेम करते हैं और मुझे प्रशंसा योग्य समझते हैं तो आप मुझे अपना बन्धु ही मानते रहें ।।११।। मैं देवता नहीं हूँ, और न यक्ष अथवा दानव ही हूँ । मैं तो आपका बांधव होकर ही उत्पन्न हुआ हूँ, इसलिए इस विषय में अधिक विचार मत करो ।।१२।। श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् श्रीहरि की बात सुनकर उन्हें प्रणय-कोप में भरा देखकर वे सब गोप वन को चले गये ।।१३।। फिर श्रीकृष्ण ने स्वच्छ आकाश, शरद् कालीन चन्द्रमा की चन्द्रिका, दिशाओं को सुगन्धित करने वाली कुमुदिनी और भौरों की मधुर गुञ्जार वाली वनखण्डी की मनोहरता को देखा तो गोपियों के साथ विहार करने की इच्छा की ।।१४-१५।।

विना रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम् ।
जगौ कलपदं शौरिस्तापमन्द्रकृतक्रमम् ।।१६
रम्यं गीतध्वनिं श्रुत्वा सन्त्यज्यावसथांस्तदा ।
आजग्मुस्त्वरिता गोप्यो यत्रास्ते मधुसूदनः ।।१७
शनैश्शनैर्जगौ गोपी काचित्तस्य लयानुगम् ।
दत्तावधाना काचिच्च तमेव मनसास्मरत् ।।१८

काचित्कृष्णेति कृष्णेति प्रोच्य लज्जामुपाययौ ।
ययौ च काचित्प्रेमान्धा तत्पार्श्वमविलम्बितम् ॥१६
काचिच्चावसथस्यान्ते स्थित्वा दृष्ट्वा बहिर्गुरुम् ।
तन्मयत्वेन गोविन्दं दध्यौ मीलितलोचना ॥२०
तच्चित्तविमलह्लादक्षीणपुण्यचया तथा ।
तदप्राप्तिमहादुःखविलीनाशेषपातका ॥२१
चिन्तयन्ती जगत्सूतिं परब्रह्मस्वरूपिणम् ।
निरुच्छ्वासतया मुक्तिं गतान्या गोपकन्यका ॥२२
गोपीपरिवृतो रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम् ।
मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः ॥२३

उस समय बलरामजी नहीं थे। अकेले श्रीकृष्ण ही नारियों को प्रिय लगने वाला मधुर और मृदुल गीत उच्च तथा मन्द स्वर में गाने लगे ॥१६॥ उनकी उस सुरम्य गीत-लहरी को सुनकर सभी गोपियाँ तुरन्त अपने घरों को त्याग कर भगवान् मधुसूदन के पास जा पहुँची ॥१७॥ वहाँ पहुँच कर उनमें से किसी ने तो उनके स्वर में स्वर मिलाया और किसी ने मन ही मन उनका स्मरण किया ॥१८॥ कोई कृष्ण ! कृष्ण ! पुकारती हुई लज्जा और संकोच में भर गई और कोई प्रेमोन्माद में भर कर उनके पार्श्व में खड़ी होगई ॥१९॥ जिस किसी गोपों ने बाहर गुरुजनों के कारण घर को नहीं छोड़ा, वह वहीं श्री गोविन्द के ध्यान में तन्मय होगई॥२०॥ कोई गोपी विश्व कारण एवं ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण का ध्यान करते-करते ही मोक्ष को प्राप्त होगई, क्योंकि भगवान् के न मिलने के घोर दुःख से उसके सब पाप तथा उनके विमल आह्लाद से उसके सम्पूर्ण पुण्य क्षीण हो गये थे ॥२१-२२॥ रासरूप रस के आरम्भ करने की उत्कण्ठा वाले श्रीकृष्ण ने गोपियों से आवृत्त होकर शरद् के चन्द्रमा से सुशोभित उस रात्रि को सम्मान प्रदान किया ॥२३॥

गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टास्वायत्तमूर्त्तयः ।
अन्देदेशं गते कृष्ण चेरुर्वृन्दावनान्तरम् ॥२४

कृष्णे निबद्धहृदया इदमूचुः परस्परम् ।।२५
कृष्णोऽहमेष ललितं ब्रजाम्यालोक्यतां गतिः ।
अन्या ब्रवीति कृष्णस्य मम गीतिर्निशम्यताम् ।।२६
दुष्टकालिय तिष्टात्र कृष्णोऽहमिति चापरा ।
बाहुमास्फोटच कृष्णस्य लीलया सर्वमाददे ।।२७
अन्या ब्रवीति भो गोपा निश्शंकैः स्थीयतामिति ।
अलं वृष्टिभयेनात्र धृतो गोवर्धनो मया ।।२८
धेनुकोऽयं मया क्षिप्तो विचरन्तु ययेच्छया ।
गावो ब्रवीति चैवान्या कृष्णलीलानुसारिणी ।।२९
एवं नानाप्रकारासु कृष्ण चेष्टासु तास्तदा ।
गोप्यो व्यग्राः समं चेरू रम्यं वृन्दावनान्तरम् ।।३०

उस उमय, श्रीकृष्ण जब कहीं चले गये, तब कृष्ण चेष्टा के वशीभूत हुई गोपियाँ दल बनाकर वृन्दावन में घूमने लगीं ।।२४।। कृष्ण में निबद्ध हृदय वाली वे गोपियाँ परस्पर में इस प्रकार कहने लगीं ।।२५।। एक ने कहा—मैं कृष्ण हूँ, मेरी चाल कितनी सुन्दर है, इसे देखो तो सही। इस पर दूसरी ने कहा—कृष्ण तो मैं हूँ, तुम मेरा गीत सुनो ।।२६।। किसी अन्य गोपी ने ताल ठोंक कर कहा—अरे दुष्ट कालियनाग ! मैं कृष्ण हूँ, जरा ठहर तो सही--इस प्रकार कह कर यह गोपी श्रीकृष्ण की सब लीलाओं को करने लगीं ।।२७।। हे गोपो ! मैंने गोवर्धन पर्वत उठा लिया है, तुम निःसंकोच होकर इसके नीचे आ बैठो, वृष्टि से भय मत करो ।।२८।। किसी अन्य गोपी ने कृष्ण लीला का अनुसरण करते हुए कहा—मैंने धेनुकासुर का वध कर दिया, अब गौएँ यहाँ स्वच्छन्द विचरण करें ।।२९।। इस प्रकार श्रीकृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं में तन्मय हुई गोपियाँ उस अत्यन्त रमणीक वृन्दावन में साथ-साथ विचरण करने लगीं ।।३०।।

विलोक्यैका भुवं प्राह गोपी गोपवराङ्गना ।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी विकासिनयनोत्पला ।।३१

ध्वजवज्रांकुशाब्जाङ्करेखावन्त्यालि पश्यत ।
पदान्येतानि कृष्णस्य लीलाललितगामिनः ॥३२
कापि तेन समायाता कृतपुण्या मदालसा ।
पदानि तस्याश्चैतानि घनान्यल्पतनूनि च ॥३३
पुष्पापचयमत्रोच्चैश्चक्रे दामोदरो ध्रुवम् ।
येनाग्राक्रान्तमात्राणि पदान्यत्र महात्मनः ॥३४
अत्रोपविश्य वै तेन काचित्पुष्पैरलङ्कृता ।
अन्यजन्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितस्तया ॥३५
पुष्पबन्धनसम्मानकृतमानामपास्यताम् ।
नन्दगोपसुतो यातो मार्गेणानेन पश्यत ॥३६
अनुयातैनमत्रान्या नितम्बभरमन्थरा ।
या गन्तव्ये द्रुतं याति निम्नपादाग्रसस्थितिः ॥३७
हस्तन्यस्ताग्रहस्तेयं तेन याति तथा सखी ।
अनायत्तपन्यासा लक्ष्यते पदपद्धतिः ॥३८

विकसित कमल जैसे लोचन वाली एक सुन्दर गोपी ने सर्वाङ्ग पुलकित होकर भूमि की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा ॥३१॥ हे सखी ! लीलाललितगामी श्रीकृष्ण के यह ध्वजा, वज्र, अंकुश, कमल आदि रेखाओं वाले चरण चिन्हों को तो देखो ॥३२॥ उनके साथ कोई मदमाती युवती भी गई है, देखो उस पुण्यवती के यह घने, पतले और छोटे पद चिन्ह दिखाई पड़ रहे हैं ॥३३॥ उन्होंने यहाँ कुछ ऊँचे उठ कर पुष्प इकट्ठे किये हैं, इसीलिए यहाँ उनके चरणों का अगला भाग ही दिखाई देता है ॥३४॥ यहाँ किसी सौभाग्यशालिनी को उन्होंने अवश्य ही पुष्पों से सजाया जान पड़ता है कि उसने अपने पूर्वजन्म में भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया होगा ॥३५॥ अरे, यह देखो । पुष्पों से शृङ्गार किये जाने के सम्मान मद में भर कर उसने मान किया है, इसीलिए नन्दलाल उसे यहीं छोड़कर इस मार्ग से गये दिखाई देते हैं ॥३६॥ हे सखियो ! यहाँ नितम्ब भार के कारण मन्द गति वाली कोई गोपी तीव्र गति से श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे गई है, इसी कारण उनके पद चिन्हों

के अगले भाग कुछ नीचे हो गए हैं ॥ ३७ ॥ इस स्थान पर सखी अपना हाथ उनके हाथ में देती हुई गई है, इसीलिए उसके पद चिह्न कुछ परतंत्र से दिखाई दे रहे हैं ॥३८॥

हस्तसंस्पर्शमात्रेण धूर्तेनैषा विमानिता ।
नैराश्यान्मन्दगामिन्या निवृत्तं लक्ष्यते पदम् ॥३९
नूनमुक्तान्वरामीति पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम् ।
तेन कृष्णेन येनैषा त्वरिता पद्धपद्धतिः ॥४०
प्रविष्टो गहनं कृष्णः पदमत्र न लक्ष्यते ।
निवर्तध्वं शशांकस्य नैतद्दीधितिगोचरे ॥४१
निवृत्तास्तास्तदा गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने ।
यमुनातीरमासाद्य जगुस्तच्चरितं तथा ॥४२
ततो ददृशुरायान्तं विकासिमुखपंकजम् ।
गोप्यस्त्रैलोक्यगोप्तारं कृष्णमक्लिष्टचेष्टितम् ॥४३
काचिदालोक्य गोविन्दमायान्तमतिहर्षिता ।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्राह नान्यदुदीरयत् ॥४४
काचिद्भ्रूभङ्गरं कृत्वा ललाटफलकं हरिम् ।
विलोक्य नेत्रभृङ्गाभ्यां पपौ तन्मुखपंकजम् ॥४५
काचिदालोक्य गोविन्दं निमीलित विलोचना ।
तस्यैव रूपं ध्यायन्ती योगारूढेव सा बभौ ॥४६

इन पद चिह्नों से ऐसा लगता है कि वह मन्द गति वाली गोपी निराश होकर लौट पड़ी है, क्योंकि उस धूर्त ने केवल हाथ से स्पर्श करके ही उसका मान भङ्ग कर दिया है ॥३९॥ इस स्थान पर कृष्ण ने उसके पास से शीघ्र हो जाने और पुनः लौट आने को कहा होगा, क्योंकि यहाँ उसके पद चिह्न द्रुतगति से जाने के दिखाई दे रहे हैं ॥४०॥ इस स्थान पर उनके चरण चिह्नों के लोप हो जाने से प्रतीत होता है कि यहाँ से वह गहन वनमें प्रविष्ट होगये हैं । अब हम भी यहाँ से लौट चलें, क्योंकि यहाँ चन्द्रमा की किरणें भी दिखाई नहीं देती ॥ ४१ ॥ इसके पश्चात् कृष्ण का दर्शन मिलने की आशा को त्याग वहाँ से लौट

पड़ीं और यमुनाजी के तीर पर आकर उनके चरित्रों को गाने लगीं ॥४२॥ फिर उन गोपियों ने प्रसन्न मुख कमल वाले त्रैलोक्य रक्षक श्रेष्ठकर्मा श्रीकृष्ण को अपनी ओर आते हुए देखा ॥४३॥ उस समय उनको आता देख कर कोई सखी तो अत्यन्त उल्लास के कारण केवल कृष्ण। कृष्ण ही कह सकी, उसके मुख से कोई अन्य शब्द नहीं निकल सके ॥ ४४ ॥ कोई गोपी अपने भ्रू-भङ्गिमा युक्त ललाट को संकुचित करके भगवान् श्रीहरि को देखती-देखती अपने नेत्र रूपी भौंरों के द्वारा उनके मुख मकरकन्द को पीने लगी ॥ ४५ ॥ कोई एक गोपी उन्हें देख कर अपने नेत्रों को बन्द करती हुई उनके चिन्तन में योगारूढ़-सी प्रतीत होने लगी ॥४६॥

ततः काञ्चित्प्रियालापैः काञ्चिभ्रूभङ्गवोक्षितैः ।
निन्येऽनुनयमन्या च करस्पर्शेन माधवः ॥४७
ताभिः प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभिस्सह सादरम् ।
ररास रासगोष्ठीभिरुदारचरितो हरिः ॥४८
रासमण्डलवन्धोऽपि कृष्णपार्श्वमनुज्झता ।
गोपीजनेन नैवाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥४९
हस्तेन गृह्य चैकैकां गोपीनां रासमण्डलम् ।
चकार तत्करस्पर्शनिमीलितदृशं हरिः ॥५०
ततः प्रववृते रासश्चलद्वलयनिस्वनः ।
अनुयातशरत्काव्यगेयगीतिरनुक्रमात् ॥५१
कृष्णश्शरच्चन्द्रमसं कौमुदीं कुमुदाकरम् ।
जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः ॥५२
परिवृत्तिश्रमेणैका चलद्वलयलापिनीम् ।
ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी मधुनिघातिनः ॥५३
काचित्प्रविलसद्बाहुः परिरभ्यः चुचुम्ब तम् ।
गोपी गीतस्तुतिव्याजान्निपुणा मधुसूदनम् ॥५४

तब श्रीकृष्ण ने किसी से प्रिय अलाप, किसी पर भ्रूभङ्गी से दृष्टिपात और किसी के कर ग्रहणपूर्वक उन्हें मनाने का यत्न किया ॥४७॥ इसके

पश्चात् उस उदारचेता ने उन प्रसन्न चित्त वाली गोपियों के साथ आदर पूर्वक रास-विहार किया ॥४८॥ उस समय कोई भी गोपी कृष्ण के स्पर्श से पृथक् नहीं होना चाहती थी, इसलिए एक ही स्थान पर उनके स्थिर रहने से रास-मण्डल न बन पाया ॥४९॥ तब भगवान् श्री हरि ने एक-एक गोपी का हाथ अपने हाथ में लेकर रास मण्डल बनाया, उस समय उनके कर स्पर्श से गोपियों के नेत्र उन्मीलित हो गये ॥५०॥ इसके पश्चात् रासलीला का आरम्भ हुआ, जिसमें कंकणों के हिलने से झंकार होने लगी और शरद् वर्णन के गीत गाये जानें लगे ॥५१॥ उस समय श्रीकृष्ण ने चन्द्रमा, कौमुदी और कुसुमवन विषयक गीत गाये और गोपियाँ केवल श्रीकृष्ण के नाम का गान करने लगीं ॥५२॥ तभी एक गोपी नाचते-नाचते थक गई और उसनें चंचल कंकण की झनकार करती हुई अपनी बाहुलता भगवान् के कण्ठ में डाल दी ॥५३॥ किसी एक चतुर गोपी श्रीकृष्ण के गीत की प्रशंसा करने के मिस से अपने बाहुओं को पसार कर उनसे लिपट गई ॥५४॥

गोपीकपोलसंश्लेषमभिगम्य हरेर्भुजौ ।
पुलकोद्गमसस्याय स्वेदाम्बुघनतां गतौ ॥५५
रासगेयं जगौ कृष्णो तावत्तारतध्वनिः ।
साधु कृष्णेति कृष्णेति यावत्ता द्विगुणं जगुः ॥५६
गतेऽनुगमनं चक्रुर्वलने सम्मुखं ययुः ।
प्रतिलोमानुलोमाभ्यां भेजुर्गोपाङ्गना हरिम् ॥५७
स तथा सह गोपीभी ररास मधुसूदनः ।
यथाब्दकोटिप्रतिमः क्षणस्तेन विनाभवत् ॥५८
ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।
कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥५९
सोऽपि कैशोरकवयो मानयन्मधुसूदनः ।
रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः ॥६०
तद्भर्तृषु तथा तासु सर्वभूतेषु चेश्वरः ।
आत्मस्वरूपोऽसौ व्यापी वायुरिव स्थितः ॥६१

यथा समस्तभूतेषु नभोऽग्नि पृथिवी जलम् ।
वायुश्चात्मा तथैवासौ व्याप्य सर्वं मवस्थितः ।।६२

गोपियों के कपोलों को स्पर्श करती हुईं, श्रीकृष्ण की भुजाएँ उनमें पुलकावलि रूपी धान्य को उत्पन्न करने के निमित्त स्वेद रूपी मेघ हो गईं ।। ५५ ।। भगवान् जितने ऊँचे स्वर में रास-गीत का गान करते, उससे द्विगुण उच्च स्वर में गोपियाँ, 'श्रीकृष्ण धन्य हैं' 'श्रीकृष्ण धन्य हैं' —ऐसी रट लगा रही थीं ।। ५६ ।। जब वह आगे जाते तब गोपियाँ उनके पीछे २ चलतीं और जब वे पीछे लौटते तब वे सामने चलती थीं। इस प्रकार वे गोपाङ्गनाएँ अनुलोम-प्रतिलोम गति से श्रीकृष्ण का अनुगमन कर रह थीं ।।५७।। वे भी उनके साथ इस प्रकार रास क्रीड़ा कर रहे थे, जिसके आनन्द के कारण, उनके बिना गोपियों को एक क्षण करोड़ वर्ष के समान लगता ।। ५८ ।। वे रास-रस की रसिका गोपियाँ, अपने पति, पिता, माता, भ्राता आदि के द्वारा रोकी जाने पर भी न रुकीं और रात्रि में कृष्ण के साथ रास-विहार करती थीं ।।५९।। शत्रुओं को मारने वाले मधुसूदन भी अपनी कैशोरावस्था के मान में रात्रिकाल में उन गोपियों के साथ विहार करते थे ।।६०।। वे ही सर्वव्यास श्रीकृष्ण उन गोपियों, उनके पतियों और अन्य सब प्राणियों को आत्म रूप से प्रतिष्ठित थे ।।६१।। जैसे आकाश, अग्नि, पृथिवी, जल, वायु और आत्मा सभी प्राणियों में व्याप्त है, वैसे ही वे भगवान् भी सब में अवस्थित है ।।६२।।

चौदहवां अध्याय

प्रदोषाग्रे कदाचित्तु रसाक्ते जनार्दने ।
त्रासयन्समदो गोष्ठमरिष्टस्समुपागमत् ।।१
सतोयतोयदच्छायस्तीक्ष्णश्रृङ्गोऽर्कलोचनः ।
खुराग्रपातैरत्यर्थं दारयन्धरणीतलम् ।।२

लेलिहानस्सनिष्पेषं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः ।
संरम्भाविद्धलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥३
उदग्रककुदाभोगप्रमाणो दुरतिक्रमः ।
विण्मूत्रलिप्तपृष्ठाङ्गो गवामुद्वेगकारकः ॥४
प्रलम्बकण्ठोऽतिमुखस्तरुखाताङ्कितानन: ।
पातयन्स गवां गर्भान्दैत्यो वृषभरूपधृक् ॥५
सुदयस्तापसानुग्रो वनानटति यस्सदा ॥६

श्री पराशरजी ने कहा—जब एक दिन सायकाल के समय श्रीकृष्ण रास-क्रीडा में तन्मय हो रहे थे, तब अरिष्ट नामक एक असुर सबको भय से त्रस्त करता हुआ गोकुल में आ पहुँचा ॥१॥ उसकी सजल मेघ के समान कान्ति, अत्यन्त तीक्ष्ण सींग और सूर्य के समान तेजस्वी नेत्र थे तथा वह अपने खुरों के प्रहार से पृथिवी को विदीर्ण करता हुआ सा प्रतीत होता था ॥२॥ वह दाँत पीसकर बारम्बार अपनी जिह्वा से ओठों को चाटता था, उसने क्रोध के कारण अपनी पूँछ को उठा रखा था, तथा उसके कन्धों के बन्धन दृढ़ थे ॥३॥ उसका ककुद और देह अत्यन्त ऊँचा और अपार था, पीछे का अंग मूत्र और गोबर में सना हुआ था और सभी गौएँ उससे भयभीत हो रहीं थीं ॥४॥ उसका कण्ठ अत्यन्त लम्बा तथा वृक्ष के खोखले के समान गंभीर था। वह दैत्य बैल का रूप धारण करके गौओं के गर्भों को पतित करता और तपस्वियों को सताता हुआ सदा ही वन में घूमता रहता था ॥५-६॥

ततस्तमतिघोराक्षमवेक्ष्यातिभयातुराः ।
गोपागोपस्त्रियश्चैव कृष्ण कृष्णेति चुक्रुशुः ॥७
सिंहनादं ततश्चक्रे तलशब्दं च केशवः ।
तच्छब्दश्रवणाच्चासौ दामोदरमुपाययौ ॥८
अग्रन्यस्तविषाणाग्रः कृष्णकुक्षिकृतेक्षणः ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा कृष्णं वृषभदानवः ॥९

आयान्तं दैत्यवृषभं दृष्ट्वा कृष्णो महाबलः ।
न चचाल तदा स्थानादवज्ञास्मितलीलया ।।१०
आसन्नं चैव जग्राह ग्रहवन्मधुसूदनः ।
जघान जानुना कुक्षौ विषाणग्रहणाचलम् ।।११
तस्य दर्पबलं भङ्क्त्वा गृहीतस्य विषाणयोः ।
अपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवाम्बरम् ।।१२
उत्पाट्य शृङ्गमेकं तु तेनैवाताडयत्ततः ।
ममार स महादैत्यो मुखाच्छोणितमुद्वमन् ।।१३
तुष्टुवुर्निहते तस्मिन्दैत्ये गोपा जनार्दनम् ।
जम्भे हते सहस्राक्षं पुरा देवगणा यथा ।।१४

उस अत्यन्त घोर नेत्रों वाले दैत्य को देख कर गोप और गोपियाँ 'कृष्ण ! कृष्ण' की पुकार मचाने लगीं ।।७।। उनकी पुकार सुन कर भगवान् ने सिंहनाद करते हुए करतल ध्वनि की, जिसे सुनते ही वह दैत्य उनके पास पहुँचा ।।८।। और श्रीकृष्ण की कुक्षि को ताकता हुआ वह दुरात्मा वृषभासुर सींगों को उनकी ओर करके दौड़ पड़ा ।।९।। उस वृषभासुर को अपनी ओर तेजी से आता देख कर श्रीकृष्ण अविचल भाव से उसका तिरस्कार करते हुए मुसकराते रहे ।।१०।। जब वह उनके समीप आया, तभी उन्होंने उसे इस प्रकार पकड़ लिया, जैसे किसी क्षुद्र जीव को ग्राह पकड़ता है । फिर सींगों को पकड़ कर अपने घुटनों से उस दैत्य की कुक्षी में प्रहार किया ।।११।। इस प्रकार सींग पकड़ कर उस दैत्य को अपने वश में करने वाले भगवान् ने उसके कण्ठ को इस प्रकार मरोड़ दिया, जैसे किसी गीले वस्त्र को निचोड़ते हैं ।।१२।। फिर उसके एक सींग को उखाड़ कर उसी के द्वारा उस दैत्य पर प्रहार किया, जिससे वह मुख में रुधिर डालता हुआ समाप्त हो गया ।।१३।। प्राचीन काल में जैसे जम्भ का वध करने पर देवताओं ने सहस्राक्ष इन्द्र की स्तुति की थी, वैसे ही इस दैत्य का संहार होने पर गोपगण भगवान् जनार्दन की स्तुति करने लगे ।।१४।।

पन्द्रहवाँ अध्याय

ककुद्मति हतेऽरिष्टे धेनुके विनिपातिते ।
प्रलम्बे निधनं नीते धृते गोवर्द्धनाचले ॥१
दमिते कालिये नागे भग्ने तुङ्गद्रुमद्वये ।
हतायां पूतनायां च शकटे परिवर्तिते ॥२

कंसाय नारदः प्राह यथावृत्तमनुक्रमात् ।
यशोदादेवकी गर्भपरिवृत्त्याद्यशेषतः ॥३
श्रुत्वा तत्सकलं कंसो नारदाद्देव दर्शनात् ।
वसुदेवं प्रति तदा कोपं चक्रे सुदुर्मतिः ॥४

सोऽतिकोपादुपालभ्य सर्वयादवसंसदि ।
जगर्ह यादवांश्चैव कार्यं चैतदचिन्तयत् ॥५
यावन्न बलमारुढौ रामकृष्णौ सुबालकौ ।
तावदेव मया वध्यावसाध्यौ रूढयौवनौ ॥६

श्री पराशरजी ने कहा—अरिष्ट, धेनुक और प्रलम्ब का निधन, गिरि गोवर्धन का धारण, कालियनाग का मर्दन, दो विशाल वृक्षों का उत्पाटन, पूतना का मरण और शकट का पतन आदि अनेक लीलाओं के पूर्ण होने पर नारदजी कंस के पास पहुँचे और वहाँ यशोदा और देवकी के गर्भ परिवर्तन से लेकर अब तक का जो कुछ हुआ था, वह सब वृत्तान्त उसे आद्योपान्त कह सुनाया ॥१—३॥ देवता जैसे दिखाई देने वाले नारदजी के मुख से इस प्रकार सुनकर कंस ने वसुदेवजी पर अपना अत्यन्त रोष प्रकट किया ॥ ४ ॥ वह यादवों की निन्दा करके सोचने लगा कि जब तक यह बालक राम और कृष्ण अपने बलसे परिपूर्ण नहीं हो जाते, तभी तक इनका वध कर डालना चाहिये, अन्यथा युवावस्था को प्राप्त होकर तो यह किसी प्रकार भी न जीते जा सकेंगे ॥५—६॥

चाणूरोऽत्र महावीर्यो मुष्टिकश्च महाबलः ।
एताभ्यां मल्लयुद्धेन मारयिष्यामि दुर्मती ॥७

धनुर्महमहायागव्योजेनानीय तौ व्रजात् ।
तथा तथा यतिष्यामि यास्येते सङ्क्षयं यथा ।।८

श्वफल्कतनयं शूरमक्रूरं यदुपुङ्गवम् ।
तयोरानयनार्थाय प्रेषयिष्यामि च गोकुलम् ।।९

वृन्दावनचरं घोरमादेक्ष्यामि च केशिनम् ।
तत्रैवासवतिबलस्तावुभौ घातयिष्यति ।।१०

गजः कुवलयापीडो मत्सकाशमिहागतौ ।
घातयिष्यति वा गोपौ वसुदेवसुतावुभौ ।।११

इत्यालोच्य स दुष्टात्मा कंसो रामजनार्दनौ ।
हन्तुं कृतमतिर्वीरावक्रूरं वाक्यमब्रवीत् ।।१२

महावीर्यवान् चाणूर और अत्यन्त बलवान् मुष्टिक जैसे अपने मल्लों के साथ उन दोनों दुर्बुद्धि वालों को भिड़ा कर उनका वध करा दूँगा ।।७।। उन्हें धनुर्यज्ञ के बहाने से यहाँ बुला कर उन्हें मारने के लिये विविध उपाय करूँगा ।।८।। उन्हें ब्रज से बुला लाने के लिये श्वफल्क-पुत्र अक्रूर को गोकुल भेजूँगा ।९।। इसके साथ ही वृन्दावन में घूमने वाले अपने घोर असुर केशी को उन्हें वहीं मार डालने की आज्ञा दूँगा ।।१०।। अथवा यदि वे दोनों वसुदेव-पुत्र यहाँ तक आ ही पहुँचे तो मेरा कुवलयापीड हाथी ही उन्हें नष्ट कर डालेगा ।।११।। श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार निश्चय कर उस दुष्टात्मा कंस ने राम-कृष्ण का वध करने की इच्छा से अक्रूरजी को बुला कर कहा ।।१२।।

भो भो दानपते वाक्यं क्रियतां प्रीतये मम ।
इतः स्वयानमारुह्य गभ्यतां नन्दगोकुलम् ।।१३

वसुदेवसुतौ तत्र विष्णोरंशसमुद्भवौ ।
नाशाय किल सम्भूतौ मम दुष्टौ प्रवर्द्धतः ।।१४

धनुर्महो ममाप्यत्र चतुर्दश्यां भविष्यति ।
आनेयौ भवता गत्वा मल्लयुद्धाय तत्र तौ ।।१५

चाणूरमुष्टिकौ मल्लौ नियुद्धकुशलौ मम ।
ताभ्यां सहानयोर्युद्धं सर्वलोकोऽत्र पश्यतु ।।१६

गजः कुवलयापीडो महामात्रचोदितः ।
स वा हनिष्यते पापौ वसुदेवात्मजौ शिशू ॥१७
तौ हत्वा वसुदेवं च नन्दगोपं च दुर्मतिम् ।
हनिष्ये पितरं चैनमुग्रसेनं सुदुर्मतिम् ॥१८
ततस्समस्तगोपानां गोधानान्यखिलान्यहम् ।
वित्तं चापहरिष्यामि दुष्टानां मद्वधैषिणाम् ॥१९

कंस ने कहा—हे दानपते ! आप मेरी प्रसन्नता के लिए यह कार्य करिये कि रथ पर आरूढ़ होकर गोकुल के लिए प्रस्थान कीजिए ॥१३॥ वहाँ वसुदेवजी द्वारा उत्पन्न विष्णु अंश रूप दो दुष्ट बालक मुझे मारने के लिए वहाँ पल रहे हैं ॥१४॥ मेरे यहाँ आगामी चतुर्दशी के दिन ही धनुर्यज्ञ महोत्सव होने को है, इसलिए आप उन्हें मल्ल युद्ध के लिए यहाँ लिवा लाइए ॥१५॥ मेरे चाणूर और मुष्टिक नामक दो मल्ल सहयुद्ध में अत्यन्त चतुर हैं, इनका उन दोनों के साथ जो द्वन्द्व युद्ध हो, उसे सभी लोग यहाँ आकर देखें ॥१६॥ अथवा महावत की प्रेरणा से मेरा कुवलायपीड हाथी ही उन दोनों पापी वसुदेव पुत्रों को मार डालेगा ॥१७॥ इस प्रकार उन दुष्टों को मरवा कर इस दुर्बुद्धि वासुदेव, नन्द तथा कुबुद्धि वाले अपने पिता उग्रसेन का भी वध कर दूँगा ॥१८॥ फिर मेरे वध की कामना वाले इन सब दुष्ट गोपों के सम्पूर्ण गवादि धनों का भी हरण कर लूँगा ॥१९॥

त्वामृते यादवाश्चैते द्विषो दानपते मम ।
एतेषां च वधायाहं यतिष्येऽनुक्रमात्ततः ॥२०
तदा निष्कण्टकं सर्वं राज्यमेतदयादवम् ।
प्रसाधिष्ये त्वया तस्मात्मत्प्रीत्यै वीर गम्यताम् ॥२१
यथा च माहिषं सर्पिर्दधि चाप्युपहार्यं वै ।
गोपास्समानयन्त्वाशु तथा वाच्यास्त्वया च ते ॥२२
इत्याज्ञप्तस्तदाक्रूरो महाभागवतो द्विज ।
प्रीतिमानभवत्कृष्ण श्वो द्रक्ष्यामीति सत्वरः ॥२३

तथेत्युक्त्वा च राजानं रथामारुह्य शोभनम् ।
निश्चक्राम ततः पुर्या मधुराया मधुप्रियः ॥२४

हे दानपते ! आपके अतिरिक्त ये सभी यादव मुझसे द्वेष भाव रखते हैं, इसलिये मैं इन सभी को मार डालने का प्रयत्न करूंगा ॥२०॥ फिर आपको साथ लेकर इस यादव-विहीन राज्य का निष्कंटक रूप से उपभोग करूँगा । अब आप मेरी प्रसन्नता के लिये शीघ्र ही गमन कीजिये ॥२१॥ आप गोकुल में जाकर उन गोपों से इस प्रकार बातें करें, जिससे वे भैंस के घी और दही आदि उपहारों को लेकर शीघ्र ही यहाँ चले आवें ॥२२॥ श्री पराशरजी ने कहा—कंस की आज्ञा सुनकर "कल श्रीकृष्ण के दर्शन करूँगा" ऐसा सोच कर महा भागवत अक्रूरजी प्रसन्न हुए ॥२३॥ और राजा कंस से "जो आज्ञा" कह कर श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ हुए और मथुरा नगरी से बाहर की ओर चल दिये ॥२४॥

सोलहवां अध्याय

केशी चापि बलोदग्रः कंसदूतप्रचोदितः ।
कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी वृन्दावनमुपागमत् ॥१
स खुरक्षतभूपृष्ठस्सटाक्षेपधुताम्बुदः ।
द्रुतविक्रान्तचन्द्रार्कमार्गो गोपानुपाद्रवत् ॥२
तस्य ह्रेषितशब्देन गोपाला दैत्यवाजिनः ।
गोप्यश्च भयसंविग्ना गोविन्दं शरणं ययुः ॥३
त्राहि त्राहीति गोविन्दः श्रुत्वा तेषां ततो वचः ।
सतोयजलदध्वानगम्भीरमिदमुक्तवान् ॥४
अलं त्रासेन गोपालाः केशिनः किं भयातुरैः ।
भवद्भिर्गोपजातीयैर्वीरवीर्यं विलोप्यते ॥५
किमनेनाल्पसारेण ह्रेषिताटोपकारिणा ।
दैतेयबलबाह्येन वल्गता दुष्टवाजिना ॥६

एह्येहि दुष्ट कृष्णोऽहं पूष्णस्त्विव पिनाकधृक् ।
पातयिष्यामि दशनान्वदनादखिलांस्तव ॥७

श्री पराशरजी ने कहा--इधर कंस के दूत ने महाबली केशी को कृष्ण की हत्या करने के लिये भेजा, जो इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये वृन्दावन में जा पहुँचा ॥१॥ यह अपने खुरों के द्वारा भूतल को कुरेदता, कंठ के द्वारा सब को छिन्न-भिन्न करता और अत्यन्त वेग से सूर्य-चन्द्रमा के मार्ग को लाँघता हुआ गोपों की ओर दौड़ पड़ा ॥२॥ उस घोड़े के रूप वाले दैत्य की हिनहिनाहट को सुनकर डरे हुए सब गोप-गोपियाँ भगवान् की शरण में गये ॥३॥ उनसे 'रक्षा करो, रक्षा करो' पुकारने पर जलयुक्त बादल के समान गर्जन युक्त वाणी में श्रीकृष्ण ने कहा ॥४॥ हे गोपगण ! इस केशी से आप भयभीत न हों, आपने गोपजाति के होकर भी इस प्रकार डर कर अपने वीरोचित पुरुषार्थ को क्यों त्याग दिया है ? ॥५॥ यह अल्प वल वाला, हिनहिनाहट से आतं-कित करने और नाचने वाला तथा दैत्यों के लिये वल पूर्वक चढ़ने के लिये वाहन रूप यह अश्व आपका क्या अनिष्ट कर सकता है ? ॥६॥ फिर उन्होंने केशो को ललकारा अरे दुष्ट ! तू इधर आ । जैसे धनुर्धारी वीरभद्र ने पूषा के दाँत तोड़ दिये थे, वैसे ही मैं कृष्ण तेरे सभी दाँत उखाड़ फेंकूँगा ॥५॥

इत्युक्त्वास्फोटच गोविन्दः केशिनस्सन्मुखं ययौ ।
विवृतास्यश्च सोऽप्येनं दैतेयाश्व उपाद्रवत् ॥८
बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे तस्य जनार्दनः ।
प्रवेशयामास तदा केशिनो दुष्टवाजिनः ॥९
केशिनो वदने तेन विशता कृष्णबाहुना ।
पातिता दशनाः पेतुः सिताभ्रावयवा इव ॥१०
कृष्णस्य ववृधे बाहुः केशिदेहगतो द्विज ।
विनाशाय यथा व्याधिरासम्भूतेरुपेक्षितः ॥११
विपाटितोष्ठो बहुलं सफेनं रुधिरं वमन् ।
सोऽक्षिणी विवृते चक्रे विशिष्टे मुक्तबन्धने ॥१२

जघान धरणीं पादश्शकृन्मूत्र समुत्सृजन् ।
स्वेदार्द्रगात्रश्शान्तश्च निर्यत्नस्सोऽभवत्तदा ॥१३
व्यादितास्यमहारन्ध्रस्सोऽसुरः कृष्णबाहुना ।
निपातितो द्विधा भूमौ वैद्युतेन तथा द्रुमः ॥१४
द्विपादे पृष्टपुच्छार्दे श्रवणैकाक्षिनासिके ।
केशिनस्ते द्विधाभूते शकले द्वे विरेजतुः ॥१५

यह कहकर श्रीकृष्ण ने उछलकर केशी का सामना किया और अश्व रूप वाला वह दैत्य भी मुख खोलकर उन पर झपटा ॥८॥ तब श्रीकृष्ण ने अपनी भुजा फैलाकर दुष्ट के मुख में घुसा दी ॥९॥ जैसे ही उसके मुख में उनकी भुजा प्रविष्ट हुई, वैसे ही उससे टकराकर उस दैत्य के सब दाँत श्वेत मेघ खण्डों के समान टूटकर पृथिवी पर आ गिरे ॥१०॥ हे द्विज ! जैसे उत्पन्न होते ही रोग की चिकित्सा न होने पर उसकी वृद्धि होती रहती है, वैसे ही केशी के मुख में घुसी हुई भगवान् की भुजा वृद्धि को प्राप्त होने लगी ॥११॥ अन्त मे उसका मुख फट गया और वह फेनयुक्त रक्त उलटने लगा। तभी स्नायु बंधनों के शिथिल होने से उसके नेत्रों की ज्योति भी नष्ट हो गई ॥१२॥ तब वह मल-मूत्र को त्यागता हुआ अपने पाँवों को पटकने लगा, उसका देह स्वेद से शीतल हो गया और उसे मूर्च्छा आ गई ॥१३॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण की भुजा से फैलाए गए मुख के विशाल रन्ध्र के फटने में वज्रपात से पतित हुए वृक्ष के समान दो टूक होकर वह असुर धरती पर लेट गया ॥१४॥ केसी के देह के दोनों टुकड़े दो पाँव, एक कान, एक नेत्र, आधी पीठ, आधी पूँछ और एक नासिका छिद्र के साथ शोभा पाने लगे ॥१५॥

हत्वा तु केशिनं कृष्णो गोपालैर्मुदितैर्वृतः ।
अनायस्ततनुस्स्वस्थो हसंस्तत्रैव तस्थिवान् ॥१६
ततो गोप्यश्च निहते केशिनि स्वति विस्मिताः ।
तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षमनुरागमनोरमम् ॥१७
अथाहान्तर्हितो विप्र नारदो जलदे स्थितः ।
केशिनं निहत दृष्ट्वा हर्षनिर्भरमानसः ॥१८

साधु साधु जगन्नाथ लीलयैव यदच्युत ।
निहतोऽयंत्वया केशी क्लेशदस्त्रिदिवौकसाम् ॥१९
युद्धोत्सुकोऽहमत्यर्थं नरवाजिमहाहवम् ।
अभूतपूर्वमित्यत्र द्रष्टुं स्वर्गादिहागतः ॥२०
कर्माण्यत्रावतारे च ते कृतानि मधुसूदन ।
यानि तैर्विस्मितं चेतस्तोषमेतेन मे गतम् ॥२१

इस प्रकार केशी-वध से प्रसन्न हुए ग्वाल से घिरे हुए श्रीकृष्ण बिना किसी प्रकार की थकान के स्वस्थ मन से खड़े हुए हँसते रहे ॥१६॥ उस समय केशी के मारे जाने से आश्चर्य को प्राप्त हुए गोप-गोपियों ने उन कमल नयन एवं मनोरम भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥१७॥ उस राक्षस को मरा हुआ देख कर बादलों की आड़ में छिप कर खड़े हुए नारदजी ने अत्यन्त हर्ष पूर्वक उनसे कहा ॥१८॥ हे जगन्नाथ ! हे अच्युत ! आप धन्य हैं । आपने देवताओं को संतप्त करने वाले इस केशी को खेल-खेल में ही मार डाला ॥१९॥ मैंने मनुष्य और घोड़े का युद्ध पहिले कभी नहीं देखा था, उसी को देखने के लिये यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ॥२०॥ हे मधुसूदन ! आपके द्वारा इस अवतार में किये जाने वाले कर्मों को देखकर मेरा मन अत्यन्त आश्चर्य चकित और प्रसन्न हो रहा है ॥२१॥

तुरङ्गस्यास्य शक्रोऽपि कृष्ण देवाश्च विभ्यति ।
धुतकेसरजालस्य ह्रेषतोऽभ्रावलोकिनः ॥२२
यस्मात्त्वयैष दुष्टात्मा हतः केशी जनार्दन ।
तस्मात्केशवनाम्ना त्वं लोके ख्यातो भविष्यसि ॥२३
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि कंसयुद्धेऽधुना पुनः ।
परश्वोऽहं समेष्यामि त्वया केशिनिषूदन ॥२४
उग्रसेनसुते कंसे सानुगे विनपातिते ।
भारावतारकर्ता त्व पृथिव्याः पृथिवीधर ॥२५
तत्रानेकप्रकाराणि युद्धानि पृथिवीक्षिताम् ।
द्रष्टव्यानि मया युद्धं त्वत्प्रणीतानि जनार्दन ॥२६

सोऽहं यास्यामि गोविन्द देवकार्यं महत्कृतम् ।
त्वयैव विदितं सर्वं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥२७
नारदे तु गते कृष्णस्सह गोपैस्सभाजितः ।
विवेश गोकुलं गोपीनेत्रपानैकभाजनम् ॥२८

हे कृष्ण ! अपने अङ्गों को फड़फड़ाने और हिनहिना कर आकाश की ओर देखने वाले इस अश्व से इन्द्रादि सब देवता भयभीत होते थे ॥ २२ ॥ हे जनार्दन ! आपने इस दुष्ट केशी का वध किया है, इसलिए आप 'केशव' कहे जाँयेंगे ॥२३॥ हे केशी के मारने वाले प्रभो ! आपकी जय हो, अब मैं जा रहा हूँ, अब आपका कंस के साथ जो युद्ध होगा, उसे देखने के लिए पुनः उपस्थित हूँगा ॥२४॥ हे भूधर ! आप उग्रसेन-पुत्र कस को उसके अनुगामियों सहित मार कर भू-भार का हरण करेंगे ॥२५॥ उस समय मैं भी वहाँ अनेक राजाओं के साथ आप अविनाशी पुरुष के युद्ध-कर्त्तव्यों को देखूँगा ॥२६॥ हे गोविन्द ! मैं अब जा रहा हूँ । आपने देवताओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य-साधन किया है । आप सर्वज्ञाता हैं, आपका कल्याण हो ॥२७॥ फिर नारदजी के चले जाने पर गोपों के द्वारा सम्मानित और गोपियों के नयनों के लिये एक मात्र पान करने योग्य श्रीकृष्ण गोपों के सहित गोकुल में प्रविष्ट हुए ॥२८॥

सत्रहवां अध्याय

अक्रूरोऽपि विनिष्क्रम्य स्यन्दनेनाशुगामिना ।
कृष्णसंदर्शनाकाङ्क्षी प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१
चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति धन्यतरो मया ।
योऽहमंशावतीर्णस्य मुख द्रक्ष्यामि चक्रिणः ॥२
अद्य मे सफलं जन्म सुप्रभाताभवन्निशा ।
यदुन्निद्राभपत्राक्षं विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥३
पाप हरति यत्पुंसां स्मृतं संकल्पनामयम् ।
तत्पृण्डरीकनयन विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥४

विनिर्जग्मुर्यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च ।
द्रक्ष्यामि तत्परं धाम धाम्नां भगवतो मुखम् ॥५

यज्ञेषु यज्ञपुरुषः पुरुषैः पुरुषोत्तमः ।
इज्यते योऽखिलाधारस्तं द्रक्ष्यामि जगत्पतिम् ॥६

दृष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम् ।
अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—इधर मथुरा पुरी से बाहर निकलते हुए अक्रूरजी अपने शीघ्रगामी रथ के द्वारा श्रीकृष्ण को देखने की इच्छा से नन्दजी के गोकुल को चले ॥१॥ उस अक्रूरजी विचार करने लगे कि आज मैं चक्रधारी विष्णु के अंश रूप परमेश्वर का अपने नेत्रों से दर्शन करूँगा, इसलिये मेरे समान भाग्यशाली कोई नहीं है ॥२॥ आज मेरा जन्म सफल हो गया है, यह रात्रि अवश्य ही श्रेष्ठ प्रातःकाल वाली है, जिसके कारण मैं उन विकसित पद्म के से नयन भगवान् के मुख को देखूँगा ॥३॥ भगवान् के जिस संकल्पात्मक मुख कमल के स्मरण मात्र से मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी का मैं आज दर्शन करूँगा ॥४॥ सभी तेजस्त्रियों के परम आश्रय रूप जिस मुखारविन्द से वेद-वेदांग उत्पन्न हुए हैं आज मैं उसी मुख को देखूँगा ॥५॥ सभी पुरुष जिन यज्ञ पुरुष को यज्ञानुष्ठानों में यजन किया करते हैं, उन्हीं विश्वाश्रय विश्वेश्वर का आज मैं दर्शन करूँगा ॥६॥ जिनका सौ बार यजन करके ही इन्द्र को देवराज-पद की प्राप्ति हुई है, उन्हीं अनादि पुरुष अनन्त भगवान् का मैं दर्शन करूँगा ॥७॥

न ब्रह्मा नेन्द्ररुद्राश्विवस्वादित्यमरुद्गणाः ।
यस्य स्वरूपं जानन्ति प्रत्यक्षं याति से हरिः ॥८

सर्वात्मा सर्ववित्सर्वस्सर्वभूतेष्ववस्थितः ।
यो ह्यचिन्त्योऽव्ययो व्यापी स यक्ष्यति मया सह ॥९

मत्स्यकूर्मवराहाश्वसिंहरूपादिभिः स्थितिम् ।
चकार जगतो योऽजःसोऽद्य मां प्रलपिष्यति ॥१०

साम्प्रतं च जगत्स्वामी कार्यमात्महृदि स्थितम् ।
कर्तुं मनुष्यतां प्राप्तस्स्वेच्छादेहधृगव्ययः ॥११
योऽनन्तः पृथिवीं धत्ते शेखरस्थितिसंस्थिताम् ।
सोऽवतीर्णो जगत्यर्थे मामक्रूरेति वक्ष्यति ॥१२
पितृपुत्रसुहृद्भ्रातृमातृबन्धुमयीमिमाम् ।
यन्मायां नालमुत्तर्तुं जगत्तस्मै नमो नमः ॥१३
तरत्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते ।
योगमायाममेयाय तस्मै विद्यात्मने नमः ॥१४

ब्रह्मा, इन्द्र, अश्विनीकुमार, वसु, आदित्य और मरुद्गण भी जिनके स्वरूप को नहीं जानते, वे ही श्रीहरि मेरे नयनों के समक्ष प्रत्यक्ष होंगे ॥८॥ जो सर्वव्यापक भगवान् सर्वात्मा, सर्वरूप, सर्वभूतों में अवस्थित, अचिन्त्य और अव्यय स्वरूप हैं, वे आज साक्षात् रूप में मुझसे सम्भाषण करेंगे ॥९॥ जिन अजन्मा प्रभु ने मत्स्य, कूर्म, वराह, हयग्रीव, नृसिंह आदि रूपों में संसार की रक्षा की, आज वे ही भगवान् मेरे साथ बातें करेंगे ॥१०॥ उन अव्ययात्मा जगत्स्वामी ने अपने इच्छित कार्य की पूर्ति के लिये ही मनुष्य रूप में अवतार लिया है ॥११॥ अपने शिर पर पृथिवी को धारण करने वाले अनन्त भगवान् ने जगत्--कल्याण के लिये पृथिवी पर जन्म धारण किया है, वे ही आज मुझे अक्रूर कह कर वार्तालाप करेंगे ॥१२॥ पिता, पुत्र, सुहृद, भ्राता, माता और बन्धु रूप वाली माया के जो स्वामी हैं, उनको नमस्कार, नमस्कार है ॥१३॥ जिनमें चित्तवृत्ति लगा देने से इस योगमाया रूपी घोर अविद्या को लांघा जा सकता है, उन विद्या रूप प्रभु को नमस्कार है ॥१४॥

यज्वभिर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च सात्वतैः ।
वेदान्तवेदिभिर्विष्णुः प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम् ॥१५
यथा यत्र जगद्धाम्नि धातर्येतत्प्रतिष्ठितम् ।
सदसत्तेन सत्येन मय्यसौ यातु सौम्यताम् ॥१६
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते ।
पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥१७

इत्थं सञ्चिन्तयन्विष्णुं भक्तिनम्रात्ममानसः ।
अक्रूरो गोकुलं प्राप्तः किञ्चित्सूर्ये विराजति ॥१७
स ददर्श तदा कृष्णमादावादोहने गवाम् ।
वत्समध्यगतं फुल्लनीलोत्पदलदलञ्छविम् ॥१६
प्रफुल्लपद्मपत्राक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।
प्रलम्बबाहुमायामतुङ्गोरःस्थलमुन्नसम् ॥२०
सविलासस्मिताधारं विभ्राणं मुखपंकजम् ।
तुङ्गरक्तनखं पद्भ्यां धरण्यां सुप्रतिष्टितम् ॥२१

याज्ञिक जिन्हें यज्ञ पुरुष, सात्वत जिन्हें वासुदेव और वेदान्त के जानने वाले जिन्हें विष्णु कहकर पुकारते हैं, उनको मेरा नमस्कार है ॥१५॥ जिस सत्य के बल से यह सत्-असत् रूप विश्व उसी विश्वाधार में अवस्थित है, उसी के द्वारा वे मेरे प्रति सौम्य हों ॥१६॥ जिनका स्मरण करने से ही मनुष्य कल्याण भाजन हो जाता है, उन्हीं अजन्मा भगवान् हरि की शरण में मैं जाता हूँ ॥१७॥ श्री पराशर जी ने कहा-- भक्ति से विनम्रता को प्राप्त हुए अक्रूरजी इस प्रकार भगवान् विष्णु का हृदय में चिन्तन करते-करते, सूर्य के अस्त होने से कुछ पहिले ही गोकुल में जा पहुँचे ॥१८॥ वहाँ पहुँचने पर उन्हें विकसित नीलोत्पल जैसी कान्ति वाले श्रीकृष्ण गौओं के दोहन-स्थान में बछड़ों के मध्य स्थित दिखाई दिये ॥१६॥ उनके विकसित कमल जैसे नेत्र थे। लम्बी भुजाएँ, श्रीवत्सांकित हृदय, विशाल और उन्नत वक्षःस्थल तथा ऊँची नासिका थी ॥२०॥ जो सविलास मुसकान युक्त मनोहर मुखपंकज से सुशोभित हो रहे थे तथा जो लाल वर्ण के नखों वाले ऊँचे चरणों से पृथिवी पर प्रतिष्ठित थे ॥२१॥

बिभ्राणं वाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम् ।
सेन्दुनीलाचलाभं तं सिताम्भोजावतंसकम् ॥२२
हंसकुन्देन्दुधवलं नीलाम्बरधरं द्विज ।
तस्यानु बलभद्रं च ददर्श यदुनन्दनम् ॥२३
प्रांशुमुत्तुङ्गबाह्वंसं विकाभिमुखपंकजम् ।

मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिमिवापरम् ॥२४
तौ दृष्ट्वा विकसद्वक्त्रसरोजः स महामतिः ।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तदाक्रूरोऽभवन्मुने ॥२५
तदेतत्परमं धाम तदेतत्परमं पदम् ।
भगवद्वासुदेवांशो द्विधा योऽयं व्यवस्थितः ॥
साफल्यमक्ष्णोर्युगमेतदत्र दृष्टे जगद्धातरि यातमुच्चैः ।
अप्यङ्गमेतद्भगवत्प्रसादा त्तदङ्गसङ्गे फलवन्मम स्यात् ॥२७

जो पीताम्बर और वन के पुष्पों से सुशोभित थे तथा जिनका श्याम शरीर श्वेत कमल के अलंकारों से सुसज्जित हुआ नीलाचल जैसा प्रतीत हो रहा था ॥२१॥ हे द्विज ! उन्हीं के पीछे हंस, कुन्द अथवा चन्द्रमा जैसे गौर वर्ण वाले तथा नीलाम्बर धारण किये हुए बलरामजी दिखाई दिये ॥२३॥ जो विशाल बाहुएँ, उन्नत कन्धे और विकसित मुख कमल से सुशोभित हुए मेघमाला से घिरे हुए द्वितीय कैलाश पर्वत जैसे प्रतीत होते थे ॥२४॥ हे मुने ! महामति अक्रूरजी ने उन बालकों को जैसे ही देखा, वैसे ही उनका मुखारविन्द खिल उठा और उनका सम्पूर्ण देह पुलकित होने लगा ॥२५॥ उन्होंने सोचा कि इन दो स्वरूपों में प्रकट हुआ भगवान् वासुदेव का अंश ही परमधाम तथा परम पद है ॥२६॥ संसार को उत्पन्न करने वाले इन बालकों के दर्शन से आज मेरे दोनों नेत्र सफल हो गये, परन्तु क्या मैं इनके अंग-अंग के लाभ से भी धन्य हो सकूँगा ? ॥२७॥

अप्येष पृष्ठे मम हस्तपद्मं करिष्यति श्रीमदनन्तमूर्तिः ।
यस्याङ्गुलिस्पर्शहताखिलाघै रवाप्यते सिद्धिरपास्तदोषा ॥२८
येनाग्निविद्युद्रविरश्मिमाला करालमत्युग्रमपेत चक्रम् ।
चक्रं घ्नता दैत्यपतेर्हृतानि दैत्याङ्गनानां नयनाञ्जनानि ॥२९
यत्राम्बु विन्यस्य बलिर्मनोज्ञा नवाप भोगान्वसुधातलस्थः ।
तथामरत्वं त्रिदशाधिपत्वं मन्वन्तरं पूर्णमपेतशत्रुम् ॥३०
अप्येष मां कंसपरिग्रहेण दोषास्पदीभूतमदोषदुष्टम् ।
कर्तावमानोपहतं धिगस्तु तज्जन्म यत्साधुबहिष्कृतस्य ॥३१

ज्ञानात्मकस्यामलसत्त्वराशेरपेतदोषस्य सदा स्फुटस्य ।
किं वा जगत्यत्र समस्तपुंसा मज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य३२
तस्मादहं भक्तिविनम्रचेता व्रजामि सर्वेश्वरमीश्वराणाम् ।
अंशावतारं पुरुषोत्तमस्य ह्यनादिमध्यान्तमजस्य विष्णोः ॥३३

जिनकी अँगुली का स्पर्श होने से ही सब पापों से शून्य हुए मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं, क्या वे अनन्त मूर्ति अपने कर कमल को मेरी पीठ पर फेरेंगे ? ॥२८॥ जिन्होंने अपने अग्नि,विद्युत और आदित्य की रश्मि माला के समान उग्र चक्र के प्रहार से दैत्यराज की सेना का संहार कर दैत्यांगनाओं के नयनाञ्जन को वहा दिया था ॥२९॥ जिन्हें एक जल-विन्दु देकर ही राजा वलि ने इस भूतल पर मनोज्ञ भोगों को प्राप्त कर एक मन्वन्तर पर्यन्त शत्रुविहीन अमर इन्द्र पद का उपभोग किया था ॥३०॥ क्या वे भगवान् मुझ दोष रहित को कंस के साथ रहने के कारण दोषी मानकर तेरा तिरस्कार करेंगे ? यदि ऐसा हो तो साधु-जन द्वारा वहिष्कृत होने वाले मेरे जन्म को धिक्कार है ॥३१॥ जगत् में ऐसा कौन-सा विषय है जिसे वे न जानते हों, क्योंकि वे तो ज्ञानरूप, निर्दोष, सत्वराशि, नित्यप्रकाश और सब जीवों के हृदयों में स्थित रहते हैं ॥३२॥ इसलिये मैं भक्ति-भाव पूर्वक उन ईश्वरों के भी ईश्वर, अनादि, अमध्य और अनन्त पुरुषोत्तम के अंशावतार की शरण को प्राप्त होता हूँ ॥३३॥

अठारहवां अध्याय

चिन्तयन्निति गोविन्दमुपगम्य स यादवः ।
अक्रूरोऽस्मीति चरणौ ननाम शिरसा हरेः ॥१
सोऽप्येनं ध्वजवज्राब्जकृतचिह्नेन पाणिना ।
संस्पृश्याकृष्य च प्रीत्या सुगाढं परिषस्वजे ॥२
कृतसवन्दनौ तेन यथावद्बलकेशवौ ।
ततः प्रविष्टौ संहृष्टौ तमादायात्ममन्दिरम् ॥३

सह ताभ्यां तदाक्रूरः कृतसंवन्दनादिकः ।
भुक्तभोज्यो यथान्याथमाचचक्षे ततस्तयोः ॥४
यथा निर्भर्त्सितस्तेन कंसेनानकदुन्दुभिः ।
यथा च देवकी देवी दानवेन दुरात्मना ॥५
उग्रसेने यथा कंसस्स दुरात्मा च वर्त्तते ।
यं चैवार्थं समुद्दिश्य कंसेन तु विसर्जितः ॥६

श्री पराशरजी ने कहा—यादव अक्रूरजी इस प्रकार स्थिर कर भगवान् श्री गोविन्द के पास गये और उनके चरणों से मस्तक झुका कर प्रणाम करते हुए बोले कि "मैं अक्रूर हूँ" ॥१॥ तब श्रीकृष्ण ने भी उन्हें अपने ध्वजा, वज्र, पद्म, चिह्न वाले हाथों से स्पर्श किया और प्रेम सहित अपनी ओर खींचकर दृढ़ आलिंगन किया ॥२॥ फिर अक्रूर द्वारा बन्दित हुए बलराम और कृष्ण अत्यन्त आनन्द पूर्वक उनके साथ अपने घर आये ॥३॥ तब अक्रूर का वहाँ सत्कार हुआ और उन्हें भोजनादि कराया गया । तदनन्तर अक्रूर ने उन्हें कंस का वसुदेव-देवकी को फटकारने अपने पिता उग्रसेनजी को सताने तथा अक्रूर को वृन्दावन भेजने आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया ॥४-६॥

तत्सर्वं विस्तराच्छ्रुत्वा भगवान्देवकीसुतः ।
उवाचाखिलमप्येतज्ज्ञातं दानपते मया ॥७
करिष्ये तन्महाभाग यदत्रौपयिकं मतम् ।
विचिन्त्यं नान्यथैतत्ते विद्धि कंसं हत मया ॥८
अहं रामश्च मथुरां श्वो यास्यावस्सह त्वया ।
गोपवृद्धाश्च यास्यन्ति ह्यादायोपायनं बहु ॥९
निशेयं नीयतां वीर न चिन्तां कर्तुमर्हसि ।
त्रिरात्राभ्यन्तरे कंसं निहनिष्यामि सानुगम् ॥१०
समादिश्य ततो गोपानक्रूरोऽपि च केशवः ।
सुष्वाप बलभद्रश्च नन्दगोपगृहे ततः ॥११
ततः प्रभाते विमले कृष्णरामौ महाद्युती ।
अक्रूरेण समं गन्तुमुद्यतौ मथुरां पुरीम् ॥१२

दृष्ट्वा गोपीजनस्सास्रः श्लथद्वलयबाहुकः ।
निःशश्वासातिदुःखार्त्तः प्राह चेद परस्परम् ॥१३

उस सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर देवकी पुत्र श्रीकृष्ण ने अक्रूर से कहा—हे दानपते ! मुझे यह सब बातें ज्ञात हो चुकी हैं ॥७॥ हे महाभाग ! अब जो मैं ठीक समझूँगा, करूँगा । तुम कंस को मेरे द्वारा मारा गया ही समझो, इसमें कुछ अन्यथा नहीं है ॥८॥ मैं और बलरामजी तुम्हारे साथ कल ही मथुरा चलेंगे तथा अन्य वृद्ध गोपगण भी बहुत-सा उपहार लेकर वहाँ जायेंगे ॥९॥ हे वीर ! आप चिन्ता को छोड़ कर सुख से रात्रि विश्राम करिये । मैं कंस को उसके अनुगामियों के सहित तीन रात में ही नष्ट कर दूँगा ॥१०॥ श्री पराशरजी ने कहा—अक्रूर, केशव और बलरामजी ने सभी गोपों को कंस का आदेश सुनाया और नन्द भवन में जाकर शयन करने लगे ॥११॥ फिर प्रातःकाल होने पर महातेजस्वी बलराम और कृष्ण अक्रूरजी के साथ मथुरा जाने को उद्यत हुए तब ढीले हुए कंकण वाली गोपियाँ अश्रुपूर्ण नेत्रों से दुःखार्त्त होती हुई दीर्घ श्वास छोड़ने लगीं और परस्पर में बोली ॥१२-१३॥

मथुरां प्राप्य गोविन्दः कथं गोकुलमेष्यति ।
नगरस्त्रीकलालापमधु श्रोत्रेण पास्यति ॥१४
विलासवास्यपानेषु नागरीणां कृतास्पदम् ।
चित्तमस्य कथं भूयो ग्राम्यगोपीषु यास्यति ॥१५
सारं समस्तगोष्ठस्य विधिना हरता हरिम् ।
प्रहृतं गोपयोषित्सु निर्घृणेन दुरात्मना ॥१६
भावगर्भस्मितं वाक्यं विलासललिता गतिः ।
नागरीणामतीवैतत्कटाक्षेक्षितमेव च ॥१७
ग्राम्यो हरिरयं तासां बिलासनिगडैर्युतः ।
भवतीनां पुनः पार्श्वं कया युक्त्या समेष्यति ॥१८
एषैष रथमारुह्य मथुरां याति केशवः ।
क्रूरेणाक्रूरकेपात्र निर्घृणेन प्रतारितः ॥१९

किं वेत्ति नृशंसोऽयमनुरागपरं जनम् ।
येनैवमक्ष्णोराह्लादं नयत्यन्यत्र नो हरिम् ॥२०
एष रामेण सहितः प्रयात्यत्यन्तनिर्घृणः ।
रथमारुह्य गोविन्दस्त्वर्यतामस्य वारणे ॥२१

जब गोविन्द मथुरा पहुँच जायेंगे तब गोकुल में क्यों लौटेंगे ? क्योंकि वहाँ इनके कानों को नगर की स्त्रियों का मधुरालाप रूपी रस उपलब्ध होगा ॥१४॥ नगर की स्त्रियों के विलास-वाक्यों में रम जाने पर गँवारियों की ओर इनका मन क्यों रहेगा ? ॥१५॥ दुरात्मा विधाता भी कैसा निर्दयी है, जिसने सम्पूर्ण व्रज के सारभूत भगवान् श्रीहरि को छीन कर हम गोपांगनाओं पर प्रहार किया है ॥१६॥ नगर की नारियों में स्वभाव से ही भावमयी और मुसकानमयी वाणी, विलास-लालित्य तथा कटाक्षमयी चितवन की अधिकता होती है। उनके विलास—बन्धन को प्राप्त होकर यह ग्रामीण कृष्ण फिर किस प्रकार तुम्हारे पास आ सकेंगे ? ॥१७-१८॥ देखो यह क्रूर अक्रूर कैसा निर्दयी है, जिसके बहकावे में आकर यह केशव उसके रथ पर चढ़ कर मथुरा जा रहे हैं ? ॥१९॥ क्या यह नृशंस अक्रूर अनुरागियों के हृदयगत भावों से अनजान है जो हमारे नेत्रों को सुख देने वाले हरि को यहाँ से अन्यत्र ले जारहा है ? ॥२०॥ अरी देखो. यह गोविन्द भी कैसे निष्ठुर हो गये हैं जो बलरामजी के साथ रथारूढ़ होकर जा रहे हैं। इन्हें रोकने में शीघ्रता करनी चाहिये ॥२१॥

गुरूणामग्रतो वक्तुं किं ब्रवीषि न नः क्षमम् ।
गुरवः किं करिष्यन्ति दग्धानां विरहाग्निना ॥२२
नन्दगोपमुखा गोपा गन्तुमेते समुद्यताः ।
नोद्यमं कुरुते कश्चिद्गोविन्दविनिवर्तने ॥२३
सुप्रभाताद्य रजनी मथुरावासियोषिताम् ।
पास्यन्त्यच्युतवक्त्राब्जं यासां नेत्रादिपङ्क्तयः ॥२४
धन्यास्ते पथि ये कृष्णमितो यान्त्यनिवारिताः ।
उद्वहिष्यन्ति पश्यन्तस्स्वदेहं पुलकाञ्चितम् ॥२५

मथुरानगरीपौरनयनानां महोत्सवः ।
गोविन्दावयवैर्दृष्टैरतीवाद्य भविष्यति ॥२६
को नु स्वप्नसभाग्याभिर्दृष्टास्ताभिरधोक्षजम् ।
विस्तारिकान्तिनयना या द्रक्ष्यन्त्यनिवारिताः ॥२७
अहो गोपीजनस्यास्य दर्शयित्वा महानिधिम् ।
उत्कृत्तान्यद्य नेत्राणि विधिनाकरुणात्मना ॥२८

अरी, तू यह क्या कहती है कि अपने बड़ों के सामने इस प्रकार कहने में हम समर्थ नहीं हैं ? हम तो विरहाग्नि में दग्ध हो चुकी हैं, बड़े अब हमारा क्या करेंगे ? ॥२२॥ देखो, यह नन्दादि गोप भी उनके साथ जाने को उद्यत हैं। इनमें से भी कोई गोविन्द को वहाँ जाने से नहीं रोकता ॥२३॥ मथुरा की स्त्रियों के लिये आज की रात सुखद प्रभात वाली हुई है, क्योंकि आज उनके नेत्र रूपी भ्रमर भगवान् अच्युत के मुख-मकरन्द का पान करेंगे ॥२३॥ श्रीकृष्ण का अनुगमन करने वाले ही धन्य हैं, क्योंकि वे उनका दर्शन-लाभ करते हुए ही अपने पुलकित देह को चलाते हैं ॥२५॥ श्री गोविन्द के अंगों को देखकर मथुरा निवासियों के नेत्र महोत्सव मनायेंगे ॥२६॥ आज मथुरा की कान्तिमय विशाल नेत्रों वाली सौभाग्यशालिनी नारियों ने ऐसा कौन सा शुभ स्वप्न देखा है, जिसके फलस्वरूप वे स्वच्छन्दता पूर्वक श्री अधोक्षज का दर्शन करेंगी ॥२७॥ अरे, ये विधाता कितना निष्ठुर है, जिसने महानिधि दिखाकर ही हम गोपियों के नेत्र खींच लिये हैं ॥२८॥

अनुरागेण शैथिल्यमस्मासु व्रजिते हरौ ।
शैथिल्यमुपयान्त्याशु करेषु बलयान्यपि ॥२९
अक्रूरः क्रूरहृदयश्शीघ्रं प्रेरयते हयान् ।
एवमार्त्तासु सुकृपा कस्यान्यथा न जायते ॥३०
एष कृष्णरथस्योच्चश्चक्ररेणुर्निरीक्ष्यताम् ।
दूरीभूतो हरिर्येन सोऽपि रेणुर्न लक्ष्यते ॥३१
इत्येवमतिहार्द्देन गोपीजननिरीक्षितः ।
तत्याज ब्रजभूभागं सह रामेण केशवः ॥३२

गच्छन्तौ जवनाश्वेन रथेन यमुनातटम् ।
प्राप्ता मध्याह्नसमये रामाक्रूरजनार्दनाः ॥३३
अथाह कृष्णमक्रूरो भनद्भ्यां तावदास्यताम् ।
यावत्करोमि कालिन्द्या आह्निकार्हणमम्भसि ॥३४

देखो, भगवान् हरि का अनुराग भी हमारे प्रति शिथिल हो गया है, इसी से तो हमारे हाथों के कंगन ढीले हो गये हैं ॥२९॥ देखो, यह अक्रूर कैसा क्रूर हृदय है जो अश्वों को शीघ्रता से हाँक रहा है, अन्यथा हमारे जैसी आर्त्त हुई नारियों पर कौन कृपा न करेगा ? ॥३०॥ देखो, अब कृष्ण के रथ की उड़ती हुई यह धूलि ही दिखाई दे रही है; परन्तु अब तो वे इतने दूर जा पहुँचे कि उस धूलि का दिखाई देना भी रुक गया ॥३१॥ श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार गोपियों द्वारा अनुराग-पूर्वक देखते-देखते ही श्रीकृष्ण-बलराम ब्रजभूमि को छोड़ कर आगे बढ़ गये ॥३२॥ फिर वे तीनों—बलराम, कृष्ण और अक्रूर शीघ्रगति वाले अश्वों से संयुक्त रथ में चलते हुए मध्य ह्न काल में यमुना के निकट पहुँच गये ॥३३॥ वहाँ जाकर आक्रूर ने श्रीकृष्ण से कहा-मैं यमुना जी में जाकर मध्याह्न काल की उपासना करूँगा । मेरे वहाँ से लौटने तक आप यहीं रहें ॥३४॥

तथेत्युक्तस्ततस्स्नातस्स्वाचान्तस्स महामतिः ।
दध्यौ ब्रह्म परं विप्र प्रविष्टो यमुनाजले ॥३५
फणासहस्रमालाढ्यं बलभद्रं ददर्श स ।
कुन्दमालाङ्गमुन्निद्रपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥३६
वृतं वासुकिरम्भाद्यैर्महद्भिः पवनाशिभिः ।
संस्तूयमानमुद्गन्धिवनमालाविभूषितम् ॥३७
दधानमसिते वस्त्रे चारुपद्मावतंसकम् ।
चारुकुण्डलिनं भान्तमन्तर्जलतले स्थितम् ॥३८
तस्योत्सङ्गे घनश्याममाताम्रायतलोचनम् ।
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं चक्राद्यायुधभूषणम् ॥३९

पीते वसानं वसने चित्रकाल्योपशोभितम् ।
शक्रचापतडिन्मालाविचित्रमिव तोयदम् ॥४०
श्रीवत्सवक्षसं चारु स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
ददर्श कृष्णमक्लिष्टं पुण्डरीकावतंसकम् ॥४१
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्सिद्धयोगैरकल्मषैः ।
सञ्चिन्त्यमानं तत्रस्थैर्नासाग्रन्यस्तलोचनैः ॥४२

श्री पराशर जी ने कहा—हे विप्र ! भगवान् द्वारा सहमति प्रकट करने पर महामति अक्रूरजी ने यमुना-जल में प्रवेश किया और आचमन आदि के पश्चात् परब्रह्म का चिन्तन करने लगे ॥३५॥ उस समय उन्हें बलरामजी हजार फलों से युक्त दिखाई देने लगे। उनका देह कुन्दपुष्पों की माला के समान तथा तेत्र खिले हुए पद्म पत्र के समान प्रतीत हुआ ॥३६॥ तथा वे वासुकि और रम्भ आदि महासर्पों से घिर कर स्तुत हो रहे हैं। उनके देह पर सुगन्धित वन मालाएँ शोभा पा रही हैं ॥३७॥ उन श्याम वस्त्रधारी ने कमल पुष्पों के सुन्दर आभूषण धारण किये हुए हैं और वे कुण्डली लगाकर जल में अवस्थित हैं ॥ ३८ ॥ फिर उनकी गोद में स्थित कमल विभूषित आनंद-कंद श्रीकृष्णचन्द्र को उन्होंने देखा, जो बादल के समान श्याम देह, किंचित् लाल एवं विशाल लोचन, मनोहर अङ्ग और उपाङ्गों तथा शंख—चक्रादि आयुधों से शोभित चार भुजा, वनमाला और पीताम्बर से सुसज्जित तथा इन्द्र धनुष और विद्युन्माला युक्त मेघ जैसे प्रतीत हो रहे थे। उनके वक्षस्थल में श्रीवत्स का चिह्न और कानों में मकराकार कुण्डल सुशोभित थे ॥३९-४१॥ तथा सनन्दनादि मुनि, दोष-रहित सिद्ध और योगी उसी जल में स्थित रहकर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखते हुए श्रीकृष्ण का ही ध्यान कर रहे हैं ॥४२॥

बलकृष्णौ तथाक्रूरः प्रत्यभिज्ञाय विस्मितः ।
अचिन्तयद्रथाच्छीघ्रं कथमत्रागताविति ॥४३
विवक्षोः स्तम्भयामास वाचं तस्य जनार्दनः ।
ततो निष्क्रम्य सलिलाद्रथमभ्यागतः पुनः ॥४४

ददर्श तत्र चैवोभौ रथस्योपरि मिष्ठितौ ।
रामकृष्णौ यथापूर्वं भनुष्यवपुषान्वितौ ॥४५
निमग्नश्च पुनस्तोये ददर्श च तथैव तौ ।
संस्तूयमानौ गन्धर्वैंमुंनिसिद्धमहोरगैः ॥४६
ततो विज्ञातसद्भावस्स तु दानपतिस्तदा ।
तुष्टाव सर्वविज्ञानमयमच्युतमीश्वरम् ॥४७

इस प्रकार वलराम कृष्ण को वहाँ देखकर अक्रूरजी को बडा आश्चर्य हुआ और वे सोचने लगे कि यह दोनों रथ से उतर कर इतनी जल्दी यहाँ कैसे आ गये ? ॥४३॥ जब उन्हों ने कुछ कहने की इच्छा की तो उनकी वाणी ही रुक गई । तब उन्हों ने रथ के पास आकर बलराम-कृष्ण दोनों को ही पहिले के समान रथ पर बैठे देखा ॥४४-४५॥ इस पर अक्रूरजी पुनः यमुनाजी के जल में घुसे तो उन्हें गन्धर्वों, सिद्धों, मुनियों और नागों से स्तुत होते हुए वे दोनों बालक उसी प्रकार दिखाई दिये ॥४६॥ तव तो अक्रूरजी उस यथार्थ रहस्य को समझ गये और सर्वविज्ञानात्मक अच्युत परमेश्वर श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ॥४७॥

सन्मात्ररूपिणेऽचिन्त्यमहिम्ने परमात्मने ।
व्यापिने नैकरूपैकस्त्ररूपाय नमो नमः ॥४८
नमो विज्ञानपाराय पराय प्रकृतेः प्रभो ॥४६
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान् ।
आत्मा च परमात्मा च त्वमेकः पञ्चधा स्थितः ॥५०
प्रसीद सर्व सर्वात्मन् क्षराक्षरमयेश्वर ।
ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिः कल्पनाभिरुदीरितः ॥५१
अनाख्येयस्वरूपात्मन्ननाख्येयप्रयोजन ।
अनाख्येयाभिधानं त्वां नतोऽस्मि परमेश्वर ॥५२

अक्रूरजी ने कहा—सन्मात्र रूप, अचित्य महिम, व्यापक एक तथा अनेक रूप वाले उन परमात्म देव को नमस्कार है ॥४८॥ हे प्रभो ! आप अचिन्त्य एवं सर्वरूप हवि स्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है । आप विज्ञान और प्रकृति से परे को नमस्कार है ॥४६॥ आप एक ही भूतात्मा,

इंद्रियात्मा, प्रधानात्मा, जीवात्मा और परमात्मा-इन पाँचों रूहों में स्थित हैं ॥५०॥ हे सर्व ! से सर्वात्मन् ! हे क्षर-अक्षरमय परमेश्वर ! आप एक ही ब्रह्मा, विष्णु, महादेव रूप से कल्पित किये जाते हैं। प्रभो ! आप प्रसन्न हों ॥५१॥ हे परमेश्वर ! आपके नाम, रूप, प्रयोजन—सभी अकथनीय हैं। आपको मेरा नमस्कार है ॥५२॥

न यत्र नाथ विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः।
तद्ब्रह्म परमं नित्यमविकारि भवानजः ॥५३
न कल्पनामृतेऽर्थस्य सर्वस्याधिगमो यतः।
ततः कृष्णाच्युतानन्तविष्णुसंज्ञाभिरीड्यते ॥५४
सर्वार्थास्त्वमज विकल्पनाभिरेतै,
र्देवाद्यैर्भवति हि यैरनन्तविश्वम्।
विश्वात्मा त्वमिति विकारहीनमेत-
त्सर्वस्मिन्न हि भवदोऽसि किञ्चिदन्यत् ॥५५
त्वं ब्रह्मा पशुपतिरर्यमा विधाता।
धाता त्वं त्रिदशपतिस्समीरणोऽग्निः।
तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको,
भिन्नार्थैर्जगदभिपासि शक्तिभेदैः ॥५६
विश्वं भवान्सृजति सूर्यगभस्तिरूपो,
विश्वेश ते गुणमयोऽयमतः प्रपञ्चः।
रूपं परं सदिति वाचकमक्षरं य-
ज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥५७
ॐ नमो वासुदेवाय नमस्संकर्षणाय च।
प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥५८

हे नाथ ! आप नाम—जाति आदि कल्पनाओं से परे, नित्य, निर्विकार एवं अजन्मा परब्रह्म हैं ॥५३॥ कल्पना के बिना किसी वस्तु का ज्ञान सम्भव न होने से ही कृष्ण, अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामों से आपकी आराधना की जाती है ॥५४॥ हे अज ! जिन देवादि कल्पना

वाले पदार्थों से यह अनन्त संसार उत्पन्न हुआ है, वह सब आप ही हैं। आप ही विकारहीन आत्म वस्तु होने से विश्वात्मा हैं। इन सब में आपसे भिन्न कोई भी पदार्थ नहीं है ॥ ५५ ॥ आप ही ब्रह्मा, पशुपति अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, समीर, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम ने रूप में विभिन्न कार्य-भेद्र के द्वारा इस सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करते हैं ॥५६॥ हे विश्वेश्वर ! आप ही सूर्य-रश्मियों के रूप में होकर जगत् की सृष्टि करते हैं। इस प्रकार यह गुणमय सम्पूर्ण प्रपञ्च आपका ही स्वरूप है। जिसका वाचक सत् है, वह प्रणव आपका ही रूप है, इसलिये उस ज्ञानात्मक मत्स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५७ ॥ वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध स्वरूपों को बारम्बार नमस्कार है ॥ ५८ ॥

उन्नीसवां अध्याय

एवमन्तर्जले विष्णुमभिष्टूय स यादवः ।
अर्चयामास सर्वेशं धूपपुष्पर्मनोमयैः ॥१
परित्यक्तान्यविषयो मनस्तत्र निवेश्य सः ।
ब्रह्मभूते चिरं स्थित्वा विरराम समाधितः ॥२
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामतिः ।
आजगाम रथं भूयो निर्गम्य यमुनाम्भसः ॥३
ददर्श रामकृष्णौ च यथापूर्वमवस्थितौ ।
स्मिताक्षस्तदाक्रूरस्तं च कृष्णोऽभ्यभाषत ॥४
नूनं ते दृष्टमाश्चर्यमक्रूर यमुनाजले ।
विस्मयोत्फुलल्लनयनो भवान्संलक्ष्यते यतः ॥५
अन्तर्जले यदाश्चर्यं दृष्टं तत्र मयाच्युत ।
तदत्रापि हि पश्यामि मूर्तिमत्पुरतः स्थितम् ॥६
जगदेतन्महाश्चर्यरूपं यस्य महात्मनः ।
तेनाश्चर्यपरेणाहं भवता कृष्ण सङ्गतः ॥७

तत्किमेतेन मथुरां यास्यामो मधुसूदन ।
बिभेमि कंसाद्धिग्जन्म परपिण्डोपजीविनाम् ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—यदुवंशी अक्रूरजी ने जल के भीतर भगवान् विष्णु की इस प्रकार स्तुति की और मनोभाव से ही धूप, दीपक, पुष्पादि से ही उनका पूजन किया ॥१॥ अन्य विषयों से चित्त को हटा कर उन्हीं में तन्मय करते हुए अक्रूरजी ने चिरकाल तक ध्यानावस्थित रहकर समाधि तोड़ दी ॥२॥ फिर अपने को धन्य मानते हुए यमुना-जल से निकल कर रथ के पास पहुँचे ॥३॥ वहाँ उन्होंने बलराम-कृष्ण को विस्मित नेत्रों से पहिले के समान ही रथ में बैठे हुए देखा। तब श्रीकृष्ण ने उनसे कहा ॥४॥ श्रीकृष्ण बोले—हे अक्रूर ! आपने यमुनाजी के जल में अवश्य ही कोई विस्मय करने वाली वस्तु देखी है, यह बात आपके चकित नेत्रों से प्रतीत हो रही है ॥५॥ अक्रूर ने कहा हे अच्युत ! यमुनाजी के जल में जो आश्चर्य मुझे दिखाई दिया था, उसे मैं इस समय भी अपने समक्ष देखता हूँ ॥६॥ हे कृष्ण ! जिसका स्वरूप यह आश्चर्यमय विश्व है, उन्हीं आप परम आश्रय रूप के साथ मेरा संग हुआ है ॥७॥ हे मधुसूदन ! अब आश्चर्य के विषय में क्या कहूँ ? अब हमें शीघ्र ही मथुरा पहुँचना हैं, क्योंकि कंस से मैं अत्यन्त भयभीत हूँ। पराये अन्न के आधार पर जीवित रहने वालों का जीवन भी व्यर्थ है ॥८॥

इत्युक्त्वा चोदयमास स हयान् वातरंहसः ।
सम्प्राप्तश्चापि सायाह्ने सोऽक्रूरो मथुरां पुराम् ॥९
विलोक्य मथुरां कृष्ण रामं चाह स यादवः ।
पद्भ्यां यात महावीरौ रथेनैको विशाम्यसम् ॥१०
गन्तव्य वसुदेवस्य नो भवद्भ्यां तथा गृहम् ।
युवयोर्हि कृते वृद्धस्स कंसेन निरस्यते ॥११
इत्युक्त्वा प्रविवेशाय सोऽक्रूरो मथुरां पुरीम् ।
प्रविष्टौ रामकृष्णौ च राजमार्गमुपागतौ ॥१२
स्त्रीभिर्नरैश्च सानन्दं लोचनैरमिवीक्षितौ ।

जग्मुतुर्लीलया वीरौ मत्तौ बालगजाविव ॥१३

यह कहकर अक्रूरजी ने वायुवेग वाले अपने अश्वों को चलाया और सायंकाल होने पर मथुरा पुरी में जा पहुँचे ॥९॥ उस मथुरा नगरी को देखकर बलराम-कृष्ण से अक्रूर ने कहा—हे महावीरो! यहाँ से मैं अकेला ही रथ पर जाऊँगा, आप पैदल ही वहाँ आ जाइये ॥१०॥ मथुरा में जाकर आप वसुदेवजी के घर में मत जाना, क्योंकि राजा कंस उन वृद्ध वसुदेवजी का आपके कारण ही इतना तिरस्कार किया करता है ॥११॥ श्री पराशरजी ने कहा—यह कहकर अक्रूरजी मथुरापुरी में प्रविष्ट हो गये फिर बलराम और कृष्ण भी राज मार्ग के द्वारा पुरी में आ गये ॥१२॥ मदमत्त तरुण हाथियों की सी चाल चलते हुए उन दोनों वीरों को मथुरा के नर-नारी परम आनन्द पूर्वक देख रहे थे ॥१३॥

भ्रममाणौ ततो दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम् ।
अयोचतां सुरूपाणि वासांसि रुचिराणि तौ ॥१४
कंसस्य रजकः सोऽथ प्रसादारूढविस्मयः ।
बहून्याक्षेपवाक्यानि प्राहोच्चौ रामकेशवौ ॥१५
ततस्तलप्रहारेण कृष्णस्तस्य दुरात्मनः ।
पातयामास रोषेण रजकस्य शिरो भुवि ॥१६
हत्वादाय च वस्त्राणि पीतनीलाम्बरो ततः ।
कृष्णरामौ मुदा युक्तौ मालाकागृह गतौ ॥१७
विकासिनेत्रयुगलो मालाकारोऽतिविस्मतः ।
एतौ कस्य सुतौ यातौ मैत्रेयाचिन्तयत्तदा ॥१८
पीतनीलाम्बरधरौ तौ दृष्ट्वातिमनोहरौ ।
स तर्कयामास तदा भुवं दवावुपागतौ ॥१९
विकासिमुखपद्माभ्यां ताभ्यां पुष्पाणि याचितः ।
भुवं विष्टभ्य हस्ताभ्यां करस्पर्श शिरसा महीम् ॥२०
प्रसादपरमौ नाथौ मम गेहमुपागतौ ।
धन्योऽहमर्चयिष्यामीत्याह तौ माल्यजीवनः ॥२१

मार्ग से उन्हें एक कपड़े रंगने वाला रजक दिखाई दिया, जिससे उन्होंने सुन्दर वस्त्रों की याचना की ॥१४॥ वह रजक कंस का कृपा-पात्र होने से अत्यन्त अहङ्कारी हो गया था, इसलिए राम-कृष्ण द्वारा वस्त्र की याचना करने पर उसने विस्मय पूर्वक अनेक आक्षेप युक्त वचन कहे ॥१५॥ इस पर श्री कृष्ण ने रुष्ट होकर अपनी हथेली के प्रहार से उस दुष्ट के मस्तक को पृथिवी पर गिरा दिया ॥१६॥ इस प्रकार उसका बध करके उन्होंने उसके सब वस्त्रों को ले लिया और उन नीले-पीले वस्त्रों को पहिन कर हर्षित होते हुए एक माली के घर आये ॥१७॥ हे मैत्रेयजी ! उस माली ने जैसे ही उन्हें देखा वैसे ही उसके नेत्र हर्ष से विकसित हो गये और वह विस्मयपूर्वक सोचने लगा कि यह किसके पुत्र, कहाँ से चले आ रहे हे ? ॥१८॥ उन पीले-नीदे वस्त्रों को धारण करने वाले मनोहर वालकों को देखकर उसने दो देवताओं को पृथिवी पर आया हुआ समजा ॥१९॥ फिर उन खिले हुए मुखारविन्द वालों ने उससे पुष्पों की याचना की तब उसने अपने हाथों को टेककर अपने शिर से भूमि को स्पर्श करते हुए कहा—हे नाथ ! आपने मेरे घर आकर वड़ी कृपा की है । मैं आज आपका पूजन करके धन्य हो जाऊँगा ॥२०-२१॥

ततः प्रहृष्टवदनस्तयोः पुष्पाणि कामतः ।
चारूण्येतान्यथैतानि प्रददौ स प्रलोभयन् ॥२२
पुनः पुनः प्रणम्योभौ मालाकारो नरोत्तमौ ।
ददौ पुष्पाणि चारूणि गन्धवन्त्यमलानि च ॥२३
मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्नः प्रददौ वरान् ।
श्रीस्त्वां मत्संश्रया भद्र न कदाचित्त्यजिष्यति ॥२४
बलहानिर्न ते सौम्य धनहानिरथापि वा ।
यावद्दिनानि तावच्च न नशिष्यति सन्ततिः ॥२५
भुक्त्वा च विपुलान्भोगांस्त्वमन्ते मत्प्रसादतः ।
ममानुस्मरणं प्राप्य दिव्यं लोकमवाप्स्यसि ॥२६
धर्मे मनश्च ते भद्र सर्वकालं भविष्यति ।

युष्मत्सन्ततिजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति ।।२७
नोपसर्गादिकं दोषं युष्मत्सन्ततिसम्भवः ।
अवाप्स्यति महाभाग यावत्सूर्यो भविष्यति ।।२८
इत्युक्त्वा तद्गृहात्कृष्णो बलदेवसहायवान् ।
निर्जगाम मुनिश्रेष्ठ मालाकारेण पूजितः ।।२९

फिर उस माली ने 'यह वहुत सुन्दर पुष्प हैं, यह अत्यन्त सुन्दर हैं' इस प्रकार प्रसन्न मुख से उन्हें आकर्षित कर करके पुष्प प्रदान किये ।।२२।। उसने उन दोनों को बारम्बार प्रणाम करते हुए अत्यन्त सुन्दर, सुगन्धित और मनोहर पुष्प दिये ।।२३।। तब श्रीकृष्ण भी उस माली पर प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसे वर दिया कि मेरी आश्रिता लक्ष्मी कभी तेरा त्याग न करेगी ।।२४।। हे सौम्य ! तेरा बल और धन कभी क्षीण नहीं होगा और जव तक दिनों का अस्तित्व रहेगा, तब तक तेरा वंश समाप्त न होगा ।।२५।। तू भी अपने जीवन पर्यन्त विविध प्रकार के सुख-भोग करता हुआ,अन्त में मेरी कृपा से स्मरण करेगा, जिससे तुझे दिव्यलोक की प्राप्ति होगी ।।२६।। हे भद्र ! तेरा चित्त सदा धर्म में लगा रहेगा और तेरे वंशज दीर्घ आयु वाले होंगे ।।२७।। हे महाभाग ! संसार में सूर्य की स्थिति तक तेरे किसी भी वंशज को उपसर्ग दोष की प्राप्ति नहीं होगी ।।२८।। श्रीपराशरजी ने कहा— हे मुनिवर ! यह कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने भ्राता बलरामजी सहित उस माली द्वारा पूजित होकर वहाँ से चल दिए ।।२९।।

बीसवां अध्याय

राजमार्गे ततः कृष्णस्सानुलेपनभाजनाम् ।
ददर्श कुब्जामायान्तीं नवयौवनगोचराम् ।।१
तामाह ललितं कृष्णः कस्येदमनुलेपनम् ।
भवत्या नीयते सत्यं वदेन्दीवरलोचने ।।२
सकामेनेव सा प्रोक्ता सानुरागा हरिं प्रति ।
प्राह सा ललितं कुब्जा तद्दर्शनबलात्कृता ।।३

कान्त कस्मान्न जानासि कंसेत विनियोजिताम् ।
नैकवक्रेति विख्यातामनुलेपनकर्मणि ।।४
नान्यपिष्टं हि कंसस्य प्रीतये ह्यनुलेपनम् ।
भवाम्यहमतीवास्य प्रसादधनभाजनम् ।।५
सुगन्धमेतद्राजार्हं रुचिरं रुचिरानने ।
आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामसुलेपनम् ।।६

श्री पराशरजी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने कुब्जा नाम की एक नवयौवना नारी को अनुलेपन का पात्र ग्रहण किये हुए राजमार्ग पर आते हुए देखा ।।१।। तब उन्होंने उससे लालित्यपूर्ण वचनों में कहा—हे पद्मलोचने ! सत्य बता कि तू इस अनुलेपन को किस पुरुष के लिए ले जारही है ? ।।२।। भगवान् द्वारा कामुक के समान ऐसा पूछा जाने पर अनुरागवती कुब्जा उनको देखकर आसक्त चित्त हो गई और विलास पूर्वक कहने लगी ।।३।। हे कान्त ! क्या तुम मुझे नहीं जानते ? राजा कंस द्वारा मैं अनुलेपन-कार्य में नियुक्त हूँ और मेरा नाम 'अनेकवक्रा' प्रसिद्ध है ।।४।। राजा को मेरे द्वारा बनाया हुआ अनुलेपन ही अच्छा लगता है, इसीलिए मैं उनकी महती कृपापात्री हूँ ।।५।। श्री कृष्ण ने कहा—हे सुन्दर मुखवाली ! यह सुन्दर सुगन्ध वाला उबटन तो राजा योग्य ही है । यदि तुम्हारे पास कोई अनुलेपन हमारे देह के योग्य हो तो हमें दे दो ।।६।।

श्रुत्वैतदाह सा कुब्जा गृह्यतामिति सादरम् ।
अनुलेपनं च प्रददौ गात्रयोग्यमथोभयोः ।।७
भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ ।
सेन्द्रचापौ व्यराजेतां सितकृष्णाविवाम्बुदौ ।।८
ततस्तां चिबुके शौरिरुल्लापनविधानवित् ।
उत्पाटय तोलयामास द्वयङ्गुलेनाग्रपाणिना ।।९
चकर्ष पद्भयां च तदा ऋजुत्वं केशवोऽनयत्तत् ।
ततस्सा ऋतुजां प्राप्ता योषितामभवद्वरा ।।१०
विलासललितं प्राह प्रेमगर्भभरालसम् ।

वस्त्रे प्रगृह्य गोविन्दं मम गेहं व्रजेति वै ॥११
एवमुक्तस्तया शौरी रामस्यालोक्य चाननम् ।
प्रहस्य कुब्जां तामाह नैकवक्रमनिन्दिताम् ॥१२
आयास्ये भवतीगेहमिति तां प्रहसन्हरिः ।
विससर्ज जहासोच्चैः रामस्यालोक्य चाननम् ॥१३

श्री पराशरजी ने कहा—ऐसा सुनकर कुब्जा ने उनके शरीर पर लगाने योग्य अनुलेपनादि उन्हें प्रदान किये ॥ ७ ॥ तब वे दोनों पुरुष श्रेष्ठ अनुलेपन-युक्त होकर इन्द्र धनुषमय श्याम और श्वेत बादलों के समान शोभा पाने लगे ॥ ८ ॥ फिर उल्लापन-विधान के ज्ञाता श्रीकृष्ण ने उसकी चिबुक को अपनी दो अँगुलियों से उचका कर झटका दिया और अपने चरणो से उसके पाँव दबा लिए। इस प्रकार उन्होंने उसकी देह सीधी कर दी। इस प्रकार सीधी होकर कुब्जा सब स्त्रियों से सुन्दर प्रतीत होने लगी ॥ ९-१० ॥ तब उसने भगवान् का वस्त्र पकड़ लिया और प्रेम गर्व से अलसाई हुई ललित वाणी में कहने लगी कि 'मेरे घर पर पधारिये' ॥११॥ पहिले जिसके अनेक अङ्ग कुबड़े थे और जो अब सीधे अङ्ग होने से सुन्दरी होगई थी, उस कुब्जा की बात सुन कर श्रीकृष्ण ने बलरामजी के मुख की ओर देखते हुए हँस कर कहा— 'मैं तुम्हारे घर आऊँगा।' ऐसा कह कर उन्होंने कुब्जा को हँसते हुए विदा किया और बलरामजी के मुख की ओर देखकर उच्च हास करने लगे ॥१२-१३॥

भक्तिभेदानुलिप्ताङ्गौ नीलपीताम्बरौ तु तौ ।
धनुश्शालां ततो यातौ छित्रमाल्योपशोभितौ ॥१४
आयागं वद्धनूरत्नं ताभ्यां पृष्ठैस्तु रक्षिभिः ।
आख्याते सहसा कृष्णो गृहीत्वापूरयद्धनुः ॥१५
ततः पूरयता तेन भज्यमान बलाद्धनुः ।
चकार सुमहच्छब्दं मथुरा येन पूरिता ॥१६
अनुयुक्तौ ततस्तौ तु भग्ने धनुषि रक्षिभिः ।
रक्षिसंन्यं निहत्योभौ निष्क्रान्तौ कार्मुकालयात् ॥१७

अक्रूरागमवृत्तान्तमुपलभ्य महद्धनुः ।
भग्नं श्रुत्वा च कंसोऽपि प्राह चाणरमुष्टिकौ ॥१८
गोपालदारकौ प्राप्तौ भवद्‌भ्यां तु ममाग्रतः ।
मल्लयुद्धेन हन्तव्यौ मम प्राणहरौ हि तौ ॥१९
नियुद्धे तद्विनाशेन भवद्‌भ्यां तोषितो ह्यहम् ।
दास्याम्यभिमतान्कामान्नान्यथै तौ महाबलौ ॥२०
न्यायतोऽन्यायतो वापि भवद्‌भ्यां तौ ममाहितौ ।
हन्तव्यौ तद्वधाद्राज्यं सामान्यं वां भविष्यति ॥२१

फिर अनुलेपन और चित्र-विचित्र मालाओं से विभूषित तथा क्रमशः नीलाम्वर और पीताम्वर धारण किए हुए वलराम और कृष्ण धनुर्यज्ञ यज्ञ रक्षकों से पूछा और जब उन्होंने बतला दिया तब श्रीकृष्ण ने उस धनुष को सहसा उठा लिया और उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने लगे ॥१५॥ जब वह बल पूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ा रहे थे, तभी वह धनुष अत्यन्त घोर शब्द करता हुआ टूट गया, जिससे सम्पूर्ण मथुरापुरी गूँज गई ॥१६॥ उस धनुष के टूटने पर उसके रक्षक उन्हें मारने को दौड़े, तब उन रक्षकों की सेना को नष्ट करके उस यज्ञशाला से दोनों निकल आये ॥१७॥ इसके उपरान्त जब कंस को अक्रूर के व्रज से लौट आने तथा उस महान् धनुष के भी टूटने का समाचार मिला तब उसने चाणूर मुष्टिक को बुलाकर कहा ॥१८॥ कंस ने कहा—वे दोनों गोप-वालक यहाँ आगये और मेरे प्राणों का हरण करने के प्रयत्न में हैं, इसलिए तुम उन्हें मल्ल युद्ध करके मार दो। यदि तुम उन्हें मारकर मुझे प्रसन्न करोगे तो मैं भी तुम्हारे मनोरथ पूर्ण कर दूँगा। मेरी इस बात को अन्यथा मत जानो ॥ १९--२० ॥ न्याय से अन्याय से, जिस प्रकार भी हो, मेरे इन महावली शत्रुओं का वध कर डालो जब वे मारे जायेंगे तब यह सम्पूर्ण राज्य मेरा और तुम्हारा वरावर हो जायगा ॥२१॥

इत्यादिश्य स तौ मल्लौ ततश्चाहूय हस्तिपम् ।
प्रोवाचोच्चैस्त्वया मल्लसमाजद्वारि कुञ्जरः ॥२२

स्थाप्यः कुवलयापीडस्तेन तौ गोपदारकौ ।
घातनीयौ नियुद्धाय रंगद्वारमुपागतौ ॥२३
तमप्याज्ञाप्य दृष्ट्वा च सर्वान्मञ्चानुपाकृतान् ।
आसन्नमरणः कंसः सूर्योदयमुदैक्षत ॥२४
ततः समस्तमञ्चेषु नागरस्स तदा जनः ।
राजमञ्चेषु चारूढास्सह भृत्यैर्नराधिपाः ॥२५
मल्लप्राश्निकवर्गश्च रङ्गमध्यसमीपगः ।
कृतः कंसेन कंसोऽपि तुङ्गमञ्चेव्यवस्थितः ॥२६
अन्तः पुराणां मञ्चाश्च तथान्ये परिकल्पिताः ।
अन्ये च वारमुख्यानामन्ये नागरयोषिताम् ॥२७
नन्दगोपादयो गोपा मञ्जेष्वन्येष्ववस्यिताः ।
अक्रूरवसुदेवौ च मञ्चप्रान्ते व्यवस्थितौ ॥२८
नागरीयोषितां मध्ये देवकींपुत्रगर्धिनी ।
अन्तकालेऽपि पुत्रस्य द्रक्ष्यामीति मुखं स्थिता ॥२६

कंस ने अपने मल्लों को इस प्रकार कहकर अपने महावत को आज्ञा दी कि रंगभूमि के द्वार पर कुवलयापीड को खड़ा कर दो और जैसे ही वे गोप पुत्र वहाँ आवें, वैसे ही उस हाथी के द्वारा मरवा दो ॥२२-२३॥ महावत को इस प्रकार की आज्ञा देकर और सब मचों को यथा स्थान रखे देख कर आसन्न मृत्यु कंस सूर्य के उदित होने की बाट देखने लगा ॥२४॥ जब प्रातःकाल हुआ तब राजमंचों पर अपने बनुचरों सहित राजागण तथा सामान्य मंचों पर सभी नागरिक बैठ गये ॥२५॥ फिर रंगभूमि के बीच में युद्ध-निर्णायकों को स्थित कर एक उच्च सिंहासन पर कंस स्वयं बैठ गया ॥२६॥ यहाँ अन्तःपुर की महिलाओं, प्रमुख वरांगनाओं और नगर की प्रतिष्ठित नारियों के लिए पृथक् २ मचों की रचना की गई थी ॥२७॥ कुछ अन्य मंचों पर नन्दादि गोपों को स्थान दिया गया, जिनके समीपस्थ मंचों पर अक्रूरजी और वसुदेवजी बैठे थे ॥२८॥ नगर की महिलाओं के मध्य में ही बैठी हुइ देवकी जी सोच रही थीं कि अन्त समय में अपने पुत्र का मुख तो देख लूँगी ॥२६॥

वाद्यमानेषु तूर्येषु चाणरे चापि वल्गति ।
हाहाकारपरे लोके ह्यास्फोटयति मुष्टिके ॥३०
इषद्धसन्तौ वीरौ बलभद्रजनार्दनौ ।
गोपवेषधरौ बालौ रङ्गद्वारमुपागतौ ॥३१
अभ्यधावत वेगेन हन्तुं गोपकुमारकौ ॥३२
हाहाकारो महाञ्जज्ञे रंगमध्ये द्विजोत्तम ।
बलदेवोऽनुजं दृष्ट्वा वचनं चेदमब्रवीत् ॥३३
हन्तव्यो हि महाभागनागोऽयं शत्रुचोदितः ॥३४

फिर तुहरी बज उठी, चाणूर अत्यन्त उछलने और मुष्टिक ताल ठोकने लगा । इससे लोगों में हाहाकार मचने लगा । उसी समय बलराम और कृष्ण भी कुछ हँसते हुए गोपवेश में रंगभूमि के द्वार पर आ पहुँचे ॥३०-३१॥ उनके आते ही महावत ने कुवलयापीड को प्रेरित किया, तब वह उनका वध करने के लिये वेगपूर्वक उनके ऊपर झपटा ॥३०॥ हे द्विजोत्तम ! उस समय रंगभूमि में घोर हाहाकार होने लगा, तब बलरामजी ने श्रीकृष्ण की ओर दृष्टि करके उनसे कहा—हे महाभाग ! इस शत्रु द्वारा प्रेरित हाथी का वध कर देना ही उचित है ॥३३-३४॥

इत्युक्तस्सोऽग्रजेनाथ बलदेवेन वै द्विज ।
सिंहनाद ततश्चक्रे माधवः परवीरहा ॥३५
करेण करमाकृष्य तस्य केशिनिषूदनः ।
भ्रामयामास तं शौरिरैरावतसम बले ॥३६
ईशोऽपि सर्वजगतां बाललीलानुसारतः ।
क्रीडित्वा सुचिरं कृष्णः करिदन्तपदान्तरे ॥३७
उत्पाट्य वामदन्तं तु दक्षिणेनैव पाणिना ।
ताडयामास यन्तारं तस्यासीच्छतधा शिरः ॥३८
दक्षिणं दन्तमुत्पाट्य बलभद्रोऽपि तत्क्षणात् ।
सरोषस्तेन पार्श्वस्थान् गजपालानपोथयत् ॥३९
ततस्तूत्प्लुत्य वेगेन रौहिणेयो महाबलः ।

जघात वामपादेन मस्तके हस्तिनं रुषा ॥४०
स पपात हतस्तेन बलभद्रेण लीलया ।
सहस्राक्षेण वज्रेण ताडित· पर्वतो यथा ॥४१

हे विप्र ! बड़े भाई बलरामजी के वचन सुनकर शत्रु संहारक भगवान् श्रीकृष्ण ने घोर सिंहनाद किया ॥३५॥ और उन केशी-हन्ता से ऐरावत के समान महाबली कुवलयापीड की सूँड को अपने हाथ में लेकर जोर से घुमाया ॥३६॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण विश्व के ईश्वर हैं, फिर भी उन्होंने बाललीला का अनुसरण करके बहुत देर तक खेल करते हुए अपने दांये हाथ से हाथी का बाँया दाँत उखाड़ लिया और उसके द्वारा महावत पर आघात किया, जिससे महावत का शिर फटकर सैंकड़ों खण्डों में विभक्त होगया ॥ ३७-३८ ॥ उसी समय बलरामजी ने हाथी का दाँया दाँत उखाड़ कर उसके निकटवर्ती महावतों का क्रोध पूर्वक वध कर डाला ॥३९॥ फिर उन महाबली रोहिणी पुत्र ने अत्यन्त वेगपूर्वक उछल कर कुवलयापीड के मस्तक पर अपने बाँए पद से प्रहार किया ॥४०॥ इस प्रकार बलरामजी के द्वारा वह हाथी लीलापूर्वक ही अपनी जीवन लीला समाप्त करके जैसे इन्द्र बज्र के प्रहार से पर्वत गिर जाते हैं, वैसे ही पृथिवी पर गिर पड़ा ॥४१॥

हत्वा कुवलयापीडं हस्त्यारोहप्रचोदितम् ।
मदासृगनुलिप्तांगौ हस्तिदन्तवरायुधौ ॥४२
मृगमध्ये यथा सिंहौ गर्वलीलावलोकिनौ ।
प्रविष्टौ सुमहारग बलभद्रजनार्दनौ ॥४३
हाहाकारो महाञ्जज्ञे महारंगे त्वनन्तरम् ।
कृष्णोऽयं बलभद्रोऽयमिति लोकस्य विस्मयः ॥४४
सोऽयं येन हता घोरा पूतना बालघातिनी ।
क्षिप्तं तु शकटं येन भग्नौ तु यमलार्जुनौ ॥४५
सोऽयं यः कालिय नागं ममर्दारुह्य बालकः ।
धृतो गोवर्धनो येन सप्तरात्रं महागिरिः ॥४६
अरिष्टो धेनुकः केशी लीलयैव महात्मना ।

निहता येन दुर्वृत्ता दृश्यतामेष सोऽच्युतः ॥४७
अयं चास्य महाबाहुर्बलभद्रोऽग्रतोग्रजः ।
प्रयाति लीलया योषिन्मनोनयननन्दनः ॥४८
अयं स कथ्यते प्राज्ञैः पुराणार्थविशारदैः ।
गोपालो यादवं वंशं मग्नमभ्युद्धरिष्यति ॥४९
अयं हि सर्वलोकस्य विष्णोरखिलजन्मनः ।
अवतीर्णो महीमंशो नूनं भारहरो भुवः ॥५०

इस प्रकार महावत के द्वारा प्रेरित किये गये कुवलयापीड का वध करने से उसके मद और रुधिर में सने हुए बलराम कृष्ण उनके दांतों को पकड़े हुए गर्व एवं लीलामयी चितवन से देखते हुए मृगों के मध्य में सिंह के निर्भयता पूर्वक चले आने के समान ही उस महान् रङ्ग-भूमि में आ पहुँचे ॥४२।४३॥ उस समय वहाँ अत्यन्त हाहाकार मचा हुआ था और उनके आते ही सब ये कृष्ण हैं, यह बलराम हैं, इस प्रकार विस्मय पूर्वक कहने लगे ॥४४॥ यह वही है जिसने बालकों का घात करने वाली भयंकरी पूतना का वध किया, छकड़े को उलट दिया, यमलार्जुन वृक्षों को उखाड़ दिया, कालिय नाग का दमन किया और सात रात्रि पर्यन्त महान् पर्वत गोवर्धन को धारण किया था ॥४५॥४६॥ यह वही अच्युत हैं, जिन्होंने अरिष्ट धेनुक और केशी आदि को खेल-खेल में ही मार डाला था ॥४७॥ इनके आगे इनके ज्येष्ठ भ्राता बलरामजी हैं, जो लीला पूर्वक चलने वाले तथा नेत्रों को अत्यन्त सुख देने वाले हैं। ॥४८॥ पुरुषार्थ के ज्ञाता विज्ञजनों का कथन है कि यही गोपाल यादवों का उद्धार करेंगे ॥४९॥ यह सर्वलोकात्मक एवं सर्व कारण भगवान् विष्णु के ही अंशभूत हैं और यह भू-भार-हरण के लिये ही पृथिवी पर अवतीर्ण हुए हैं ॥५०॥

इत्येवं वर्णिते पौरै रामे कृष्णे च तत्क्षणात् ।
उरस्तताप देवक्याः स्नेहस्नुतपयोधरम् ॥५१
महोत्सवमिवासाद्य पुत्राननविलोकनात् ।
युवेव वसुदेवोऽभूद्विहायाभ्यागतां जराम् ॥५२

विस्तारिताक्षियुगलो राजान्तःपुरयोषिताम् ।
नागरस्त्रीसमूहश्च द्रष्टुं न विरराम् तम् ॥५३
सख्यः पश्यत कृष्णस्य मुखमत्यरुणेक्षणम् ।
गजयुद्धकृतायासस्वेदाम्बुकणिकाचितम् ॥५४
विकासिशरदम्भोजमवश्यायजलोक्षितम् ।
परिभूय स्थितं जन्म सफलं क्रियतां दृशः ॥५५

जिस समय पुर वासीगण बलराम और कृष्ण के विषय में इस प्रकार कह रहे थे, उस समय स्नेहवश देवकी के स्तनों से दूध टपलने लगा और उसका हृदय अत्यन्त संतप्त हो उठा ॥५१॥ पुत्रों के मुख देखने के कारण उल्लसित मन वाले वसुदेवजी जैसे प्राप्त हुई वृद्धावस्था को त्याग कर पुनः नवयौवन को प्राप्त हो गये हों ॥५२॥ राजा कंस के अन्तःपुर की महिकाएँ और नगर में निवास करने वाली स्त्रियाँ—सभी उन्हें टकटकी लगाकर देखने लगीं ॥५३॥ उन्होंने कहा—हे सखियो ! कृष्ण का अरुण नेत्रों वाला श्रेष्ठ मुख तो देखो जो हाथी से युद्ध करने के श्रम के कारण स्वेद युक्त होकर हिम-कणों के द्वारा सीचे गये शरत्कालीन विकसित कमल को भी फीका कर रहा है। इनके दर्शन से अपने नेत्रों को सफल बना लो ॥५४-५५॥

श्रीवत्सांकं महद्धाम बालस्यैतद्विलोक्यताम् ।
विपक्षक्षपण वक्षो भुजयुग्मं च भामिनि ॥५६
किं न पश्यसि दुग्धेन्दुमृणालधवलाकृतिम् ।
बलभद्रमिमं नीलपरिधानमुपागतम् ॥५७
वल्गता मुष्टिकेनैव चाणूरेण तथा सखि ।
क्रीडतो बलभद्रस्य हरेर्हास्यं विलोक्यताम् ॥५८
सख्यः पश्यत चाणूरं नियुद्धार्थमयं हरिः ।
समुपैति न सन्त्यत्र किं वृद्धा मुक्तकारिणः ॥५९
क्व यौवनोन्मुखीभूतसुकुमारतनुर्हरिः ।
क्व वज्रकठिनाभोगशरीरोऽयं महासुरः ॥६०

इमौ सुललितैरङ्गैर्वर्तेते नवयौवनौ ।
दैतेयमल्लाश्चाणूरप्रमुखास्त्वतिदारुणाः ॥६१
नियुद्धप्राश्निकानां तु महानेष व्यतिक्रमः ।
यद्बालबलिनोर्युद्धं मध्यस्थैस्समुपेक्ष्यते ॥६२

हे भामिनि ! इस बालक के वत्साँकित हृदय और शत्रुओं को हरा देने वाली दोनों भुजाओं को तो देखो ॥५६॥ इस पर किसी अन्य ने कहा —क्या तुम्हें कमलनाभ, दूध अथवा चन्द्रमा के समान शुभ्रवर्ण वाले नीलाम्बरधारी बलराम दिखाई नहीं दे रहे हैं ? ॥५७॥ अरी सखियो ! देखो यह कृष्ण चाणूर के साथ युद्ध करने के लिये बढ़ रहे हैं । क्या कोई भी वृद्ध पुरुष इन्हें रोकने के लिये उद्यत नहीं होता ? ॥५७-५८॥ कहाँ तो युवावस्था में पैर रखने वाले यह सुकुमार देह वाले हरि और कहाँ यह वज्र के समान कठोर देह वाला यह घोर असुर ? ॥६०॥ यह दोनों नवयौवन सम्पन्न एवं अत्यन्त कोमल शरीर वाले हैं तथा ये चाणूर आदि मल्ल-दैत्य अत्यन्त विकराल है ॥६१॥ मल्ल-युद्ध के निर्णायकों का यह अन्याय पूर्ण कार्य ही है कि जो मध्यस्थ होकर भी इस विषय में उपेक्षा करते हैं ॥६२॥

इत्थं पुरस्त्रीलोकस्य वदतश्चालयन्भुवम् ।
ववल्ग बद्धकक्ष्योऽन्तर्जनस्य भगवान्हरिः ॥६३
बलभद्रोऽपि चास्फोट्य ववल्ग ललितं तथा ।
पदे पदे तथा भूमिर्यन्न शीर्णा तदद्भुतम् ॥६४
चाणूरेण ततः कृष्णो युयुधेऽमितविक्रमः ।
नियुद्धकुशलो दैत्यो बलभद्रेण मुष्टिकः ॥६५
सन्निपातावधूतस्तु चाणूरेण समं हरिः ।
प्रक्षेपणैर्मुष्टिभिश्च कीलवज्रनिपातनैः ॥६६
पादोद्धूतैः प्रमृष्टैश्च तयोर्युद्धमभून्महत् ॥६७
अशस्त्रमतिघोरं तत्तयोर्युद्धं सुदारुणम् ।
बलप्राणविनिष्पाद्यं समाजोत्सवन्निधौ ॥६८
यावद्यावच्च चाणूरो युयुधे हरिणा सह ।

प्राणहानिमवापाग्र्यां तावत्तावल्लवाल्लवम् ।।६९
कृष्णोऽपि युयुधे तेन लीलयैव जगन्मयः ।
खेदाच्चालयता कोपान्निजशेखरकेसरम् ।।७०

श्री पराशरजी ने कहा—नगर की महिलाएँ इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहीं थीं तभी भगवान् श्रीहरि ने अपनी कटि को कस लिया तथा पृथिवी को कम्पायमान करते हुए, सभीं दर्शकों की उपस्थिति में, रङ्ग-भूमि में छलाँग मारी ।।६३।। अपने भुज दण्डों को ठोंकते हुए बलरामजी भी उत्तेजना पूर्वक उछलने लगे। उस समय उनके पदाघात से पृथिवी विदीर्ण नहीं हुई—यही विस्मय की बात है ।।६४।। फिर द्वन्द-युद्ध का प्रारम्भ हुआ, जिसमें चाणूर से कृष्ण और मुष्टिक से बलरामजी भिड़ गये ।।६५।। कृष्ण और चाणूर भिड़ कर, नीचे गिरा कर, मुष्टिका और कोहनी से प्रहार कर, पदाघात कर तथा परस्पर में अङ्ग से अङ्ग रगड़ कर युद्ध करने लगे। उस समय का वह युद्ध भयङ्कर हो उठा ।।६६-६७।। इस प्रकार समाजोत्सव की सन्निधि में केवल बल और प्राण से ही सम्पन्न होने वाला बिना अस्त्र के ही अत्यन्त भयंकर युद्ध हो रहा था ।।६८।। चाणूर जैसे-जैसे कृष्ण से अत्यन्त घोर भिड़न्त करने लगा, वैसे ही वैसे उसकी प्राण शक्ति का ह्रास होने लगा था ।।६९।। उस समय जगन्मय भगवान् श्रीकृष्ण भी परिश्रम और क्रोध के कारण अपने पुष्पमय मुकुट की केशर को कम्पित करने वाले चाणूर से लीला पूर्वक ही युद्ध कर रहे थे ।।७०।।

बलक्षयं निवृद्धिं च दृष्ट्वा चाणूरकृष्णयोः ।
वारयामास तूर्याणि कंसः कोपपरायणः ।।७१
मृदङ्गादिषु तूर्येषु प्रतिषिद्धेषु तत्क्षणात् ।
खे सङ्गतान्यवाद्यन्त देवतूर्याण्यनेकशः ।।७२
जय गोविन्द चाणूरं जहि केशव दानवम् ।
अन्तर्द्धानगता देवास्तमूचुरतिहर्षिताः ।।७३
चाणूरेण चिर कालं क्रीडित्वा मधुसूदनः ।
उत्थाप्य भ्रामयामास तद्वधाय कृतोद्यमः ।।७४

भ्रामयित्वा शतगुणं दैत्यमल्लममित्रजित् ।
भूमावास्फोटयामास गगने गतजीवितम् ॥७५

भूमावास्फोटितस्तेन चाणूरः शतधाभवत् ।
रक्तस्रावमहापंकां चकार च तदा भुवम् ॥७६

बलदेवोऽपि तत्कालं मुष्टिकेन महाबलः ।
युयुधे दैत्यमल्लेन चाणूरेण यथा हरिः ॥७७

सोऽप्येनं मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहृत्य जानुना ।
पातयित्वा धरापृष्ठे निष्पिपेष गतायुषम् ॥७८

उस समय चाणूर का बल घटता और श्रीकृष्ण का बल बढ़ता हुआ देख कर कंस झल्ला उठा और उसने बजते हुए सभी बाजे बन्द करा दिये ॥७१॥ परन्तु, रङ्गभूमि में बजते हुए तुरही आदि बाजों के बन्द होते ही आकाश में अनेकों बाजे एक साथ ही बज उठे ॥७२॥ तभी देवताओं ने अप्रकट रूप से कहा - गोविन्द की जय ! हे केशव ! इस दानव चाणूर का वध कीजिये ॥७३॥ फिर उस चाणूर के साथ श्रीकृष्ण ने बहुत देर तक मल्लक्रीडा की और उसे मारने की इच्छा से उठाकर घुमाया ॥७४॥ शत्रुओं के जीतनें वाले श्रीकृष्ण ने उस दैत्य को सैकड़ों बार आकाश में फिराया और फिर पृथिवी पर डाल दिया ॥७५॥ इस प्रकार गिराये जाते ही उसके देह के सैकड़ों टूक हो गये और रक्त प्रवाहित होने से पृथिवी पर कीचड़ हो गई ॥७६॥ जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने चाणूर के साथ युद्ध किया था, उसी प्रकार महाबली बलरामजी भी मुष्टिक नामक मल्ल से भिड़ रहे थे ॥७७॥ मुष्टिक के मस्तक पर बलरामजी ने मुष्टिकाघात किया और वक्षःस्थल पर अपने जानु से टक्कर मारी । फिर उस निःशेष आयु वाले दैत्य को पृथिवी पर पटक कर बुरी तरह मर्दित किया ॥७८॥

कृष्णस्तोशलकं भूयो मल्लराजं महाबलम् ।
वाममुष्टिप्रहारेण पातयामास भूतले ॥७९

चाणरे निहते मल्ले मुष्टिके विनिपातिते ।
नीते क्षयं तोशलके सर्वे मल्लाः प्रदुद्रुवुः ॥८०

ववल्गतुस्ततो रङ्गे कृष्णसंकर्षणावुभौ ।
समानवयसो गोपान्बलादाकृष्य हर्षितौ ॥८१
कंसोऽपि कोपरक्ताक्षः प्राहोच्चैर्व्यायतान्नरान् ।
गोपावेतौ समाजौघान्निष्क्राम्येतां बलादितः ॥८२
नन्दोऽपि गृह्यतां पापो निर्गलैरायसैरिह ।
अवृद्धार्हेण दण्डेन वसुदेवोऽपि वध्यताम् ॥८३
गल्गन्ति गोपाः कृष्णेन ये चेमे सहिताः पुरः ।
गावो निगृह्यतामेषां यच्चास्ति वसु किञ्चनः ॥८४

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने महाबली तोशल पर बाएँ हाथ की मुट्ठी से प्रहार किया और अन्त में धराशायी कर दिया ॥७६॥ चाणूर, मुष्टिक और तोशल जैसे महामल्लों के मरते ही सब मल्ल रंग भूमि से भाग गये ॥८०॥ उस समय कृष्ण और बलराम दोनों ही अपने समान आयु वाले गोपों से आलिंगन करते हुए हर्ष से उछलने लगे ॥८६॥ इस पर कंस के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और उसने उपस्थित पुरुषों से कहा—अरे, कोई इन दोनों ग्वालों को इस समाज से निकाल बाहर करो ॥८२॥ पापात्मा नन्द को लोहे की जंजीरों में कस लो और वसुदेव को भी अवृद्धों जैसी कठोर यातना देकर मार डालो ॥८३॥ कृष्ण के साथ यह जितने भी ग्वाले उछल कूद कर रहे हैं, इन सबका संहार कर इनके गवादि धन को छीन लो ॥८४॥

एवमाज्ञापयन्तं तु प्रहस्य मधुसूदनः ।
उत्प्लुत्यारुह्य त मञ्चं कंस जग्राह वेगतः ॥८५
केशेष्वाकृष्य विगलत्किरीटमवनीतले ।
स कंसं पातयामास तस्योपरि पपात च ॥८६
अशेषजगदाधारगुरुणा पततोपरि ।
कृष्णेन त्याजितः प्राणानुग्रसेनात्मजो नृपः ॥८७
मृतस्य केशेषु तदा गृहीत्वा मधुसूदनः ।
चकर्ष देहं कंसस्य रंगमध्ये महाबलः ॥८८
गौरवेगातिमहता परिखा तेन कृष्यता ।

कृता कंसस्य देहेन वेगेनेव महाम्भसः ॥८६

कंसे गृहीते कृष्णेन तद्भ्राताऽभ्यागतो रुषा।
सुमाली बलभद्रेण लीलयैव निपातितः ॥६०

ततो हाहाकृतं सर्वमासीत्तद्र गमण्डलम् ।
अवज्ञया हतं दृष्ट्वा कृष्णेन मथुरेश्वरम् ॥६१

राजा कंस इस प्रकार की आज्ञा दे ही रहा था, तभी श्रीकृष्ण हँसते-हँसते उसके सिंहासन पर उछल कर चढ़ गये और तुरन्त ही उसे पकड़ लिया ॥८५॥ फिर उसके केश पकड़ कर खींचते हुए पृथिवी पर दे मारा और फिर स्वयं भी उसके ऊपर कूद पड़े। इस अवस्था में उसके सिर का मुकुट उतर कर पृथक् जा गिरा ॥८६॥ जगदाधार कृष्ण के ऊपर गिरते ही उग्रसेन के पुत्र कंस ने अपने प्राणों का त्याग कर दिया ॥८७॥ फिर उन महाबली कृष्ण ने मरे हुए कंस के बालों को पकड़ कर उसके शरीर को पृथिवी पर घसीटा ॥८८॥ कंस का शरीर इतना भारी था कि उसके घसीटे जाने से जल-वेग से पड़ी हुई दरार के समान पृथिवी फट गई ॥८६॥ जब श्रीकृष्ण ने कंस के केश पकड़े थे, तभी उसके भाई सुमाली ने उन पर क्रोधपूर्वक आक्रमण किया, परन्तु बलरामजी ने उसका लीलापूर्वक ही वध कर डाला ॥६०॥ इस प्रकार मथुरेश कंस को कृष्ण द्वारा मारा जाता हुआ देख कर सभी उपस्थित जन समाज हाहाकार कर उठा ॥६१॥

कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ जग्राह सत्वरः ।
देवक्याश्च महाबाहुर्बलदेवसहायवान् ॥६२

उत्थाप्य वसुदेवस्तं देवकी च जनार्दनम् ।
स्मृतजन्मोक्तवचनौ तावेत्र प्रणतो स्थितौ ॥६३

प्रसीद सीदतां दत्तो देवानां यो वरः प्रभो ।
तथावयोः प्रसादेन कृतोद्धारस्स केशव ॥६४

आराधितो यद्भगवानवतीर्णो गृहे मम ।
दुर्वृत्तनिधनार्थाय तेन नः पावित कुलम् ॥६५

त्वमन्तः सर्वभूतानां सर्वभूतमयः स्थितः ।

प्रवर्तेते समस्तात्मंस्त्वत्तो भूतभविष्यती ॥९६
यज्ञैस्त्वमिज्यसेऽचिन्त्य सर्वदेवमयाच्युत ।
त्वमेव यज्ञो यष्टा च यज्वनां परमेश्वर ॥९७
समुद्भवस्समस्तस्य जगतस्त्वं जनार्दन ॥९८
सापह्नवं मम मनो यदेतत्त्वयि जायते ।
देवक्याश्चात्मजप्रीत्या तदत्यन्तविडम्बना ॥९९
त्वं कर्ता सर्वभूतानामनादिनिधनो भवान् ।
त्वां मनुष्यस्य कस्यैषा जिह्वा पुत्रेति वक्ष्यति ॥१००

तभी महाबाहु श्रीकृष्ण ने बलरामजी के सहित जाकर वसुदेव और देवकी के चरण पकड़े ॥९२॥ उस समय उद्भव-काल में कहे हुए भगवान् के वचनों को याद करके वसुदेव-देवकी ने श्रीकृष्ण को पृथिवी से उठाया और स्वयं उनके समक्ष विनीत भाव से खड़े हो गये ॥९३॥ श्री वसुदेव जी ने कहा—हे प्रभो ! हे केशव ! हम पर प्रसन्न हूजिये । आपने देवताओं को जो वर प्रदान किया था उसे हम पर भी कृपा करते हुए पूर्ण कर दिया ॥९४॥ हे भगवन् ! मेरे द्वारा आराधन करने पर अपने दुष्टों के संहारार्थ मेरे यहाँ जन्म लेकर हमारे कुल को ही पवित्र कर दिया है ॥९५॥ आप सर्वभूतात्मा तथा सभी भूतों में अवस्थित हैं । हे सर्वात्मन् ! भूत, भविष्यत् की प्रवृत्ति भी आपसे ही है ॥९६॥ हे अचिन्त्य ! हे अच्युत ! हे सर्व देवात्मक देव ! सभी यज्ञों के द्वारा आपका ही यजन होता है तथा आप ही याज्ञिकों में याजक और यज्ञरूप हैं ॥९७॥ हे जनार्दन ! आप तो इस सम्पूर्ण विश्व के उत्पत्तिकर्त्ता हैं, आपके प्रति आत्मज भाव होने से मेरा और देवकी का चित्त भ्रान्त हो गया है, यह कैसी विडम्बना है ॥९८॥९९॥ आप ही सब भूतों के कर्त्ता, अनादि तथा अन्त-रहित हैं, फिर ऐसा कौन-सा मनुष्य होगा, जिसकी जिह्वा आपको पुत्र कहेगी ॥१००॥

जगदेतज्जगन्नाथ सम्भूतमखिलं यतः ।
कया युक्त्वा विना मायां सोऽस्मत्तः सम्भविष्यति ॥१०१
यस्मिन्प्रतिष्ठितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।

सक्रोड ेत्सङ्गशयनो मानुषो जायते कथम् ॥१०२
स त्व प्रसीद परमेश्वर पाहि विश्व-
मंशावतारकरणैर्न ममासि पुत्र ।
आब्रह्मपादपमिदं जगदेतदीश
त्वत्ता विमोहयसि किं पुरुषोत्तमास्मान् ॥१०३
माया विमोहितदृशा तनयो ममेति
कंसाद्भयं कृतमपास्तभयातितीव्रम् ।
नीतोऽसि गोकुलमरातिभयाकुलेन ।
वृद्धि गतोऽसि मम नास्ति ममत्वमीश ॥१०४
कर्माणि रुद्रमरुदश्विशतक्रतूनां ।
साध्यानि यस्य न भवन्ति निरीक्षितानि ।
त्वं विष्णुरीश जगतामुपकारहेतोः ।
प्राप्तोऽसि नः परिगतो विगतो हि मोहः ॥१०५

हे जगदीश्वर ! जिनसे इन सम्पूर्ण ससार का प्राकटच हुआ है, वह माया शक्ति के अतिरिक्त अन्य किस प्रकार से हमारे द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं ? ॥१०१॥ जिसमें सम्पूर्ण चराचर विश्व स्थित है, वह ईश्वर कोख और गोद में सोने वाला मानव किस प्रकार से हो सकता है ? ॥१०२॥ हे प्रभो ! हम पर प्रसन्न होकर अपने अंशावतार के द्वारा संसार की रक्षा करिये । हे परमेश्वर ! मैं जानता हूँ कि आप मेरे पुत्र नहीं हैं, क्योंकि ब्रह्मादि से युक्त यह सम्पूर्ण विश्व आप ही की रचना है । फिर, आप हमें मोह में क्यों डाल रहे हैं ? ॥१०३॥ हे भयातीत ! मायावश आपको पुत्र समझते हुए ही मैं कंस से अत्यन्त भयभीत रहा था, और उसी शत्रु के कारण आपको गोकुल पहुँचा आया था । फिर आप वहीं रहते हुए इस वय-वृद्धि को प्राप्त हुए हैं, इसलिये भी आपके प्रति मेरा ममत्व नहीं रहा है ॥१०४॥ जो कर्म रुद्र, मरुद्गण और इन्द्र द्वारा भी किये जाने सम्भव नहीं हैं, वे आपके द्वारा होते हुए मैंने देखे हैं । इससे मेरा मोह नष्ट हो गया है । आप ही ईश्वर एवं भगवान् विष्णु हैं तथा लोक-कल्याण के लिये ही आप अवतीर्ण हुए हैं ॥१०५॥

इक्कीसवां अध्याय

तौ समुत्पन्नविज्ञानौ भगवत्कर्मदर्शनात् ।
देवकीवसुदेवौ तु दृष्ट्वा मायां पुनर्हरिः ।
मोहाय यदुचक्रस्य विततान स वैष्णवीम् ॥१
उवाच चाम्ब हे तात चिरादुत्कण्ठितेन मे ।
भवन्तौ कंसभीतेन दृष्टौ संकर्षणेन च ॥२
कुर्वतां याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ।
तत्खण्डमायुषो व्यर्थमसाधूनां हि जायते ॥३
गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्च पूजनम् ।
कुर्वतां सफलः कालो देहिनां तात जायते ॥४
तत्क्षन्तव्यमिदं सर्वमतिक्रमकृतं पितः ।
कंसवीर्यप्रतापाभ्यामावयोः परवश्ययोः ॥५
इत्युक्त्वाथ प्रणम्योभौ यदुवृद्धाननुक्रमात् ।
यथावदभिपूज्याथ चक्रतुः पौरमाननम् ॥६
कंसपत्न्यस्ततः कंस परिवार्य हत भुवि ।
विलेपुर्मातरश्चास्य दुःखशोकपरिप्लुताः ॥७
बहुप्रकारमत्यर्थं पश्चात्तापातुरो हरिः ।
तास्समाश्वासयामास स्वयमस्राविलेक्षणः ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—जब भगवान् ने यह देखा कि उनके ईश्वरीय कर्मों को देखकर वसुदेव-देवकी को विज्ञान उत्पन्न हो गया है, तब उन्होंने यादवों को मोह में डालने के लिये अपनी माया को विस्तृत किया ॥१॥ उन्होंने कहा—हे अम्ब ! हे तात ! और बलरामजी दोनों ही कंस के भय से बहुत समय से छिपकर रहते हुए भी आपके दर्शनों के लिये लालायित थे, जिसकी आज हमें प्राप्ति हुई है ॥२॥ माता-पिता की सेवा किये बिना व्यतीत हुआ आयु भाग असाधुत्व को प्राप्त कराता हुआ व्यर्थ ही चला जाता है ॥३॥ हे तात ! शरीर धारियों के जीवन की सफलता श्री गुरु, देवता, ब्राह्मण और माता-पिता के पूजन करते

रहने से ही होती है ।।४।। इसलिये कंस के बल-वीर्य से भयभीत हुए हम परवश में पड़े हुए बालकों से जो अपराध बना हो, उसे आप क्षमा कीजिये ।।५।। श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार कहते हुए बलराम-कृष्ण ने माता-पिता को प्रणाम और सभी वृद्ध यादवों को अभिवादन करके नगर निवासियों का भी सम्मान किया ।। ६ ।। तभी कंस की पत्नियाँ और माता पृथिवी पर मरे पड़े कंस को घेर कर दुःख-शोक से संतप्त होकर रुदन करने लगीं ।। ७ ।। तब श्रीकृष्ण ने भी अश्रुपूर्ण नेत्रों से अनेक प्रकार से पश्चात्ताप करते हुए उन्हें अनेक प्रकार से धैर्य बँधाया ।।८।।

उग्रसेनं ततो बन्धान्मुमोच मधुसूदनः ।
अभ्यसिञ्चत्तदैवैनं निजराज्ये हतात्मजन् ।।९
राज्येऽभिषिक्तः कृष्णेन यदुसिंहस्सुतस्य सः ।
चकार प्रेतकार्याणि ये चान्ये तत्र घातिता ।।१०
कृतौर्द्ध्वदैहिकं चैनं सिंहासनगतं हरिः ।
उवाचाज्ञापय विभो यत्कार्यमविशंकितः ।।११
ययातिशापाद्वंशोऽयमराज्यार्होऽपि साम्प्रतम् ।
मयि भृत्ये स्थिते देवानाज्ञापयतु किं नृपैः ।।१२
इत्युक्त्वा सोऽस्मरद्वायुमाजगाम च तत्क्षणात् ।
उवाच चैनं भगवान् केशवः कार्यमानुषः ।।१२
गच्छेदं ब्रूहि वायो त्वमलं गर्वेण वासव ।
दीयतामुग्रसेनाग्र सुधर्मा भवता सभा ।।१४
कृष्णो ब्रवीति राजार्हमेतद्रत्नमनुत्तमम् ।
सुधर्माख्यसभा युक्तमस्यां यदुभिरासितुम् ।।१५

फिर श्रीकृष्ण ने उग्रसेन को कारागार से निकालकर उनका राज्याभिषेक किया ।। ९ ।। श्रीकृष्ण के द्वारा राज्य पर अभिषिक्त होने के पश्चात् यादव शार्दूल उग्रसेनजी ने अपने पुत्र और अन्य मरे हुए व्यक्तियों का संस्कार किया ।।१०।। और्ध्वदैहिक संस्कार से निवृत्त होने के पश्चात् राज्य-सिंहासन पर विराजमान हुए उग्रसेन से श्रीकृष्ण ने कहा—हे

विभो ! मेरे योग्य जो कार्य हो उसे निःशंक चित्त से कहिये ॥११॥ ययाति के शापवश यद्यपि हमारे वंश को राज्य करने का अधिकार नहीं है, फिर भी आप मुझ सेवक के सामने अन्य राजाओं को क्या, देवताओं को भी आज्ञा देने में समर्थ हैं ॥१२॥ श्री पराशरजी ने कहा—मनुष्य रूपधारी भगवान् ने उग्रसेन से इस प्रकार कहकर वायु का स्मरण किया और उसके उपस्थित होते ही उससे कहने लगे ॥१३॥ हे वायो ! तुम इन्द्र के पास जाकर उससे कहो कि महाराज उग्रसेन के लिए अपनी सुधर्मा नाम की सभा प्रदान करदो ॥१४॥ श्रीकृष्ण का कहना है कि यह सुधर्मा नाम सभा राजा के लिए ही शोभनीय है, इसलिए इसमें यदुवंश का प्रतिष्ठित होना उचित है ॥१५॥

इत्युक्तः पवनो गत्वा सर्वमाह शचीपतिम् ।
ददौ सोऽपि सुधर्माख्यां सभां वायोः पुरन्दरः ॥१६
वायुना चाहृतां दिव्यां सभां ते यदुपुङ्गवाः ।
बुभुजस्सर्वरत्नाढ्यां गोविन्दभुजसंश्रयाः ॥१७
विदिताखिलविज्ञानौ सर्वज्ञानमयावपि ।
शिष्याचार्यक्रमं वीरौ ख्यापयन्तौ यदूत्तमौ ॥१८
ततस्सान्दीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम् ।
विद्यार्थं जग्मतुर्बालौ कृतोपनयनक्रमौ ॥१९
भेदाभ्यासकृतप्रीती संकर्षणजनार्दनौ ।
तस्य शिष्यत्वमभ्येत्य गुरुवृत्तिपरौ हि तौ ॥२०
दर्शयाञ्चक्रतुर्वीरावाचारमखिले जने ।
सरहस्यं धनुर्वेदं ससङ्ग्रहमधीयताम् ॥२१
अहोरात्रचतुष्षष्ट्या तदद्भुतभूद्द्विज ।
सान्दीपनिरसम्भाव्यं तयोः कर्मातिमानुषम् ॥२२
विचिन्त्य तौ तदा मेने प्राप्तौ चन्द्रदिवाकरौ ।
साङ्गांश्च चतुरो वेदान्सर्वशास्त्राणि चैव हि ॥२३
अस्त्रग्राममशेषं प्रोक्तमात्रमवाप्य तौ ।
ऊचतुर्व्रियतां या ते दातव्या गुरुदक्षिणा ॥२४

श्री पराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर वायु ने इन्द्र के पास आकर सब बात कही जिस पर उसने वह सभा वायु को दे दी ॥१६॥ तब उस सर्वरत्नमयी दिव्य सभा का उपभोग श्रीकृष्ण के भुज-बल के आश्रित हुए यादव करने लगे ॥१७॥ फिर सभी विज्ञानों के ज्ञाता श्रीकृष्ण और बलराम गुरु-शिष्य का सम्बन्ध प्रकट करने के लिये उप-नयन संस्कार के पश्चात् विद्या पढ़ने के लिए काशी में उत्पन्न श्री सान्दीपन मुनि के यहाँ अवन्तिकापुर गये ॥१८-१९॥ वहाँ कृष्ण और बलराम सान्दीपन के शिष्य होकर वेदाभ्यास करते हुए गुरु की सेवा—सुश्रुषादि लोक-शिष्टाचार पूर्वक रहने लगे। उन्होंने केवल चौसठ दिन में ही रहस्य और संग्रह के सहित सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा पूर्ण करली। सान्दीपन ने उनके असम्भव एव अमानवीय कर्मों को देखा तो सूर्य चन्द्रमा को ही अपने घर आया हुआ समझा। उन्होंने सर्वांग सहित चारों वेद, सभी शास्त्र तथा अस्त्र विद्या को एक बार सुनकर सीख लिया और फिर गुरुजी से पूछा – आपको गुरुदक्षिणा में क्या दिया जाय ? ॥२०-२४॥

सोऽप्यतीन्द्रियमालोक्य तयोः कर्म महामतिः।
अयाचत मृतं पुत्र प्रभासे लवणार्णवे ॥२५
गृहीतास्त्रौ तवस्तौ तु साध्यंहस्तो महोदधिः।
उवाच न मया पुत्रो हृतस्सान्दीपनेरिति ॥२६
दैत्यः पञ्चजनो नाम शंखरूपस्स बालकम्।
जग्राह योऽस्ति सलिले ममैवासुरसूदन ॥२७
इत्युक्तोऽन्तर्जलं गत्वा हत्वा पञ्चजनं च तम्।
कृष्णो जग्राह तस्यास्थिप्रभवं शंखमुत्तमम् ॥२८
यस्य नादेन दैत्यानां बलहानिरजायत।
देवानां ववृधे तेजो यात्यधर्मश्च सङ्क्षयम् ॥२९
तं पाञ्चजन्यमापूर्य गत्वा यमपुरं हरिः।
बलदेवश्च बलवाञ्जित्वा वैवस्वतं यमम् ॥३०

तं बालं यातनासंस्थं यथापूर्वशरीरिणम् ।
पित्रे प्रक्तवान्कृष्णो बलश्चं बलिनां वरः ॥३१
मथुरां च पुनः प्राप्तावुग्रसेनेन पालिताम् ।
प्रहृष्टपुरुषस्त्रीकामुभौ रामजनार्दनौ ॥३२

महामति सान्दीपन ने उनको अद्भुत कर्मा देखकर प्रभास क्षेत्र स्थित नमक के समुद्र में डूबकर मृत्यु को प्राप्त हुए पुत्र की उनसे याचना की ॥२५॥ तदनन्तर वे शस्त्र लेकर समुद्र स्वयं ही अर्घ्य लेकर उनके सामने आया और कहने लगा कि हे प्रभो ! सान्दीपन के पुत्र का हरण मैंने नहीं किया है ॥२६॥ हे असुर सूदन ! मेरे जल में पंचजन नामक एक दैत्य शंख रूप से निवास करता है, उसने ही उस बालक का हरण किया है ॥२७॥ श्री पराशरजी ने कहा—समुद्र की बात सुनकर श्रीकृष्ण उसके जल में गये और वहाँ उन्होंने पञ्चजन को मार कर उसकी अस्थियों से उत्पन्न शंख को ग्रहण कर लिया ॥२८॥ उस शंख के शब्द से दैत्यों का बल क्षीण होता, देवताओं के तेज की वृद्धि होती और अधर्म नष्ट हो जाता है ॥२९॥ उसी पाँचजन्य शंख का घोष करते हुए कृष्ण-बलराम यमपुरी पहुँचे और वहाँ सूर्य पुत्र यम को पराजित कर नरक की यन्त्रणा भोगते हुए उस बालक को पूर्ववत् देह में स्थापित् कर उसके पिता के पास लाकर सौंप दिया ॥ ३०-३१ ॥ फिर जिस मथुरापुरी में सब स्त्री-पुरुष आनन्द मना रहे थे, उस उग्रसेन द्वारा पालितपुरी में कृष्ण-बलराम लौट आये ॥३२॥

बाईसवां अध्याय

जरासन्धसुते कंस उपयेमे महाबलः ।
अस्ति प्राप्ति च मैत्रेय तयोर्भर्तृहणं हरिम् ॥१
महाबलपरीवारो मगधाधिपतिर्बली ।
हन्तुमभ्याययौ कोपाज्जरासन्धस्सयादवम् ॥२
उपेत्म मथुरां सोऽथ रुरोध मगधेश्वरः ।
अक्षौहिणीभिस्सैन्यस्य त्रयोविंशतिभिर्वृतः ॥३

निष्क्रम्यात्पपरीवारावुभौ रामजनार्दनौ ।
युयुधाते समं तस्य बलिनो बलिसैनिकैः ॥४
ततो रामश्च कृष्णश्च मतिं चक्रतुरञ्जसा ।
आयुधानां पुराणनामादाने मुनिसत्तम ॥५
अनन्तरं हरेश्शार्ङ्गं तूणौ चाक्षयसायकौ ।
आकाशादागतौ विप्र तथा कौमोदकी गदा ॥६
हलं च बलभद्रस्य गगनादागतं महत् ।
मनसोऽभिमतं विप्र सुनन्दं मुसलं तथा ॥७

श्रीपराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी! महाबली कंस का विवाह जरासन्ध की पुत्री अस्ति और प्राप्ति से हुआ, वह बलवान् मगधराज जरासन्ध ने अपने जामात के वधिक श्रीहरि को सम्पूर्ण यादवों के सहित नष्ट करने के लिए बहुत बड़ी सेना लेकर मथुरापुरी पर आक्रमण किया ॥१-२॥ उस समय मगधराज की तेईस अक्षौहिणी सेना से मथुरापुरी घिरी हुई थी ॥३॥ तब बलराम और कृष्ण थोड़ी-सी सेना साथ लेकर पुरी से बाहर आये और जरासन्ध के बलवान् सैनिकों से भिड़ गये ॥४॥ हे मुनिवर! उस युद्ध में बलराम-कृष्ण ने अपने प्राचीन शस्त्रों को ग्रहण करने की इच्छा की ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण द्वारा स्मरण करते ही उनका शार्ङ्ग धनुष, अक्षय बाणों से परिपूर्ण दो तरकश और कौमोद नामक गदा—यह सब आकाश से उनकी सेवा में आगये ॥६॥ हे विप्र! बलरामजी के लिए भी उसका इच्छित हल तथा सुनन्द नामक मूसल आकाश से उनके पास आगये ॥७॥

ततो युद्धे पराजित्य ससैन्यं मगधाधिपम् ।
पुरीं विविशतुर्वीरावुभौ रामजनार्दनौ ॥८
जिते तस्मिन्सुदुर्वृत्ते जरासन्धे महामुने ।
जीवमाने गते कृष्णस्तेनामन्यत नाजितम् ॥९
पुनरप्याजगामाथ जरासंधे बलान्वितः ।
जितश्च रामकृष्णाभ्यामपक्रान्तो द्विजोत्तम ॥१०

दश चाष्टौ च संङ्ग्रामानेवमत्यन्तदुर्मदः ।
यदुभिर्मागधो राजा चक्रे कृष्णपुरोगमैः ॥११
सर्वेष्वेतेषु युद्धेषु यादवैस्स पराजितः ।
अपक्रान्तो जरासन्धस्स्वल्पसैन्यैर्बलाधिकः ॥१२
न तद्बलं यादवानां विदितं यदनेकशः ।
तत्तु सन्निधिमाहात्म्यं विष्णोरंशस्य चक्रिणः ॥१३
मनुष्यधर्मशीलस्य लीला सा जगतीपतेः ।
अस्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिषु मुञ्चति ॥१४

इसके पश्चात् बलराम और कृष्ण ने जरासन्ध को सेना के सहित पराजित कर दिया और फिर मथुरा नगरी को लौट आये ॥८॥ हे महामुने ! उस दुर्वृत्त जरासन्ध को हराकर भी उसके जीवित बच निकलने के कारण श्रीकृष्ण ने अपने को विजेता नहीं माना ॥९॥ हे द्विजोत्तम ! जरासन्ध ने उतनी ही सेना लेकर पुनः मथुरा पर आक्रमण किया, परन्तु बलराम-कृष्ण से हार कर भाग गया ॥१०॥ इस प्रकार उस अत्यन्त दुर्मद जरासन्ध ने यादवों के साथ अठारह वार संग्राम किया ॥११॥ इन सभी संग्रामों में वह बहुत अधिक सेना के साथ आकर भी अल्प सेना वाले यादवों से पराजित होकर चला गया ॥१२॥ यादवों की अल्प सेना भी उससे न हार सकी, यह सब भगवान् विष्णु के अंश रूप श्रीकृष्ण की सन्निधि की ही महिमा थी ॥१३॥ उन मनुष्य धर्म का अनुकरण करने वाले जगत्पति की यह लीला है जो वे अपने शत्रुओं पर विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करते हैं ॥१४॥

मनसैव जगत्सृष्टिं संहारं च करोति यः ।
तस्यारिपक्षक्षपणे कियानुद्यमविस्तरः ॥१५
तथापि यो मनुष्याणां धर्मस्तमनुवर्तते ।
कुर्वन्बलवता सन्धिं हीनैर्युद्धं करोत्यसौ ॥१६
साम चोपप्रदानं च तथा भेदं च दर्शयन् ।
करोति दण्डपातं च क्वचिदेव पलायनम् ॥१७

मनुष्यदेहिनां चेष्टामित्येवमनुवर्तते ।
लीला जगत्पतेस्तस्यच्छन्दतः परिवर्तते ॥१८

जिनके सङ्कल्प मात्र से विश्व की उत्पत्ति और संहार करते हैं, उन्हें अपने शत्रुओं को नष्ट करने के लिये कितना प्रयत्न करना होता है ? ॥१५॥ फिर भी वे बलवान् पुरुषों से सन्धि और निर्बलों से विग्रह करके मनुष्य धर्म के अनुकरण में लगे हैं ॥१६॥ वे कहीं साम-नीति, कहीं दान-नीति, कहीं दण्ड नीति और कहीं भेद-नीति से कार्य लेते हैं और आवश्यकता पड़ने पर कहीं युद्ध में से भाग भी जाते हैं ॥१७॥ इस मनुष्य शरीरियों की चेष्टाओं का अनुसरण करते हुए वे स्वेच्छा पूर्वक लीलायें करते रहते हैं ॥१८॥

तेईसवां अध्याय

गार्ग्य गोष्ठ्यां द्विजं श्यालष्षण्ढ इत्युक्तवान्द्विज ।
यदूनां सन्निधौ सर्वे जहसुर्यादवास्तदा ॥१
ततः कोपरीतात्मा दक्षिणापथमेत्य सः ।
सुतमिच्छंस्तपस्तेपे यदुचक्रभयावहम् ॥२
आराधयन्महादेवं लोहचूर्णमभक्षयत् ।
ददौ वरं च तुष्टोऽस्मै वर्षे तु द्वादशे हरः ॥३
सन्तोषयामास च तं यवनेशो ह्यनात्मजः ।
तद्योषित्सङ्गमाच्चास्य पुत्रोऽभूदलिसन्निभः ॥४
तं कालयवनं नाम राज्ये स्वे यवनेश्वरः ।
अभिषिच्य वनं वज्राग्रकठिनोरसम् ॥५
स तु वीर्यमदोन्मत्तः पृथिव्यां बलिनो नृपान् ।
अपृच्छन्नारदस्तस्मै कथयामास यादवान् ॥६
म्लेच्छकोटिसहस्राणां सहस्रैस्सोऽभिसंवृतः ।
गजाश्वरथसम्पन्नैश्चकार परमोद्यमम् ॥७

श्री पराशरजी बोले – हे द्विज ! एक यादवों के समाज में महर्षि गार्ग्य से उनके साले ने षण्ड (पुंसत्वहीन) कह दिया, उस समय सभी यादव हँसने लगे ।। १ ।। इससे महर्षि गार्ग्य अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्होंने दक्षिण-समुद्र के किनारे पर जाकर यादवों के लिए भयावह हो सके, ऐसे पुत्र की कामना से तप किया ।। २ ।। उन्होंने केवल लौह चूर्ण भक्षण करते हुए भगवान् शंकर की आराधना की, तब बारहवें वर्ष में शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने महर्षि गार्ग्य को इच्छित वर दिया ।।३।। एक यवनराज पुत्रहीन था, उसने महर्षि गार्ग्य की सेवा-सुश्रूषा करके उन्हें प्रसन्न किया तब उसकी स्त्री की सङ्गति से एक भँवर के समान काले रङ्ग का बालक उत्पन्न हुआ ।।४।। उस कालयवन नामक बालक का वक्षःस्थल अत्यन्त दृढ़ था । यवनराज ने उसका राज्य पर अभिषेक किया और स्वयं वन को चला गया ।।५।। फिर बल विक्रम के मद में उन्मत्त हुए कालयवन ने नारदजी से प्रश्न किया कि पृथिवी पर कौन—कौन से राजा अधिक बलवान् हैं, तब नारदजी ने यादवों को ही अधिक बलशाली बतलाया ।।६।। यह सुनकर कालयवन असंख्य हाथी, घोड़े, रथ और म्लेच्छ सेना आदि को मथुरा पर चढ़ाई करने के लिये तैयार करने लगा ।।७।।

प्रययौ सोऽव्यवच्छिन्नं छिन्नयानो दिने दिने ।
यादवान्प्रति सामर्षो मैत्रेय मथुरां पुरीम् ।।८
कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षपित यादवं बलम् ।
यवनेन रणे गम्यं मागधस्य भविष्यति ।।९
मागधस्य बलं क्षीणं स कालयवनो बली ।
हन्तैतदेवमायातं यदूनां व्यसनं द्विधा ।।१०
तस्माद् दुर्गं करिष्यामि यदूनामरिदुर्जयम् ।
स्त्रियोऽपि यत्र युध्येयुः किं पुनर्वृष्णिपुरङ्गवाः ।।११
मयि मत्तो प्रमत्तो वा सुप्ते प्रवसितेऽपि वा ।
यादवाभिभवं दुष्टा मा कुर्वन्त्वरयोऽधिकाः ।।१२
इति सञ्चिन्त्य गोविन्दो योजनानां महोदधिम् ।

ययाचे द्वादश पुरीं द्वारका तत्र निर्ममे ॥१३
महोद्यानां महावप्रां तटाकशतशोभिताम् ।
प्रासादगृहसम्बाधामिन्द्रस्येवामरावतीम् ॥१४

फिर उसने प्रतिदिन पहिले वाहनों को छोड़कर अन्य वाहनों का उपयोग करते हुए अबाध गति से मथुरा पर आक्रमण किया ॥ ८ ॥ तब श्रीकृष्ण ने विचार किया कि इन यवनों से युद्ध करके यादव सेना अवश्य बलहीन हो जायगी जिसके कारण जरासन्ध से अवश्य हारना पड़ेगा ॥९॥ यदि जरासन्ध से पहिले युद्ध किया जाय तो उसके द्वारा क्षीण हुई यादव सेना कालयवन के द्वारा मारी जायगी, इस प्रकार यादवों पर भीषण विपत्ति आगई ॥ १० ॥ इसलिये मैं एक ऐसा दुर्ग बनाऊँगा जो यादवों के लिये जय का कारण होगा। उसमें बैठकर स्त्रियाँ भी सुगमता पूर्वक लड़ाई लड़ सकें॥ ११ ॥ उस दुर्ग में रहने पर मेरे मत्त, प्रमत्त या सुप्त होने पर भी यादवों को अधिकाधिक शत्रु सेना भी न हरा सकेगी, ॥१२॥ यह सोचकर उन्होंने समुद्र से बारह योजन भूमि देने को कहा और उसे प्राप्त करके उसमें द्वारका नामक पुरी बनाई ॥ १३ ॥ महान् उद्यान, गम्भीर खाइयाँ, सैकड़ों सरोवर और अनेकों भवन होने के कारण वह पुरी इन्द्र की साक्षात् अमरावती जैसी लग रही थी ॥१४॥

मथुरावासिनं लोकं तत्रानीय जनार्दनः ।
आसन्ने कालयवने मथुरां च स्वयं ययौ ॥१५
बहिरावासिते सैन्ये मथुराया निरायुधः ।
निर्जगाम च गोविन्दो ददर्श यवनश्च तम् ॥१६
स ज्ञात्वा वासुदेवं तं बाहुप्रहरणं नृपः ।
अनुयातो महायोगिचेतोभिः प्राप्यते न यः ॥१७
तेनानुयातः कृष्णोऽपि प्रविवेश महागुहाम् ।
यत्र शेते महावीर्यो मुचुकुन्दो नरेश्वरः ॥१८
सोऽपि प्रविष्टो यवनो दृष्ट्वा शय्यागतं नृपम् ।
पादेन ताडयामास मत्वा कृष्णं सुदुर्मतिः ॥१९
उत्थाय मुचुकुन्दोऽपि ददर्श यवनं नृपः ॥२०

दृष्टमात्रश्च तेनासौ जज्वाल यवनोऽग्निना ।
तत्क्रोधजेन मैत्रेय भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् ॥२१

जब कालयवन मथुरा के निकट पहुँचा तभी श्रीकृष्ण ने सब मथुरा-वासियों को द्वारका में जा पहुँचाया और स्वयं मथुरा में लौट आए ॥१५॥ कालयवन की सेना के द्वारा मथुरा के घेर लिये जाने पर जब श्रीकृष्ण निःशस्त्र ही मथुरा नगरी से बाहर निकले तभी कालयवन ने उन्हें देख लिया ॥१६॥ जो महायोगियों के भी चिन्तन में नहीं आते, उन्हीं भगवान् कृष्ण को बहुमात्र से आता देखकर कालयवन उनके पीछे दौड़ पड़ा ॥१७॥ कालयवन को पीछे आते देखकर भागते हुए श्रीकृष्ण उस गुफा में प्रविष्ट हुए, जिसमें महाबली राजा मुचुकुन्द शयन कर रहा था ॥१८॥ उस बुद्धिहीन कालयवन ने गुफा में जाकर मुचुकुन्द को कृष्ण समझा और उसके शयन करते हुए में ही पद-प्रहार किया ॥१९॥ उसके पदाघात से मुचुकुन्द की नींद खुल गई और उसने उठकर अपने सामने कालयवन को खड़ा हुआ देखा ॥२०॥ हे मैत्रेयजी ! मुचुकुन्द ने जैसे ही उस यवन को देखा, वैसे ही वह उसकी क्रोधाग्नि में दग्ध हो गया ॥२१॥

स हि देवासुरे युद्धे गतो हत्वा महासुरान् ।
निद्रार्त्तस्सुमहाकालं निद्रां वव्रे वरं सुरान् ॥२२
प्रोक्तश्च देवैस्संसुप्तं यस्त्वामुस्थापयिष्यति ।
देहजेनाग्निना सद्यस्स तु भस्मीभविष्यति ॥२३
एवं दग्ध्वा स तं पापं दृष्ट्वा च मधुसूदनम् ।
कस्त्वमित्याह सोऽप्याह जातोऽहं शिनःकुले ॥२४
वसुदेवस्य तनयो यदोर्वंशसमुद्भवः ।
मुचुकुन्दोऽपि तत्रासौ वृद्धगार्ग्यवचोऽस्मरत् ॥२५
संस्मृत्य प्रणिपत्यैनं सर्वं सर्वेश्वरं हरिम् ।
प्राह ज्ञातो भवान्विष्णोरंशस्त्व परमेश्वरः ॥२६
पुरा गार्ग्येण कथितमष्टाविंशतिमे युगे ।
द्वापरान्ते हरेर्जन्म यदुवंशे भविष्यति ॥२७

स त्वं प्राप्तो न सन्देहो मर्त्यानामुपकारकृत् ।
तथापि सुमहत्तेजो नालं सोढुमहं तव ।।२८
तथा हि सजलाम्भोदनादधीरतरं तव ।
वाक्यं नमति चैवोर्वी युष्मत्पादप्रपीडिता ।।२९

पूर्वकाल की बात है—राजा मुचुकुन्द ने देवासुर संग्राम में, देव-पक्ष में युद्ध किया था। जब उसने असुरों का संहार कर दिया, तब निद्रार्त्त होने के कारण उन्होंने बहुत समय तक सोते रहने का देवताओं से वर प्राप्त किया ।।२२।। वर देते समय देवताओं ने राजा से कहा था कि तुम सोते हुए को जो जगा देगा, वह अपने ही देह से उत्पन्न हुई अग्नि में भस्म हो जायगा ।।२३।। इस प्रकार जब वह पापात्मा काल-यवन भस्म हो चुका, तब राजा मुचुकुन्द ने कृष्ण को देखकर उनसे प्रश्न किया कि आप कौन हैं? भगवान् ने उत्तर दिया कि मैं चन्द्रवंशी यादव श्री वसुदेवजी का पुत्र हूँ। यह सुनकर मुचुकुन्द को गार्ग्य मुनि के वचन याद आ गये ।।२४-२५।। उस स्मृति के कारण उन्होंने भगवान् कृष्ण को प्रणाम करके कहा—हे प्रभो! मैं आपको जान गया हूँ, आप तो भगवान् विष्णु के अश तथा स्वयं परमेश्वर हैं ।।२६।। मुझे गार्ग्य मुनि ने बताया था कि अट्ठाईसवें युग में जब द्वापर का अन्त होने को होगा, तब भगवान् विष्णु अवतार ग्रहण करेंगे ।।२७।। अवश्य ही आपने भगवान् विष्णु के अंश रूप से मर्त्यलोक वासियों के हितार्थ अवतार लिया है, फिर भी मैं आपका तेज सहन करने में असमर्थ हूँ ।।२८।। आपका शब्द जल युक्त बादल की गर्जना के समान गम्भीर है और आपके चरणों से दब कर यह पृथिवी भी नीचे की ओर झुकी हुई है ।।२९।।

देवासुरमहायुद्धे दैत्यसैन्यमहाभटाः ।
न सेहुर्मम तेजस्ते त्वत्तेजो न सहाम्यहम् ।।३०
संसारपतितस्यैको जन्तोस्त्वं शरणं परम् ।
प्रसीद त्वं प्रपन्नार्तिहर नाशाय मेऽशुभम् ।।३१
त्वं पयोनिधयश्शैलसरितस्त्वं वनानि च ।

मेदिनी गगनं वायुरापोऽग्निस्त्वं तथा मनः ॥३२
बुद्धिरव्याकृतप्राणाः प्राणेशस्त्वं तथा पुमान् ।
पुंसः परतरं यच्च व्याप्यजन्मविकारवत् ॥३३
शब्दादिहीनमजरममेयं क्षयवर्जितम् ।
अवृद्धिनाशं तद्ब्रह्म त्वमाद्यन्तविवर्जितम् ॥३४
त्वत्तोऽमरास्सपितरो यक्षगन्धर्वकिन्नराः ।
सिद्धाश्चाप्सरसस्त्वत्तो मनुष्याः पशवः खगाः ॥३५
सरीसृपा मृगास्सर्वे त्वत्तस्सर्वे महीरुहाः ।
यच्च भूतं भविष्यं च किञ्चिदत्र चराचरम् ॥३६

हे देव! जब देवासुर संग्राम हुआ था, तब महाबली दैत्य भी मेरे तेज को सहन करने में समर्थ नहीं थे, वही मैं आपके तेज को सहन नहीं कर रहा हूँ ॥ ३० ॥ विश्व में पतितों के आप ही परम आश्रय और शरणागतों के सङ्कट को दूर करने वाले हैं। इसलिये आप प्रसन्न होकर मेरे सङ्कट को नष्ट करिये ॥ ३१ ॥ हे प्रभो! आप ही समुद्र, नदी, वन, पृथिवी, आकाश, वायु, जल और अग्नि हैं तथा मन भी आप ही हैं ॥३२॥ आप ही बुद्धि, प्राण तथा प्राणों के अधिष्ठाता पुरुष हैं। आप ही पुरुष से परे व्यापकी अजन्मा और निर्विकार प्रभु हैं ॥ ३३॥ आप ही शब्दादि से परे, जरा-रहित, अमेय, अक्षय, अविनाशी, वृद्धि रहित तथा आदि-अन्त से परे हैं ॥३४॥ देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध और अप्सराओं की उत्पत्ति आपसे ही हुई है। मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप, मृग, वृक्ष तथा भूत, भविष्यत्मय चराचर विश्व—सब कुछ आप ही हैं ॥ ३५-३६ ॥

मूर्तामूर्तं तथा चापि स्थूलं सूक्ष्मतरं तथा ।
तत्सर्वं त्वं जगत्कर्ता नास्ति किञ्चित्त्वया विना ॥३७
मया संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमता भगवान् सदा ।
तापत्रयाभिभूतेन न प्राप्ता निर्वृतिः क्वचित् ॥३८
दुःखान्येव सुखानीति मृगतृष्णा जलाशया ।
मया नाथ गृहीतानि तानि तापाय मेऽभवन् ॥३९

राज्यमुर्वी बलं कोशो मित्रपक्षस्तथात्मजाः ।
भार्या भृत्यजनो ये च शब्दाद्या विषयाः प्रभो ॥४०
सुखबुद्ध्या मया सर्वं गृहीतमिदमव्ययम् ।
परिणामे तदेवेश तापात्मकभून्मम ॥४१

हे प्रभो ! आप ही मूर्त्त, अमूर्त्त, स्थूल, सूक्ष्म तथा और भी जो कुछ है वह सब हैं, आपसे पृथक् कुछ भी नहीं है ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! तीनों तापों से अभिभूत हुआ मैं सदा ही इस संसार चक्र में घूमता रहा हूँ, मुझे कभी भी शान्ति नहीं मिली ॥३८॥ हे नाथ ! जल की आशा वाली मृगतृष्णा के समान ही मैंने दुःखों को सुख माना था, परन्तु उन सब से मुझे सन्ताप ही हुआ है ॥३९ ॥ हे प्रभो ! राज्य, पृथिवी, सेना, कोष, मित्र, पुत्र, स्त्री, भृत्य और शब्दादि विषयों को अविनाशी और सुख मान कर ग्रहण किया था, परन्तु अन्त में वे सभी वस्तुएँ दुःख रूप सिद्ध हुईं ॥४०-४१॥

देवलोकगतिं प्राप्तो नाथ देवगणोऽपि हि ।
मत्तस्साहाय्यकामोऽभूच्छाश्वती कुत्र निर्वृतिः ॥४२
त्वामनाराध्य जगतां सर्वेषां प्रभवास्पदम् ।
शाश्वती प्राप्यते केन परमेश्वर निर्वृतिः ॥४३
त्वन्मायामूढमनसो जन्ममृत्युजरादिकान् ।
अवाप्य तापान्पश्यन्ति प्रेतराजमनन्तरम् ॥४४
ततो निजक्रियासूति नरकेष्वतिदारुणम् ।
प्राप्नुवन्ति नराः दुःखमस्वरूपविदस्तव ॥४५
अहमत्यन्तविषयो मोहितस्तव मायया ।
ममत्वगर्वगर्त्तान्तर्भ्रमामि परमेश्वर ॥४६
सोऽहं त्वां शरणमपारमप्रमेयं सम्प्राप्तः परमपदं यतो न किञ्चित् ।
संसार भ्रमपरितापतप्तचेता निर्वाणे परिणतधाम्नि साभिलाषः ॥४७

हे प्रभो ! जब देवलोक वासी देवताओं को भी मेरी सहायता लेनी पड़ी तो उनके उस लोक में भी नित्य शान्ति कहाँ होगी ? ॥ ४२ ॥ हे नाथ ! आप सब संसार के उद्भव स्थान की आराधना के बिना शाश्वत

शान्ति किसे मिल सकती है ॥४३॥ हे प्रभो आपकी माया में भ्रमे हुए मनुष्य जन्म, जरा और मृत्यु आदि दुःखों को भोग करते हुए अन्त में यमराज को देखते हैं, ॥४४॥ जो आपके रूप को नहीं जानते, वे नरकों को प्राप्त होकर अपने फल रूप क्लेशों को भोगते हैं ॥४५॥ हे परमेश्वर ! मैं विषयों के प्रति दौड़ता हुआ आपकी माया से भ्रम कर ममता और अभिमान गर्त में भटकता रहा हूँ ॥४६॥ परन्तु आज मैं उस पार रहित और अप्रमेय परम पद रूप परमात्मा की शरण में आया हूँ, जिससे भिन्न कोई भी नहीं है। हे नाथ ! संसार में चक्कर काटने से खिन्न हुआ मैं आप निरतिशय, प्रकाशमान एवं मोक्ष स्वरूप ब्रह्म की ही कामना करता हूँ ॥४७॥

चौबीसवां अध्याय

इत्थं स्तुतस्तदा तेन मुचुकुन्देन धीमता ।
प्राहेशः सर्वभूतानामनादिनिधनो हरिः ॥१
यथाभिवाञ्छितान्दिव्यान्गच्छ लोकान्नराधिप ।
अव्याहतपरैश्वर्यो मत्प्रसादोपबृंहितः ॥२
भुक्त्वा दिव्यान्महाभोगान्भविष्यसि महाकुले ।
जातिस्मरो मत्प्रसादात्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥३
इत्युक्तः प्रणिपत्येशं जगतामच्युतं नृपः ।
गुहामुखाद्विनिष्क्रान्तस्स ददर्शाल्पकान्नरान् ॥४
ततः कलियुगं मत्वा प्राप्तं तप्तुं नृपस्तपः ।
नरनारायणस्थानं प्रययौ गन्धमादनम् ॥५
कृष्णोऽपि घातयित्वारिमुपायेन हि तद्बलम् ।
जग्राह मथुरामेत्य हस्त्यश्वस्यन्दनोज्ज्वलम् ॥६
आनीय चोग्रसेनाय द्वारवत्यां न्यवेदयत् ।
पराभिभवनिश्शंकं बभूव च यदोः कुलम् ॥७

श्री पराशरजी ने कहा— महामति मुचुकुन्द द्वारा स्तुत होकर सर्व-भूतेश्वर अनादि एवं अनन्त भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा ॥१॥ श्री भगवान् बोले - हे राजन् ! आप अपने इच्छित दिव्य लोकों को गमन कीजिये, आपको मेरी कृपा से परम ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी ॥२॥ वहाँ आपको दिव्य भोगों की प्राप्ति होगी, फिर एक महान् कुल में आपका जन्म होगा, जिनमें पूर्व जन्म वृत्तान्त याद रहेगा और मेरे अनुग्रह से मोक्ष की प्राप्ति होगी ॥३॥ श्रीपराशरजी ने कहा भगवान् द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राजा ने विश्वेश्वर श्री कृष्ण को प्रणाम किया और गिरि कन्दरा से बाहर आकर लोगों के आकार बहुत छोटे हुए देखे ॥४॥ उस समय कलियुग को आया जानकर तप करने की इच्छा से राजा मुचुकुन्द नर-नारायण के परम स्थान रूप गंधमादन पर्वत पर चले गये ॥५॥ इस यत्न से शत्रु को समाप्त कर श्रीकृष्ण मथुरा को लौट आये और काल-यवन की रथ, हाथी, घोड़े आदि से सुसज्जित सम्पूर्ण सेना को अपने वश में करके द्वारका जाकर उग्रसेन को सौंप दी। उस समय से यादव शत्रुओं की ओर से भय रहित हो गये ॥६-७॥

बलदेवोऽपि मैत्रेय प्रशान्ताखिलविग्रहः ।
ज्ञातिदर्शनसोत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥८
ततो गोपांश्च गोपीश्च यथापूर्वममित्रजित् ।
तथैवाभ्यवत्प्रेम्णा बहुमानपुरस्सरम् ॥९
स कैश्चित्सम्परिष्वक्तः कांश्चिच्च परिषस्वजे ।
हास्यं चक्रे समं कैश्चिद्गोपैर्गोपीजनैस्तथा ॥१०
प्रियाण्यनेकान्यवदन् गोपास्तत्र हलायुधम् ।
गोप्यश्च प्रेमकुपिताः प्रोचुस्सेर्ष्यमथापरा ॥११
गोप्यः पप्रच्छुरपरा नागरीजनवल्लभः ।
कच्चिदास्ते सुखं कृष्णश्चलप्रेमलवात्मकः ॥१२
अस्मच्चेष्टामपहसन्न कच्चित्पुरयोषिताम् ।
सौभाग्यमानमधिकं करोति क्षणसौहृदः ॥१३

कच्चित्स्मरति नः कृष्णो गीतानुगमनं कलम् ।
अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥१४

हे मैत्रेयजी ! जब यह सम्पूर्ण विग्रह शान्त हो गया तब बलरामजी अपने बन्धुओं से मिलने के लिये नन्दजी के गोकुल को पधारे ॥८॥ वहाँ जाकर उन्होंने गोपों और गोपियों को पूर्ववत् अत्यन्त आदर प्रेम पूर्वक अभिवादन किया ॥ ९ ॥ किसी को उन्होंने हृदय से लगाया और कोई उनसे कन्धे से कन्धा भिड़ाकर मिला तथा किसी गोपी और गोप के साथ उनका हास परिहास हुआ ॥ १० ॥ गोपों ने उनसे अनेक प्रकार से प्रिय सम्भाषण किया तथा किसी गोपी ने प्रेमयुक्त उपालम्भ दिया और किसी ने प्रणय कोप प्रदर्शित किया ॥११॥ किन्हीं गोपियों ने उनसे प्रश्न किया कि अल्प प्रेम और चंचल चित्त वाले तथा नगर की स्त्रियों के प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण कुशल से तो हैं ॥१२॥ उन क्षणिक स्नेह वाले कृष्ण ने क्या हमारे प्रेम का उपहास और नगर की स्त्रियों के सौभाग्य और सम्मान की वृद्धि नहीं की है? ॥१३॥ क्या वे कभी हमारे गीता-मय मनोहर स्वर की भी याद करते हैं? और क्या वे एक बार अपनी माता को देखने के लिए भी यहाँ नहीं आवेंगे ॥१४॥

अथवा किं तदालापैः क्रियन्तामपराः कथाः ।
यस्यास्माभिर्विना तेन विनास्माकं भविष्यति ॥१५
पिता माता यथा भ्राताभर्ता बन्धुजनश्च किम् ।
सन्त्यक्तस्तत्कृतेऽस्माभिरकृतज्ञध्वजो हि सः ॥१६
तथापि कच्चिदालापमिहागमनसंश्रयम् ।
करोति कृष्णो वक्तव्यं भवता राम नानृतम् ॥१७
दामोदरोऽसौ गोविन्दः पुरस्त्रीसक्तमानसः ।
अपेतप्रीतिरस्मासु दुर्दर्शः प्रतिभाति नः ॥१८
आमन्त्रितश्च कृष्णेति पुनर्दामोदरेति च ।
जहसुस्सस्वरं गोप्यो हरिण हृतचेतसः ॥१९
सन्देशैस्सामधुरैः प्रेमगर्भैरगर्वितैः ।
रामेणाश्वासिता गोप्यः कृष्णस्यातिमनोहरैः ॥२०

गोपैश्च पूर्ववद्रामः परिहासमनोहराः ।
कथाश्चकार रेमे च सह तैर्व्रजभूमिषु ॥२१

परन्तु अब उनके विषय में वार्तालाप करने से क्या लाभ है ? इसलिए कोई अन्य वार्त्ता करो । जब वह ही हमारे बिना रह लिये, तो हम भी उनके बिना जीवन को काट ही लेंगी ॥१५॥ उनके लिए हमने अपने माता-पिता, भाई, पति और अपने कुटुम्बी—सभी का त्याग कर दिया था, परन्तु वे तो कृतज्ञता के निकट भी नहीं रहे ॥१६॥ फिर भी हे बलरामजी ! हमें यह सत्य बताइये कि क्या कभी वे यहाँ आने का भी विचार प्रकट करते हैं ॥१७॥ हम समझती हैं कि उनका चित्त नगर की स्त्रियों में रम गया है और हमारे प्रति अब उनकी किंचित् भी प्रीति नहीं रह गई है । इसीलिए हमें तो उनके दर्शन की आशा नहीं रही है ॥१८॥ श्री पराशरजी ने कहा—फिर श्रीकृष्ण द्वारा हरे गये चित्त वाली गोपियाँ बलरामजी को ही कृष्ण और दामोदर कहती हुईं अट्टहास करने लगीं ॥१९॥ फिर बलरामजी ने उन्हें श्रीकृष्ण का अत्यन्त मनोहर, प्रेम से सना हुआ, अगर्वित और शान्तिदायक सन्देश सुनाकर आश्वासन दिया ॥२०॥ फिर गोपों के साथ विविध हास परिहास करते हुए तथा पहिले के समान अनेक प्रकार की मनोहर बातें करते हुए बलरामजी कुछ समय तक उस व्रजभूमि में अनेक प्रकार की क्रीड़ायें करते रहे ॥२१॥

पच्चीसवां अध्याय

वने विचरतस्तस्य सह गोपैर्महात्मनः ।
मानुषच्छद्मरूपस्य शेषस्य धरणीधृतः ॥१
निष्पादितोरुकार्यस्य कार्येणोर्वीप्रचारिणः ।
उपभोगार्थमत्यर्थं वरुणः प्राह वारुणीम् ॥२
अभीष्टा सर्वदा यस्य मदिरे त्वं महौजसः ।
अनन्तस्योपभोगाय तस्य गच्छ मुदे शुभे ॥३

इत्युक्ता वारुणी तेन सन्निधानमथाकरोत् ।
वृन्दावनसमुत्पन्नकदम्बतरुकोटरे ।।४
विचरन् बलदेवोऽपि मदिरागन्धमुत्तमम् ।
आघ्राय मदिरातर्षमवापाथ वरानन: ।।५
ततः कदम्बात्सहसा मद्यधारां स लाङ्गली ।
पतन्तीं वीक्ष्य मैत्रेय प्रययौ परमां मुदम् ।।६
पपौ च गोपगोपीभिस्समुपेतो मुदान्वितः ।
प्रगीयमानो ललितं गीतवाद्यविशारदैः ।।७

श्री पराशरजी ने कहा—अपने महान् कार्यों के द्वारा पृथिवी को चलायमान करने वाले तथा धरणी के धारण करने वाले माया से मनुष्य बने हुए शेषावतार बलरामजी के गोपों के साथ व्रजभूमि में क्रीड़ा करते देखकर वरुण ने उनके भोग के निमित्त वारुणी को आज्ञा दी ?---हे मदिरे ! जिन महाबली अनन्त भगवान् को तुम सदा ही प्रिय लगती हो, उनके उपभोग और प्रसन्नता के निमित्त तुम शीघ्र ही उनके पास पहुँचो ।।१३।। वरुण की आज्ञा पाकर वह वारुणी वृन्दावन में उत्पन्न हुए कदम्ब तरु के कोटर में जाकर स्थित हुई ।।४।। जब मनोहर मुख वाले बलरामजी वन में घूम रहे थे, तब मदिरा की गन्ध पाकर उन्होंने उसके पान करने की इच्छा की ।।५।। हे मैत्रेयजी ! उसी कदम्ब के वृक्ष से धार रूप में मदिरा गिरने लगी, जिसे देखने पर बलरामजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई ।।६।। फिर गायन-वादन चतुर गोप-गोपियों के मधुरालाप पूर्वक उनके साथ मिलकर बलरामजी ने हर्ष सहित मदिरा का पान किया ।।७।।

स मत्तोऽत्यन्तघर्माम्भःकणिकामौक्तिकोज्ज्वलः ।
आगच्छ यमुने स्नातुमिच्छामीत्याह विह्वलः ।।८
तस्य वाचं नदी सा तु मत्तोक्तामवमत्य वै ।
नाजगाम ततः क्रुद्धो हलं जग्राह लाङ्गली ।।९
गृहीत्वा तां हलान्तेन चकर्ष मदविह्वलः ।
पापे नायासि नायासि गम्यतामिच्छयान्यतः ।।१०

साकृष्टा सहसा तेन मार्गं सन्त्यज्य निम्नगा ।
यत्रास्ते बलभद्रोऽसौ प्लावयामास तद्वनम् ॥११
शरीरिणी तदाभ्येत्य त्रासविह्वललोचना ।
प्रसीदेत्यब्रवीद्रामं मुञ्च मां मुसलायुध ॥१२
ततस्तस्याः सुवचनमाकर्ण्य स हलायुधः ।
सोऽब्रवीदवजानासि मम शौर्यबले नदि ।
सोऽहं त्वां हलपातेन नयिष्यामि सहस्रधा ॥१३

फिर धूप के अधिक ताप से स्वेद-बिन्दु रूपी मोतियों से सुशोभित हुए मदोन्मत्त बलरामजी ने विह्वलता पूर्वक कहा हे यमुने ! यहाँ आ, मेरी इच्छा स्नान की है ॥८॥ उनके उस कथन को यमुना ने उन्मत्त हुए मनुष्य का प्रलाप मात्र समझा और उस पर कुछ भी ध्यान न देती हुई वह वहाँ नहीं पहुँची । इस पर क्रोधित होकर उन्होंने अपना हल ग्रहण किया ॥९॥ उन मदविह्वल बलराम ने हल की नोंक से यमुना को पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए कहा—अरी पापे ! तू नहीं आई ! अच्छा तू अपनी इच्छा से कहीं जाकर तो दिखा दिया ॥१०॥ इस प्रकार बलरामजी के द्वारा खिंची हुई यमुना अपने मार्ग को छोड़कर, जहाँ बलराम खड़े थे वहाँ आ गई और उस स्थान को जल से भर दिया ॥११॥ फिर वह भय से अश्रु-युक्त नेत्र वाली यमुना देह धारण कर बलरामजी के समक्ष उपस्थित हुई और उसने उनसे कहा—हे हलधर ! आप प्रसन्न होकर मुझे मुक्त कर दीजिए ॥१२॥ उसकी बात सुनकर बलरामजी बोले—हे नदी ! क्या तू मेरे शौर्य और बल का तिरस्कार करती है । देख, इस हल के द्वारा ही मैं तेरी हजारों धराएँ बना दूँगा ॥१३॥

इत्युक्तयातिसन्त्रासात्तया नद्या प्रसादितः ।
भूभागे प्लाविते तस्मिन्मुमोच यमुनां बलः ॥१४
ततस्स्नातस्य वै कान्तिरजायत महात्मनः ।
अवतंसोत्पलं चारु गृहीत्वैकं च कुण्डलम् ॥१५
वरुणप्रहितां चास्मै मालामम्लानपंकजाम् ।

समुद्राभे तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत ॥१६

कृतावतंसस्स तदा चारुकुण्डलभूषितः ।
नीलाम्बरधरस्स्रग्वी शुशुभे कान्तिसंयुतः ॥१७

इत्थं विभूषितो रेमे तत्र रामस्तथा व्रजे ।
मासद्वयेन यातश्च स पुनर्द्वारकां पुरीम् ॥१८

रेवतीं नाम तनयां रैवतस्य महीपतेः ।
उपयेमे बलस्तस्यां जज्ञाते निशठोल्मुकौ ॥१९

श्री पराशरजी ने कहा—बलरामजी के ऐसा कहने पर भय से काँपती हुई यमुना उस भू-खण्ड पर प्रवाहित होने लगी, तब प्रसन्न होकर उन्होंने यमुना को मुक्त कर दिया ॥१४॥ उसमें स्नान कर लेने पर महात्मा बलरामजी अत्यन्त सुशोभित हुए । तब लक्ष्मीजी ने प्रकट होकर उन्हें एक सुन्दर कुण्डल, वरुण द्वारा भेजी गई सदा प्रफुल्लित रहने वाली पद्ममाला और समुद्र जैसी कान्ति वाले दो नीलाम्बर प्रदान किये ॥१५-१६॥ उन सबको धारण करके बलरामजी अत्यन्त कान्ति वाले और शोभा सम्पन्न हो गये ॥१७॥ इस प्रकार अलंकृत हुए बलरामजी ने व्रज में लीलाएँ करते हुए दो मास पर्यन्त निवास किया और फिर द्वारकापुरी में लौट आये ॥१८॥ जहाँ उन्होंने राजा रैवत की पुत्री रेवती का पाणिग्रहण किया और उससे निशठ तथा उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न किए ॥१९॥

छब्बीसवां अध्याय

भीष्मकः कुण्डिने राजा विदर्भविषयेऽभवत् ।
रुक्मी तस्याभवत्पुत्रो रुक्मिणी च वरानना ॥१

रुक्मिणीं चकमे कृष्णस्सा च तं चारुहासिनी ।
न ददौ याचते चैनां रुक्मी द्वेषेण चक्रिणे ॥२

ददौ च शिशुपालाय जरासन्धप्रचोदितः ।
भीष्मको रुक्मिणा सार्द्धं रुक्मिणीमुरुविक्रमः ॥३

विवाहार्थं ततः सर्वे जरासन्धमुखा नृपाः ।
भीष्मकस्य पुरं जग्मुश्शिशुपालप्रियैषिणः ॥४
कृष्णोऽपि बलभद्राद्यैर्यदुभिः परिवारितः ।
प्रययौ कुण्डिनं द्रष्टुं विवाहं चक्रभृत्भृतः ॥५

श्री पराशरजी ने कहा—विदर्भदेश में कुण्डिनपुर नामक एक नगर था, जिसका शासन राजा भीष्मक करते थे उनके पुत्र का नाम रुक्मी और पुत्री का नाम रुक्मिणी था ॥१॥ श्रीकृष्ण रुक्मिणी को चाहते थे और रुक्मिणी भी उन्हीं की कामना करती थी, परन्तु भगवान् द्वारा याचना किये जाने पर भी उनके द्वेषी रुक्मी ने रुक्मिणी उन्हें नहीं दी ॥२॥ जरासन्ध की प्रेरणा से राजा भीष्मक ने रुक्मी के प्रस्ताव से सहमत होकर शिशुपाल के लिए अपनी कन्या देना स्वीकार किया ॥३॥ तब शिशुपाल के हित-चिन्तक जरासंधादि सब राजा बरात लेकर भीष्मक के नगर में पहुँचे ॥४॥ यादवों और बलराम को साथ लेकर श्रीकृष्ण भी शिशुपाल का विवाह को देखने कुण्डिनपुर में आ गये ॥५॥

श्वोभाविनि विवाहे तु तां कन्यां हृतवान्हरिः ।
विपक्षभारमासज्य रामादिष्वथ बन्धुषु ॥६
ततश्च पौण्ड्रकश्श्रीमान्दन्तवक्रो विदूरथः ।
शिशुपालजरासन्धशाल्वाद्याश्च महीभृतः ॥७
कुपितास्ते हरिं हन्तुं चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ।
निर्जिताश्च समागम्य रामाद्यैर्यदुपुङ्गवैः ॥८
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि ह्यहत्वा युधि केशवम् ।
कृत्वा प्रतिज्ञां रुक्मी च हन्तुं कृष्णमनुद्रुतः ॥९
हत्वा बलं सनागाश्वं पत्तिस्यन्दनसंकुलम् ।
निर्जितः पातितश्चोर्व्यां लीलयैव स चक्रिणा ॥१०
निर्जित्य रुक्मिणं सम्यगुपयेमे च रुक्मिणीम् ।
राक्षसेन विवाहेन सम्प्राप्तां मधुसूदनः ॥११
तस्यां जज्ञे च प्रद्युम्नो मदनांशस्सवीर्यवान् ।
जहार शम्बरो यं वै यो जघान च शम्बरम् ॥१२

फिर जब विवाह होने में एक दिन शेष था तब श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण करके विपक्षियों से भिड़ने का भार बलरामजी आदि यादवों को दिया ॥६॥ उस समय पौण्ड्रक, दन्तवक्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासंध तथा शाल्वादि नरेशों ने श्रीकृष्ण का वध करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु बलरामजी आदि वीरश्रेष्ठों से युद्ध में हार गये ॥७-८॥ तब रुक्मी ने कृष्ण को मारे बिना कुण्डिनपुर में प्रवेश न करने की प्रतिज्ञा की और वेग-पूर्वक श्रीकृष्ण का पीछा किया ॥९॥ परन्तु श्रीकृष्ण ने उसकी रथ, अश्व, गज और पैदलों से सम्पन्न सेना को पराजित कर रुक्मी को पृथ्वी पर गिरा दिया ॥१०॥ इस प्रकार रुक्मी को हराकर राक्षस विवाह की पद्धति से प्राप्त हुई रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण ने विधिवत् विवाह किया ॥११॥ उस रुक्मिणी से उन्होंने कामदेव के अंश रूप अत्यन्त वीर्यशाली प्रद्युम्न को उत्पन्न किया, जिसका शम्बरासुर ने हरण कर लिया था और जिसके द्वारा उस शम्बरासुर की मृत्यु हुई थी ॥१२॥

सत्ताईसवां अध्याय

शम्बरेण हृतो वीरः प्रद्युम्नः स कथं मुने ।
शम्बरः स महावीर्यः प्रद्युम्नेन कथं हतः ॥१
यस्तेनापहृतः पूर्वं स कथ विजघान तम् ।
एतद्विस्तरतः श्रोतुमिच्छामि सकलं गुरो ॥२
षष्ठेऽह्नि जातमात्रं तु प्रद्युम्नं सूतिकागृहात् ।
ममैष हन्तेति मुने हृतवान्कालशम्बरः ॥३
हृत्वा चिक्षेप चैवनं ग्राहोग्रे लवणार्णवे ।
कल्लोलजनितावर्त्ते सुघोरे मकरालये ॥४
पातितं तत्र चैवैको मत्स्यो जग्राह बालकम् ।
न ममार च तस्यापि जठराग्निप्रदीपितः ॥५

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे मुने ! शम्बरासुर ने महावीर्य प्रद्युम्न को कैसे हर लिया और फिर प्रद्युम्न ने उसका वध किस प्रकार किया ?

॥१॥ जिसका उसने हरण किया उसी ने उसको कैसे मार डाला ? हे गुरो ! इस वृतान्त को विस्तृत रूप से सुनने की मेरी इच्छा है ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मुने ! काल के समान विकराल शम्बर ने प्रद्युम्न को अपना काल समझकर जन्म के छटवें दिन ही प्रसूति-गृह से चुरा लिया था ॥६॥ उसे चुरा लेने के वाद शम्बर ने खारे समुद्र में डाल दिया, जो कल्लोल जानित आवर्तों से परिपूर्ण तथा बड़े मत्स्यों का सदन है ॥४॥ समुद्र में डाले गये उस बालक को एक मत्स्य निगल गया, परन्तु उसकी जठराग्नि में पड़कर उसकी मृत्यु नहीं हुई ॥५॥

मत्स्यबन्धैश्च मत्स्योऽसौ मत्स्यैरन्यैस्सह द्विज ।
घातितोऽसुरवर्याय शम्बराय निवेदितः ॥६
तस्य मायावती नाम पत्नी सर्वगृहेश्चरी ।
कारयामास सूदानामाधिपत्यमनिन्दिता ॥७
दारिते मत्स्यजठरे सा ददर्शातिशोभनम् ।
कुमारं मन्मथत रोर्दग्धस्य प्रथमाकुरम् ॥८
कोऽयं कथमयं मत्स्यजठरे प्रविवेशितः ।
इत्येवं कौतुकाविष्टां तन्वीं प्राहाथ नारदः ॥९
अयं समस्तजगतः स्थितिसंहारकारिणः ।
शम्बरेण हृतो विष्णोस्तनयः सूतिकागृहात् ॥१०
क्षिप्तस्समुद्रे मत्स्येन निगीर्णस्ते गृहं गतः ।
नररत्नमिदं सुभ्रु विस्रब्धा परिपालय ॥११
नारदेनैवमुक्ता सा पालयामास तं शिशुम् ।
बाल्यादेवातिरागेण रूपातिशयमोहिता ॥१२
स यदा यौवनाभोगभूषितोऽभून्महामर्ते ।
साभिलाषा तदा सापि बभूव गजगामिनी ॥१३
मायावती ददौ मस्मै मायास्सर्वा महामुने ।
प्रद्युम्नायानुरागान्धा तन्न्यस्तहृदयेक्षण ॥१४

उस मत्स्य को अन्य मछलियों के सहित मछुओं ने जाल में फँसाया और शम्बरासुर की भेंट कर दिया ॥६॥ उसकी मायावती नाम की

पत्नी उसके घर की स्वामिनी थी और वही श्रेष्ठ सक्षण वाली सब रसोइयों की देख भाल करती थी ॥७॥ उस मत्स्य के उदर को चीरते समय एक सुन्दर बालक दिखाई पड़ा, जो जले हुए काम रूपी वृक्ष का प्राथमिक अंकुर था ॥८॥ मायावती विस्मय पूर्वक यह सोचने लगी कि यह बालक कौन है तथा मत्स्य के उदर में कैसे पड़ा। उसके इस विस्मय का निवारण देवर्षि नारद ने इस प्रकार किया ॥९॥ हे सुभ्रू ! यह बालक सम्पूर्ण विश्व की स्थित और संहार करने वाले भगवान् विष्णु का पुत्र है। शम्बरासुर ने सूतिकागृह में ही इसका अपहरण करके समुद्र में डाल दिया। वहाँ जो मत्स्य इसे निगल गया था, उसके यहाँ लाये जाने पर यह भी यहाँ आ गया है। अब तू आश्वस्त होकर इसका परिपालन कर ॥१०-११॥ श्री पराशरजी ने कहा—नारदजी की बात सुनकर मायावती उस अत्यन्त सुन्दर बालक पर मोहित होती हुई उसका अत्यन्त स्नेह से परिपालन में तत्पर हुई ॥१२॥ जब वह बालक नव यौवन के सम्पर्क में आया तभी से गज गामिनी मायावती उसमें अनुराग-मयी हो गई ॥१३॥ हे महामुने ! जिस मायावती ने अनुराग में अन्धी होकर अपने हृदय तथा नेत्रों को उसमें तन्मय कर दिया था, उसने उसे सब प्रकार की माया सिखा डाली ॥१४॥

प्रसञ्जन्तीं तु तां प्राह सं कार्ष्णिः कमलेक्षणाम् ।
मातृत्वमपहायाद्य किमेवं वतसेऽन्यथा ॥१५
सा तस्मै कथयामास न पुत्रस्त्वं ममेति वै ।
तनयं त्वामयं विष्णोर्हृतवान्कालशम्बरः ॥१६
क्षिप्तः समुद्र मत्स्यस्य सम्प्राप्तो जठरान्मया ।
सा हि रोदिति त माता कान्ताद्याप्यतिवत्सला ॥१७
इत्युक्तश्शम्बरं युद्धे प्रद्युम्नः स समाह्वयत् ।
क्रोधाकुलीकृतमना युयुधे च महाबलः ॥१८
हत्वा सैन्यभशेष तु तस्य दैत्यस्य यादवः ।
सप्त माया व्यतिक्रम्य माया प्रयुयुजेऽष्टमीम् ॥१९

तया जघान तं दैत्यं मायया कालशम्बरम् ।
उत्पत्य च तया सार्द्धमाजगाम पितुः पुरम् ॥२०

इस प्रकार उस पद्माक्षी को अपने ऊपर आसक्त हुई देखकर प्रद्युम्न ने कहा—तुम मातृत्व के भाव को छोड़कर अन्य भाव क्यों दिखा रही हो ? ॥१५॥ इस पर मायावती बोली—तुम मेरे पुत्र नहीं, भगवान् विष्णु के पुत्र हो। शम्बरासुर ने तुम्हें चुराकर जिस समुद्र में डाल दिया था, उस समुद्र में प्राप्त मत्स्य के पेट में तुम मुझे मिले हो। पुत्र स्नेह से संतप्त हुई तुम्हारी माता अब भी विलाप करती होगी ॥१६-१७॥ श्री पराशरजी ने कहा—मायावती की बात सुनकर महाबली प्रद्युम्न ने क्रोधाकुल होकर शम्बरासुर को ललकारा और उससे भिड़ गये ॥१८॥ फिर उस दैत्य की सब सेना का संहार कर और उसकी सात मायाओं को अपने वश में करके आठवीं माया का स्वयं प्रयोग किया ॥१९॥ उसी माया के द्वारा उन्होंने शम्बरासुर का वध कर दिया और मायावती को साथ लेकर गगन मार्ग से द्वारकापुरी में आ पहुँचे ॥२०॥

अन्तःपुरे निपातित मायावत्या समन्वितम् ।
तं दृष्ट्वा कृष्णसंकल्पा बभूवुः कृष्णयोषितः ॥२१
रुक्मिणी साभवत्प्रेम्णा सास्रदृष्टिरनिन्दिता ।
धन्यायाः खल्वयं पुत्रो वर्तते नवयौवने ॥२२
अस्मिन्वयसि पुत्रो मे प्रद्युम्नो यदि जीवति ।
सभाग्या जननी वत्स सा त्वया का विभूषिता ॥२३
अथवा यादृशः स्नेहो मम यादृग्वपुस्तव ।
हरेरपत्यं सुव्यक्तं भवान्वत्स भविष्यति ॥२४

मायावती के साथ अन्तपुर में जाने पर श्रीकृष्ण की रानियों ने उन्हें कृष्ण ही समझा ॥२१॥ परन्तु उसे देखकर रुक्मिणजी के नेत्रों में आँसू आगये और वे कहने लगीं कि यह नवयौवन को प्राप्त हुआ किसी बड़-भागिनी का ही पुत्र होगा ॥२२॥ यदि मेरा पुत्र प्रद्युम्न कहीं जीवित हो तो उसकी अवस्था भी इतनी ही होगी। हे वत्स ! तेरे \ कौन—सौभाग्यवती माता अलंकृत हुई है ? ॥२३॥ अथवा जैसे तेरा रूप है

और मेरा चित्त तेरी ओर स्नेह से आकर्षित हुआ है, उससे यही लगता है कि तू भगवान् का ही पुत्र है ।।२४।।

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तस्सह कृष्णेन नारदः ।
अन्त पुरचरां देवीं रुक्मिणीं प्राह हर्षयन् ।।२५
एष ते तनयः सूभ्रु हत्वा शम्वरमागतः ।
हृतो येनाभवद् बालो भवत्यास्सूतिकागृहात् ।।२६
इयं मायावती भार्या तनयस्यास्य ते सती ।
शम्वरस्य न भार्येयं श्रुयतामत्र कारणम् ।।२७
मन्मथे तु गते नाशं तदुद्भवपरायणा ।
शम्वरं मोहयामास मायारूपेण रूपिणी ।।२८
विहाराद्युपभोगेषु मायामयं शुभम् ।
दर्शयामास दैत्यस्य यस्येयं मदिरेक्षणा ।।२९
कामोऽवतीर्णः पुत्रस्ते तस्येयं दयिता रतिः ।
विशंका नात्र कर्तव्या स्नुषेयं तव शोभने ।।३०
ततो हर्षसमाविष्टौ रुक्मिणीकेशवौ तदा ।
नगरी च समस्ता सा साधुसाध्वित्यभाषत ।।३१
चिरं नष्टेन पुत्रेण सङ्गतां प्रेक्ष्य रुक्मिणीम् ।
अवाप विस्मयं सर्वो द्वारवत्यां तदा जनः ।।३२

श्रीपराशरजी ने कहा—उसी समय श्रीकृष्ण के साथ नारदजी भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने रुक्मिणजी को अत्यन्त आनन्दित करते हुए कहा—हे श्रेष्ठ भ्रू वाली ! यह तेरा ही पुत्र है, जो शम्वरासुर का वध करके यहाँ आया है। इसी को उसने सूतिकागृह से चुरा लिया था ।।२६।। यह मायावती शम्वरासुर की स्त्री नहीं है, तेरे इसी पुत्र की पत्नी है, अब मुझसे इसका कारण सुन ।।२७।। जब पूर्वकाल में कामदेव भस्म हो गया था तब उसके पुनर्जन्म की प्रतिक्षा करती हुई इस माया वती ने अपने मायायुक्त रूप से शम्वरासुर को मोहित कर लिया था ।।२८।। यह मत्त नयन वाली मायावती उस दैत्य को बिहारादि करते समय अपने अत्यन्त सुन्दर मायामय रूपों का दर्शन कराती रहती थी

॥२९॥ वह कामदेव ही तेरे यहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ है और यह उसकी पत्नी रति है। हे शोभने ! इसके अपनी पुत्रवधू होने में कोई सन्देह मत कर ॥३०॥ इस बात से रुक्मिणी और कृष्ण अत्यन्त आनन्दित हुए और द्वारका में निवास करने वाले सभी मनुष्यों को हर्ष हुआ ॥३१॥ बहुत समय से नष्ट हुए पुत्र के साथ रुक्मिणी का पुनर्मिलन देखकर द्वारका वासियों को अत्यन्त विस्मय हुआ ॥३२॥

अट्ठाईसवां अध्याय

चारुदेष्णं च चारुदेहं च वीर्यवान् ।
सुषेणं चारुगुप्तं च भद्रचारुं तथा परम् ॥१
चारुविन्दं सुचारुं च चारुं च बलिनां वरम् ।
रुक्मिण्यजनयत्पुत्रान्कन्यां चारुमतीं तथा ॥२
अन्नाश्च भार्याःकृष्णस्य बभूवुः सप्त शोभनाः ।
कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नाग्राजिती तथा ॥३
देवी जाम्बवती चापि रोहिणी कामरूपिणी ।
मद्रराजसुता चान्या सुशीला शीलमण्डना ॥४
सात्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी ।
षोडशासन् सहस्राणि स्त्रीणामन्यानि चक्रिणः ॥५

श्री पराशरजी ने कहा—रुक्मिणीजी के चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुषेण, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु और चारु नामक महाबली पुत्र तथा चारुमती नाम की एक पुत्री हुई ॥१-२॥ रुक्मिणी के अतिरिक्त श्रीकृष्ण की जो सात रानियाँ थीं उनके नाम कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, कामरूपणी जाम्बवती, रोहिणी, मद्रराजसुता भद्रा, सत्राजितसुता, सत्यभामा और सुन्दर हासावली लक्ष्मणा अत्यन्त सुन्दर थीं। इनके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के सोलह हजार रानियाँ थीं ॥३-५॥

प्रद्युम्नोऽपि महावीर्यो रुक्मिणस्तनयांशुभाम् ।
स्वयंवरे तां जग्राह सा च तं तनयं हरेः ॥६

तस्यामस्याभवत्पुत्रो महाबलपराक्रमः ।
अनिरुद्धो रणे रुद्धवीर्योदधिररिन्दमः ॥७
तस्यापि रुक्मणः पौत्रीं वरयामास केशवः ।
दौहित्राय ददौ रुक्मी तां स्पर्द्धन्नपि चक्रिणा ॥८
तस्या विवाहे रामाद्या यादवा हरिणा सह ।
रुक्मिणो नगरं जग्मुर्नाम्ना भोजकटं द्विज ॥९
विवाहे तत्र निर्वृत्ते प्राद्युम्नेस्तु महात्मनः ।
कलिङ्गराजप्रमुखा रुक्मिणं वाक्यमब्रुवन् ॥१०
अनक्षज्ञो हली द्यूते तथास्य व्यसनं महत् ।
न जयामो बलं कस्माद् द्यूतेनैनं महाबलम् ॥११

महाबली प्रद्युम्न ने रुक्मी की कन्या की कामना की और उस कन्या ने भी प्रद्युम्न का स्वयंवर में वरण किया ॥६॥ प्रद्युम्न ने उस रुक्मी सुता से अनिरुद्ध नामक एक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ, जो युद्ध में कभी न रुकने वाला और शत्रुओं के मर्दन में बल का समुद्र ही था ॥७॥ श्रीकृष्ण ने रुक्मी की पौत्री के साथ उसका विवाह किया । श्रीकृष्ण से द्वेष होते हुए भी रुक्मी ने अपने दौहित्र को अपनी पुत्री देने का निश्चय कर लिया ॥८॥ श्रीकृष्ण के साथ बलरामजी तथा अन्य यादव गण भी उस विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिये राजा रुक्मी के भोजकट नामक नगर में जा पहुँचे ॥९॥ प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध का विवाह-संस्कार पूर्ण हो चुकने पर कलिंगराज आदि प्रमुख नरेशों ने रुक्मी से कहा—यह बलरामजी द्यूत क्रीड़ा के बड़े इच्छुक रहते हैं । इस लिये हम उन्हें द्यूत में ही क्यों न पराजित कर दें ? ॥११॥

तथेति तानाह नृपान्रुक्मी बलमदान्वितः ।
सभायां सह रामेण चक्रे द्यूतं च वै तदा ॥१२
सहस्रमेकं निष्काणां रुक्मिणा विजितो बलः ।
द्वितीयेऽपि पणे चान्यत्सहस्रं रुक्मिणा जितः ॥१३
ततो दशसहस्राणि निष्काणां पणमाददे ।
बलभद्रोऽजयत्तानि रुक्मी द्यूतविदां वरः ॥१४

ततो जहास स्वनवत्कलिङ्गाधिपतिर्द्विज ।
दन्तान्विदर्शयन्मूढो रुक्मी चाह मदोद्धतः ॥१५

अविद्योऽयं मय द्यूते बलभद्रः पराजितः ।
मुधैवाक्षावलेपान्धो योऽवमेनेऽक्षकोविदान् ॥१६

श्री पराशरजी ने कहा—तब वल—मद से उन्मत्त हुआ रुक्मी उन राजाओं से 'वहुत अच्छा' कहकर सभा में गया और वलरामजी के साथ द्यूतक्रीड़ा करने लगा ॥१२॥ प्रथम दाँव में उसने एक हजार निष्क जीते तथा द्वितीय दाँव में भी एक हजार निष्क पुनः जीत लिये ॥१३॥ फिर वलरामजी से दस सहस्र निष्क का दाँव लगाया, उसमें भी वे रुक्मी से हार गये ॥१४॥ इस पर कलिंगराज उनकी हँसी उड़ाता हुआ जोर-जोर से हँसने लगा। उसी समय रुक्मी ने कहा—द्यूतक्रीड़ा न जानने वाले वलरामजी मुझसे हार गये हैं, यह पासे के घमण्ड में व्यर्थ ही पासे में कुशल व्यक्तियों का तिरस्कार करते थे ॥१६॥

दृष्ट्वा कलिङ्गराजं तं प्रकाशदशनाननम् ।
रुक्मिण चापि दुर्वाक्यं कोपं चक्रे हलायुधः ॥१७

ततः कोपपरीतात्मा निष्ककोटिं समाददे ।
ग्लहं जग्राहः रुक्मी च तदर्थेऽक्षानपातयत् ॥१८

अजयद्बलदेवस्तं प्राहोच्चैर्विजितं मया ।
मयेति रक्मी प्राहोच्चैरलीकोक्तेरलं वल ॥१९

त्वयोक्तोऽय ग्लहस्सत्य न मयैयोऽनुमोदितः ।
एवं त्वया चेद्विजितं विजित न मया कथम् ॥२०

अथान्तरिक्षे वागुच्चैः प्राह गम्भीरनानिनी ।
वलदेवस्य तं कोपं बर्द्धयन्ती महात्मनः ॥२१

जित वलेन धर्मेण रुक्मिणा भाषितं मृषा ।
अनुक्त्वापि वचः किञ्चित्कृतं भवति कर्मणा ॥२२

इस प्रकार कलिंगराज को हँसी उड़ाते और रुक्मी को दुर्वचन कहते देखकर वलरामजी को अत्यन्त क्रोध हुआ ॥१७॥ तब उन्होंने क्रोध पूर्वक एक करोड़ निष्क दाँव पर लगाये और उसे जीतने के लिए

रुक्मी ने भी पासे डाले ॥१८॥ उस दांव को बलरामजी जीत गये और उच्च स्वर से बोले कि इसे मैंने जीता है। इस पर रुक्मी ने भी जोर से कहा कि बलरामजी ! मिथ्या वचन कहने से क्या लाभ है ? यह दाँव मैंने ही जीता है ॥१९॥ आपने इस दाव के विषय में जो कहा था उसका मैंने अनुमोदन कदापि नहीं किया। इस प्रकार यदि आप इसे अपने द्वारा जीता हुआ कहते हैं तो मैंने ही इसे किस प्रकार नहीं जीता है ॥२०॥ श्रीपराशरजी ने कहा—इसके पश्चात् बलरामजी की क्रोध वृद्धि करती हुई आकाश वाणी ने गम्भीर स्वर में कहा—इस दाँव की जीत बलरामजी की ही हुई है, रुक्मी का कथन यथार्थ नहीं है, क्योंकि वचन के अभाव में भी कार्य के द्वारा अनुमोदन हुआ ही माना जायगा ॥२१-२२॥

ततो बलः समुत्थाय कोपसरक्तलोचनः।
जघानाष्टापदेनैव रुक्मिण स महाबलः ॥२३
कलिङ्गराजं चादाय विस्फुरन्त बलाद्बलः।
बभञ्च दन्तान्कुपितो यैः प्रकाशं जहास सः ॥२४
आकृष्य च महास्तम्भं जातरूपमय बलः।
जघान तान्येतत्पक्षे भूभृतः कुपितो भृशम् ॥२५
ततो हाहाकृतं सर्वं पलायनपरं द्विज।
तद्राजमण्डलं भीतं बभूव कुपिते बले ॥२६
बलेन निहतं दृष्ट्वा रुक्मिणं मधुसूदनः।
नोवाच किञ्चिमन्मैत्रेय रुक्मिणीबलयोर्भयात् ॥२७
ततोऽनिरुद्धमादाय कृतदार द्विजोत्तम।
द्वारकामाजगामाथ यदुचक्रं च केशवः ॥२८

तब क्रोध से लाल नेत्र वाले बलरामजी ने जुआ खेलने के पासों से ही रुक्मी का वध कर दिया ॥२३॥ फिर दाँतों को दिखाकर बलरामजी की हँसी उड़ाने वाले कलिंगराज को पकड कर उन्होंने उसके दाँत तोड़ डाले ॥२४॥ इनके अतिरिक्त उसके पक्ष के जो भी राजा थे, वे सब एक साने के स्तम्भ को उखाड़ कर, उससे मार दिये ॥२५॥ हे द्विज ! बल-

रामजी को क्रोधित हुए देखकर उस समय हा-हाकार मच गया और सभी राजागण डर के मारे वहाँ से भाग गये ॥२६॥ हे मैत्रेयजी ! रुक्मी का वध हुआ देखकर श्रीकृष्ण ने बलरामजी और रुक्मिणीजी दोनों के ही डर के कारण मौन धारण कर लिया ॥२७॥ फिर हे द्विजो-त्तम ! फिर श्रीकृष्ण पत्नी युक्त अनिरुद्ध को साथ लेकर सम्पूर्ण यादवों के सहित द्वारका में लौट आये ॥२८॥

उन्तीसवां अध्याय

द्वारवत्यां स्थिते कृष्णे शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।
आजगामाथ मैत्रेय मत्तैरावपृष्ठ गः ॥१
प्रविश्य द्वारकां सोऽथ समेत्य हरिणा ततः ।
कथयामास दैत्यस्य नरकस्य विचेष्टितम् ॥२
त्वया नाथेन देवानां मनुष्यत्वेऽपि तिष्ठता ।
प्रशमं सर्वदुःखानि नीतानि मधुसूदन ॥३
तपस्विव्यसनार्थाय सोऽरिष्टो धेनुकस्तथा ।
प्रवृत्तो यस्तथा केशी ते सर्वे निहतास्त्वया ॥४
कंसः कुवलयापीडः पूतना वालघातिनी ।
नाशं नीतास्त्वया सर्वे येऽन्ये जगदुपद्रवाः ॥५
युष्मद्दोर्दण्डसम्भूतिपरित्राते जगत्त्रये ।
यज्वयज्ञांशसम्प्राप्त्या तृप्तिं यान्ति दिवौकसः ॥६
सोऽहं साम्प्रतमायातो यन्निमित्तं जनार्दन ।
तच्छ्रुत्वा तत्प्रतीकारप्रयत्नं कर्तुमर्हसि ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! एक बार की बात है—जब श्रीकृष्ण द्वारका में थे, तब त्रिभुवनेश्वर इन्द्र अपने ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर उनके पास आये ॥१०॥ वहाँ आकर उन्होंने नरकासुर द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया ॥२॥ हे मधुसू-दन ! आपने इस मनुष्य रूप धारण पूर्वक अपने अनुचर देवताओं के सब दुःखों को दूर कर दिया है ॥३॥ अरिष्ट, धेनुक, केशी आदि जो दैत्य सदा तपस्वियों को सताया करते थे, उन सबका आपने वध कर दिया

॥४॥ कंस कुवलयापीड और बालघातिनी पूतना अथवा अन्य सभी उप-द्रवियों को आपने मार डाला ॥५॥ आपके भुजदण्ड के आश्रय में तीनों लोकों के सुरक्षित होने के कारण यज्ञ भागों को प्राप्त करते हुए सब देवताओं को अब तृप्ति लाभ हो रहा है ॥६॥ हे जनार्दन ! अब मैं जिस कारण से यहाँ आया हूँ, उसे श्रवण कर उसके निवारण का उपाय करिये ॥७॥

करोति सर्वभूतानामुपघातमरिन्दम ॥८
देवसिद्धा सुरादीनां नृपाणां च जनार्दन ।
हृत्वा तु सोऽसुरः कन्या रुरुधे निजमन्दिरे ॥९
छत्रं यत्सलिलिस्रावि तज्जहार प्रचतसः ।
मन्दरस्य तथा शृङ्गं हृतवान्मणिपर्वतम् ॥१०
अमृतस्त्राविणी दिव्ये मन्मातु कृष्ण कुण्डले ।
जहार मोऽसुरोऽदित्या वाञ्छत्यैरावत गजम् ॥११
दुर्नीतमेतद्गोविन्द मया तस्य निवेदितम् ।
यदत्र प्रतिकर्तव्य तत्स्वयं परिमृश्यताम् ॥१२
इति श्रुत्वा स्मित कृत्वा भगवान्देवकीसुतः ।
गृहीत्वा वासवं हस्ते समुत्तस्थौ वरासनात् ॥१३
सञ्चिन्त्यागतमारुह्य गरुड़ गगडं गगनेचरम् ।
सत्यभामां समारोप्य ययौ प्राग्ज्योतिषं पुरम् ॥१४

हे शत्रुओं के नाशक ! पृथिवी-पुत्र नरकासुर प्राग्ज्योतिपुर का अधीश्वर है । वह सभी प्राणियों को नष्ट करने में लगा हुआ है ॥८॥ हे जनार्दन ! उसने देवता, सिद्ध, असुर और राजा आदि की पुत्रियों का वलपूर्वक अपहरण किया और उन्हें अपने अन्तःपुर में रख लिया है उसने वरण का जल-वर्षक छत्र तथा मन्दराचल का मणि-पर्वत नामक शृङ्ग भी छीन लिया है ॥१०॥ हे कृष्ण ! उसने मेरी माता अदिति के कुण्डल भी वलपूर्वक ले लिए हैं और अब इस ऐरावत को भी छीन लेने की इच्छा करता है ॥११॥ हे गोविन्द ! उसकी सभी दुर्नीतियों का मैंने

आपसे वर्णन कर दिया है, अब उसके प्रतिकार का उपाय आप स्वयं ही सोच लें ॥१२॥ इन्द्र की बात सुनकर भगवान् कुछ मुस्कराये और इन्द्र का हाथ पकड़ते हुए आसन से उठ खड़े हुए ॥१३॥ फिर उन्होंने गरुड़ का स्मरण किया और उसके उपस्थित होते ही सत्यभामा सहित उस पर आरूढ़ होकर प्राग्ज्योतिषपुर के लिए चल दिये ॥१४॥

आरुह्यैरावतं नागं शक्रोऽपि त्रिदिवं ययौ ।
ततो जगाम कृष्णश्च पश्यतां द्वारकौकसाम् ॥१५
प्राग्ज्योतिषपुरस्यापि समन्ताच्छतयोजनम् ।
आचिता मौरवैः पाशैः क्षुरान्तैर्भूर्द्विजोत्तम ॥१६
तांश्चिच्छेद हरिः पाशान्क्षिप्त्वा चक्र सुदर्शनम् ।
ततो मुरस्समुत्तस्थौ तं जघान च केशवः ॥१७
मुरस्य तनयान्सप्त सहस्रांस्तांस्ततो हरिः ।
चक्रधाराग्निनिर्दग्धांश्चकार शलभानिव ॥१८
हत्वा मुरं हयग्रीवं तथा पञ्चजनं द्विज ।
प्राग्ज्योतिषपुरं धीमांस्त्वरावान्समुपाद्रवत् ॥१९
नरकेणास्य तत्राभून्महासैन्येन संयुगम् ।
कृष्णस्य यत्र गोविन्दो जघ्ने दैत्यान्सहस्रशः ॥२०
क्षिप्त्वा चक्रं द्विधा चक्रे चक्री दैतेयचक्रहा ॥२१
हते तु नरके भूमिर्गृहीत्वादितिकुण्डले ।
उपतस्थे जगन्नाथं वाक्यं चेदमथाब्रवीत् ॥२२

सब द्वारकावासियों के देखते-देखते इधर श्रीकृष्ण चल दिये, उधर इन्द्र भी अपने ऐरावत पर चढ़कर स्वर्गलोक को चले गये ॥१५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! प्राग्ज्योतिषपुर के चारों ओर सौ योजन तक की भूमि मुरदैत्य निर्मित छुरा की धार के समान अत्यन्त तीक्ष्ण पाशों के द्वारा घिरी हुई थी ॥१६॥ उन पाशों को श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा काट डाला तो मुरदैत्य उनसे लड़ने के लिए सामने आया तभी उन्होंने उसका वध कर डाला ॥१७॥ फिर उन्होंने मुर के साथ सहस्र पुत्रों को अपने चक्र की धार रूप ज्वाला में पतंग के समान जला दिया

॥१८॥ इस प्रकार महामेधावी श्री कृष्ण मुर, हयग्रीव और पञ्चजन आदि दैत्यों का संहार कर प्राग्ज्योतिपुर में प्रविष्ट हुए ॥१६॥ वहाँ उन्होंने अत्यन्त विशाल सेना वाले नरकासुर से युद्ध किया, जिसमें उसके हजारों दैत्य मारे गये थे ॥२०॥ दैत्यदल—दलन, चक्रधारी भगवान् श्रीहरि ने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करते हुए पृथिवीसुर नरकासुर के अपने सुदर्शन चक्र से दो खण्ड कर डाले ॥२१॥ उसके मरते ही अदिति के कुण्डलों को हाथ में लिये पृथिवी मूर्तिमान् रूप से उपस्थिति हुई और श्रीकृष्ण के प्रति बोली ॥२२॥

यदाहमुद्धृता नाथ त्वया सूकरमूर्तिना ।
त्वत्स्पर्शसम्भवः पुत्रस्तदायं मय्यजायत ॥२३
सोऽयं त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातितः ।
गृहाण कुण्डले चेमे पालयास्य च सन्ततिम् ॥२४
भारावतरणार्थाय ममैव भगवानिमम् ।
अंशेन लोकमायातः प्रसादसुमुखः प्रभो ॥२५
त्वं कर्ता च विकर्ता च संहर्ता प्रभवोऽप्ययः ।
जगतां त्वं जगद्रूपः स्तूयतेऽच्युत किं तव ॥२६
व्याप्तिर्व्याप्य क्रिया कर्ता कार्यं च भगवन्यथा ।
सर्वभूतात्मभूतस्य स्तूयते तव किं तथा ॥२७
परमात्मा च भूतात्मा त्वमात्मा चाव्ययो भवान् ।
यथा तथा स्तुतिर्नाथ किमर्थं ते प्रवर्तते ॥२८
प्रसीद सर्वभूतात्मन्नरकेण तु यत्कृतम् ।
तत्क्षम्यतामदोषाय त्वत्सुतस्त्वन्निपातितः ॥२९

पृथिवी ने कहा—हे नाथ ! जब वराह रूप में अवतीर्ण होकर आपने मुझे निकाला था, तब आपके ही स्पर्श से मेरे इस पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥२३॥ इस प्रकार आपके द्वारा दिये हुए पुत्र को आपने स्वयं ही मार दिया, अब आप इन कुण्डलों को ग्रहण करिये तथा इसकी सन्तति की रक्षा करिये ॥२४॥ हे प्रभो ! आपने मुझे प्रसन्न होकर मेरा बोझ उतारने के लिये अपने अंश से अवतार ग्रहण किया है ॥२५॥

हे अच्युत ! आप ही इस विश्व के कर्त्ता, स्थितिकर्त्ता तथा हर्त्ता है तथा आप जगद्रूप ही इसकी उत्पति और लय के स्थल हैं फिर मैं आपके किस वृत्तान्त को लेकर स्तुति करूँ ।।१६।। हे प्रभो ! आप ही व्याप्ति व्याप्त, क्रिया, कर्त्ता, कार्यरूप एवं सब के आत्म स्वरूप हैं तब किस वस्तु के द्वारा आपकी स्तुति की जाय ? ।।२७।। आप ही परमात्मा, भूतात्मा तथा अविनाशी जीवात्मा हैं, तब किस वस्तु के लिए आपकी स्तुति की जा सकती है ? ।।२८।। हे सर्व भूतात्मन् ! आप प्रसन्न होकर नरकासुर के सब अपराधों को क्षमा कर दीजिये, आपने अपने इस पुत्र का वध उसे दोषों से मुक्त करने के लिए ही किया है ।।२६।।

तथेति चोक्त्वा धरणीं भगन्वान्भूतभावनः ।
रत्नानि नरकावासाञ्जग्राह मुनिसत्तम ।।३०
कन्यापुरे स कन्यानां शौडषातुलविक्रमः ।
शताधिकानि ददृशे सहस्राणि महामुने ।।३१
चतुर्दंष्ट्रान्गजांश्चाग्रयान् षट्सहस्रांश्च दृष्टवान् ।
काम्बोजातां तथाश्त्रानां नियुतान्येकविंशतिम् ।।३२
ताः कन्यास्तांस्तथा नागांस्तानश्वान् द्वारका पुरीम् ।
प्रापयामास गोविन्दस्सद्यो नरककिंकरैः ।।३३
ददृशे वारुणं छत्रं नथैव मणिपर्वतम् ।
आरोपयामास हरिर्गरुडे पतगेश्वरे ।।३४
आरुह्य च स्वयं कृष्णस्त्यभामासहायवान् ।
आदित्याः कुण्डले दातुं जयाम त्रिदशालयम् ।।३५

श्री पराशरजी ने कहा—हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार भूत भावन भगवान श्रीकृष्ण न 'ऐसा ही हो' कह कर नरकासुर के घर से अनेक प्रकार के रत्न ग्रहण किये ।।३०।। हे महामुने अत्यन्त बली भगवान् ने नरकासुर की कन्याओं के अन्तःपुर में जाकर सोलह हजार कन्याओं को देखा ।।३१।। वहीं चार दांत के छः हजार हाथी और इक्कीस लाख कम्बोजी जाति के घोड़े देखे ।।३२।। उन सब कन्याओं, हाथियों और

घोड़ों को उन्होंने नरकासुर के भृत्यों के द्वारा द्वारकापुरी पहुँचवा दिया ॥३३॥ फिर उन्होंने वरुण के छत्र और मणि पर्वत को वहाँ देखकर उठा लिया और पक्षिराज गरुड़ की पीठ पर उन्हें लादा ॥३४॥ तथा सत्यभामा सहित स्वयं भी गरुड़ पर आरूढ़ होकर अदिति को उसके कुण्डल देने के लिए स्वर्गलोक को गए ॥३५॥

तीसवां अध्याय

गरुडो वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम् ।
सभार्यं च हृषीकेशं लीलयैव वहन्ययौ ॥१
ततश्शङ्खमुपाध्मासीत्स्वर्गद्वारगतो हरिः ।
उपतस्थुस्तथा देवास्साध्यहस्ता जनार्दनम् ॥२
स देवैरर्चितः कृष्णो देवमातुर्निवेशनम् ।
सिताभ्रशिखराकारं प्रविश्य ददृशेऽदितिम् ॥३
स तां प्रणम्य शक्रेण सह ते कुण्डलोत्तमे ।
ददौ नरकनाशं च शशंसास्यै जनार्दनः ॥४
ततः प्रीता जगन्माता धातारं जगतां हरिम् ।
तुष्टावादितिरव्यग्रा कृत्वा तत्प्रवणं मनः ॥५
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयंकर ।
सनातनात्मन् सर्वात्मन् भूतात्मन् भूतभावन ॥६
प्रणेतर्मनसो बुद्धेरिन्द्रियाणां गुणात्मक ।
त्रिगुणातीत निर्द्वन्द्व शुद्धसत्त्व हृदि स्थितः ॥७

श्री पराशरजी ने कहा - वरुण के छत्र, मणि पर्वत सत्यभामा और श्रीकृष्ण को लीला पूर्वक धारण किये हुये ही पक्षिराज गरुड़ स्वर्ग के लिए चले ॥१॥ स्वर्ग द्वार के आते ही श्रीकृष्ण ने अपना शंख बजाया, जिसकी ध्वनि सुनते ही देवगण अर्घ्य सहित उनके समक्ष उपस्थित हुए ॥२॥ देवताओं द्वारा पूजन को प्राप्त हुए श्रीकृष्ण ने देवमाता अदिति के शुभ्र मेघ शिखर जैसे भवन में पहुँचकर उन्हें देखा ॥३॥ फिर इन्द्र के सहित श्रीकृष्ण ने उन्हें प्रणाम किया और नरकासुर के मारने का

पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर उन्हें उनके कुण्डल अर्पित किये ।।४।। फिर जगन्माता अदिति ने अत्यन्त आनन्दित होकर विश्व स्रष्टा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ।।५।। अदिति ने कहा—हे पुण्डरीकाक्ष ! हे भक्त भयहारी सनातन स्वरूप ! हे भूतात्मन् ! हे भूतभावन आपको नमस्कार है ।।६।। हे मन, बुद्धि और इन्द्रियों के रचने वाले गुण रूप एवं गुणातीत ! हे द्वन्द्वरहित, शुद्ध सत्व एवं अन्तरयामिन् ! आपको प्रणाम है ।।७।।

सितदीर्घादिनिश्शेषकल्पनापरिवर्जित ।
जन्मादिभिरसस्पृष्ट स्वप्नादिपरिवर्जित ।।८
सन्ध्या रात्रिरहो भूतिर्गगनं वायुरम्वु च ।
हुताशनो मनो वुद्धिर्भू तादिस्त्वं तथाच्युत ।।६
सर्गस्थितिविनाशानां कर्ता कर्तृ पतिर्भवान् ।
ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरीश्वर ।।१०
देवा दैत्यास्तथा यक्षा राक्षसास्सिद्धपन्नगाः ।
कूष्माण्डाश्च पिशाचाश्च गन्धर्वा मनुजास्तथा ।।११
पशवश्च मृगाश्चैव पतङ्गाश्च सरीसृपाः ।
वृक्षगुल्मलता बह्व्यः समस्तास्तृणजातयः ।।१२
स्थूला मध्यास्तथा सूक्ष्मास्सूक्ष्मात्सूक्ष्मतराश्च ये ।
देहभेदा भवान् सर्वे ये केचित्पुर्गलाश्रयाः ।।१३
माया तवेयमज्ञातपरमार्थातिमोहिनी ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं यया मूढो निरुद्धयते ।।१४

हे नाथ ! आप श्वेतादि वर्ण, दीर्घादि मान तथा जन्मादि विकारों से दूर हैं। स्वप्नादि तीन अवस्थाएँ भी आप में नहीं हैं, ऐसे आपको नमस्कार है ।।८।। हे अच्युत ! सायं, रात्रि, दिवस, पृथिवी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि और अहङ्कार—सब कुछ आप ही तो हैं ।।९।। हे ईश्वर ! आप, ब्रह्मा, विष्णु और शंकर नामक अपने तीन रूप से संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं। आप ही कर्त्ताओं के कर्त्ता हैं ।।१०।। देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, नाग, कूष्माण्ड, पिशाच गन्धर्व, मनुष्य, पशु, मृग, पतंग, सरीसृप वृक्ष, गुल्म, लता, सम्पूर्ण प्रकार

के तृण और स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जितने भी देह के भेद परमाणु के आश्रय में हैं, वे सभी आप हैं ।।११-१३।। आपकी ही माया परमार्थतत्व से अनभिज्ञ पुरुषों को मोहित करती है, जिससे अज्ञानी मनुष्य अनात्म को आत्म समझ कर बन्धन में पड़ते हैं ।।१४।।

अस्वे स्वमिति भावोऽत्र यत्पुंसामुपजायते ।
अहं ममेति भावो यत्प्रायेणैवाभिजायते ।
संसारमातुर्मायायास्तवैतन्नाथ चेष्टितम् ।।१५
यैः स्वधर्मपरैर्नाथ नरैराराधितो भवान् ।
ते तरन्त्यखिलामेतां मायामात्मविमुक्तये ।।१६
ब्रह्माद्यास्सकला देवा मनुष्याः पशवस्तथा ।
विष्णुमायामहावर्तमोहान्धतमसावृताः ।।१७
आराध्य त्वामभीप्सन्ते कामानात्मभवक्षयम् ।
यदेते पुरुषा माया सैवेयं भगवंस्तव ।।१८
मया त्वं पुत्रकामिन्या वैरिपक्षजयाय च ।
आराधितो न मोक्षाय मायाविलसितं हि तत् ।।१९
कौपीनाच्छादनप्राया वाञ्छा कल्पद्रुमादपि ।
जायते यदपुण्यानां सोऽपराधः स्वदोषजः ।।२०
तत्प्रसीदाखिलजगन्मायामोहकराव्यय ।
अज्ञानं ज्ञानसद्भावभूतं भूतेश नाशय ।।२१

हे प्रभो ! अनात्मा में आत्मा और ममता के भाव की जो उत्पत्ति हो जाती है, वह सब आपकी माया का ही प्रभाव है ।।१५।। हे नाथ ! जो मनुष्य अपने धर्म का आचरण करते हुए आपकी उपासना में रत रहते हैं, वे अपनी मुक्ति के लिये सब माया को लाँघ जाते हैं ।।१६।। ब्रह्मादि सब देवता, मनुष्य तथा पशु आदि सब विष्णु माया रूपी महान् गढ़े में पड़कर मोह रूपी अन्धकार से ढक जाते हैं ।।१७।। हे प्रभो ! आप भव-बन्धन के काटने वाले की आराधना करके भी जो पुरुष विभिन्न प्रकार के भोग ही मांगते हैं, वह सब आपकी माया का ही प्रभाव है ।।१८।। मैंने भी शत्रुओं को हराने के लिये पुत्रों की विजय-कामना करते

हुए ही आपका आराधना किया था, मोक्ष के लिये नहीं किया यह भी आपकी माया का ही प्रभाव था ॥१६॥ कल्पवृक्ष से भी जो पुण्य-विहीन पुरुष वस्त्रादि की ही याचना करते हैं तो उनका यह दोष कर्म से ही उत्पन्न हुआ है ॥२०॥ हे सम्पूर्ण विश्व में माया-मोह के उत्पन्न करने वाले प्रभो ! आप प्रसन्न हूजिये । हे भूनेश्वर ! मेरे ज्ञान के अभिमान से उत्पन्न हुए अज्ञान को आप नष्ट कर डालिये ॥२१॥

नमस्ते चक्रहस्ताय शार्ङ्गहस्ताय ते नमः ।
गदाहस्ताय ते विष्णो शंखहस्ताय ते नमः ॥२२
एतत्पश्यामि ते रूपं स्थूलचिह्नोपलक्षितम् ।
न जानामि पर यत्तो प्रसीद परमेश्वर ॥२३
अदित्यैवं स्तुतो विष्णुः प्रहस्याह सुरारणिम् ।
माता देवि त्वमस्माकं प्रसीद वरदा भव ॥२४
एवमस्तु यथेच्छा ते त्वमशेषैम्सुरासुरैः ।
अजेयः पुरुषव्याघ्र मर्त्यलोके भविष्यसि ॥२५
ततः कृष्णस्य पत्नी च शक्रपत्न्या सहादितिम् ।
सत्यभामा प्रणम्याह प्रसीदेति पुनः पुनः ॥२६
मत्प्रसादान्न ते सुभ्रु जरा वैरूप्यमेव वा ।
भविष्यत्यनवद्याङ्गि सुस्थिरं नवयौवनम् ॥२७
अदित्या तु कृतानुज्ञो देवराजो जनार्दनम् ।
यथावत्पूजयामास बहुमानपुरस्सरम् ॥२८

हे चक्रपाणे ! हे शार्ङ्ग धनुषधारी आपको नमस्कार है, नमस्कार है । हे गदा और शंख धारण करने वाले विष्णो ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥२२॥ मैं आपके स्थूल चिह्नों के आरोप वाले इसी रूप को देख रही हूँ, आपके उस यथार्थ पर स्वरूप को तो मैं जानती ही नहीं । हे परमेश्वर ! आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥२३॥ श्री पराशरजी ने कहा—अदिति की इस प्रकार की स्तुति को सुनकर भगवान् विष्णु ने हँसते हुए देवजननी से कहा—हे देवि ! आप तो हमारी माता हैं आप प्रसन्न होकर हमारे लिये वर देने वाली बनो ॥२४॥ अदिति ने कहा—हे

पुरुष व्याघ्र ! ऐसा ही हो, तुम इच्छानुसार फल प्राप्त करो। मर्त्यलोक में तुम सब देवताओं और दैत्यों से अजेय रहोगे ॥२५॥ श्री पराशरजी ने कहा—फिर इन्द्र की भार्या शची के सहित कृष्ण पत्नी सत्यभामा ने अदिति को बारम्बार प्रणाम किया और उनसे निवेदन किया कि आप हम पर प्रसन्न हों ॥२६॥ हे सुभ्रू ! मेरी कृपा से वृद्धावस्था या विरूपता तेरे निकट न आयेगी और तू सदा ही आनन्दित अङ्ग वाली और स्थिर नवयौवन से सम्पन्न रहेगी ॥२७॥ फिर अदिति की आज्ञा से देवराज इन्द्र ने श्रीकृष्ण का अत्यन्त मान के सहित पूजन किया ॥२८॥

शची च सत्यभामायै पारिजातस्य पुष्पकम् ।
न ददौ मानुषीं मत्वा स्वयं पुष्पैरलङ्कृता ॥२९
ततो ददर्श कृष्णोऽपि सत्यभामासहायवान् ।
देवोद्यानानि हृद्यानि नन्दनादीनि सत्तम ॥३०
ददर्श च सुगन्धाढ्यं मञ्जरीपुञ्जधारिणम् ।
नित्याह्लादकरं ताम्रबाशपल्लवशोभितम् ॥३१
मथ्यमानेऽमृते जातं जातरूपोपमत्वचम् ।
पारिजातं जगन्नाथः केशवः केशिसूदनः ॥३२
तुतोष परमप्रीत्या तरुराजमनुत्तमम् ।
तं दृष्ट्वा प्राह गोविन्दं सत्यभामा द्विजोत्तम ।
कस्मान्न द्वारकामेष नीयते कृष्ण पादपः ॥३३
यदि चेत्त्वद्वचः सत्यं त्वमत्यर्थं प्रियेति मे ।
मद्गेहनिष्कुटार्थाय तदयं नीयतां तरुः ॥३४
न मे जाम्बवती तादृगभीष्टा न च रुक्मिणी ।
सत्ये यथा त्वमित्युक्तं त्वया कृष्णासकृत्प्रियम् ॥३५

उस समय कल्पवृक्ष के पुष्पों से सुशोभिता इन्द्राणी ने सत्यभामा के मानुषी होने के कारण पारिजात—पुष्प नहीं दिये ॥२९॥ फिर सत्यभामा के सहित श्रीकृष्ण ने देवताओं के नन्दन कानन आदि सुरम्य उपवनों को जाकर देखा ॥३०॥ केशी के मारने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने वहीं पर सुगन्धित मंजरी पुंज से लदे हुए, नित्यानन्द करने वाले, ताम्र-

रङ्ग के वाल और पत्रों से सुशोभित, स्वर्णिम छाल से युक्त उस अमृत मंथन से उत्पन्न हुए पारिजात वृक्ष को देखा ।।३१-३२।। हे द्विजोत्तम ! उस सर्वश्रेष्ठ तरुराज के दर्शन कर उसके प्रति अत्यन्त प्रीति करती हुई भत्यभामाजी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुईं और भगवान् से कहने लगीं हे प्रभो ! इस तरुराज को द्वारका क्यों नहीं ले चलते ? ।।३३।। यदि आप अपने वचनानुसार मुझे अपनी अनन्यतम प्रियतमा मानते हैं तो इस वृक्षराज को मेरे भवन के उद्यान में लगाने के लिए ले चलिये ।।३४।। हे कृष्ण ! हे नाथ ! आप अनेक बार कह चुके हैं कि हे सत्ये ! मुझे तेरे समान जाम्ववती या रुक्मिणी कोई भी प्यारी नहीं है ।।३५।।

सत्यं तद्यदि गोविन्द नोपचारकृतं मम ।
तदस्तु पारिजातोऽयं मम गेहविभूषणम् ।।३६
बिभ्रती पारिजातस्य केशपक्षेण मञ्जरीम् ।
सपत्नीनामहं मध्ये शोभेयमिति कामये ।।३७
इत्युक्तस्स प्रहस्यैनां पारिजातं गरुत्मति ।
आरोपयामास हरिस्तमूचुर्वनरक्षिणः ।।३८
भो शची देवराजस्य महिषी तत्परिग्रहम् ।
पारिजातं न गोविन्द हर्तुमर्हसि पादपम् ।।३९
उत्पन्नो देवराजाय दत्तस्सोऽपि ददौ पुनः ।
महिष्यै सुमहाभाग देव्यै शच्यै कुतूहलात् ।।४०
शचीविभूषणार्थाय देवैरमृतमन्थने ।
उत्पादितोऽयं न क्षेमी गृहीत्वैनं गमिष्यसि ।।४१
देवराजो मुखप्रेक्षी यस्यास्तस्याः परिग्रहम् ।
मौढ्यात्प्रार्थयसे क्षेमी गृहीत्वैनं हि को व्रजेत् ।।४२

हे गोविन्द ! यह आपका वह वचन सत्य और मेरे प्रति वहाना मात्र नहीं है, तो इस परिजात को मेरे घर की शोभा बनाइये ।।३६।। मैं चाहती हूँ कि अपने केशों में इन पारिजात पुष्पों को गूँथकर अपनी अन्य सौतों में अधिक शोभा सम्पन्न बन जाऊँ ।।३७।। श्री पराशरजी ने कहा—सत्यभामा के वचन सुनकर भगवान् श्रीहरि हँस पड़े और

उन्होंने उस पारिजात वृक्ष को उठाकर गरुड़ की पीठ पर रख लिया । इस पर नन्दन कानन के रक्षकों ने उनसे कहा–॥३८॥ हे गोविन्द ! यह पारिजात इन्द्राणी शची की निजी सम्पत्ति है, आप इसे न लीजिये ॥३९॥ जब यह क्षीर—सागर से उत्पन्न हुआ था, तब इसे देवराज ने प्राप्त करके अपनी पत्नी को प्रदान कर दिया था ॥४०॥ शची को अलंकृत करने के लिये अमृत मंथन के समय इसे देवताओं ने उत्पन्न किया था, इसलिये आप इसको कुशल पूर्वक नहीं ले जा सकते ॥४१॥ देवराज भी जिस शचि का मुख निहारते रहते हैं, यह पारिजात उसी की सम्पत्ति है, जिसे ग्रहण करने का आपका विचार मूर्खता का हो है, भला इसका हरग करके कौन बचकर निकल सकता है ॥४२॥

अवश्यमस्य देवेन्द्रो निष्कृतिं कृष्ण यास्यति ।
वज्रोद्यतकरं शक्रमनुयास्यन्ति चामराः ॥४३
तदलं सकलैर्देवैर्विग्रहेण तवाच्युत ।
विपाककटु यत्कर्म तन्न शंसन्ति पण्डिताः ॥४४
इत्युक्ते तैरुवाचैतान् सत्यभामातिकोपिनी ।
का शची पारिजातस्य को वा शक्रस्सुराधिपः ॥४५
सामान्यस्सर्वलोकस्य यद्येषोऽमृतमन्थने ।
समुत्पन्नस्तरुः कस्मादेको गृह्णाति वासवः ॥४६
यथा सुरा यथैवेन्दुर्यथा श्रीर्वनरक्षिणः ।
सामान्यस्सवलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुमः ॥४७
भर्तृबाहुमहागर्वाद्रुणद्ध्येनमथो शची ।
तत्कथ्यतामलं क्षान्त्या सत्या हारयति द्रुमम् ॥४८
कथ्यतां च द्रुतं गत्वा पौलौम्या वचन मम ।
सत्यभामा वदत्येतदिति गर्वोद्धताक्षरम् ॥४९
यदि त्वं दयिता भर्तुर्यदि वश्यः पतिस्तव ।
मद्भर्तुर्हरतो वृक्षं तत्कारय निबारणम् ॥५०
जानामि ते पतिं शक्रं जानामि त्रिदशेश्वरम् ।
पारिजातं तथाप्येनं मानुषी हारयामि ते ॥५१

हे कृष्ण ! इसकी रक्षा के लिये देवराज वज्र ग्रहण करके अवश्य आयेंगे तथा अन्य सभी देवगण उनकी सहायता करेंगे ॥४३॥ इसलिये हे अच्युत ! सब देवताओं से शत्रुता करना उचित नहीं है, क्योंकि पण्डितजन कटुपरिणाम वाले कार्य का निषेध करते हैं ॥४४॥ श्री पराशरजी ने कहा —उनके इस प्रकार करने पर सत्यभामा क्रोधित हो गई और कहने लगी–इस पारिजात के सुरपति इन्द्र और शची ही कौन हैं ? ॥ यदि अमृत मंथन के समय इसकी उत्पत्ति हुई है तो इस पर सब लोकों का समान रूप से अधिकार है तब अकेले इन्द्र ही इसे कैसे ग्रहण कर सकते हैं ॥४६॥ हे वन रक्षको ! जैसे मदिरा, चन्द्रमा और लक्ष्मी का सभी समान रूप से उपभोग करते हैं, वैसे ही यह पारिजात भी सभी के लिये उपभोग्य है ॥४७॥ यदि अपने पति भुजबल के घोर गर्व में भर कर शची ने इस पर एकाधिकार कर लिया है, तो उसे बताना कि तुम क्षमा के योग्य नहीं हो, इसलिये सत्यभामा उस वृक्ष को ले गई हैं ॥४८॥ तुम शीघ्रता पूर्वक शची के पास जाकर यह कहदो कि सत्यभामा ने अत्यन्त गर्व पूर्वक कहा है कि यदि तुम्हारे पति तुम्हें अत्यन्त प्रेम करते हैं और तुम्हारे वश में हैं तो मेरे पति को पारिजात ले जाने से रोकें ॥४९-५०॥ मैं जानती हूँ कि तुम्हारे पति देवताओं के अधीश्वर हैं फिर भी मैं मानुषी तुम्हारे पारिजात को लिये जाती हूँ ॥५१॥

इत्युक्ता रक्षिणो गत्वा शच्याः प्रोचुर्यथोदितम् ।
श्रुत्वा चोत्साहयामास शची शक्रं सुराधिपम् ॥५२
ततस्समस्तदेवानां सैन्यैः परिवृतो हरिम् :
प्रययौ पारिजातार्थमिन्द्रो योदधुं द्विजोत्तम ॥५३
ततः परिघनिर्स्त्रिशगदाशूलवरायुधाः ।
बभूवुस्त्रिदशास्सज्जाः शक्रे वज्रकरे स्थिते ॥५४
ततो निरीक्ष्य गोविन्दो नागराजोपरि स्थितम् ।
शक्रं देवपरीवारं युद्धाय समुपस्थितम् ॥५५
चकार शंखनिर्घोषं दिशश्शब्देन पूरयन् ।
मुमोच शरसंघातान्सहस्रायुतशण्शितान् ॥५६

ततो दिशो नभश्चैव दृष्ट्वा शरशतैश्चितम् ।
मुमुचुस्त्रिदशास्सर्वे ह्यस्त्रशस्त्राण्यनेकशः ॥५७

श्री पाराशरजी ने कहा—सत्यभामा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मालियों ने सब वृत्तान्त शची के पास जाकर यथावत सुना दिया, जिसे सुनते ही शची ने सुरपति इन्द्र को वृक्ष की रक्षा के लिये उत्साहित किया ॥५२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! फिर हव देवताओं की सेना को साथ लेकर सुरराज इन्द्र पारिजात को रोकने के लिए श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए गये ॥५३॥ जैसे ही इन्द्र ने वज्र ग्रहण किया, वैसे ही सव देवता परिघ, निस्त्रिंश, गदा और शूलादि श्रेष्ठ आयुधों से सजकर तैयार हो गये॥५४॥ फिर देवसेना सहित इन्द्र को युद्ध के लिये आया हुआ देखकर गरुडगामी गोविन्द ने अपनी शंख ध्वनि से सव दिशाओं को प्रतिध्वनित करके हजारों-लाखों तीक्ष्ण वाणों की वर्षा की ॥५५-५६॥ इस प्रकार सब दिशाओं और आकाश को वाणों से आच्छादित देखकर देवताओं ने भी अनेकों शास्त्रास्त्रों का प्रयोग किया ॥५७॥

एकैकमस्त्रं शस्त्रं च देवमुंक्तं सहस्रशः ।
चिच्छेद लीलयैवेशो जगतां मधुसूदनः ॥५८
पाशं सलिलराजस्य समाकृष्योरगाशनः ।
चकार खण्डशश्चञ्च्वा बालपन्नगदेहवत् ॥५९
यमेन प्रहितं दण्डं गदाविक्षेपखण्डितम् ।
पृथिव्यां पातयामास भगवान् देवकीसुतः ॥६०
शिविकां च धनेशस्य चक्रेण तिलशो विभुः ।
चकार शौरिरर्कं च दृष्टिदृष्टहतौजसाम् ॥६१
नीतोऽग्निश्शीततां वाणैर्द्राविता वसवो दिशः ।
चक्रविच्छिन्नशूलाग्रा रुद्रा भुवि निपातिताः ॥६२
साध्या विश्वेऽथ मरुतो गन्धर्वाश्चैव सायकैः ।
शार्ङ्गिणा प्रेरितैरस्ता व्योम्नि शाल्मलितूलवत् ॥६३
गरुत्मानपि तुण्डेन पक्षाभ्यां च नखाङ्कुरैः ।
भक्षयंस्ताडयन् देवान् दारयंश्च चचार वै ॥६४

जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने लीला पूर्वक ही देवताओं के प्रत्येक शस्त्रास्त्र के हजारों खण्ड कर डाले ॥५८॥ सर्पों का आहार करने वाले गरुड़ ने जलराज वरुण के पाश को सर्प के वालक के समान अपनी चोंच से चवा कर अनेक टुकड़ों में विभक्त कर दिया ॥५६॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने यम द्वारा प्रेरित दण्ड को अपनी गदा से टूक-टूककर पृथिवी पर गिरा दिया ॥६०॥ कुवेर के विमान का चूर्ण कर दिया और अपनी तेजोमयी दृष्टि से देखकर ही तेज-हीन कर दिया ॥६१॥ वाण-वर्षा द्वारा अग्नि को शीतल कर वसुओं को सव दिशाओं में भगा दिया और त्रिशूलों की नोंक को अपने चक्र से काट डाला और रुद्रों को भूमि पर गिरा दिया ॥६२॥ उनके द्वारा प्रेरित किये गये वाणों से साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण और सभी गन्धर्व सेमल की रुई के समान उड़ते हुए, व्योम में ही विलीन हो गये ॥६३॥ उस समय गरुड भी अपनी चोंच, पंख और पंजों के द्वारा देवताओं का भक्षण करते, विदीर्ण करते और मारते हुए विचर रहे थे ॥६४॥

ततश्शरसहस्रेण देवेन्द्रमधुसूदनौ ।
परस्परं ववर्षाते धाराभिरिव तोयदौ ॥६५
ऐरावतेन गरुडो युयुधे तत्र सङ्कुले ।
देवैस्समस्तैर्युयुधे शक्रेण च जनार्दनः ॥६६
भिन्नेष्वशेषबाणेषु शस्त्रेष्वस्त्रेषु च त्वरन् ।
जग्राह वासवो वज्रं कृष्णश्चक्रं सुदर्शनम् ॥६७
ततो हाहाकृतं सर्वं त्रैलोक्यं द्विजसत्तम ।
वज्रचक्रकरौ दृष्ट्वा देवराजजनार्दनौ ॥६८
क्षिप्तं वज्रमथेन्द्रेण जग्राह भगवान्हरिः ।
न मुमोच तदा चक्रं शक्रं तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥६९

फिर जैसे दो वादलों से जल की वर्षा हो रही हो, वैसे ही श्रीकृष्ण और इन्द्र परस्पर वाण—वर्षा कर रहे थे ॥६५॥ उस समय गरुड-ऐरावत भिड़न्त हो रही थी तथा श्रीकृष्ण देवताओं और इन्द्र से भिड़ रहे थे ॥६६॥ सभी वाणों के समाप्त होने और शस्त्रास्त्रों के छिन्न-

भिन्न हो जाने पर इन्द्र ने वज्र और कृष्ण ने सुदर्शन चक्र ग्रहण किया ॥६७॥ हे द्विजसत्तम ! उस समय इन्द्र को वज्र और कृष्ण को सुदर्शन चक्र लेकर युद्ध करते देख कर तीनों लोको में हाहकार मच गया ॥६८॥ श्रीकृष्ण ने इन्द्र द्वारा प्रेरित वज्र को पकड लिया और अपने चक्र को हाथ में ग्रहण किये हुए ही इन्द्र से ललकार कर कहा—ठहर तो सही' ॥६९॥

प्रशष्टवज्रं देवेन्द्रं गरुडक्षतवाहनम् ।
सत्यभामाब्रवीद्वीरं पलायनपरायणम् ॥७०
त्रैलोक्येश न ते युक्तंशचीभर्तुः पलायनम् ।
पारिजातस्रगाभोगा त्वामुपस्था यते शची ॥७१
कीदृश देवराज्य ते पारिजामस्रगुज्ज्वलाम् ।
अपश्यतो यथापूर्वं प्रणयाम्यागता शचीम् ॥७२
अलं शक्र प्रयासेन न व्रीडां गन्तुमर्हसि ।
नीयतां पारिजातोऽयं देवास्सन्तु गतव्यथाः ॥७३
पतिगर्वावलेपेन बहुमानपुरस्सरम् ।
न ददर्श गृहं यातामुपचारेण मां शचीं ॥७४
स्त्रीत्वादगुरुचित्ताहं स्वभर्तृश्लाघनापरा ।
ततः कृतवती शक्र भवता सह विग्रहम् ॥७५
तदलं पारिजातेन परस्वेन हृतेन मे ।
रूपेण गर्विता सा तु भर्त्रा का स्त्री न गर्विता ॥७६

इस प्रकार वज्र छिन जाने और ऐरावत का गरुड़ के प्रहारों से बुरी तरह आहत होने के कारण इन्द्र भागने लगा, तव सत्यभामा ने उससे कहा—हे त्रैलोक्येश ! तुम शचीपति को इस प्रकार युद्ध से नहीं भागना चाहिये। क्योंकि पारिजात के पुष्पों से अलंकृत हुई शची अव शीघ्र ही तुम्हारे पास उपस्थित होगी ॥७०-७१॥ हे इन्द्र ! जब पारिजात पुष्पों से शून्य शची तुम्हारे पास प्रेमवश उपस्थित होगी, तब उसे उस प्रकार देख कर तुम्हें क्या आनन्द मिलेगा ? ॥७२॥ हे इन्द्र ! अव अधिक प्रयास मत करो, निःसंकोच इस परिजात को ले जाओ, दयोंकि

इसे पाने पर ही देवताओं की व्यथा दूर होगी ॥७३॥ अपने पति के भुजबल से गर्विता हुई शची ने मुझे अपने घर पर आई हुई देख कर भी मेरा कुछ विशेष सम्मान नहीं किया था ॥७४॥ मैं भी स्त्री होने के कारण अधिक गम्भीर चित्त वाली नहीं हूँ, इसलिये अपने पति का गौरव दिखाने के लिये ही मैंने यह युद्ध कराया था ॥७५॥ मुझे इस पारिजात रूप पराई सम्पत्ति को ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे शची को अपने रूप और पति का गर्व है, वैसे ही अन्य स्त्री को भी क्यों न होगा ? -।७६॥

इत्युक्तो वै निववृते देवराजस्तया द्विज ।
प्राह चौनामलं चण्डि सख्युः खेदोक्तिविस्तरैः ॥७७
न चापि सर्गसंहारस्थितिकर्ताखिलस्य यः ।
जितस्य तेन मे ब्रींडा जायते विश्वरूपिणा ॥७८
यस्माज्जगत्सकलमेतदनादिमध्या-
द्यस्मिन्यतश्च न भविष्यति सर्वभूतात् ।
तेनेद्भवप्रलयपालनकारणेन
व्रीडा कथं भवति देवि निराकृतस्य ॥७९
सकलभुवनसूतिर्मूर्तिरल्पाल्पसूक्ष्मा
विदतसकलवेदैर्ज्ञायते यस्य नान्यैः ।
तमजमकृतिमर्त्यं को विजेतुं समर्थः ॥८०

श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विज ! इस प्रकार कहे जाने पर देवराज इन्द्र लौट आये और कहने लगे—मैं तो तुम्हारा सुहृद ही हूँ, मेरे प्रति इस प्रकार की खेदोक्तियों के विस्तार से क्या लाभ है ? ॥७७॥ सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और संहारकर्त्ता तथा विघ्नरूप परमात्मा से हारे जाने में संकोच का कोई कारण नहीं है ॥७८॥ हे देवि ! जिन आदि-मध्य से रहित भगवान् से यह विश्व उत्पन्न होकर उन्हीं के द्वारा स्थित होता और अन्त में विलीन हो जाता है, ऐसे उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण रूप ईश्वर से पराजित होने में संकोच कैसा ? ॥७९॥

जिनकी सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाली अल्प से भी अल्प और सूक्ष्म मूर्ति को सब वेदों के ज्ञाता भी नहीं जान सकते तथा जिन्होंने स्वेच्छा पूर्वक लोक कल्याण के लिए मर्त्यलोक में अवतार लिया है, उन जन्म-रहित, कर्म-रहित और नित्य स्वरूप परमेश्वर को पराजित करने का सामर्थ्य किसमें होगा ? ॥८०॥

इकत्तीसवां अध्याय

संस्तुतो भगवानित्थं देवराजेन केशवः ।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेन्द्रं द्विजोत्तम ॥१
देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते ।
क्षन्तव्यं भवतैवेदमपराधं कृतं मम ॥२
पारिजाततरुश्चायं नीयतामुचितास्पदम् ।
गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात् ॥३
वज्रं चेदं गृहाण त्वं यदत्र प्रहितं त्वया ।
तवैवैतत्प्रहरणं शक्र वैरिविदारणम् ॥४
विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन् ।
जानीमस्त्वां भगवतो न तु सूक्ष्मविदो वयम् ॥५
संस्भगोतुतवा नित्थं देवराजेन केशवः ।
योऽसि सोऽभि जगत्त्राणप्रवृत्तौ नाथ संस्थितः ।
जगतश्शल्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन ॥६
नीयतां पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवतीं पुरीम् ।
मर्त्यलोके त्वया त्यक्ते नायं संस्थास्यते भुवि ॥७
देवदेव जगन्नाथ कृष्ण विष्णो महाभुज ।
शंखचक्रगदापाणे क्षमस्वैतद्व्यतिक्रमम् ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! इन्द्र के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् कृष्ण ने गम्भीरता पूर्वक कहा ॥१॥ श्रीकृष्ण बोले—हे जगत्पते ! आप देवाधिपति इन्द्र हैं और हम मरण-धर्मा मानव, इसलिए हमसे आपका जो अपराध बन पड़ा है, उसे क्षमा कीजिये ॥२॥ आप इस पारिजात को इसके अपने स्थान पर ही रखिये

क्योंकि केवल सत्यभामा का वचन रखने के लिये ही मैंने इसे ग्रहण किया था ॥३॥ आप अपने फैंके हुए वज्र को भी ले जाइये, क्योंकि हे इन्द्र ! शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला यह वज्र आपका ही है ॥४॥ इन्द्र ने कहा--हे प्रभो ! आप अपने को मनुष्य कह कर मुझे मोह में क्यों डालते हैं ? मैं तो आपके इसी रूप को जानता हूँ, उस सूक्ष्म रूप का ज्ञान मुझे नहीं है ॥५॥ हे प्रभो ! आप जो हैं, क्योंकि आप जगत् की रक्षा में लगे हुए हैं तथा उसे कंटक-विहीन कर रहे हैं ॥६॥ हे कृष्ण ! इस पारिजात को आप द्वारावती को ले जाइये, जब आप पृथिवी का त्याग करेंगे तब यह वहाँ नहीं रहेगा ॥७॥ हे देव देव ! हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे महाभुज ! हे शंख-शक्र-गदा-पाणे ! मेरे अपराध को क्षमा करिये ॥८॥

तथेत्युक्त्वा च देवेन्द्रमाजगाम भुवं हरिः ।
प्रसक्तैः सिद्धगन्धर्वैः स्तूयमानः सुरर्षिभिः ॥९
ततश्शंखमुपाध्माय द्वारकोपरि संस्थितः ।
हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिनां द्विज ॥१०
अवतीर्याथ गरुडात्सत्यभामासहायवान् ।
निष्कुटे स्थापयामास पारिजातं महातरुम् ॥११
यमभ्येत्य जनस्सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ।
वास्यते यस्य पुष्पोत्थगन्धेनोर्वी त्रियोजनम् ॥१२
ततस्ते यादवास्सर्वे देहबन्धानमानुषान् ।
ददृशुः पादपे तस्मिन कुर्वन्तो मुखदर्शनम् ॥१३

श्री पराशरजी ने कहा—फिर श्रीहरि ने 'तुम चाहते हो वही हो, कहा और सिद्ध गन्धर्व और देवर्षियों से प्रशंसित हो पृथ्वी पर आगये ॥९॥ हे द्विज ! द्वारकापुरी के ऊपर पहुँचते ही उन्होंने शंख-ध्वनि करके द्वारकावासियों को हर्षित किया ॥१०॥ फिर सत्यभामा के भवन के पास आकर उसके सहित गरुड़ से उतरे और पारिजात को वहीं रखवा दिया ।११। जिसकी निकटता प्राप्त होने पर पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण होता है तथा जिसके पुष्पों की सुगन्ध तीन योजन तक पृथ्वी को सुरभित

रखती है ॥१२॥ जब यादवों ने उसकी सन्निधि में अपना मुख देखा तो उन्होंने अपने को अमानवीय देह वाला पाया ॥१३॥

किंकरैस्समुपानीतं हस्त्यश्वादि ततो धनम् ।
वभज्य प्रददौ कृष्णो वान्धवानां महामतिः ॥१४
कन्याश्च कृष्णो जग्राह नरकस्य परिग्रहान् ॥१५
ततः काले शुभे प्राप्ते उपयंमे जनार्दनः ।
ताः कन्या नरकेणासन्सर्वतो यास्समाहृताः ॥१६
एकस्मिन्नेव गोविन्दः काले तासां महामुने ।
जग्राह विधिवत्पाणीन्पृथग्गेहेषु धर्मतः ॥१७
षोडशस्त्रीसहस्राणि शतमेकं ततोऽधिकम् ।
तावन्ति चक्रे रूपाणि भगवान् मधुसूदनः ॥१८
एकैकमेव ताः कन्या मेनिरे मधुसूदनः ।
ममैव पाणिग्रहण मैत्रेय कृतवानिति ॥१९
निशासु च जगत्स्रष्टा ताषां गेहेषु केशवः ।
उवास विप्र सर्वासां विश्वरूपधरो हरिः ॥२०

फिर नरकासुर के भृत्यों द्वारा लाये हुए हाथी, घोड़े आदि धन को श्रीकृष्ण ने अपने बन्धुओं में वितरित कर दिया और नरकासुर द्वारा अपहृत कन्याओं को स्वंय रख लिया ॥ १४--१५ ॥ जिन कन्याओं का नरकासुर ने वलपूर्वक अपहरण किया था, उन सबके साथ श्रीकृष्ण ने विवाह कर लिया ॥१६॥ हे महामुने ! उन सब कन्याओं को अलग-अलग महलों में रख कर एक ही समय में उनका विधिवत् पाणिग्रहण किया गया था ॥१७॥ उनकीं संख्या सोलह हजार एक सौ थी, जिस समय उनका पाणिग्रहण किया गया, उस समय श्री कृष्ण ने उतने ही देह धारण कर लिये थे ॥१८॥ हे मैत्रेयजी ! उस समय प्रत्येक कन्या ने यही समझा कि कृष्ण ने ही मेरा पाणिग्रहण किया है ॥१९॥ हे विप्र ! विश्व के रचयिता एवं विश्वरूप धारण करने वाले भगवान् श्रीहरि उन सभी के साथ नित्य रात्रि-निवास करते थे ॥२०॥

बत्तीसवां अध्याय

प्रद्युम्नाद्या हरेः पुत्रा रुक्मिण्यां कथितास्तव ।
भानुभौमेरिकाद्यांश्च सत्यभामा व्यजायत ।।१
दीप्तिमत्ताम्रपक्षाद्या रोहिण्यां तनया हरेः ।
बभूवुर्जाम्वत्यां च साम्बाद्या बलशालिनः ।।२
तनया भद्रविन्दाद्या नाग्नजित्यां महाबलाः ।
संग्रामजित्प्रधानास्तु शैव्यायी च हरेस्सुताः।। ३
वृकाद्याश्च सुता माद्रयां गात्रवत्प्रमुखान्सुतान् ।
अवाप लक्ष्मणा पुत्रान्कालिन्द्याश्च श्रुतादयः ।।४
अन्यासां चैव भार्याणां समुत्पन्नानि चक्रिणः ।
अष्टायुतानि पुत्राणां सहस्राणि शतं तथा ।।५
प्रद्युम्नः प्रथमस्तेषां सर्वेषां रुक्मिणीसुतः ।
प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूद्वज्रस्तस्मादजायत ।।६
अनिरुद्धो रणेऽरुद्धो बलेः पौत्री महाबलः ।
उषां बाणस्य तनयासुपयेमे द्विजोत्तमं ।।७
यत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशंकरयोर्महत् ।
छिन्नं सहस्रं बाहूनां यत्र बाणस्य चक्रिणा ।।८

श्री पराशरजी ने कहा--रुक्मिणी द्वारा उत्पन्न प्रद्युम्नादि प्रभु— पुत्रों के विषय में पहिले ही कहा जा चुका है। सत्यभामा के गर्भ से भानु और भौमेरिक आदि उत्पन्न हुए ।।१।। रोहिणी के दीप्तिमान् और ताम्रपक्ष तथा जाम्बवती के महा बलवान् साम्ब की उत्पत्ति हुई ।।२।। नाग्नजिती भद्रविन्दादि तथा शैव्या के संग्रामजित् आदि ने जन्म लिया।।३।।माद्री वृकादि, लक्ष्मणा से गात्रवान् आदि और कालिन्दी से श्रुतादि पुत्र उत्पन्न हुए।।४।। इसी प्रकार अन्य पत्नियों के भी अट्ठाईस हजार आठसौ पुत्रों का जन्म हुआ ।।५।। इन सभी रुक्मिणी सुत प्रद्युम्न बड़े थे, प्रद्युम्न का पुत्र अनिरुद्ध का पुत्र वज्र हुआ ।।६।। महाबली अनिरुद्ध की युद्ध में अबाध गति थी, उनका विवाह राजा बलि की पौत्री और बाणासुर की पुत्री उषा से हुआ ।।७।। उस विवाह

के अवसर पर श्रीकृष्ण और शंकर में संग्राम हुआ था तथा बाणासुर की हजार भुजायें काट डाली गईं थीं ॥८॥

कथं युद्धमभूद्ब्रह्मन्नुषार्थे हरकृष्णयोः ।
कथं क्षयं च वाणस्य वाहूनां कृतवान्हरिः ॥९
एसत्सर्वं महाभाग ममाख्यातुं त्वमर्हसि ।
महत्कौतूहलं जातं कथां श्रोतुमिमां हरेः ॥१०
उषा वाणसुता विप्र पार्वती सह शम्भुना ।
क्रीडन्तीमुपलक्ष्योच्चैः स्पृहां चक्रे तदाश्रयाम् ॥११
ततस्सकलचित्तज्ञा गौरी तामाह भामिनीम् ।
अलमत्यर्थतापेन भर्त्रा त्वमपि रंस्यसे ॥१२
इत्युक्ता सा तया चक्रे कदेति मतिमात्मनः ।
को वा भर्ता ममेत्याह पुनस्तामाह पार्वती ॥१३
वैसाखशुक्लद्वादश्यां स्वप्ने योऽभिभवं तव ।
करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति ॥१४

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! उषा के लिए कृष्ण-शंकर में संग्राम क्यों हुआ था और श्रीकृष्ण ने वाणासुर की भुजायें क्यों काट डाली थीं ॥९॥ हे महाभाग मैं उस कथा को सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ, अतः आप मुझसे उसका पूर्ण वर्णन करिये ॥ १० ॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे विप्र ! एक वार की बात है कि शंकर---पार्वती को क्रीडा-रत देखकर वाणासुर-सुता उषा ने भी अपने पति के साथ क्रीड़ा करने की इच्छा की ॥ ११ ॥ तब सबके चित्त को जानने वाली पार्वती जी ने उससे कहा कि—तू संताप न कर, समय आने पर तू भी अपने पति का संग प्राप्त करेगी ॥१२॥ उसके ऐसा कहने पर उषा ने यह सोच कर कि वह समय कब आयेगा, और मेरा पति कौन होगा ? इस विषय में पार्वतीजी से पूछा तो उन्होंने उससे पार्वतीजी बोली – हे राजकुमारी ! वैसाख शुक्ला द्वादशी की रात्रि में जिस पुरुष के साथ संगति करने का तू स्वप्न देखेगी, वही पुरुष तेरा पति होगा ॥१४॥

तस्यां तिथावुषास्वप्ने यथा देव्या समीरितम् ।
तथैवाभिभवं चक्रे कश्चिद्रागं च तत्र सा ॥१५
ततः प्रबुद्धा पुरुषमपश्यन्ती समुत्सुका ।
क्व गतोऽसीति निर्लज्जा मैत्रेयोक्तवती सखीम् ॥१६
बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ।
तस्याः सख्यभवत्सा च प्राह कोऽयं त्वयोच्यते ॥१७
यदा लज्जाकुला नास्यै कथयामास सा सखी ।
तदा विश्वासमानीय सर्वमेवाभ्यवादयत् ॥१८
विदितार्थां तु तामाह पुनश्चोषा यथोदितम् ।
देव्या तथैव तत्प्राप्तौ योह्यपायः कुरुष्व तम् ॥१९
दुर्विज्ञेयमिदं वक्तुं प्राप्तुं वापि न शक्यते ।
तथापि किञ्चित्कर्तव्यमुपकारं प्रिये तव ॥२०
सप्ताष्टदिनपर्यन्तोतावत्कालः प्रतीक्ष्यताम् ।
इत्युक्त्वाभ्यन्तरं गत्वा उपायं तमथाकरोत् ॥२१

श्री पराशरजी ने कहा—फिर उसी तिथि में उषा की सवप्नावस्था में जिस पुरुष ने पार्वती के वचनानुसार उससे संगति की थी, उसी से उषा का अनेराग होगया था ॥१५॥ हे मैत्रेयजी ! जब उसका स्वप्न भंग हुआ तब उसने उस पुरुष को देखकर उसे प्राप्त करने की कामना करके उसने अपनी सखी के सामने ही लज्जा त्याग कर कहा कि तुम कहाँ चले गये ? ॥१६॥ वाणासुर के मन्त्री कुम्भाण्ड की पुत्री चित्रलेखा उषा की सखी थी, उसने पूछा कि 'तुम यह किसके लिए कह रही हो ? ॥१७॥ परन्तु उषा ने उसे कुछ भी न बताया तो चित्रलेखा ने उसे विश्वास देकर उषा से सब वृत्तान्त पूछ लिया ॥१८॥ चित्रलेखा को जब यह बात विदित हो गई तब उषा ने उसे पार्वती जी के वचन भी सुना दिये और फिर उसने चित्रलेखा से उस पुरुष की प्राप्ति का उपाय करने को कहा ॥१९॥ चित्रलेखा बोली—हे प्रिय सखी ! तुम्हारे देखे हुए पुरुष को जब तक जान न लिया जाय तब तक उसका प्राप्त होना कैसे सम्भव है ? फिर भी मैं तुम्हारा कुछ कार्य बनाने का यत्न करूँगी ॥२०॥ तुम सात

आठ दिन तक प्रतीक्षा करो। यह कहकर उस पुरुष की खोज करने का उपाय करने के लिये वह अपने घर चली गई ॥२१॥

ततः पटे सुरान्दैत्यान्गन्धर्वांश्च प्रधानतः।
मनुष्यांश्च विलिख्यास्यै चित्रलेखा व्यदर्शयत् ॥२२
अपास्य सा तु गन्धर्वांस्तथोरगसुरासुरान्।
मनुष्येषु ददौ दृष्टिं तेष्वप्यन्धकवृष्णिषु ॥२३
कृष्णरामौ विलोक्यासीत्सुभ्रू र्लज्जाजडेव सा।
प्रद्युम्नदर्शने व्रीडादृष्टिं निन्येऽन्यतो द्विज ॥२४
दृष्टमात्रे ततः कान्ते प्रद्युम्नतनये द्विज।
दृष्ट्वात्यर्थंविलासिन्या लज्जा क्वापि निराकृता ॥२५
सोऽयं सोऽयमितीत्युक्ते तया सा योगगामिनी।
चित्रलेखाब्रवीदेनामुषां बाणसुतां तदा ॥२६

श्री पराशरजी ने कहा—फिर चित्रलेखा ने प्रमुख-प्रमुख देवताओं, दैत्यों, गन्धर्वों और मनुष्यों के चित्र बनाकर उषा को दिखाये ॥२२॥ उस समय उषा ने गन्धर्व, नाग, देवता, दैत्य आदि पर ध्यान नहीं दिया और अंधक तथा वृष्णिवंशी मनुष्यों को ही देखने लगी ॥२३॥ हे द्विज! बलराम और कृष्ण के चित्रों को देखकर वह लज्जा से जड़ के समान होगई और प्रद्युम्न को देखकर तो उसे बहुत ही लज्जा आई ॥२४॥ फिर प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को देखते ही, उसकी लज्जा नष्ट हो गई। ॥२५॥ और यही है, यही है कह उठी। उसके ऐसे वचन सुनकर चित्रलेखा ने उषा से कहा ॥२६॥

अयं कृष्णस्य पौत्रस्ते भर्ता देव्या प्रसादितः।
अनिरुद्ध इति ख्यातः प्रख्यातः प्रियदर्शनः ॥२७
प्राप्नोषि यदि भर्तारमिमं प्राप्तं त्वयाखिलम्।
दुष्प्रवेशा पुरी पूर्वं द्वारका कृष्णपालिता ॥२८
तथापि यत्नाद्भर्तारमानयिष्यामि ते सखि।
रहस्यमेतद्वक्तव्यं न कस्यचिदपि त्वया ॥२९

अचिरादागमिष्यामि सहस्व विरहं मम ।
ययौ द्वारवतीं चोषां समाश्वास्य ततः सखीम ॥३०

चित्रलेखा ने कहा—भगवती पार्वती ने प्रसन्न होकर कृष्ण के पौत्र इस अनिरुद्ध को ही तेरा पति बनाया है। यह अपनी सुन्दरता के लिये विख्यात हो रहा है ॥२७॥ इसे पति रूप में पाने पर तो तुझे सर्वस्व ही मिल जायगा, परन्तु श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित द्वारका में प्रथम तो घुसना ही दुष्कर है ॥२८॥ फिर भी हे सखि ! मैं तेरे पति को लाने का उपाय करूँगी, परन्तु तू इस गुप्त बात को किसी पर प्रकट न करना ॥२९॥ अब मैं जाती हूँ और शीघ्र ही लौटूँगी इस प्रकार उषा को अश्वासन देती हुई चित्रलेखा द्वारकापुरी के लिये चल दी ॥३०॥

तेतीसवां अध्याय

बाणोऽपि प्रणिपत्याग्रे मैत्रेयाह त्रिलोचनम् ।
देव बाहुसहस्रेण निर्विण्णोऽस्म्याहवं विना ॥१
कच्चिन्ममैषां बाहूनां साफल्यजनको रणः ।
भविष्यति विना युद्धं भाराय मम किं भुजैः ॥२
मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा बाण भविष्यति ।
पिशिताशिजनानन्दं प्राप्स्यसे त्वं तदारणम् ॥३
ततः प्रणम्य वरदं शम्भुमभ्यागतो गृहम् ।
सभग्नं ध्वजमालोक्य हृष्टो हर्षं पुनर्ययौ ॥४
एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम् ।
अनिरुद्धमथानिन्ये चित्रलेखा वराप्सरा ॥५
कन्यान्तःपुरमभ्येत्य रममाणं सहोषया ।
विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशंसुर्दैत्यभूपतेः ॥६
व्यादिष्टं किंकराणां तु सैन्यं तेन महात्मना ।
जघान परिघं घोरमादाय परवीरहा ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! एक बार भगवान् त्रिनेत्रेश से वाणासुर ने प्रणाम पूर्वक कहा था कि हे देव ! युद्ध के विना, इन हजार भुजाओं के कारण मुझे खेद हो रहा है ॥१॥ क्या कभी मेरी इन भुजाओं को सफल करने वाला संग्राम हो सकेगा ? क्योकि युद्ध के विना यह भुजाएँ भार स्वरूप प्रतीत हो रही हैं, फिर इनसे प्रयोजन ही क्या है ? ॥२॥ भगवान् शंकर ने कहा—हे वाणासुर ! जब तेरी मयूर-ध्वजा भंग हो जायगी तभी यक्षों और पिशाचों को प्रसन्न करने वाले संग्राम की प्राप्ति होगी ॥३॥ श्री पराशरजी ने कहा–तब वाणासुर ने वरदायक शिवजी को प्रणाम किया और अपने घर लौट आया। फिर कुछ समय व्यतीत होने पर उसकी ध्वजा टूट गई, जिसे देखकर उसे अत्यन्त हर्ष हुआ ॥४॥ इसी अवसर पर चित्रलेखा द्वारका जाकर अपने योग-बल के प्रभाव से अनिरुद्ध को वहाँ ले आई ॥५॥ जब अन्तःपुर के रक्षकों को अनिरुद्ध का उषा के साथ रहना ज्ञात हुआ, तब उन्होने बाणासुर के पास जाकर सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥६॥ यह सुनकर बाणासुर ने अपने सेवकों को अनिरुद्ध को पकड़ने की आज्ञा दी, परन्तु शत्रुओं को नष्ट करने वाले अनिरुद्ध ने उस सम्पूर्ण सेना को लोहे के एक दण्ड से छिन्न-भिन्न कर दिया ॥७॥

हतेषु तेषु बाणोऽपि रथस्थस्तद्वधोद्यतः।
युध्यमानो यथाशक्ति यदुवीरेण निर्जितः ॥८
मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रिचोदितः।
ततस्तं पन्नगास्त्रेण बबन्ध यदुनन्दनम् ॥९
द्वारवत्यां क्व यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम्।
यदूनामाचचक्षे तं बद्धं बाणेन नारदः ॥१०
तं शोणितपुरं नीतं श्रुत्वा विद्याविदग्धया।
योषिता प्रत्ययं जग्मुर्यादवा नामरैरिति ॥११
ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रागतं हरिः।
बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२

पुरप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमासीन्महात्मनः ।
ययौ वाणपुराभ्याशं नीत्वा तान्सङ्क्षतं हरिः ॥१३

जब वाणासुर के सेवक मारे गये तब वाणासुर अनिरुद्ध का वध करने के विचार से रथारूढ होकर अनिरुद्ध से युद्ध में प्रवृत हुआ परन्तु अपने जी-जान लगाकर भी वह अनिरुद्ध से हार गया ॥८॥ तब उसने मन्त्रियों के परामर्श से माया फैला कर अनिरुद्ध को नाग-पाश में जकड़ लिया ॥९॥ इधर द्वारका में अनिरुद्ध के सहसा अदृश्य हो जाने पर विविध प्रकार की बातें चल रहीं थी, तभी देवर्षि नारद ने अनिरुद्ध के नागपाश में बाँध जाने का समाचार दिया ॥१०॥ योग—विद्या में कुशल चित्रलेखा द्वारा अनिरुद्ध को शोणितपुर लें जाया गया यह सुनकर यादवों ने समझ लिया कि अनिरुद्ध का देवताओं ने अपहरण नहीं किया है ॥११॥ फिर स्मरण करने पर तत्काल उपस्थित हुए गरुड़ पर चढ कर वलराम और प्रद्युम्न के सहित श्रीकृष्ण वाणासुर के नगर को गये ॥१२॥ वहाँ पहुँचते ही उन तीनोंको शिव--पार्षद प्रथमगणो से सग्राम करना पड़ा । उनको मार कर वे बाणासुर के निकट जा पहुँचे ॥१३॥

ततस्त्रिपादस्त्रिशिरा ज्वरो माहेश्वरो महान् ।
वाणरक्षार्थमभ्येत्य युयुधे शार्ङ्गधन्वना ॥१४
तद्स्मस्पर्शसम्भूततापः कृष्णाङ्गसङ्गमात् ।
अवाप बलदेवोऽपि श्रममामीलतेक्षणः ॥१५
ततस्स युद्धचमानस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा ।
वैष्णवेन ज्वरेणाशु कृष्णदेहान्निराकृतः ॥१६
नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम् ।
तं वीक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देवः पितामहः ॥१७
ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य तं वैष्णवं ज्वरम् ।
आत्मन्येव लयं निन्ये भगवान्मधुसूदनः ॥१८
मम त्वया समं युद्धं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः ।
विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैनं ययो ज्वरः ॥१९

ततोऽग्नीन्भगवान्पञ्च जित्वा नीत्वा तथा क्षयम् ।
दानवानां बलं कृष्णश्चूर्णयामास लीलया ॥२०

उसके पश्चात् वाणासुर की रक्षा में जो तीन शिर और तीन पांव वाला माहेश्वर ज्वर नियुक्त था, उसने अग्रसर होकर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध किया ॥१३॥ उस ज्वर द्वारा प्रेरित भस्म के स्पर्श से श्रीकृष्ण भी संतप्त हो उठे और कृष्ण के अङ्गों के स्पर्श से बलरामजी ने भी शिथिलता को प्राप्त होकर अपने नेत्र बन्द कर लिये ॥१५॥ इस प्रकार जब वह माहेश्वर ज्वर श्रीकृष्ण के देह में व्याप्त होकर युद्ध कर रहा था, तब वैष्णव ज्वर ने आक्रमण करके उसे उनके शरीर से दूर का दिया ॥१६॥ उस समय भगवान् की भुजाओं के आघात को सहन न करने से संतप्त हुए उस माहेश्वर ज्वर को विह्वल देखकर ब्रह्माजी ने उसे क्षमा करने के लिये श्रीकृष्ण से कहा ॥१७॥ तब श्रीकृष्ण ने उसे क्षमा करके वैष्णव ज्वर को अपने देह में ही विलीन कर लिया ॥१८॥ तब माहेश्वर ज्वर ने कहा—आपके और मेरे मध्य में हुए इस युद्ध का जो स्मरण करेंगे, उन्हें ज्वर व्याप्त नहीं होगा। यह कहकर वह ज्वर चला गया ॥१९॥ फिर श्रीकृष्ण ने पंचाग्नियों को वशीभूत कर उन्हें नष्ट कर डाला और लीला पूर्वक ही दानवों को मारने लगे ॥२०॥

ततस्समस्तसैन्येन दैतेयानां बलेस्सुतः ।
युयुधे शंकरश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा ॥२१
हरिशंकरयोर्युद्धमतीवासीत्सुदारुणम् ।
चुक्षुभुस्सकला लोकाः शस्त्रास्त्रांशुप्रतापिताः ॥२२
प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागतः ।
मेनिरे त्रिदशास्तत्र वर्तमाने महारणे ॥२३
जृम्भकास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शंकरम् ।
ततः प्रणेशुर्दैतेयाः प्रमथाश्च समन्ततः ॥२४
जृम्भाभिभूतस्तु हरो रथोपस्थ उपाविशत् ।
न शशाक ततो योद्धुं कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥२५

गरुडक्षतवाहश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडितः ।
कृष्णहुङ्कारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुहः ॥२६

तदन्तर वलिपुत्र बाणासुर, भगवान् शङ्कर और स्वामी कार्तिकेयजी सम्पूर्ण दैत्य सेना के सहित आगे बढ़ कर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध में तत्पर हुए ॥१२॥ भगवान् श्रीहरि और शंकरजी में परस्पर अत्यन्त घोर संग्राम हुआ, जिसमें प्रयुक्त शस्त्रास्त्रों के तेज जाल से सम्पूर्ण लोक क्षुब्ध एवं संतप्त हो गये ॥२२॥ इस भयंकर युद्ध के होने से देवगण समझने लगे कि सम्पूर्ण विश्व का प्रलयकाल आ गया जान पड़ता हैं ॥२३॥ गोविन्द द्वारा प्रेरित जृम्भकास्त्र से शंकरजी झपकी और जमुहाई लेने लगे, उनकी ऐसी दशा देखकर दैत्यों और प्रमथों में भगदड़ मच गई ॥२४॥ भगवान् निद्रा से अभिभूत होकर रथ के पिछले भाग में बैठ कर महान् कर्मा कृष्ण से युद्ध करने में विफल रहे ॥२५॥ फिर स्वामी कार्तिकेय भी अपने वाहन के गरुड़ द्वारा मारे जाने से और श्रीकृष्ण की हुँकार तथा प्रद्युम्न के शस्त्रों से आहत होकर युद्ध भूमि से भाग निकले ॥२६॥

जृम्भिते शंकरे नष्टे दैत्यसैन्ये गुहे जिते ।
नीते प्रथमसैन्ये च सङ्क्षयं शार्ङ्गधन्वना ॥२७
नन्दिना सङ्गृहीताश्वमधिरूढो महारथम् ।
वाणस्तत्राययौ योद्धुं कृष्णकार्ष्णिवलैस्सह ॥२८
बलभद्रो महावीर्यो बाणसैन्यमनेकधा ।
विव्याध बाणैः प्रभ्रश्य धर्मतश्च पलायत ॥२६
आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुसलेनाशु ताडितम् ।
बलं बलेन ददृशे बाणो बाणैश्च चक्रिणा ॥३०
ततः कृष्णेन बाणस्य युद्धमासीत्सुदारुणम् ।
समस्यतोरिषून्दीप्तान्कायत्राणविभेदिनः ॥३१
कृष्णश्चिच्छेद बाणैस्तान्बाणेन प्रहिताञ्छितान् ।
विव्याध केशवं बाणो बाण विव्याध चक्रधृक् ॥३२

मुमुचाते तथास्त्राणि बाणकृष्णौ जिगीषया ।
परस्परं क्षतिकरौ लाघवादनिशं द्विज ॥३३

इस प्रकार शिवजी के झपकी लेने, दैत्य-सेना के नष्ट होने, स्वामि कार्तिकेय के पलायन करने और शिवगणों के क्षीण होने पर नन्दीश्वर द्वारा हाँके जाते हुए महारथ पर आरूढ़ हुआ बाणासुर कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न से युद्ध करने के लिये आया ॥२७-२८॥ तब महाबली रामजी ने बाण-वर्षा के द्वारा दैत्य-सेना को छिन्न-भिन्न किया, तब वह कायरता पूर्वक वहाँ से भाग चली ॥२९॥ उस समय बाणासुर ने देखा कि उसकी सेना को बलराम जी स्फूर्ति पूर्वक हल से खींचते और मूसल से मारते हैं तथा कृष्ण उसे बाणों से बींधे डालते हैं ॥३०॥ तब उसने श्रीकृष्ण के साथ महा संग्राम मचाया । दोनों ही कवच भेदी बाणों का प्रयोग करने लगे ॥३१॥ फिर जब श्रीकृष्ण ने बाणासुर द्वारा प्रयुक्त बाणों को काट डाला, तब बाणासुर ने उन्हें और उन्होंने बाणासुर को बाणों से बींधना आरम्भ किया ॥३२॥ हे द्विज ! उस समय बाणासुर और कृष्ण दोनों ही परस्पर में प्रहार करते हुए विजय की कामना से फुर्ती से आयुधों का आदान-प्रदान करने लगे ॥३३॥

भिद्यमानेष्वशेषेषुशरेष्वस्त्रेषु सीदति ।
प्राचुर्येण ततो बाण हन्तुं चक्रे हरिर्मनः ॥३४
ततोऽर्कशतसङ्घाततेजसा सदृशद्युति ।
जग्राह दैत्यचक्रारिर्हरिश्चक्रं सुदर्शनम् ॥३५
मुञ्चतो बाणनाशाय ततश्चक्रं मधुद्विषः ।
नग्ना दैतेयतिद्याभूत्कोटरी पुरतो हरेः ॥३६
तामग्रतो हरिर्दृष्ट्वा मीलिताक्षस्सुदर्शनम् ।
मुमोच बाणमुद्दिश्यच्छेत्तुं बाहुवनं रिपोः ॥३७
क्रमेण तत्तु बाहूनां बाणस्ताच्युतचोदितम् ।
छेदं चक्रेऽसुरापास्तशस्त्रौघक्षपणादृतम् ॥३८
छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्थं मधुसूदनः ।
मुमुक्षुर्बाणनाशाय विज्ञातस्त्रिपुरद्विषा ॥३९

समुपेत्याह गोविन्दं सामपूर्वमुमापतिः ।
विलोक्य बाणं दोर्दण्डच्छेदासृक्स्राववर्षिणम् ॥४०

अन्त में जब सभी वाण टूट गये और सभी शस्त्रास्त्र व्यर्थ हो गये, तब भगवान् श्रीहरि ने वाणासुर को नष्ट करने का निश्चय किया ॥३४॥ फिर दैत्यों के महान् शत्रु भगवान् हरि ने सैंकड़ों सूर्यों जैसे तेज वाले सुदर्शन चक्र को हाथ में ग्रहण किया ॥३५॥ जब वह उसे मारने के लिये अपने चक्र को छोड़ने में तत्पर हो रहे थे, तभी दैत्यों की विद्या कोटरी नग्नावस्था में श्रीकृष्ण के सामने आई ॥ ३६ ॥ उसे देखकर भगवान् ने अपने नेत्र बन्द कर लिये और वाणासुर की भुजाओं रूपी वन को काटने के लिये, उसे लक्ष्य करके चक्र प्रेरित किया ॥३७॥ तब उस चक्र ने दैत्यों द्वारा प्रेरित अस्त्रों को काटकर वाणासुर की भुजाओं को भी काटकर गिरा दिया ॥ ३८ ॥ तब भगवान् शङ्कर ने यह समझ कर कि अब श्रीकृष्ण इस वाणासुर का वध करने के लिये पुनः अपने चक्र को प्रेरित करने में तत्पर हैं ॥३०॥ तब वाणासुर के कटे हुए भुजदण्डा से रुधिर-धार प्रवाहित होती देखकर उन पार्वतीनाथ त्रिपुरारि शङ्कर ने भगवान् गोविन्द के पास आकर कहा ॥४०॥

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वां पुरुषोत्तमम् ।
परेशं परमात्मानमनादिनिधनं हरिम् ॥४१
देवतिर्यङ्मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका ।
लीलेयं सर्वभूतस्य तव चेष्टोपलक्षणा ॥४२
तत्प्रसीदाभयं दत्तं बाणस्यास्य मया प्रभो ।
तत्त्वया नानृतं कार्यं यन्मया व्याहृतं वचः ॥४३
अस्मत्संश्रयप्तोऽयं नापराधी तवाव्यय ।
मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वां क्षमयाम्यहम् ॥४४
इत्युक्तः प्राह गोविन्दः शूलपाणिमुमापतिम् ।
प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽसुरं प्रति ॥४५

भगवान् शङ्कर बोले—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! मुझे ज्ञात है कि आप परम पुरुष, परमात्मा और आदि—अन्त—विहीन श्रीहरि हैं

॥४१॥ आप देव, तिर्यक् और मनुष्यादि योनियों में उत्पन्न होते हैं, यह सब आप सर्वभूतात्मक प्रभु की लीला ही है ॥४२॥ हे प्रभो ! आप प्रसन्न हों। मैंने इस वाणासुर को जो अभयदान दिया है, मेरे उस वचन को आप भंग न कीजिये ॥४३॥ हे अव्यय ! इसने मेरे आश्रय के कारण इतना गर्वीला होने से ही आपका अपराध किया है, इसलिए यह आपका अपराधी नहीं है। इसे मैंने जो वर प्रदान किया था, उसकी रक्षा के लिये ही मैं इसे क्षमा करने के लिये आपसे आग्रह करता हूँ ॥४४॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् शंकर के वचन सुन कर श्रीकृष्ण ने वाणासुर के प्रति उत्पन्न हुए अपने क्रोध को त्याग दिया और प्रसन्न मुख होकर उनसे बोले ॥४५॥

युष्मद्दत्तवरो वाणो जीवतामेष शंकर ।
त्वद्वाक्यगौरवादेतन्मया चक्रं निवर्तितम् ॥४६
त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमखिलं मया ।
मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शंकर ॥४७
योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।
मत्तो नान्यदशेषं यत्तत्त्वं ज्ञातुमिहार्हसि ॥४८
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः ।
वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर ॥४९
प्रसन्नोऽहं गमिष्यामि त्वं गच्छ वृषभध्वज ॥५०

श्री भगवान् ने कहा—हे शंकर ! आपके वरदान के कारण यह वाणासुर जीवित रहे। आपका वचन भंग न हो, इसलिये मैं अपने चक्र को रोकता हूँ ॥४६॥ हे शिव ! आपने जो दिया है, उसे मेरे द्वारा ही दिया हुआ समझें, आप मुझे सदैव अपने से अभिन्न ही देखें ॥४७॥ जो मैं हूँ वही आप हैं। सम्पूर्ण विश्व— देवता, दैत्य, मनुष्यादि कोई भी तो मुझसे भिन्न नहीं है ॥४८॥ हे शंकर ! अविद्या से भ्रमित चित्त वाले मनुष्य ही हम दोनों में भेद कथन करते अथवा देखते हैं। हे वृषभध्वज ! आप गमन कीजिये, मैं भी अब जा रहा हूँ ॥४९-५०॥

इत्युक्त्वा प्रययौ कृष्णः प्राद्युम्निर्यत्र तिष्ठति ।
तद्बन्धफणिनो नेशुर्गरुडानिलपोथिताः ॥५१
ततोऽनिरुद्धमारोप्य सपत्नीकं गरुत्मति ।
आजग्मुर्द्वारकां रामकार्ष्णिदामोदराः पुरीम् ॥५२
पुत्रपौत्रैः परिवृतस्तत्र रेमे जनार्दनः ।
देवीभिस्सततं विप्र भूभारतरणेच्छया ॥५३

श्री पराशरजी ने कहा—ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अनिरुद्ध के पास पहुँचे। उनके वहाँ जाते ही अनिरुद्ध के लिये पाश रूप दुए सभी नाग गरुड़ के चलने से उत्पन्न हुए पवक के वेग से नाश को प्राप्त हुए ॥५१॥ फिर अनिरुद्ध को उसकी पत्नी उषा के सहित गरुड़ पर चढ़कर वलराम और प्रद्युम्न सहित श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में आ गये ॥५२॥ हे द्विज ! वहाँ पृथिवी का भार उतारने की इच्छा से अपने पुत्र पौत्रादि के सहित निवास करते हुए भगवान् अपनी रानियों के साथ क्रीड़ा करने लगे ॥५३॥

चौंतीसवां अध्याय

चक्रे कर्म महच्छौरिर्बिभ्राणो मानुषीं तनुम् ।
जिगाय शक्रं शर्वं च सर्वान्देवांश्च लीलया ॥१
यच्चान्यदकरोत्कर्म दिव्यचेष्टाविगातकृत् ।
तत्कथ्यतां महाभाग परं कौतूहलं हि मे ॥२
गदतो मम विप्रर्षे श्रूयतामिदमादरात् ।
नरावतारे कृष्णेन दग्धा वाराणसी यथा ॥३
पौण्ड्रको वासुदेवस्तु वासुदेवोऽभवद्भुवि ।
अवतीर्णस्त्वमित्युक्तो जनैरज्ञानमोहितैः ॥४
स मेने वासुदेवोऽहमवतीर्णो महीतले ।
नष्टस्मृतिस्ततस्सर्वं विष्णुचिह्नमचीकरत् ॥५
दूतं च प्रेषयामास कृष्णाय सुमहात्मने ।
त्यक्त्वा चक्रादिकं चिन्हं मदीयं नाम चात्मनः ॥६

वासुदेवात्मकं मूढ त्यक्त्वा सर्वमशेषतः ।
आत्मनो जीवितार्थाय ततो मे प्रणतिं व्रज ।।७

श्री मैत्रेयजी ने कहा—भगवान् विष्णु ने मनुष्य रूप में लीला पूर्वक ही इन्द्र, शङ्कर और सब देवताओं को परास्त कर दिया था ।।१।। परन्तु उन देवताओं की चेष्टाओं को व्यर्थ करने वाले उन प्रभु ने और भी जो महान् कर्म किये थे, वह सब मुझसे कहिये, क्योंकि उन्हें मैं सुन के लिये अत्यत उत्सुक हूँ ।।२।। श्री पराशरजी ने कहा—हे विप्रर्षे ! मनुष्य देह में स्थित हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने वाराणसी को जिस प्रकार दग्ध किया था, उसे ध्यानपूर्वक श्रवण करो ।।३।। पौण्ड्रवंश में वासुदेव नामक एक राजा हुआ था, जिसे अज्ञान से भ्रमे हुए मनुष्य वासुदेव रूप से अवत्तीर्ण हुआ कह कर उसकी स्तुति करते थे ।।४।। इससे वह भी यह मान बैठा कि मैंने ही वासुदेव रूप से भूतल पर अवतार लिया है। इस प्रकार अपने को भूल जाने के कारण उसने भगवान् विष्णु के सभी चिह्नों को धारण कर लिया ।।५।। फिर उसने भगवान् श्रीकृष्ण के पास दूत के द्वारा यह संदेशा भेजा कि अरे मूढ ! तू वासुदेव नाम और चक्रादि सब चिह्नों को अभी त्याग करदे और यदि अपना जीवन चाहता है तो मेरी शरण में उपस्थित हो ।।६.७।।

इत्युक्तस्सप्रहस्यैनं दूतं प्राह जनार्दनः ।
निजचिन्हमहं चक्रं समुत्स्रक्ष्ये त्वयीति वै ।।८
वाच्यश्च पौण्ड्रको गत्वा त्वया दूत वचो मम ।
ज्ञातस्त्वद्वाक्यसद्भावो यत्कार्यं तद्विधीयताम् ।।९
गृहीतचिह्नवेषोऽहमागमिष्यामि ते पुरम् ।
उत्स्रक्ष्यामि च तच्चक्रं निजचिह्नसशंसयम् ।।१०
आज्ञापूर्वं च यदिदमागच्छेति त्वयोदितम् ।
सम्पादयिष्ये श्वस्तुभ्यं समागम्याविलम्बितम् ।।११
शरणं ते समभ्येत्य कर्तास्मि नृपते तथा ।
यथा त्वत्तो भयं भूयो न मे किञ्चिद्भविष्यति ।।१२

इत्युक्तेऽपगते दूते संस्मृत्याभ्यागतं हरिः ।
गरुत्मन्तमथारुह्य त्वरितस्तत्पुरं ययौ ॥१३
ततस्तु केशवोद्योगं श्रुत्वा काशिपतिस्तदा ।
सर्वसैन्यपरीवारः पार्ष्णिग्राह उपाययौ ॥१४

दूत ने उसके संदेश को यथावत् श्रीकृष्ण को जा सुनाया, तब उन्होंने हँसते हुए कहा—हे दूत पौंड्रक को कहना कि मैं अपने चक्र रूप चिह्न को तेरे लिए अवश्य छोड़ूँगा। मैंने तेरे सन्देश का यथार्थ भाव ग्रहण कर लिया, अब तू जैसा चाहे वैसा कर ॥ ८-९ ॥ मैं अपने चिह्न और वेश के सहित तेरे यहाँ आकर इन्हें तेरे ऊपर ही छोड़ दूँगा ॥ १० ॥ और मैं तेरी आज्ञा का पालन करने के लिये कल ही तेरी शरण में उपस्थित होऊँ ॥ ११ ॥ मैं तेरी शरण में पहुँच कर तुझे भय—रहित करने का पूर्ण उपाय करूँगा ॥ १२ ॥ श्री पराशरजी ने कहा—श्रीकृष्ण जी की बात सुनकर दूत चला गया तब भगवान् ने गरुड़ का स्मरण किया, जिससे वह तत्काल आ गये। भगवान् उस पर चढ़कर पौण्ड्रक की राजधानी की ओर चल दिये ॥१३॥ यह सुन कर काशी नरेश भी पौण्ड्रक की सहायता के लिये अपनी सेना के सहित आ गया ॥१४॥

ततो बलेन महता काशिराजबलेन च ।
पौण्ड्रको वासुदेवोऽसौकेशवाभिमुखो ययौ ॥१५
तं ददर्श हरिर्दूरादुदारस्यन्दने स्थितम् ।
चक्रहस्तं गदाशार्ङ्गबाहुं पाणिगताम्बुजम् ॥१६
स्रग्धरं पीतवसनं सुपर्णरचितध्वजम् ।
वक्षःस्थले कृतं चास्य श्रीवत्सं ददृशे हरिः ॥१७
किरीटकुण्डलधरं नानारत्नोपशोभितम् ।
तं दृष्ट्वा भावगम्भीरं जहास गरुडध्वजः ॥१८
युयुधे च बलेनास्य हस्त्यश्वबलिना द्विजा ।
निस्त्रिंशासिगदाशूलशक्तिमुंकशालिना ॥१९
क्षणेन शार्ङ्गनिर्मुक्तैश्शरैररिविदारणैः ।
गदाचक्रनिपातैश्च सूदयामास तद्बलम् ॥२०

काशिराजबलं चैवं क्षयं नीत्वा जनार्दनः ।
उवाच पौण्ड्रकं मूढमात्मचिह्नोपलक्षितम् ॥२१

इसके पश्चात् काशी नरेश की सेना के साथ ही अपनी महान् सेना को लेकर पौण्ड्रक भगवान् वासुदेव के सामने आया ॥१६॥ भगवान् ने उसे हाथ में चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और पद्म धारण किये एक श्रेष्ठ रथ पर सवार हुए देखा ॥१६॥ उसके कण्ठ में वैजयन्ती माला, देह में पीताम्बर, वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिह्न और गरुड़ से चित्रित ध्वजा थी ॥१७॥ उसे विभिन्न प्रकार के रत्नादि से युक्त किरीट--कुण्डल धारण किये हुए देख कर गरुड़ध्वज भगवान् वासुदेव गम्भीरता पूर्वक हँस पड़े ॥१८॥ हे द्विज ! फिर उसकी अश्व—गजादि से सम्पन्न एवं निस्त्रिंश, खड्ग, गदा, शूल, शक्ति धनुष आदि आयुधों से सज्जित सेना के साथ युद्ध करने में तत्पर हुए ॥१९॥ भगवान ने शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले अपने तीक्ष्ण वाणों को शार्ङ्ग धनुष से छोड़ कर तथा गदा और चक्र से शत्रुओं पर प्रहार करके क्षण भर में ही उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर दिया ॥२०॥ इसी प्रकार काशीराज की भी सेना मार दी और अपने सामने सभी चिह्न धारण किये हुये पौण्ड्रक को देखकर उससे कहा ॥२१॥

पौण्ड्रकोक्तं त्वया यत्तु दूतवक्त्रेण मां प्रति ।
समुत्सृजेति चिह्नानि तत्तो सम्पदयाम्यहम् ॥२२
चक्रमेतत्समुत्सृष्टं गदेयं ते विसर्जिता ।
गरुत्मानेष चोत्सृष्टस्समारोहतु ते ध्वजम् ॥२३
इत्युच्चार्य विमुक्तेन चक्रेणासौ विदारितः ।
पातितो गदया भग्नो ध्वजश्चास्य गरुत्मता ॥२४
ततो हाहाकृते लोके काशिपुर्यधिपो बली ।
युयुधे वसुदेवेन मित्रस्यापचितौ स्थितः ॥२५
ततश्शार्ङ्गधनुर्मुक्तैश्छित्त्वा तस्य शिरश्शरैः ।
काशिपुर्यां स चिक्षेप कुर्वंल्लोकस्य विस्मयम् ॥२६
हत्वा तं पौण्ड्रकं शौरिः काशिराजं च सानुगम् ।
पुनर्द्वारवतीं प्राप्तो रेमे स्वर्गगतो यथा ॥२७

श्री भगवान् ने कहा—हे पौंड्रक ! तूने मुझे सन्देश भेजा था कि मेरे चिह्नों को छोड़ दे, इस लिये उस आज्ञा का पालन तेरे ही सामने करता हूँ ॥२२॥ देख, तेरे ऊपर यह चक्र छोड़ दिया, यह गदा भी छोड़ दी और अब गरुड़ को भी छोड़ रहा हूँ, जो ध्वजा पर चढ़ जाय ॥२३॥ श्रीपराशरजी ने कहा—यह कहकर छोड़े गये चक्र ने पौंड्रक को विदीर्ण कर दिया और गदा ने उसे धराशायी किया तथा गरुड़ ने उसकी ध्वाजा काट डाली ॥२४॥इस पर सब सेना में हा-हाकार मच गया। यह देख कर मित्र के प्रतिशोधार्थ काशिराज ने श्रीकृष्ण से युद्ध किया ॥२५॥ तब भगवान ने एक बाण से ही उसका मस्तक काट कर काशीपुरी में फेंक दिया, इससे सभी आश्चर्य करने लगे ॥२६॥ इस प्रकार पौंड्रक और काशीराज का सम्पूर्ण सेना सहित संहार करने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका में आकर स्वर्ग के समान उसे भोगने लगे ॥२७॥

तच्छिरः पतितं तत्र दृष्ट्वा काशिपतेः पुरे।
जनः किमेतदित्याह च्छिन्नं केनेति विस्मितः ॥२८
ज्ञात्वा तं वासुदेवेन हतं तस्य सुतस्ततः।
पुरोहितेन सहितस्तोषयामास शंकरम् ॥२९
अविमुक्ते महाक्षेत्रे तोषितस्तेन शंकरः।
वरं वृणीष्वेति तदा तं प्रोवाच नृपात्मजम् ॥३०
स वव्रे भगवन्कृत्या पितृहन्तुर्वधाय मे।
समुत्तिष्ठतु कृष्णस्य त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥३१
एवं भविष्यतीत्युक्ते दक्षिणाग्नेनरन्तरम्।
महाकृत्या समुत्तस्थौ तस्यैवाग्नेर्विनाशिनी ॥३२
यतो ज्वालाकरालास्या ज्वलत्केशकपालिका।
कृष्ण कृष्णेति कुपिता कृत्या द्वारवतीं ययौ ॥३३

इधर जब काशी नगरी में काशिराज का शिर जाकर गिरा तब सभी नगर निवासी आश्चर्य पूर्वक उससे बोले—यह क्या हुआ, इस

मस्तक को किसने काटा ? ॥ २८ ॥ फिर काशीराज को पता लगा कि उसे श्रीकृष्ण ने मारा है, तो अपने पुरोहित की सहायता से उसने भगवान् शंकर को प्रसन्न किया ॥२९॥ उस अविमुक्त महाक्षेत्र में प्रसन्न हुए भगवान् शङ्कर ने प्रकट होकर उस राजपुत्र से कहा—'वर माँग' ॥३०॥ इस पर उसने कहा—हे महेश्वर ! हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि मेरे पिता को मारने वाले कृष्ण के विनाशार्थ कृत्या उत्पन्न हो जाय ॥३१॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् शङ्कर बोले कि 'ऐसा ही होगा।' उनके ऐसा कहने पर दक्षिणाग्नि का चयन करने पर उससे उसी अग्नि को नष्ट करने वाली कृत्या उत्पन्न हो गई ॥३२॥ उसका ज्वाला-मालाओं से परिपूर्ण विकराल मुख और अग्नि शिखा के समान प्रज्वलित केश थे। ऐसी वह कृत्या कृष्ण ! कृष्ण ! पुकारती हुई क्रोधपूर्वक द्वारकापुरी में जा पहुँची ॥३३॥

तामवेक्ष्य जनस्त्रासाद्विचलल्लोचनो मुने ।
ययौ शरण्यं जगतां शरणं मधुसूदनम् ॥३४
काशिराजसुतेनेयमाराध्य वृषभध्वजम् ।
उत्पादिता महाकृत्येत्यवगम्याथ चक्रिणा ॥३५
जहि कृत्यामिमामुग्रां वह्निज्वालाजटालकाम् ।
चक्रमुत्सृष्टमक्षेषु क्रीडासक्तेन लीलया ॥३६
तदग्निमालाजटिलज्वालोद्गारातिभीषणाम् ।
कृत्यामनुजगामाशु विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥३७
चक्रप्रतापनिर्दग्धा कृत्या माहेश्वरी तदा ।
ननाश वेगिनी वेगात्तदप्यनुजगाम ताम् ॥३८
कृत्या वाराणसीमेव प्रविवेश त्वधान्विता ।
विष्णुचक्रप्रतिहतप्रभावा मुनिसत्तम ॥३९
ततः काशीबलं भूरिप्रमथानां तथा बलम् ।
समस्तशस्त्रास्त्रयुतं चक्रस्याभिमुखं ययौ ॥४०

हे मुने ! उसे देखकर सभी द्वारका निवासी भय से व्याकुल हो

उठे और तत्काल ही भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में जा पहुँचे ।। ३४ ।। तब जुआ खेलने में लगे हुए भगवान् ने उस कृत्या को काशिराज के पुत्र द्वारा उत्पन्न हुए शङ्कर के प्रसाद से वहाँ आई हुई जान कर अपने चक्र को आदेश दे दिया कि इस ज्वालामयी भयङ्करी कृत्या को नष्ट कर दे ।।३५-३६।। आज्ञा पाते ही उस छूटे हुए सुदर्शन चक्र ने अग्निमुख के कारण भयानक मुख वाली उस कृत्या का पीछा किया ।।३७।। तब उस चक्र के तेज से जलती हुइ कृत्या छिन्न-भिन्न होती हुई द्रुतवेग से भागी और चक्र ने भी उसका उसी वेग से पीछा किया ।।३८।। हे मुनिसत्तम ! चक्र के तेज से प्रभावहीन हुई वह कृत्या उल्टी लौटकर काशी में ही जा पहुँची ।।३९।। उस समय शिवजी के प्रथमगण और काशिराज की सम्पूर्ण सेना शस्त्रास्त्रों में सजकर उस चक्र के सामने आ गये ।।४०।।

शस्त्रास्त्रसोक्षचतुरं दग्ध्वा तद्बलमोजसा ।
कृत्यागर्भामशेषां तां तदा वाराणसी पुरीम् ।।४१
सभूभृद्भृत्यपौरां तु साश्वमातङ्गमानवाम् ।
अशेषगोष्ठकोशां तां दुर्निरीक्ष्यां सुरैरपि ।।४२
ज्वालापरिष्कृताशेषगृहप्राकारचत्वराम् ।
ददाह तद्धरेश्चक्रं सकलामेव तां पुरीम् ।।४३
अक्षीणामर्षमत्युग्रसाध्यसाधनसस्पृहम् ।
तच्चक्रं प्रस्फुरद्दीप्ति विष्णोरभ्याययौ करम् ।।४४

उस समय उस चक्र ने अपने तेज से सब प्रकार के आयुधों के प्रेरण में अभ्यस्त उस सम्पूर्ण सेना को भस्म कर उस कृत्या के सहित काशीपुरी को दग्ध करना आरम्भ किया ।।४१।। जो वाराणसी राजा,प्रजा, सेवक, हाथी,घोड़े और मनुष्यादि से परिपूर्ण,सभी गोष्ठों और कोशों से सम्पन्न तथा देवताओं के लिए दुर्लभ दर्शन थी, उसे उस विष्णु चक्र ने घर कोट, चबूतरे आदि के सहित भस्म कर दिया ।।४२-४३।। अन्त से वह अशान्त तथा उग्रकर्मा अत्यन्त तेजोमय चक्र वहाँ से लौटकर पुनः भगवान् के हाथ में जा पहुँचा ।।४४।।

पैंतीसवां अध्याय

भूय एवाहमिच्छामि बलभद्रस्य धीमतः ।
श्रोतुं पराक्रमं ब्रह्मन् तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१
यमुनाकर्षणादीनि श्रुतानि भगवन्मया ।
तत्कथ्यतां महाभाग यदन्यत्कृतवान्बलः ॥२
मैत्रेय श्रूयतां कर्म यद्रामेणाभवत्कृतम् ।
अनन्तेनाप्रमेयेन शेषेण धरणीधृता ॥३
सुयोधनस्य तनयां स्वयंवरकृतक्षणाम् ।
बलादादत्तवान्वीरस्साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥४
ततः क्रुद्धा महावीर्याः कर्णदुर्योधनादयः ।
भीष्मद्रोणादयश्चैनं बबन्धुर्युधि निर्जितम् ॥५
तच्छ्रुत्वा यादवास्सर्वे क्रोधं दुर्योधनादिषु ।
मैत्रेय चक्रुः कृष्णश्च तान्निहन्तुं महोद्यमम् ॥६
तान्निवार्य बलः प्राह मदलोलकलाक्षरम् ।
मोक्ष्यन्ति ते मद्वचनाद्यास्याम्येको हि कौरवान् ॥७

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब मैं बलरामजी के पराक्रम का वृत्तान्त सुनने का उत्सुक हूँ, उसे कहिये ॥ १ ॥ यमुना को खींचने आदि पराक्रम तो सुन चुका, अब उनके अन्य कार्यों को बतलाइये ॥२॥ श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रैयजी ! गोपावतार श्री बलरामजी द्वारा किये गये कर्मों को मुझसे सुनो ॥३॥ एक बार जाम्बवती-पुत्र साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री के स्वयंवर से उसे बल पूर्वक हर लिया था ॥४॥ तब महाबली कर्ण, दुर्योधन, भीष्म, द्रोण आदि ने क्रोधित होकर उसे बाँध कर अपने वश में कर लिया ॥५॥ यह समाचार मिलने पर श्रीकृष्णादि यदुवंशियों ने अत्यन्त क्रोधित होकर उनको मारने के लिए भारी तैयारी की ॥ ६ ॥ बलरामजी ने उन्हें रोकते हुए कहा कि मेरे

कहने मात्र से कौरवगण साम्ब को मुक्त कर देंगे, इसलिये मैं अकेला ही वहाँ जाता हूँ ॥७॥

बलदेवस्ततो गत्वा नगरं नागसाह्वयम् ।
बाह्योपवनमध्येऽभून्न विवेश च तत्पुरम् ॥८
बलमागतमाज्ञाय भूपा दुर्योधनादयः ।
गामर्घ्यमुदकं चैव रामाय प्रत्यवेदयन् ॥९
गृहीत्वा विधिवत्सर्वं ततस्तानाह कौरवान् ।
आज्ञापयत्युग्रसेनस्साम्बमाशु विमुञ्चत ॥१०
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणादयो नृपाः ।
कर्णदुर्योधनाद्याश्च चुक्षुभुर्द्विजसत्तम ॥११
ऊचश्च कुपितास्सर्वे बाह्लिकाद्याश्च कौरवाः ।
अराज्यार्हं यदोर्वंशमवेक्ष्य मुसलायुधम् ॥१२
भो भो किमेतद्भवता बलभद्रेरितं वचः ।
आज्ञां कुरुकुलोत्थानां यादवः कः प्रदास्यति ॥१३
उग्रसेनोऽपि यद्याज्ञां कौरवाणां प्रदास्यति ।
तदलं पाण्डुरैश्छत्रैर्नृपयोग्यैर्विडम्बनैः ॥१४

श्री पराशरजी ने कहा—इसके पश्चात् बलरामजी हस्तिनापुर पहुँच कर नगर से बाहर एक उद्यान में ठहर गये ॥८॥ बलरामजी के वहाँ आने का समाचार सुनकर दुर्योधनादि ने गौ, अर्घ्य और पाद्यादि के निवेदन पूर्वक उनका सत्कार किया ॥९॥ उसे स्वीकार करके बलरामजी ने उनसे कहा—राजा उग्रसेन की आज्ञा है कि आप साम्ब को मुक्त कर दें ॥१०॥ हे द्विजसत्तम ? यह सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधनादि अत्यन्त क्षुब्ध हुए ॥११॥ और यदुवंश को राज्य के अयोग्य समझ कर क्रोध पूर्वक बलरामजी से बोले ॥१२॥ हे बलरामजी ! आप क्या कहते हैं ? कौन-सा यदुवंशी बीर किसी कौरव वीर को आज्ञा देने में समर्थ है ? ॥१३॥ यदि उग्रसेन जैसे भी कौरवों को आज्ञा दे सकते हैं तो कौरवों को इस श्वेत राजछत्र के धारण की क्या आवश्यकता है ? ॥१४॥

तद्गच्छ बल मा वा त्वं साम्वमन्यायचेष्टितम् ।
विमोक्ष्यामो न भवतश्चोग्रसेनस्य शासनात् ॥१५
प्रणतिर्या कृतास्माकं मान्यानां कुकुरान्धकैः ।
ननाम सा कृता केयमाज्ञा स्वामिनि भृत्यतः ॥१६
गर्वमारोपिता यूयं समानासनभोजनैः ।
को दोषो भवतां नीतिर्यत्प्रीत्या नावलोकिता ॥१७
अस्माभिरर्घ्यो भवतो योऽयं वल निवेदितः ।
प्रेम्णैतन्नैतदस्माकं कुलाद्युष्मत्कुलोचितम् ॥१८
इत्युक्त्वा कुरवः साम्वं मुञ्चामो न हरेस्सुतम् ।
कृतैकनिश्चयातूर्णं विवशुर्गजसाह्वयम् ॥१९
मत्तः कोपेन चाघूर्णस्ततोऽधिक्षेपजन्मना ।
उत्थाय पार्ष्ण्या वसुधां जघान स हलायुधः ॥२०
ततो विदारिता पृथ्वी पार्ष्णिघातान्महात्मनः ।
आस्फोटयामास तदा दिशश्शब्देन पूरयन् ॥२१

इसलिये हे वलरामजी ! तुम जाओ या रहो, परन्तु हम तुम्हारी अथवा उग्रसेन की आज्ञा पर साम्व को मुक्त नहीं करेंगे ॥१५॥ पहिले सभी यदुवंशी हमें प्रणाम करते थे, परन्तु अव ये वैसा न करके सेवक होते हुए भी स्वामी को कैसे आज्ञा दे रहे हैं ? ॥१६॥ तुम्हारे साथ समान व्यवहार करके हमने ही तुम्हें चढ़ा दिया है, इसमें तुम्हारा भी कुछ दोष नहीं है, हमने ही प्रेम के वशीभूत होकर नीति पर ध्यान नहीं दिया था ॥१७॥ हे वलराम ! तुम्हें यह अर्घ्यादि भी हमने प्रेमवश ही दिया है, यथार्थ रूप में तो हमारे द्वारा तुम्हारा सम्मान किया जाना अनुचित ही है ॥१८॥ श्री पराशरजी ने कहा—कृष्ण-पुत्र साम्व को वन्धन मुक्त न करने का निश्चय प्रकट करके सब कौरवगण उसी समय नगर में चले गये ॥१९॥ इस प्रकार तिरस्कृत हुए वलरामजी ने रोष पूर्वक पृथिवी में पद--प्रहार किया ॥२०॥ इससे पृथिवी फट गई और वलरामजी अपने शब्द से सब दिशाओं को गुंजार कम्पित करने लगे ॥२१॥

उवाच चातिताम्राक्षो भृकुटीकुटिलाननः ।
अहो मदावलेपोऽयमसाराणां दुरात्मनाम् ॥२२
कौरवाणां महीपत्वमस्माकं किल कालजम् ।
उग्रसेनस्य येनाज्ञां मत्यन्तेऽद्यापि लंघनम् ॥२३
उग्रसेन समध्यास्ते सुधर्मां न शचीपतिः ।
धिङ् मानुषशतोच्छिष्टे तुष्टिरेषां नृपासने ॥२४
पारिजाततरोः पुष्पमञ्जरीर्वनिताजनः ।
बिभर्ति यस्य भृत्यानां सोऽप्येषां न महीपतिः ॥२५
समस्तभूभृतां नाथ उग्रसेनस्स तिष्ठतु ।
अद्य निष्कौरवीमुर्वीं कृत्वा यास्यामि तत्पुरीम् ॥२६
कर्णं दुर्योधनं द्रोणमद्य भीष्मं सवाह्लिकम् ।
दुश्शासनादीन्भूरिं च भूरिश्रवसमेव च ॥२७
मोमदत्तं शलं चैव भीमार्जुनयुधिष्ठिरान् ।
यमौ च कौरवांश्चान्यान्हत्वा साश्वरथद्विपान् ॥२८
वीरमादाय तं साम्बं सपत्नीकं ततः पुरीम् ।
द्वारकामुग्रसेनादीन्गत्वा द्रक्ष्यामि वान्धवान् ॥२९
अथवा कौरवावासं समस्तै कुरुभिस्सह ।
भागीरथ्यां क्षिपाम्याशु नगरं नागसाह्वयम् ॥३०

बलरामजी की भ्रकुटी टेढ़ी और आँखें लाल हो गयी, उन्होंने कहा-- यह दुरात्मा कौरव राजमद में कैसे उन्मत्त सो गये हैं ? वह समझते हैं कि हमारा भूपालत्व स्वयं ही सिद्ध है, इसीलिये महाराज उग्रसन की आज्ञा का तिरस्कार कर रहे हैं ॥२२-२३॥ आज महाराज उग्रसेन उस सुधर्मा सभामें बैठते हैं, जिसमें इन्द्र भी नहीं बैठ सकते । इन उच्छिष्ट सिंहासन पर बैठने वाले कौरवों की धिक्कार है ॥२४॥ जिनके भृत्यों की पत्नियाँ पारिजात पुष्पों से शृङ्गार करती हैं, वह महाराज उग्रसेन इनके लिये आदरणीय नहीं हैं ? ॥२५॥ वही उग्रसेन सब राजाओं के सिरताज बन कर रहेंगे । आज में अकेला ही इस पृथिवी को कौरवों से शून्य करके उनकी द्वारकापुरी को लौटूँगा ॥२६॥ कर्ण, दुर्योधन, द्रोण,

भीष्म, बाह्लिक, दुःशासन, भूरि, भूरिश्रवा, सोमदत्त, शल, भीम, अर्जुन, युधिष्ठर, नकुल, सहदेवादि जितने भी कौरव हैं उन सबका सेना सहित वध करके और पत्नी सहित साम्ब को लेकर ही मैं द्वारका को लौटूंगा ॥२७-२९॥ अथवा सब कौरवों सहित उनके हस्तिनापुर को ही मैं आज गङ्गा में डुबाये दे रहा हूँ ॥३०॥

इत्युक्त्वा मदरक्ताक्षः कर्षणाधोमुखं हलम् ।
प्राकारवप्रदुर्गस्य चकर्ष मुसलायुधः ॥३१
आघूर्णितं तत्सहसा ततो वै हास्तिनं पुरम् ।
दृष्ट्वा संक्षुब्धहृदयाश्चुक्षुभुः सर्वकौरवाः ॥३२
राम राम महाबाहो क्षम्यतां क्षम्यतां त्वया ।
उपसंह्रियतां कोप प्रसीद मुसलायुध ॥३३
एष साम्बस्सपत्नीकस्तव निर्यातितो बल ।
अविज्ञातप्रभावाणां क्षम्यतामपराधिनाम् ॥३४
ततो निर्यातयामासुस्साम्बं पत्नीसमन्वितम् ।
निष्क्रम्य स्वपुरात्तूर्णं कौरवा मुनिपुङ्गव ॥३५
भीष्मद्रोणकृपादीनां प्रणम्य वदतां प्रियम् ।
क्षान्तमेव मयेत्याह बलो बलवतां वरः ॥३६
अद्याप्याघूर्णिताकारं लक्ष्यते तत्पुरं द्विज ।
एष प्रभावो रामस्य बलशौर्योपलक्षणः ॥३७
ततस्तु कौरवास्साम्बं सम्पूज्य हलिना सह ।
प्रेषयामासुरुद्वाहधनभार्यासमन्वितम् ॥३८

श्री पराशरजी ने कहा—यह कहकर बलरामजी ने हस्तिनापुर के खाई और दुर्ग के सहित आकार मूल में हल की नोंक को लगाकर उसे खींचा ॥३१॥ उससे सम्पूर्ण नगर काँपने लगा यह देखकर समस्त कौरव भय-भीत हो गये ॥३२॥ उन्होंने कहा—हे बलराम ! हे महाबाहो ! हमें क्षमा करो । अपने क्रोध को शान्त करके प्रसन्न होओ ॥३३॥ हम इस साम्ब को इसी भार्या के सहित आपको सौंपते हैं । आपका प्रभाव न जानने के कारण हमसे जो अपराध बना है, उसे क्षमा करिये ॥३४॥

श्री पराशरजी बोले—हे मुनिवर ! कौरवों ने साम्ब को पत्नी सहित बलरामजी के पास लाकर सौंप दिया तब भीष्म, द्रोण, कृप आदि से बलरामजी ने कहा कि अच्छा, क्षमा करता हूँ ।।३५-३६।। हे द्विज ! हस्तिनापुर अब भी कुछ झुका हुआ-सा दिखाई देता है, यह बलरामजी की वीरता का प्रभाव समझो ।।३७।। फिर कौरवों ने बलरामजी सहित साम्ब का पूजन कर बहुत-सी दात और भार्या के सहित द्वारका के लिये विदा किया ।।३८।।

छत्तीसवां अध्याय

मैत्रेयैतद्बलं तस्य बलस्य बलशालिनः ।
कृतं यदन्यत्तेनाभूत्तदपि श्रूयतां त्वया ।।१
नरकस्यासुरेन्द्रस्य देवपक्षविरोधिनः ।
सखाभवन्महावीर्यो द्विविदो वानरर्षभः ।।२
वैरानुबन्धं बलवान्स चकार सुरान्प्रति ।
नरकं हतवान्कृष्णो देवराजेन चोदितः ।।३
करिष्ये सर्वदेवानां तस्मादेतत्प्रतिक्रियाम् ।
यज्ञविध्वंसनं कुर्वन् मर्त्यलोकक्षयं तथा ।।४
ततो विध्वसयामास यज्ञानज्ञानमोहितः ।
विभेद साधुमर्यादां क्षयं चक्रे च देहिनाम् ।।५
ददाह सवनान्देशान्पुरग्रामान्तराणि च ।
क्वचिच्च पर्वताक्षेपैर्ग्रामादीन्समचूर्णयत् ।।६
शैलानुत्पाट्य तोयेषु मुमोचाम्बूनिधौ तथा ।
पुनश्चार्णवमध्यस्थः क्षोभयामास सागरम् ।।७

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रयजी ! बलरामजी का ऐसा ही प्रभाव था, अब उनके अन्य कर्मों को सुनो ।।१।। देवताओं के द्रोही नरकासुर का मित्र द्विविद नामक एक अत्यन्त बली बन्दर था ।।२।।

इन्द्र की प्रेरणा से श्रीकृष्ण ने नरकासुर को मारा था, इसीलिये द्विविद ने देवताओं से शत्रुता ठान ली ॥ ३ ॥ मैं मर्त्यलोक को क्षीण करके यज्ञादि को वन्द कर दूँगा, इससे देवताओं से बदला ले लिया जायगा ॥४॥ ऐसा निश्चय करके वह यज्ञों को विध्वंस करने साधुओं की तर्यादा को नष्ट करने और शरीर धारियों को मारने लगा ॥५॥ वह वन, देश, पुर और ग्रामादि कों भस्म करता या उन पर पर्वतादि को गिरा देता है ॥६॥ कभी समुद्र में पर्वत-शिला फेंकता तो कभी समुद्र में घुसकर उसमें क्षोभ उत्पन्न करया है ॥७॥

तेन विक्षोभितश्चाब्धिरुद्वेलो द्विज जायते ।
प्लावयंस्तीरजान्ग्रामान्पुरादीनतिवेववान् ॥८
कामरूपी महारूपं कृत्वा सस्यान्यशेषतः ।
लुठन्भ्रमणसम्मर्दैस्सञ्चूर्णयति वानरः ॥९
तेन विप्र कृतं सर्वं जगदेतद्दुरात्मना ।
निस्स्वाध्यायवषट्कारं मैत्रेयासीत्सुदुःखितम् ॥१०
एकदा रैवतोद्याने पपौ पानं हलायुधः ।
रेवती च महाभागा तथैवान्या वरस्त्रियः ॥११
उद्गीयमानो विलसल्ललनामौलिमध्यगः ।
रेमे यदुकुलश्रेष्ठः कुबेर इव मन्दरे ॥१२
ततस्स वानरोऽभ्येत्य गृहीत्वा सीरिणो हलम् ।
मुसलं च चकारास्य सम्मुखं च विडम्बनम् ॥१३
तथैव योषितां तासां जहासाभिमुखं कपिः ।
पानपूर्णांश्च करकाञ्चिक्षेपाहत्य वै तदा ॥१४

तब वह क्षुभित हुआ समुद्र अपने तटवर्ती ग्राम आदि को डुबा देता ॥८॥ अब वह कामरूपी वन्दर विशाल रूप धारण कर खेतों पर लेट जाता तब सभी धान्यों को कुचल कर नष्ट कर देता है ॥९॥ उस पापी ने सम्पूर्ण विश्व को यज्ञ और स्वाध्याय से विमुख कर दिया इससे दुःखों की अत्यन्त वृद्धि हुई ॥१०॥ एक दिन वलरामजी रैवतोद्यान में रेवती और अन्य सुन्दरियों के साथ वैठे हुए मद्य पी रहे थे ॥११॥ मन्दराचल

पर कुबेर के क्रीडा करने के समान ही स्त्रियों द्वारा गायन--वादन चलने पर उनके मध्य में सुशोभित थे ॥१२॥ उसी समय वहां वह द्विविद नाम का बन्दर आ गणा और वलरामजी के हल-मूसल उठा कर उनकी नकल बनाने लगा ॥१३॥ फिर उसने मदिरा के घड़े को फोड़ फेंका और स्त्रियों की ओर घूर-घूर कर हँसने लगा ॥१४॥

ततः पकपरीतात्मा भर्त्सयामास तं हली ।
तथापि तमवज्ञाय चक्रे किलकिलध्वनिम् ॥१५
ततः स्मयित्वा स बलो जग्राह मुसलं रुषा ।
सोऽपि शैलशिलां भीमां जग्राह प्लवगोत्तमः ॥१६
चिक्षेप स च तां क्षिप्तां मुसलेन सहस्रधा ।
बिभेद यादवश्रेष्ठस्मा पपात महीतले ॥१७
अथ तन्मुसलं चासौ समुल्लंघच्य प्लवङ्गमः ।
वेगेनागत्य रोषेण करेणोरस्यताडयत् ॥१८
ततो बलेन कोपेन मुष्टिना मूर्ध्नि ताडितः ।
पपात रुधिरोद्गारी द्विविदः क्षीणजीवितः ॥१९
पतता तच्छरीरेण गिरेश्शृङ्गमशीर्यत ।
मैत्रेय शतधा वज्रिवज्रेणेव विदारितम् ॥२०
पुष्टवृष्टिं ततो देवा रामस्योपरि चिक्षिपुः ।
प्रशशंसुस्ततोऽभेत्य साध्वेतत्तो महत्कृतम् ॥२१
अनेन दुष्टकपिना दैत्याक्षोपकारिणा ।
जगन्निराकृतं वीर दिष्टचा स क्षयमागतः ॥२२
इत्युक्त्वा दिवमाजग्मुर्वा हृष्टस्सगुह्यकाः ॥२३
एवंविधान्यनेकानि बलदेवस्य धीमतः ।
कर्माण्यपरिमेयानि शेषस्य धरणीभृतः ॥२४

इस पर वलरामजी ने उा ललकारा तो वह उनको तिरस्कार पूर्वक किलकारी मारने लगा ॥१५॥ यह देखकर वलरामजी ने अपना मूसल उठाया तो उस गन्दर ने भी एक भारी शिला उठा ली ॥१६॥ उसने

वह शिला बलरामजी पर फेंकी तो उन्होंने अपने मूसल से उसके हजारों खण्ड करके पृथिवी पर गिरा दी ।।१७।। तब वन्दर ने वलरामजी के मूसल की मार से वचकर उनकी छाती में बड़े वेग से मुष्टिका का प्रहार किया ।।१८।। तब उन्होंने क्रोध पूर्वक उस बन्दर के सिर में घूँसा मार कर पृथिवी पर गिरा दिया और वह रक्त वमन करता हुआ समाप्त हो गया ।।१९।। उस वन्दर के गिरने से, जैसे इन्द्र के वज्र से पर्वत विदीर्ण होते हैं, वैसे ही पर्वत–शिखर के सैकड़ों खण्ड हो गये ।।२०।। उस समय देवताओं ने बलरामजी पर पुष्प वृष्टि करते हुए उनकी स्तुति की ।।२१।। उन्होंने कहा कि जगत् को घोर त्रास देने वाला यह दुष्ट बन्दर आज आपके द्वारा नष्ट हो गया, यह कितने सौभाग्य की वात हुई है, यह कहते हुए सभी देवगण प्रसन्न होते हुए स्वर्गलोक को गये ।।२२-२३।। श्री पराशरजी ने कहा—शेषावतार श्री बलरामजी के ऐसे असंख्य कर्म हैं, जिनकी गणना सम्भव नहीं है ।।२४।।

सैंतीसवां अध्याय

एवं दैत्यवधं कृष्णो वलदेवसहायवान् ।
चक्रे दुष्टक्षितीशानां तथैव जगतः कृते ।।१
क्षितेश्च भारं भगवान्फाल्गुनेन समन्वितः ।
अवतारयामास विभुस्समस्ताक्षौहिणीवधात् ।।२
कृत्वा भारावतरणं भुवो हत्वाखिलान्नृपान् ।
शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान्कुलम् ।।३
उत्सृज्य द्वारकां कृष्णस्त्यक्त्वा मानुष्यमात्मनः ।
सांशो विष्णुमयं स्थानं प्रविवेश मुने निजम् ।।४
स विप्रशापव्याजेन संजह्रे स्ववलं कथम् ।
कथं च मानुषं देहमुत्ससर्ज जनार्दनः ।।५
विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महामुनिः ।
पिण्डारके महातीर्थे दृष्ट्वा यदुकुमारकैः ।।६

ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्यप्रचोदिताः ।
साम्ब जाम्बवतीपुत्रं भूषयित्वा स्त्रियं यथा ॥७
प्रश्रितास्तान्मुनीनूचुः प्रणिपातपुरस्सरम् ।
इयं स्त्री पुत्रकामा वै ब्रूत किं जनयिष्यति ॥८

श्रीपराशरजी ने कहा—इस प्रकार लोकहितैषी बलरामजी के सहित भगवान् श्रीकृष्ण ने दैत्यों और राजाओं का संहार किया ॥१॥ फिर अर्जुन के साथ मिलकर उन्होंने अठारह अक्षौहिणी सेना को नष्ट कर भू-भार उतार दिया ॥२॥ इस प्रकार सब राजाओं का ससैन्य संहार कर उन्होंने ब्राह्मण के शाप के बहाने से अपने कुल का भी उपसंहार किया ॥३॥ हे मुने ! अन्त में उन्होंने द्वारकापुरी और अपने मानव देह के परित्याग पूर्वक अपने अंश सहित स्वधाम में प्रवेश किया ॥३॥ श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्ण ने अपने कुल का उपसंहार किस प्रकार किया और कैसे अपने मानव शरीर का त्याग किया ? ॥५॥ श्रीपराशरजी ने कहा—एक बार यादवों के बालकों ने पिण्डारक क्षेत्र में विश्वामित्र, कण्व और नारदादि महर्षियों को देखा ॥६॥ तब उन्होंने जाम्बवती के पुत्र साम्ब को स्त्री-वेश में सजाकर उन मुनियों से प्रणाम पूर्वक पूछा कि 'इसे पुत्र की इच्छा है तो बताइये इसके क्या उत्पन्न होगा ?' ॥७-८॥

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते विप्रलब्धाः कुमारकः ।
मुनयः कुपिताः प्रोचुर्मुसलं जनयिष्यति ॥९
सर्वयादवसंहारकारणं भुवनोत्तरम् ।
येनाखिलकुलोत्सादो यादवानां भविष्यति ॥१०
इत्युक्तास्ते कुमारास्तु आचचक्षुर्यथातथम् ।
उग्रसेनाय मुसलं जज्ञेसाम्बस्य चोदरात् ॥११
जज्ञे तदेरकाचूर्णं प्रक्षिप्तं तैर्महोदधौ ॥१२
मुसलस्याथ लोहस्य चूर्णितस्य तु यादवैः ।
खण्डं चूर्णितशेषं तु ततो यत्तोमराकृति ॥१३

तदप्यम्बुनिधौ क्षिप्तं मत्स्यो जग्राह जालिभिः ।
घातितस्योदरात्तस्य लुब्धो जग्राह तञ्जराः ॥१४

विज्ञातपरमार्थोऽपि भगवान्मधुसूदनः ।
नैच्छत्तदन्यथा कर्तुं विधिना यत्समीहितम् ॥१५

श्री पराशरजी ने कहा—यादव—बालकों की हँसी को तोड़ कर उन महर्षियों ने क्रोध पूर्वक कहा—इसके मूसल उत्पन्न होगा जो सब ओर से यादवों के नाश कारण हो जायगा ॥९-१०॥ मुनियों के ऐसा कहने पर उन बालकों ने राजा उग्रसेन को जाकर सब वृत्तान्त यथावत् सुनाया ॥११॥ उग्रसेन ने उस मूसल का चूर्ण कराकर समुद्र में फिकवा दिता, जिससे बहुत से सरकंडे उत्पन्न हो गये ॥१२॥ उस मूसल का भाले की नोंक जैसा एक भाग चूर्ण करने से रह गया, उसे भी समुद्र में डलवा दिया था, उस भाग को एक मछली ने निगल लिया । मछेरों द्वारा पकड़ी गई उस मछली के चीरते पर निकला हुआ मूसल का वह टुकड़ा जरा नामक व्याध ने उठा लिया ॥१३-१४॥ श्रीकृष्ण इन सब बातों को जानते थे, परन्तु उन्होंने विधाता के विधान में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा ॥१५॥

देवैश्च प्रहितो वायुः प्रणिपत्याह केशवम् ।
रहस्येवमहं दूतः प्रहितो भगवन्सुरैः ॥१६

वस्वश्विमरुदादित्यरुद्रसाध्यादिभिस्सह ।
विज्ञापयति शक्रस्त्वां तदिदं श्रूयतां विभो ॥१७

भारावतरणार्थाय वर्षाणामधिकं शतम् ।
भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदशैस्सह चोदितः ॥१८

दुर्वृत्ता निहता दैत्या भुवो भारोऽवतारितः ।
त्वया सनाथस्त्रिदशा भवन्तु त्रिदिवे सदा ॥१९

तदतीतं जगन्नाथ वर्षाणामधिकं शतम् ।
इदानीं गम्यतां स्वर्गो भवता यदि रोचते ॥२०

देवैर्विज्ञाप्यते देव तथात्रैव रतिस्तव ।
तत्स्थीयतां यथाकालमाख्येयमनुजीविभिः ॥२१

इसी अवसर पर देवताओं द्वारा भेजे गये वायु ने श्रीकृष्ण को प्रणाम करके कहा—हे प्रभो ! मुझे दूत-रूप से देवताओं ने आपके पास भेजा है ।।१६।। हे विभो ! वसुगण, अश्विनी द्वय, रुद्र, आदित्य, मरुत् और साध्यादि देवताओं की सहमति से इन्द्र के भेजे सन्देश को सुनिये ।।१७।। देवताओं की प्रार्थना पर उनके साथ ही पृथिवी पर भू-भार हरणार्थ उद्भूत हुए सौ वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके हैं ।।१८।। आपने दैत्यों को मार कर पृथिवी का भार उतार दिया, इसलिए अब सब देवता आपके सहित स्वर्गलोक में ही सनाथ करें ।।१९।। हे जगदीश्वर ! पृथिवी पर आये हुए आपको सौ वर्ष से अधिक हो गये, अब यदि इच्छा हो तो आप वहीं स्वर्गलोक को पधारें ।।२०।। हे देव ! उन्होंने यह भी कहा है कि आप वहीं रहना चाहें तो रहें, सेवकों का कर्त्तव्य तो निवेदन करने का ही है ।।२१।।

यत्त्वमात्थाखिलं दूत वेद्म्येतदहमप्युत ।
प्रारब्ध एव हि मया यादवानां परिक्षयः ।।२२
भुवो नाद्यापि भारोऽयं यादवैरनिर्बर्हितैः ।
अवतार्यं करोम्येतत्सप्तरात्रेण सत्वरः ।।२३
यथा गृहीतामम्भोधेर्दत्त्वाहं द्वारकाभुवम् ।
यादवानुसंहृत्य यास्यामि त्रिदशालयम् ।।२४
मनुष्यदेहमुत्सृज्य संकर्षणसहायवान् ।
प्राप्त एवास्मि मन्तव्यो देवेन्द्रेण तथामरैः ।।२५
जरासन्धादयो येऽन्ये निहता भारहेतवः ।
क्षितेस्तेभ्यः कुमारोऽपि यदूनां नापचीयते ।।२६
तदेतं सुमहाभारमवतार्य क्षितेरहम् ।
यास्याम्यमरलोकस्य पालनाय ब्रवीहि तान् ।।२७

श्री भगवान् ने कहा—हे दूत ! तुम्हारी बात ठीक है, मैंने यादवों के नाश का उपाय कर दिया है ।।२२।। इन यादवों के रहते हुए पृथिवी का बोझ नही घट सकता, इसलिये सात रात के भीतर ही मैं तुम्हारे कहे अनुसार करूँगा ।।२३।। इस द्वारकापुरी की भूमि मैंने समुद्र से मांगी थी

इसलिये इसे उसको लौटाकर और यादवों को नष्ट कर स्वर्ग को प्रस्थान करूँगा ॥२४॥ अब सब देवताओं और इन्द्र को यह बता देना कि बलरामजी के सहित मुझे स्वर्ग में पहुँचा हुआ ही समझो ॥२५॥ पृथिवी के बोझ स्वरूप जरासन्ध आदि जो राजा नष्ट हुए हैं, यह यदुवंशी भी उनसे किसी प्रकार न्यून नहीं हैं ॥२६॥ इसलिये देवताओं से कहना कि पृथिवी का बोझ उतार कर ही शीघ्र ही स्वर्गलोक में आकर उसका पालन करूँगा ॥२७॥

इत्युक्तो वासुदेवेन देवदूत प्रणम्य तम् ।
मैत्रेय दिव्यया गत्या देवराजान्तिकं ययौ ॥२८
भगवानप्यथोत्पातान्दिव्यभौमान्तरिक्षजान् ।
ददर्श द्वारकापुर्यां विनाशाय दिवानिशम् ॥२९
तान्दृष्ट्वा यादवानाह पश्यध्वमतिदारुणान् ।
महोत्पाताञ्छमायैषां प्रभासं याम मा चिरम् ॥३०
एवमुक्ते तु कृष्णेन यादवप्रवरस्ततः ।
महाभागवतः प्राह प्रणिपत्योद्धवो हरिम् ॥३१
भगवन्यन्मया कार्यं तदाज्ञापय साम्प्रतम् ।
मन्ये कुलमिदं सर्वं भगवान्संहरिष्यति ॥३२
नाशायास्य निमित्तानि कुलस्याच्युत लक्षये ॥३३

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर वायु उन्हें प्रणाम करके चल दिये और तुरन्त ही इन्द्र के पास पहुँचे ॥२८॥ इधर द्वारकापुरी में नाश सूचक दिव्य, पार्थिव और अन्तरिक्ष सम्बन्धी घोर उत्पात होते दिखाई पड़े ॥२९॥ तब भगवान् ने यादवों से कहा कि यह घोर उपद्रव हो रहे हैं, प्रभास क्षेत्र में चलकर इनकी शांति का उपाय करें ॥३०॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् की बात सुनकर उद्धवजी ने उन्हें प्रणाम करके कहा—हे प्रभो ! अब आपकी इच्छा से इस कुल का नाश होता दिखाई देता है, सब ओर ऐसे अपशकुन हो रहे हैं, इसलिये मुझे जो करना हो, वह आज्ञा कीजिए ॥३२॥३३॥

गच्छ त्वं दिव्यया गत्या मत्प्रसादसमुत्थया ।
यद्वदर्याश्रमं पुण्यं गन्धमादनपर्वते ।
नरनारायणस्थाने तत्पवित्रं महीतले ॥३४
मन्मना मत्प्रसादेन तत्र सिद्धिमवाप्स्यसि ।
अहं स्वर्गं गमिष्यामि ह्युपसंहृत्य वै कुलम् ॥३५
द्वारकां च मया त्यक्तां समुद्रः प्लावयिष्यति ।
मद्वेश्म चैकं मुक्त्वा तु भयान्मत्तो जलाशये ।
तत्र सन्निहितश्चाहं भक्तानां हितकाम्यया ॥३६
इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं जगामाशु तपोवनम् ।
नरनारायणस्थानं केशवेनानुमोदितः ॥३७
ततस्ते यादवास्सर्वे रथानारुह्य शीघ्रगान् ।
प्रभासं प्रययुस्सार्द्धं कृष्णरामादिभिर्द्विज ॥३८
प्रभासं समनुप्राप्ताः कुकुरान्धकवृष्णयः ।
चक्रुस्तत्र महापानं वासुदेवेन चोदिताः ॥३९
पिवतां तत्र चैतेषां संघर्षेण परस्परम् ।
अतिवादेन्धनो जज्ञे कलहाग्नि क्षयावहः ॥४०

श्री भगवान् ने कहा—हे उद्धव ! अब तुम मेरी कृपा से प्राप्त हुई दिव्य गति से गन्धमादन पर्वत के बदरिकाश्रम में जाओ, वह सबसे पवित्र क्षेत्र है ॥३४॥ वहाँ मुझमें अनन्य चित्त रखने में तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी । अब मुझे भी यदुकुल के नष्ट होने पर स्वर्गलोक को प्रस्थान करना है ॥३५॥ मेरे यहाँ से जाते ही समुद्र द्वारका को अपने जल में विलीन कर लेगा, परन्तु केवल भवन ही शेष रह जायगा, जिसमें भक्तों के हितार्थ में सदा निवास करता हूँ ॥३६॥ श्री पराशरजी ने कहा—भगवान् की आज्ञा सुनकर उद्धवजी ने उन्हें प्रणाम किया और तुरन्त ही बदरिकाश्रम चले गये ॥३७॥ फिर कृष्ण बलरामादि सब यादव रथों पर चढ़ कर प्रभास क्षेत्र गये ॥३७॥ वहाँ पहुँच कर श्रीकृष्ण की प्रेरणा से सभी यादवों ने महापान किया ॥३८॥ पान करते समय उनमें कुछ विवाद हो गया, जिससे कलहाग्नि धधकने लगी ॥४०॥

स्वं स्वं वै भुञ्जतां तेषां कलहः किन्निमित्तकः ।
संघर्षो वा द्विजश्रेष्ठ तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥४१
मृष्टं मदीयमन्नं ते न मृष्टमिति जल्पताम् ।
मृष्टामृष्टकथा जज्ञे संघर्षकलहौ ततः ॥४२
ततश्चान्योन्यमभ्येत्य क्रोधसंरक्तलोचनाः ।
जघ्नुः परस्परं ते तु शस्त्रैर्दैवबलात्कृताः ॥४३
क्षीणशस्त्राश्च जगृहुः प्रत्यासन्नामथैरकाम् ॥४४
एरका तु गृहीता वै वज्रभूतेव लक्ष्यते ।
तया परस्परं जघ्नुस्संप्रहारे सुदारुणे ॥४५
प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः कृतवर्माथ सात्यकिः ।
अनिरुद्धादयश्चान्ये पृथुर्विपृथुरेव च ॥४६
चारुवर्मा चारुकश्च तथाक्रूरादयो द्विज ।
एरकारूपिभिर्वज्रैस्ते निजघ्नुः परस्परम् ॥४७
निवारयास हरिर्यादवांस्ते च केशवम् ।
सहायं मेनिरेऽरीणां प्राप्तं जघ्नं परस्परम् ॥४८

श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे द्विजवर ! भोजन करते हुए उन यदुवंशियों में कलह क्यों हुआ ? यह बतलाइये ॥४१॥ श्री पराशरजी ने कहा—मेरा पदार्थ शुद्ध है, तेरा भोजन ठीक नहीं, इसी प्रकार विवाद करते हुए उन यादवों में सघर्ष होने लगा ॥४२॥ तक वे दैवी प्रेरणा से परस्पर में शस्त्र प्रहार करने लगे और जब शस्त्र भी समाप्त हो गये तो उन्होंने निकटवर्ती क्षेत्र से सरकण्डे ग्रहण किये ॥४३-४४॥ वे सरकंडे वज्र जैसे लग रहे थे, उन्ही के द्वारा वे परस्पर में आघात--प्रत्याघात करने लगे ॥४५॥ प्रद्युम्न तथा साम्बादि कृष्णसुत कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध पृथु विपृथु चारुवर्मा, चारुक और अक्रूर आदि यादव उन्हीं के सरकंडों का परस्पर प्रहार कर रहे थे ॥४६-४७॥ जब श्रीकृष्ण ने उन्हें निवृत करना चाहा तो वे उन्हें प्रतिपक्षी का सहायक समझ कर परस्पर प्रहार करने से न रुके ॥४८॥

कृष्णोऽपि कुपितस्तेषामेरकारमुष्टिमाददे ।
वधाय सोऽपि मुसलं मुष्टिर्लौहमभूत्तदा ॥४९
जघान तेन निश्शेषान्यादवानाततायिनः ।
जघ्नुस्ते सहसाभेत्य तथान्येपि परस्परम् ॥५०
ततश्चार्णवमध्येन जैत्रोऽसौ चक्रिणो रथः ।
पश्यतो दारुकस्याथ प्रायादश्वैर्धृतो द्विज ॥५१
चक्रं गदा तथा शार्ङ्गं तूणी शंखोऽसिरेव च ।
प्रदक्षिणं हरिं कृत्वा जग्मुरादित्यवर्त्मना ॥५२
क्षणेन नाभवत्कश्चिद्यादवानामघातितः ।
ऋते कृष्णं महात्मानं दारुकं च महामुने ॥५३
चङ्क्रम्यमाणौ तौ रामं वृक्षमूले कृतासनम् ।
ददृशाते मुखाच्चास्य निष्क्रामन्तं महोरगम् ॥५४
निष्क्रम्यं स मुखात्तस्य महाभोगो भुजङ्गमः ।
प्रययावर्णवं सिद्धैः पूज्यमानस्तथोरगैः ॥५५
ततोऽर्घ्यमादमाय तदा जलधिस्सम्मुख ययौ ।
प्रविवेश ततस्तोयं पूजितः पन्नगोत्तमैः ॥५६

इस पर क्रुद्ध हुए श्रीकृष्ण ने भी मुट्ठी भर कर सरकंडे उठाये, जो कि लोह के मूसल जैसे प्रतीत होने लगे ॥४९॥ उन सरकंडो से वे सब आक्रमणकारी यादवों को मारने लगे और यादव--गण परस्पर भी मारने--मरने लगे ॥५०॥ फिर दारुक के देखते--देखते ही श्रीकृष्ण का जैत्र नामक रथ अश्वों के द्वारा खिचता हुआ समुद्र के मध्य मार्ग से चला गया ॥५१॥ तथा शंख, चक्र, गदा, धनुष,तरकस, असि आदि सब आयुध श्रीकृष्ण की परिक्रमा करके सूर्य-पथ से चले गये॥ ५२ ॥ हे महामुने ! क्षण भर में ही श्रीकृष्ण और दारुक के अतिरिक्त और कोई भी यादव शेष न रहा ॥५३॥ उन दोनों ने बलरामजी को एक वृक्ष के नीचे बैठे और उनके मुख से एक विशाल सर्प को निकलते देखा ॥५४॥ वह सर्प सिद्धों और नागों से पूजित होता हुआ समुद्र की ओर चला गया ॥५५॥

तभी समुद्र अर्घ्य देकर उपस्थित हुआ और वह नागों द्वारा पूजित सर्प समुद्र में प्रविष्ट हो गया ॥५६॥

दृष्ट्वा बलस्य निर्याणं दारुकं प्राह केशवः ।
इदं सर्वं समाचक्ष्व वसुदेवोग्रसेनयोः ॥५७
निर्याणं बलभद्रस्य यादवानां तथा क्षयम् ।
योगे स्थित्वाहमप्येतत्परित्यक्ष्ये कलेवरम् ॥५८
वाच्यश्च द्वारकावासी जनस्सर्वस्तथाहुकः ।
यथेमां नगरीं सर्वां समुद्रः प्लावयिष्यति ॥५९
तस्माद्भवद्भिस्सर्वैस्तु प्रतीक्ष्यो ह्यर्जुनागमः ।
न स्थेयं द्वारकामध्ये निष्क्रान्ते तत्र पाण्डवे ॥६०
गत्वा च ब्रूहि कौन्तेयमर्जुनं वचनान्मम ।
तेनैव सह गन्तव्यं यत्र याति स कौरवः ॥६१
पालनीयस्त्वया शक्त्या जनोऽयं मत्परिग्रहः ॥६२
त्वमर्जुनेन सहितो द्वारवत्यां तथा जनम् ।
गृहीत्वा याहि वज्रश्च यदुराजो भविष्यति ॥६३

इस प्रकार बलरामजी का महाप्रयाण देखकर दारुक से श्रीकृष्ण ने कहा—तुम यह सम्पूर्ण वृत्तान्त उग्रसेन जी और वसुदेवजी को जाकर सुनादो ॥५७॥ बलरामजी का जाना और यादवों का नष्ट होना बताकर यह भी कहना कि मैं भी योगस्थ होकर देह त्याग करूँगा ॥ ५८ ॥ सब द्वारकावासियों और उग्रसेनजी से कहना कि समुद्र इस सम्पूर्ण नगर को अपने में लीन कर लेगा ॥५९॥ इसलिये जब तक अर्जुन वहाँ न पहुँचे तभी तक द्वारका में रहें और जहाँ अर्जुन जाँय वहीं सब चले जाँय ॥६०-६१॥ तुम अर्जुन से भी मेरा यह संदेश कहना कि अपने सामर्थ्य के अनुसार ही मेरे परिवारी जनों की रक्षा करना ॥६२॥ तुम सब द्वारकावासियों के सहित अर्जुन के साथ चले जाना । फिर यदुवंश का राजा वज्र होगा ॥६३॥

इत्युक्तो दारुकः कृष्णं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
प्रदक्षिणं च बहुशः कृत्वा प्रायाद्यथोदितम् ॥६४

स च गत्वा तदाचष्ठ द्वारकायां तथार्जुनम् ।
आनिनाय महाबुद्धिर्वज्रं चक्रं तथा नृपम् ॥६५
भगवानपि गोविन्दो वासुदेवात्मकं परम् ।
ब्रह्मात्मनि समारोप्य सर्वभूतेष्वधारयत् ॥६६
निष्प्रपञ्चे महाभाग संयोज्यात्मानमात्मनि ।
तुर्यावस्थं सलीलं च शेते स्म पुरुषोत्तमः ॥६७
सम्मानयन्द्विजवचो दुर्वासा यदुवाच ह ।
योगयुक्तोऽभवत्पादं कृत्वा जानुनि सत्तम ॥६८
आययौ च जरानाम तदा तत्र स लुब्धकः ।
मुसलावशेषलोहैकसायकन्यस्ततोमरः ॥६९
स तत्पादं मृगाकारमवेक्ष्यारावस्थितः ।
तले विव्याध तेनैव तोमरेण विजोत्तम ॥७०

श्री पराशरजी ने कहा — भगवान् के वचन सुनकर दारुक ने उन्हें बारम्बार प्रणाम करके अनेक परिक्रमाएँ कीं और उनकी आज्ञानुसार वहाँ से चला गया ॥६४॥ उसने द्वारका में पहुँच कर सब वृत्तान्त सुनाया और अर्जुन को वहाँ लाकर वज्र को राज्यपद में अभिषिक्त किया ॥६५॥ इधर श्रीकृष्ण अपने आत्मा में परब्रह्म को आरोपित कर उनमें चित्त लगाते हुए अपने तुरीयपद में अवस्थित होगये । ६६-६७॥ हे मुनिवर ! दुर्वासाजी के वचनानुसार उन्होंने अपनी जाँघ पर चरण रख कर योग युक्ति समाधि लगाई ॥६८॥ तभी मूसल के अवशिष्ट भाग को अपने बाण पर नोंक रूप से लगाये हुए जरा नामक वह व्याध वहाँ आया और भगवान् के चरण को मृगाकार देखकर उसने दूर से उन पर बाण छोड़ दिया ॥६९॥७०॥

ततश्च ददृशे तत्र चतुर्बाहुधरं नरम् ।
प्रणिपत्याह चैवैनं प्रसीदेति पुनः पुनः ॥७१
अजानता कृतमिदं मया हरिणशंकया ।
क्षम्यतां मम पापेन दग्धं मां त्रातुमर्हसि ॥७२

ततस्तं भगवानाह न तेऽस्तु भयमण्वपि ।
गच्छ त्वं मत्प्रसादेन लुब्ध स्वर्गं सुरास्पदम् ॥७३
विमानमागतं सद्यस्तद्वाक्यसमनन्तरम् ।
आरुह्य प्रययौ स्वर्गं लुब्धकस्तत्प्रसादतः ॥७४
मते तस्मिन्स भगवान्संयोज्यात्मानमात्मनि ।
ब्रह्मभूतेऽव्ययेऽचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले ॥७५
अजन्मन्यमरे विष्णावप्रमेयेऽखिलात्मनि ।
तत्याज मानुषं देहमतीत्य त्रिविधां गतिम् ॥७६

फिर उस व्याध ने श्रीकृष्ण के पास पहुँच कर जैसे ही एक चतुर्भुजी श्रेष्ठ पुरुष को देखा तो उनके चरणों में गिर पडा और बारम्बार 'प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये' कहता हुआ बोला—मैंने मृग समझ कर ही यह अपराध कर डाला है, आप क्षमा करके मुझ पाप से भस्म होते हुए पापी की रक्षा करिये ॥७१-७२॥ श्री पराशरजी ने कहा—तू भय मत कर तू अभी मेरी कृपा से स्वर्गलोक को प्राप्त होगा ॥७३॥ उनके ऐसा कहते ही वहाँ एक विमान आ गया, जिस पर चढ़ वह व्याध स्वर्ग लोक को गया ॥७४॥ उसके जाने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने भी अपने आत्मा को अव्यय, अचिन्त्य, वासुदेवस्वरूप, निर्मल. अज, अमर. अप्रमेय, सकलात्मा तथा ब्रह्मरूप, भगवान् विष्णु में लीन कर इस मानव देह का त्यागकर दिया ॥७५-७६॥

अड़तीसवाँ अध्याय

अर्जुनोऽपि तदान्विष्य रामकृष्णकलेवरे ।
संस्कारं लम्भयामास तथान्येषामनुक्रमात् ॥१
अष्टौ महिष्यः कथिता रुक्मिणीप्रमुखास्तु याः ।
उपगुह्य हरेर्देहं विविशुस्ता हुताशनम् ॥२
रेवती चापि रामस्य देहमाश्लिष्य सत्तमा ।
विवेश ज्वलितं वह्निं तत्सङ्गाह्लादशीतलम् ॥३

उग्रसेनस्तु तच्छ्रुत्वा तथैवानकदुन्दुभिः ।
देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥४
ततोऽर्जुनः प्रेतकार्यं कृत्वा तेषां यथाविधि ।
निश्चक्राम जनं सर्वं गृहीत्वा वज्रमेव च ॥५
द्वारवत्या विनिष्क्रान्ताः कृष्णपत्न्यः सहस्रशः ।
वज्रं जनं च कौन्तेयः पालयञ्छनकैर्ययौ ॥६
सभा सुधर्मा कृष्णेन मर्त्यलोके समुज्झिते ।
स्वर्गं जगाम मैत्रेय पारिजातश्च पादपः ॥७
यस्मिन्दिने हरिर्यातो दिवं सन्त्यज्य मेदिनीम् ।
तस्मिन्नेवावतीर्णोऽयं कालकायो वली कलिः ॥८

श्री पराशरजी ने कहा—अर्जुन ने बलराम, कृष्ण तथा अन्यान्य प्रमुख-प्रमुख यादवों के मृत शरीरों को ढुंढवा कर उनका संस्कार किया ।१। श्रीकृष्ण की रुक्मिणी आदि आठ पटरानियों ने उनके देह का आलिंगन कर अग्नि-प्रवेश किया ।२। रेवतीजी भी बलरामजी के देह का आलिंगन कर उनकी चिता में प्रविष्ट होगईं ।३। इस अनिष्ट-समाचार को सुन कर उग्रसेन, वसुदेव, देवकी और रोहिणी ने भी अग्नि-प्रवेश द्वारा अपने को नष्ट कर लिया ॥४॥ फिर अर्जुन ने उन सबका और्ध्वदैहिक संस्कार किया और वज्र तथा अन्य कुटुम्बियों के सहित द्वारका से निकल आये । श्रीकृष्ण की हजारों पत्नियों और वज्रादि अन्यान्य बन्धुओं की रक्षा करते हुए अर्जुन धीरे-धीरे चलने लगे ॥६॥ हे मैत्रेयजी ! श्रीकृष्ण के पृथिवी लोक को छोड़ते ही सुधर्मा सभा और पारिजात तरु भी स्वर्ग लोक को चले गये ॥७॥ जिस दिन भगवान् ने पृथिवी को छोड़ा, उसी दिन से महाबली कलियुग पृथिवी पर उतर आया ॥८॥

प्लावयामास तां शून्यां द्वारकां च महोदधिः ।
वासुदेवगृहं त्वेकं न प्लावयति सागरः ॥९
नातिक्रान्तुमलं ब्रह्मंस्तदद्यापि महोदधिः ।
नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्केशवो यतः ॥१०

तदतीव महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् ।
विष्णुश्रियान्वितं स्थानं दृष्ट्वा पापाद्विमुच्यते ।।११
पार्थः पञ्चनदे देशे बहुधान्यधनान्विते ।
चकार वासं सर्वस्य जनस्य मुनिसत्तमः ।।१२
ततो लोभस्समवत्पार्थेनैकेन धन्विना ।
दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमाना दस्यूनां निहतेश्वराः ।।१३
ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहृतचेतसः ।
आभीरा मन्त्रयामासुस्समेत्यात्यन्तदुर्मदाः ।।१४
अयमेकोऽर्जुनो धन्वी स्त्रीजनं निहतेश्वरम् ।
नयत्यस्मानतिक्रम्य धिगेतद्भवतां बलम् ।।१५

इस प्रकार जनशून्य हुई उस द्वारका को समुद्र ने डुबा दिया, केवल श्रीकृष्ण का भवन ही शेष रह गया ।।९।। उसमें श्रीकृष्ण के सदा निवास करने से समुद्र आज भी उस भवन को नहीं डुबा सकता ।।१०।। वह ऐश्वर्य-सम्पन्न स्थान अत्यन्त पवित्र और दर्शन मात्र से सब पापों को नष्ट करने वाला है ।।११।। हे मुनिवर ! उन सब द्वारकावासियों को अर्जुन ने धन-धान्य युक्त पंचनद प्रदेश में बसा दिया ।।१२।। उस समय अनाथ अवलाओं के साथ अर्जुन को अकेले देख कर दस्युओं को लोभ हो आया और उन पापी आभीर दस्युओं ने परस्पर में मन्त्रणा की ।१३-।।१४।। देखो यह अर्जुन अकेला ही हमारा तिरस्कार कर स्त्रियों को लिये जा रहा है, इससे हमारे बल को धिक्कार है ।।१५।।

हत्वा गर्वसमारूढो भीष्मद्रोणजयद्रथान् ।
कर्णादींश्च न जानाति बलं ग्रामनिवासिनाम् ।।१६
यष्टिहस्तानवेक्ष्यास्मान्धनुष्पाणिस्स दुर्मतिः ।
सर्वानेवावजानाति किं वो वाहुभिरुन्नतैः ।।१७
ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवो लोष्टधारिणः ।
सहस्रशोऽभ्यधावन्त तं जनं निहतेश्वरम् ।।१८
ततो निर्भर्त्स्य कौन्तेयः प्राहाभीरान्हसन्निव ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदि न स्थ मुमूर्षवः ।।१९

अवज्ञाय वचस्तस्य जगृहुस्ते तदा धनम् ।
स्त्रीधनं चैव मैत्रेय विष्वक्सेनपरिग्रहम् ॥२०
ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं युधि ।
आरोपयितुमारेभे न शशाक च वीर्यवान् ॥२१
चकार सज्यं कृच्छ्राच्च तच्चाभूच्छिथिलं पुनः ।
न सस्मार ततोऽस्त्राणि चिन्तयन्नपि पाण्डवः ॥२२

भीष्म, द्रोणा, जयद्रथ और कर्ण आदि का वध करके ही यह इतना गर्वीला हो गया कि हम ग्रामीणों को कुछ नहीं समझता ॥१६॥ हमारे हाथों में लाठी होने पर यह हमें धनुष दिखा रहा है, तो हमारी विशाल भुजाओं से क्या प्रयोजन है ? ॥१७॥ ऐसा विचार करके उन लुटेरों ने उन अनाथ द्वारकावासियों पर लाठियों और पत्थरों से आक्रमण कर दिया ।१८। तब अर्जुन ने ललकार कर उनसे कहा—अरे पापियों ! अगर जीवित रहना चाहते हो तो यहाँ से तुरन्त लौट जाओ ॥१९॥ परन्तु हे मैत्रेजीजी! दस्युओंने उनकी बात पर ध्यान न देकर श्रीकृष्ण की स्त्रियों और सम्पूर्ण धन को उन्होंने जीत लिया ।२०। तब अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष को चढ़ाना चाह कर भी न चढ़ा सके ॥२१॥ जैसे तैसे करके प्रत्यंचा चढ़ा भी ली तो उनके अङ्ग शिथिल होगये और उन्हें अस्त्रों की याद ही न आई ॥२२॥

शरान्मुमोच चैतेषु पार्थो वैरिष्वमर्षितः ।
त्वग्भेदं ते परं चक्रुरस्ता गाण्डीवधन्विना ॥२३
वह्निना येऽक्षया दत्ताश्शरास्तेऽपि क्षयं ययुः ।
युद्ध्यतस्सह गोपालैरर्जुनस्य भवक्षये ॥२४
अचिन्तयच्च कौन्तेयः कृष्णस्यैव हि तद्बलम् ।
यन्मया शरसंघातैस्सकला भूभृतो हताः ॥२५
मिषतः पाण्डुपुत्रस्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः ।
आभीरैरपकृष्यन्त कामं चान्याः प्रदुद्रुवुः ॥२६
ततश्शरेषु क्षीणेषु धनुष्कोटया धनञ्जयः ।
जघान दस्यूंस्ते चास्य प्रहाराञ्जहसुर्मुने ॥२७

प्रेक्षतस्तस्य पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः ।
जग्मुरादाय ते म्लेच्छाः समस्ता मुनिसत्तम ॥२८
ततस्सुदुःखितो जिष्णुः कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ।
अहो भगवतानेन वञ्चितोऽस्मि रुरोद ह ॥२९

फिर उन्होंने उन शत्रुओं पर रोष पूर्वक बाण-वर्षा की परन्तु वे बाण उन लुटेरों की त्वचा को ही बींध सके ॥२३॥ अर्जुन के उद्भव के क्षीण होने के कारण अग्नि-प्रदत्त बाण भी इस युद्ध में नष्ट होगये । ॥२४॥ तब अर्जुन विचार करने लगा कि अब तक मैंने अनेक राजाओं को परास्त किया था, वह सब श्रीकृष्ण का ही प्रभाव था ॥२५॥ अर्जुन के देखते-देखते ही उन अहीरों ने एक-एक स्त्री को घसीट-घसीट कर हरण कर लिया और कोई-कोई अपनी इच्छा से ही इधर-उधर भाग निकली ॥२६॥ बाणों के न रहने पर अर्जुन ने धनुष की नोंक से उन्हें मारना प्रारम्भ किया, परन्तु उन लुटेरों ने उनकी और भी हँसी उड़ाई ॥२७॥ हे मुनिवर ! उन वृष्णि और अन्धक वश की सब स्त्रियों को वे लुटेरे अर्जुन के सामने ही उठा ले गये ॥२८॥

तद्धनुस्तानि शस्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः ।
सर्वमेकपदे नष्टं दानमश्रोत्रिये यथा ॥३०
अहोऽतिबलवद्दैवं बिना तेन महात्मना ।
यदसामर्थ्ययुक्तेऽपि नीचवर्ग्रे जयप्रदम् ॥३१
तौ बाहू स च मे मुष्टिः स्थानं तत्सोऽस्मि चार्जुनः ।
पुण्येनैव विना तेन गतं सर्वमसारताम् ॥३२
ममार्जुनत्वं भीमस्य भीमत्वं तत्कृते ध्रुवम् ।
विना तेन यदाभीरैर्जितोऽहं रथिनां वरः ॥३३
इत्थं वदन्ययौ जिष्णुरिन्द्रप्रस्थं पुरोजन्तमम् ।
चकार तत्र राजानं वज्रं यादवनन्दनम् ॥३४
स ददर्श ततो व्यासं फाल्गुनः काननाश्रयम् ।
तमुपेत्य महाभागं विनयेनाभ्यवादयत् ॥३५

यह देख कर अर्जुन अपमान से दुःखित होकर रोने लगे कि भगवान् ने ही मुझे ठग लिया। यह वही धनुष, वे शास्त्र, वही रथ तथा वही घोड़े हैं, परन्तु व्यर्थ दान के समान यह सब निष्फल होगये हैं।३०। दैव की प्रवलता देखो कि उसने इन असमर्थ और नीच अहीरों को जिता दिया। उसी मुष्टिका और उसी भुजा वाला मैं अर्जुन आज श्रीकृष्ण के अभाव में सार-हीन होगया हूँ ॥३१-३२॥ मेरा अर्जुनत्व उन्हीं के प्रभाव से था, अहो मुझ महारथी-श्रेष्ठ को आज तुच्छ अहीरों ने पराजित कर दिया ॥३३॥ श्री पराशरजी ने कहा—इस प्रकार चिन्ता करते हुए अर्जुन ने इन्द्रप्रस्थ में आकर वज्र का राज्याभिषेक किया।३४। फिर उन्होंने वन में जाकर महर्षि व्यासजी से भेंट की और विनीत भाव से उनके चरणों में प्रणाम किया ॥३५॥

तं वन्दमानं चरणाववलोक्य मुनिश्चिरम् ।
उवाच वाक्यं विच्छायः कथमद्य त्वमीदृशः ॥३६
अवीरजोऽनुगमनं ब्रह्महत्या कृताथ वा ।
दृढाशाभङ्गदुःखीव भ्रष्टच्छायोऽसि साम्प्रतम् ॥३७
सान्तानिकादयो वा ते याचमाना निराकृताः ।
अगम्यस्त्रीरतिर्वा त्वं येनासि विगतप्रभः ॥३८
भुङ्क्तेऽप्रदाय विप्रेभ्यो मिष्टमेकोऽथ वा भवान् ।
किं वा कृपणवित्तानि हृतानि भवतार्जुन ॥३९
कच्चिन्नु शूर्पवातस्य गोचरत्वं गतोऽर्जुन ।
दुष्टचक्षुर्हतो वाऽसि निश्श्रीकः कथमन्यथा ॥४०
स्पृष्टो नखाम्भसा वाथ घटवार्युक्षितोऽपि वा ।
केन त्वं वासि विच्छायो न्यूनैर्वा युधि निर्जितः ॥४१

अर्जुन को चरणों में झुके हुए देखकर महर्षि ने उनसे पूछाकि आज तुम ऐसे निस्तेज क्यों होरहे हो? क्या तुम भेड़ों की धूलिके पीछे चले हो या तुम्हारी आशा टूट गई है अथवा तुमने ब्रह्महत्या की है, जिससे ऐसे दुःखी हो रहे हो ? ॥३६।३७॥ क्या तुमने किसी सन्तान-कामना वाले की विवाह-याचना पर ध्याननहींदिया है अगम्या से समागम किया है या किसी

कृपण का धन छीन लिया है अथवा ब्राह्मणों को दिये बिना अकेले ही पक्वान्न भोजन कर लिया है ? ।।३८-३९।। अथवा तुमने सूप की वायु का सेवन किया है या तुम्हारे नेत्र विकृत होगये हैं अथवा किसी ने तुम पर प्रहार किया है, जिससे इस प्रकार श्रीहीन होरहे हो ? ।।४०।। कहीं तुमने नख का जल तो नहीं छू लिया, या तुम्हारे ऊपर घड़े से जल के छलकने पर छींट तो नहीं पड़ गये अथवा तुम अपने से निर्बल पुरुष से तो नहीं हार गये ? ।।४१।।

ततः पार्थो विनिःश्वस्य श्रूयतां भगवन्निति ।
उक्त्वा यथावदाचष्टे व्यासायामपराभवम् ।।४२
यद्बलं यच्च मत्तजो यद्वीर्यं यः पराक्रमः ।
या श्रीश्छाया च नः सोऽस्मान्परित्यज्य हरिर्गतः ।।४३
ईश्वरेणापि महता स्मितपूर्वाभिभाषिणा ।
हीना वयं मुने तेन जातास्तृणमया इव ।।४४
अस्त्राणां सायकानां च गाण्डीवस्य तथा मम ।
सारता याभवन्मूर्त्तिस्स गतः पुरुषोत्तमः ।।४५
यास्यावलोकनादस्माञ्छ्रीर्जयः सम्पदुन्नतिः ।
न तत्याज स गोविन्दस्त्यत्वक्त्वास्मान्भगवान्गतः ।।४६
भीष्मद्रोणाङ्गराजाद्यास्तथा दुर्योधनादयः ।
यत्प्रभावेण निर्दग्धास्स कृष्णस्त्यक्तवान्भुवम् ।।४७
निर्यौवना गतश्रीका नष्टच्छायेव मेदिनी ।
विभाति तात नैकोऽहं विरहे तस्य चक्रिणः ।।४८

श्री पराशरजी ने कहा — इस पर अर्जुन ने दीर्घ श्वास लेते हुए कहा—अपने परास्त होने का सब वृत्तान्त यथावत् सुना दिया ।४२। अर्जुन बोले—हमारे एक मात्र बल, तेज, वीर्य पराक्रम, श्री और कान्ति स्वरूप श्री कृष्ण हमें छोड़ कर प्रस्थान कर गये ।।४३।। जो समर्थ होकर भी हमसे हँस-हँस कर बतराते थे, उन हरि के बिना हम तिनके से निर्मित हुए पुतले के समान निर्जीव होगये हैं ।।४४।। मेरे दिव्यास्त्रों, दिव्य बाणों और गाण्डीव के सार रूप श्री हरि हमें त्याग कर चले गये ।।४५।।

जिनकी कृपा से जय, ऐश्वर्य और उन्नति सदा हमारे साथ रहीं, वे गोविन्द हमें छोड़ गये ॥४६॥ जिनके प्रभाव रूप अग्नि में भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधनादि वीर भस्म हो गये, उन श्रीहरि ने इन पृथिवी को छोड़ दिया ॥४७॥ उन श्रीकृष्ण के विरह में यह सम्पूर्ण पृथिवी ही विगत यौवना और कान्तिहीना लग रही है ॥४८॥

यस्य प्रभावाद्भीष्माद्यैर्मय्यग्नौ शलभायितम् ।
विना तेनाद्य कृष्णेन गोपालैरस्मि निर्जितः ॥४९

गाण्डीवस्त्रिषु लोकेषु ख्यातिं यदनुभावतः ।
गतस्तेन विनाभीरलगुडैस्स तिरस्कृतः ॥५०

स्त्रीसहस्राण्यनेकानि मन्नाथानि महामुने ।
यततो मम नीतानि दस्युभिर्लगुडायुधैः ॥५१

आनीयमानमाभीरैः कृष्ण कृष्ण तयोधनम् ।
हृतं यष्टिप्रहरणैः परिभूय बलं मम ॥५२

निश्श्रीकता न मे चित्रं यज्जीवामि तदद्भुतम् ।
नीचावमानपङ्काङ्की निर्लज्जोऽस्मि पितामह ॥५३

जिनके प्रभाव से मुझ अग्नि रूप में पड़कर भीष्मादि महारथी पतंग के समान भस्म होगये थे, आज उन्हीं के न होने पर गोपों ने मुझे जीत लिया ॥४९॥ जिनके प्रभाव से यह गाण्डीव तीनों लोकों में विख्यात था, आज उन्हीं के अभाव में यह अहीरों की लाठियों से व्यर्थ होगया ॥५०॥ हे महामुने ! श्रीकृष्ण की हजारों पत्नियाँ मेरे संरक्षण में आ रही थीं, उन्हें लुटेरों ने अपनी लाठियों के बल पर ही लूट कर ले गये ॥५१॥ लाठियों से सज्जित अहीरों ने मेरे बल को तिरस्कृत कर मेरे साथ के सम्पूर्ण कृष्ण-परिवार का हरण कर लिया ॥५२॥ ऐसी अवस्था में श्रीहीन होने का तो कोई आश्चर्य नहीं है, परन्तु नीच पुरुषों द्वारा अपमानित होकर भी मैं अभी तक जीवित हूँ, यही आश्चर्य है ॥५३॥

अलं ते व्रीडया पार्थ न त्वं शोचितुमर्हसि ।
अवेहि सर्वभूतेषु कालस्य गतिरीदृशी ॥५४

कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव ।
कालमूलमिद ज्ञात्वा भव स्थैर्यपरोऽर्जुन ॥५५
नद्यः समुद्रा गिरयस्सकला च वसुन्धरा ।
देवा मनुष्याः पशवस्तरवश्च सरीसृपाः ॥५६
सृष्टाः कालेन कालेन पुनर्यास्यन्ति संक्षयम् ।
कालात्मकमिदं सर्वं ज्ञात्वा क्षममवाप्नुहि ॥५७
कालस्वरूपी भगवान्कृष्णः कमललोचनः ।
यच्चात्थ कृष्णमाहात्म्यं तत्तथैव धनंजय ॥५८
भारावतारकार्यार्थमवतीर्णस्य मेदिनीम् ।
भाराक्रन्ता धरा याता देवानां समितिं पुरा ॥५९
तदर्थमवतीर्णोऽसौ कालरूपी जनार्दनः ।
तच्च निष्पादितं कार्यमशेषा भूभुजो हताः ॥६०

श्री व्यासजी ने कहा—हे पार्थ! लज्जा और शोक में कोई लाभ नहीं है, क्योंकि सब भूतों में काल की गति ऐसी है ॥५४॥ प्राणियों की उन्नति या वनतिकाल से ही होती है और जय-पराजय भी उसी के अधीन हैं ॥५५॥ नदी, समुद्र, पर्वत, पृथिवी, देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष, तथा सर्पादि जन्तु सब काल से ही रचे जाते और उसी से क्षीण होते हैं। यह सब प्रपञ्च कालात्मक है—यह समझ कर शान्ति धारण करो। ॥५६-५७॥ श्रीकृष्ण की जो महिमा तुमने कही है वह उन भगवान् के साक्षात् कालरूप होने के कारण सत्य ही है॥ ५८ ॥ वे भू-भार-हरण करने के लिये ही अवतीर्ण हुए थे, क्योंकि भार से आक्रान्त हुई पृथिवी एक बार देवताओं की सभा में गई थी ॥५९॥ उसी के निमित्त पृथिवी पर आकार उन्होंने सब राजाओं को मार दिया, इस प्रकार उनका उद्देश्य पूर्ण होगया ॥६०॥

वृष्ण्यन्धककुलं सर्वं तथा पार्थोपसंहृतम् ।
न किञ्चिदन्यत्कर्तव्यं तस्य भूमितले प्रभोः ॥६१
अतो गतस्स भगवान्कृतकृत्यो यथेच्छया ।

सृष्टिं सर्गे करोत्येष देववदेः स्थितौ स्थितिम् ।
अन्तेऽन्ताय समर्थोऽयं साम्प्रतं वै यथा गतः ।।६२
तस्मात्पार्थं न सन्तापस्त्वया कार्यं पराभवे ।
भवन्ति भावाः कालेषु पुरुषाणां यतः स्तुतिः ।।६३
त्वयैकेन हता भीष्मद्रोणकर्णादयो रणे ।
तेषामर्जुन कालोत्थः किं न्यूनाभिभवो न सः ।।६४
विष्णोस्तस्य प्रभावेण यथा तेषां पराभवः ।
कृतस्तथैव भवतो दस्युभ्यस्स पराभवः ।।६५
स देवेशश्शरीराणि समाविश्य जगत्स्थितिम् ।
करोति सर्वभूतानां नाशमन्ते जगत्पतिः ।।६६

हे पार्थ! वृष्णि और अन्धकादि सब यादवों के नष्ट हो जाने पर तो पृथिवी पर उनका कोई रह ही नहीं गया था ।।६१।। इसीलिए वे स्वेच्छा पूर्वक यहाँ से चले गये। वे ही सृष्टि रचते तथा उसका पालन और विनाश करते हैं ।।६२।। इसीलिये अपनी पराजय पर दुःखी नहीं होना चाहिए, क्योंकि अभ्युदय काल में पुरुषों से प्रशंसनीय कर्म बन पाते हैं ।।६३।। हे अर्जुन ! जब तुझ अकेले ने ही भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे महा-वीरों को मार डाला था, तब क्या उनका कालक्रम के कारण ही अपने तुच्छ के सामने पराजित होना नहीं था ? ।।६४।। जैसे भगवान् विष्णु के प्रभाव से तू ने उनका तिरस्कार किया था, वैसे ही आज तुझे तिरस्कृत होना पड़ा है ।।६५।। वे ही जगत्पति सब देहों में स्थित होकर संसार का पालन और अंत में संहार करते हैं ।।६६।।

भगोदये ते कौन्तेय सहायोऽभूञ्जनार्दनः ।
तथान्ते तद्विपक्षास्ते केशवेन विलोकिताः ।।६७
कश्श्रद्दध्यात्स गाङ्गेयान्हन्यास्त्वं कौरवानिति ।
अभीरेभ्यश्च भवतः कः श्रद्दध्यात्पराभवम् ।।६८
पार्थैतत्सर्वभूतस्य हरेर्लीलाविचेष्टितम् ।
त्वया यत्कौरवा ध्वस्ता यदाभीरैर्भवाञ्जितः ।।६९

गृहीता दस्युभिर्याश्च भवाञ्छोचति तास्स्त्रियः ।
एतस्याहं यथावृत्तं कथयामि तवार्जुन ॥७०

हे कुन्तीपुत्र ! तेरे भाग्योदय के समय श्रीकृष्ण की तुझ पर कृपा थी और अब तेरे विपक्षियों पर उनकी कृपा हुई है ॥६७॥ यह कौन मानता था कि तू भीष्म सहित सब कौरवों का संहार कर डालेगा और अब इसे भी कौन मान सकता है कि तू अहीरों से पराजित हो जायगा ? ॥६८॥ हे पार्थ ! यह सब उन्हीं की लीला है कि तुझ अकेले ने कौरवों का संहार कर दिया और अब तू ही अहीरों से हार गया ॥६९॥ हे अर्जुन ! उन लुटेरों द्वारा हरण की गई जिन स्त्रियों के लिए तुझे शोक हो रहा है, उसका रहस्य मैं तुझ से कहता हूँ ॥७०॥

अष्टावक्रः पुरा विप्रो जलवासरतोऽभवत् ।
बहून्वर्षगणान्पार्थ गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥७१
जितेष्वसुरसंघेषु मेरुपृष्ठे महोत्सवः ।
बभूव तत्र गच्छन्त्यो ददृशुस्त सुरस्त्रियः ॥७२
रम्भातिलोत्तमाद्यास्तु शतशोऽथ सहस्रशः ।
तुष्टुवुस्तं महात्मानं प्रशशंसुश्च पाण्डव ॥७३
आकण्ठमग्नं सलिले जटाभारवहं मुनिम् ।
विनयावनताश्चैनं प्रणेमुः स्तोत्रतत्पराः ॥७४
यथा यथा प्रसन्नोऽसौ तुष्टुवुस्तं तथा तथा ।
सर्वास्ताः कौरवश्रेष्ठ तं वरिष्ठं द्विजन्मनाम् ॥७५
प्रसन्नोऽहं महाभागा भवतीनां तदिष्यते ।
मत्तस्तद्व्रियतां सर्वं प्रदास्याम्यतिदुर्लभम् ॥७६
रम्भातिलोत्तमाद्यास्तं वैदिक्योऽप्सरसोब्रुवन् ।
प्रसन्ने त्वय्यपर्याप्तं किमस्माकमिति द्विजा ॥७७
इतरास्तब्रुवन्विप्र प्रसन्नो भगवान्यदि ।
तदिच्छामः पतिं प्राप्तुं विप्रेन्द्र पुरुषोत्तमम् ॥७८

पूर्व काल की बात है---ब्राह्मण श्रेष्ठ अष्टावक्रजी भगवान् का

चिन्तन करते हुए अनेक वर्षों तक जल में स्थित रहे ॥७१॥ तभी दैत्यों को जीतकर देवताओं ने सुमेरु पर्वत पर एक महोत्सव किया, जिसके लिए जाती हुई रम्भा, तिलोत्तमा आदि हज़ारों देव-नारियों ने अष्टावक्रजी को देखकर उनकी स्तुति की ॥ ७२-७३ ॥ उन कंठ तक जल में स्थित हुए मुनिवर की देव-नारियाँ अत्यन्त विनय पूर्वक स्तुति और प्रणाम करने लगीं ॥७४॥ जिस स्तुति से वे ब्राह्मण श्रेष्ठ प्रसन्न हो सकें वैसी स्तुति उन्होंने की ॥७५॥ इस पर अष्टावक्रजी ने कहा—हे महाभागाओ ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, अपनी इच्छा के अनुसार मुझसे वर माँग लो, दुर्लभ वर भी दे डालूँगा ॥७६॥ तब उन रम्भा-तिलोत्तमा आदि अप्सराओं ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपके प्रसन्न होने से ही हमें क्या नहीं मिल गया है ? ॥ ७७ ॥ परन्तु अन्य अप्सराओं ने कहा कि यदि आप प्रसन्न हैं तो हम भगवान् विष्णु की पति-रूप में कामना करती हैं ॥७८॥

एवं भविष्यतीत्युक्त्या ह्युत्ततार जलान्मुनिः ।
तमुत्तीर्णं च ददृशुर्विरूप वक्रमष्टधा ॥७९
त दृष्ट्वा गूहमानानां यासां हासः स्फुटोऽभवत् ।
ताश्शशाप मुनिः कोपमवाप्य कुरुनन्दन ॥८०
यस्माद्विकृतरूपं मां मत्वा हासावमानना ।
भवतीभिः कृता तस्मादेतं शापं ददामि वः ॥८१
मत्प्रसादेन भर्तारं लब्ध्वा तु पुरुषोत्तमम् ।
मच्छापोपहतास्सर्वा दस्युहल्तं गमिष्यथ ॥८२
इत्युदीरिवमाकर्ण्य मुनिस्ताभिः प्रसादितः ।
पुनस्सुरेन्द्रलोकं वै प्राह भूयो गमिष्यध ॥८३
एवं तस्य मुनेश्शापादष्टावक्रस्य चक्रिणम् ।
भर्तारं प्राप्त ता याता दस्युहस्तं सुराङ्गना ॥८४
तत्त्वया नात्र कर्त्तव्यश्शोकोऽल्पोऽपि हि पाण्डव ।
तेनैवाखिलनाथेन सर्वं तदुपसंहृतम् ॥८५
भवता चोपसंहारः आसन्नस्तेन पाण्डव ।
बलं तेजस्तथा वीर्यं माहात्म्यं चोपसहृतम् ॥८६

श्रीव्यासजी ने कहा—अष्टावक्रजी 'ऐसा ही होगा' कहते हुए जल से बाहर निकले, उस समय अप्सराओ ने उनके आठ स्थानों में टेढे शरीर को देखा तो मुख से हँसी छूट पड़ी और छिपाने पर भी छिप न सकी, इससे महर्षि ने रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया कि तुमने मेरे कुबड़ की हँसी उड़ाई है, इसलिये तुम भगवान् विष्णु को पति रूप मे पाकर भी लुटेरों द्वारा अपहृत होओगी ॥ ७९-८२ ॥ श्री व्यासजी बोले—इस पर उन अप्सराओं ने अष्टावक्रजी को पुनः प्रसन्न किया, तब मुनिवर ने उनसे कहा—कि 'उसके बाद तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी' ॥ ८३ ॥ इस प्रकार अष्टावक्रजी की कृपा से उन्हें रति रूप भगवद्—प्राप्ति और शाप से लुटेरों द्वारा अपहरण रूप फल मिला ॥८४॥ हे पाण्डव ! उन अखिलेश्वर ने स्वयं ही सब यादव-वंश को नष्ट किया है तो तुझे शोक करना उचित नहीं है ॥८५॥ फिर तुम्हारा भी अन्तकाल समीप है इसलिए भगवान् ने तुम्हारे बल, तेज और माहात्म्य को क्षीण कर दिया है ॥८६॥

जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतेः ।
विप्रयोगावसानस्तु संयोगः सञ्चये क्षयः ॥८७
विज्ञाय न बुधाश्शोकं न हर्षमुपायान्ति ये ।
तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तस्सन्ति तादृशाः ॥८८
तस्मात्त्वया नरश्रेष्ठ ज्ञात्वतद्भ्रातृभिस्सह ।
परित्यज्याखिलं तन्त्रं गन्तव्यं तपसे वनम् ॥८९
तद् गच्छ धर्मराजाय निवेद्यैतद्वचो मम ।
परश्वो भ्रातृभिस्सार्द्धं यथा यासि तथा कुरु ॥९०
इत्युक्तोऽभ्येत्य पार्थाभ्यां यमाभ्यां च सहार्जुनः ।
दृष्टं चैवानुभूत च ते सर्वमाख्यातवास्तथा ॥९१
व्यासवाक्यं च सर्वे श्रुत्वार्जुनमुखेरितम् ।
राज्ये परीक्षितं कृत्वा ययुः पाण्डुसुता वनम् ॥९२
इत्येतत्तव मैत्रेय विस्तरेण मयोदितम् ।
जातस्य यद्यदोर्वंशे वासुदेवस्य चेष्टितम् ॥९३

यश्चैतच्चरितं यस्य कृष्णस्य शृणुयात्सदा ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥६४

हे पार्थ ! जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा, उन्नति का पतन भी निश्चित्त है, संयोग से वियोग और संचय से ही व्यय होता है। ऐसा समझ कर हर्षशोक न करके बुद्धिमान् पुरुष दूसरों के लिए भी अनुकरणीय बन जाते हैं ॥ ८७-८८ ॥ तुम भी अब राज-पाट को त्याग कर अपने भाइयों के सहित वन में जाओ ॥८९॥ अब यहाँ से जाकर युधिष्ठिर को सब वृत्तान्त कहकर वन-गमन कर सको वैसी चेष्टा करो॥९०॥ मुनिवर व्यास के ऐसा कहने पर अर्जुन ने सब भाइयों के पास आकर सब वृत्तान्त यथावत् सुनाया, जिससे सब पाण्डु पुत्र परीक्षित् को राज्य-पद पर अभिषिक्त कर स्वय वन को चल दिये ॥९१-९२॥ हे मैत्रेयजी ! भगवान् ने यदुवंश में अवतीर्ण होकर जो-जो चरित्र किये वह सब मैंने तुम्हें सुना दिये । जो पुरुष इन चरित्रों को सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर अन्त में विष्णुलोक प्राप्त होता है ॥९३-९४॥

षष्ठ अंश

पहला अध्याय

व्याख्याता भवता सर्गवंशमन्वतर स्थितिः ।
वंशानुचरितं चैव विस्तरेण महामुने ॥१
श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वत्तो यथावदुपसंहृतिम् ।
महाप्रलयसंज्ञां च कल्पान्ते च महामुने ॥२
मैत्रेय श्रूयतां मत्तो यथावदुपसंहृतिः ।
कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलये जायते यथा ॥३
अहोरात्रं पितृणां तु मासोऽदस्त्रिदिवौकसाम् ।
चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो वै द्विजोत्तम ॥४
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु तद्द्वादशभिरुच्यते ॥५

चतुर्युगाण्यशेषाणि सदृशानि स्वरूपतः ।
आद्यं कृतयुगं मुक्त्वा मैत्रेयान्त्यं तथा कलिम् ॥६
आद्ये कृतयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यथा ।
क्रियते चोपसंहारस्तथान्ते च कलौ युगे ॥७

श्री मैत्रेयजी बोले—हे महामुने! आपने सृष्टि, मन्वन्तर और वंशों के चरित्र कहे हैं। अब मैं कल्पान्त में होने वाले महाप्रलय का वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥१-२॥ पराशरजी ने कहा—प्राकृत प्रलय में प्राणियों का जैसे उपसंहार होता है, वह सुनो ॥ ३ ॥ मनुष्यों के एक मास का पितरों का एक दिन-रात, एक वर्ष का देवताओं का एक दिन-रात तथा दो हजार चतुर्युगियों का ब्रह्मा का एक दिन रात होता है ॥४॥ सत्य-युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—यह चतुर्युगी है, इसका मान बारह हजार दिव्य वर्ष है ॥५॥ प्रथम के सत्ययुग और अन्त के कलियुग के अतिरिक्त शेष सब चारों युग के मानानुसार एक समान है ॥६॥ जैसे प्रारम्भिक युग में ब्रह्माजी सृष्टि रचते हैं, वैसे ही अन्तिम युग में उसका संहार कर देते हैं ॥७॥

कलेस्स्वरूपं भगवन्विस्तराद्वक्तुमर्हसिः ।
धर्मश्चतुष्पाद्भगवान्यस्मिन्विप्लव मृच्छति ॥८
कलेःस्वरूपं मैत्रेय यद्भवाञ्छ्रोतुमिच्छति ।
तन्निबोध समासेन वर्त्तते यन्महामुने ॥९
वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ नृणाम् ।
न सामऋग्यजुर्धर्मविनिष्पादन हैतुकी ॥१०
विवाहो न कलौ धर्म्या न शिष्यगुरुसंस्थितिः ।
न दाम्पत्यक्रमो नैव वह्निदेवात्मकः क्रमः ॥११
यत्र कुत्र कुले जातो बली सर्वेश्वरः कलौ ।
सर्वेस्य एव वर्णेभ्यो योग्यः कन्यावरोधने ॥१२
येन केन च योगेन द्विजातिर्दीक्षितः कलौ ।
यैव सैव च मैत्रेय प्रायश्चित्तं कलौ क्रिया ॥१३
सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्वचनं द्विज ।

देवता च कलौ सर्वा सर्वस्सर्वस्य चाश्रमः ॥१४
उपवासस्तथायासो वित्तोत्सर्गस्तपः कलौ ।
धर्मो यथाभिरुचिरैनुष्ठानैरनुष्ठितः ॥१५

श्री मैत्रेयजी ने कहा—उस कलियुग के स्वरूप को विस्तार पूर्वक कहिये, जिसमें भगवद्धर्म लुप्त हो जाता है ॥८॥ पराशरजी ने कहा—आप कलियुग का रूप सुनने के इच्छुक हैं इसलिए उसे संक्षेप में सुनिये ॥९॥ कलियुग में मनुष्यों की प्रवृत्ति वर्णाश्रम धर्म और वेदत्रयी युक्त नहीं होती ॥१०॥ उस समय धर्म पूर्वक विवाह, गुरु-शिष्य-संबंध दाम्पत्य—जीवन का क्रम और अज्ञानुष्ठान आदि का भी लोप हो जाता है ॥११॥ बलवान् ही सबका स्वामी और सभी वर्णों से कन्या ग्रहण करने में समर्थ होता हे ॥१२॥ उस समय निकृष्ट उपाय 'दीक्षित' होने में और सरल क्रिया ही प्रायश्चित मानने में स्वीकार होंगी ॥१३॥ जिसके मुख से जो निकल जाय वही शास्त्र तथा भूसादि देवता और सभी के लिए सब आश्रम खुले होंगे ॥१४॥ उपवास, तीर्थयात्रा, धन-दान और स्वेच्छा पूर्वक अनुष्ठान ही श्रेष्ठ धर्म माने जायँगे ॥१५॥

वित्तेन भविता पुंसां स्वल्पेनाढ्यमदः कलौ ।
स्त्रीणां रूपमदश्चैवं केशैरेव भविष्यति ॥१६
सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्रे चोपक्षय गते ।
कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशैरलङ्कृताः ॥१७
परित्यक्ष्यन्ति भर्त्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः ।
भर्त्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम् ॥१८
यो वै ददाति वहुलं स्वं स स्वामी सदा नृणाम् ।
स्वामित्वहेतुस्सम्बन्धो न चाभिजनता तथा ॥१९
गृहान्ता द्रव्यसंघाता द्रव्यान्ता च तथा मतिः ।
अर्थाश्चात्मोपभोग्यान्ता भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२०
स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः ।
अन्ययावाप्तवित्तेषु पुरुषः स्पृहयालवः ॥२१
अभ्यर्थितापि सुहृदा स्वार्थहानि न मानवाः ।

पणार्धार्धार्द्धमात्रेऽपि करिष्यन्ति कलौ द्विज ॥२२
समानपौरुषं चेतो भावि विप्रेषु वै कलौ ।
क्षीरप्रदानसम्बन्धि भावि गोषु च गौरवम् ॥२३

थोड़े धन से ही धनवान् होने का अभिमान और बालों से ही नारी-सौन्दर्य का गर्व होगा। स्वर्ण, मणि, और रत्नादि के अभाव में केश-कलाप ही स्त्रियों का अलङ्कार होगा ॥१६-१७॥ स्त्रियाँ धन-हीन पति का त्याग करेंगी और धनवान् को ही अपना पति मानेंगी ॥१८॥ अधिक धन देने वाला ही स्वामी होगा, उस समय सम्बन्ध या कुलीनता से स्वामित्व को नहीं माना जायगा ॥१९॥ सम्पूर्ण द्रव्य गृह-निर्माण में ही व्यय होता रहेगा, धन संचय वाली बुद्धि होगी और सब धन अपने ही उपयोग में लाया जायगा ॥ २० ॥ कलियुग में स्त्रियाँ स्वेच्छाचार पूर्वक सुन्दर पुरुष को चाहेंगी, तथा पुरुषगण अन्याय पूर्वक धन ग्रहण करने की इच्छा करेंगे ॥२१॥ स्वजनों की प्रार्थना पर भी कोई एक आध दमड़ी कीं हानि भी स्वीकार न करेगा ॥२२॥ शूद्र ब्राह्मणों से समानता करेंगे और दूध देने के कारण ही गौएं सम्मानित होंगी ॥२३॥

अनावृष्टिभयप्रायाः प्रजाः क्षुद्भयकातराः ।
भविष्यन्ति तदा सर्वे गगनासक्तदृष्टयः ॥२४
कन्दमूलफलाहारास्तापसा इव मानवाः ।
आत्मानं घातयिष्यन्ति ह्यनावृष्टयादिदुःखिताः ॥२५
दुर्भिक्षमेव सततं तथा क्लेशमनीश्वराः ।
प्राप्स्यन्ति व्याहतसुखप्रमोदा मानवाः कलौ ॥२६
अस्नानभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजनम् ।
करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिण्डोदकक्रियाम् ॥२७
लोलुपा ह्रस्वदेहाश्च बह्वन्नादनतत्पराः ।
बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥२८
उभाभ्यामपि पाणिभ्यां शिरः कण्डूयनं स्त्रियः ।
कुर्वन्त्यो गुरुभर्तृणामाज्ञां भेत्स्यन्त्यनादराः ॥२९
स्वपोषणपराः क्षुद्रा देहसंस्कारवर्जिताः ।

परुषानृतभाषिण्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥३०
दुःशीला दुष्टशीलेषु कुर्वन्त्यस्ससततं स्पृहाम् ।
असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गनाः ॥३१

भूख से व्याकुल हुई प्रजा अनावृष्टि के भय से आकाश को ताकती रहेगी ॥२४॥ मनुष्यों को केवल कन्द, मूल, फल के सहारे रहना होगा और बहुत से अनावृष्टि से दुखित होकर आत्मघात कर लेंगे ॥२५॥ कलियुग में मनुष्य इतने असमर्थ होंगे कि सुख के क्षीण होने पर उन्हें दुर्भिक्ष और क्लेश की ही प्राप्ति होती रहेगी ॥२६॥ बिना स्नान किये ही भोजन तथा अग्नि, देनता और अतिथि के पूजन का अभाव और पिण्डदान न करने की वृत्ति हो जायगी ॥२७॥ स्त्रियाँ विषयासक्त, अति भोजन करने वाली, अधिक सन्तान उत्पन्न उरने वाली अभागी और छोटे देह में होंगी ॥२८॥ वे अपने दोनों हाथों से सिर खुजाती हुई अपने बड़ों तथा पतियों के आदेश को न मानेंगी ॥२९॥ वे क्षुद्र चित्त वाली, अपनी ही उदर पूर्ति में लगी हुई, आचार-विचार में हीन तथा कठोर और मिथ्या वचन कहने वाली होंगी ॥३०॥ दुश्चरित्र पुरुषों का सङ्ग चाहने वाली, दुराचारिणी और पुरुषों से धूर्ततापूर्ण व्यवहार करने वाली होंगी ॥३१॥

वेदादानं करिष्यन्ति बटवश्चाकृतव्रताः ।
गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दास्यन्त्युचितान्यपि ॥३२
वानप्रस्था भविष्यन्ति ग्राम्याहारपरिग्रहाः ।
भिक्षवश्चापि मित्रादिस्नेहसम्बन्धयन्त्रणाः ॥३३
अरक्षितारो हर्त्तारश्शुल्कव्याजेन पार्थिवाः ।
हारिणो जनवित्तानां सम्प्राप्ते तु कलौ युगे ॥३४
यो योऽश्वरथनागाढ्यस्स स राजा भविष्यति ।
यश्चं यश्चाबलस्सर्वस्स स भृत्यः कलौ युगे ॥३५
वैश्याः कृतिवाणिज्यादि सन्त्यज्य निजकर्म यत् ।
क्षूद्रवृत्त्या प्रवर्त्स्यन्ति कारकुर्मोपजीविनः ॥३६
भैक्षव्रतपराः शूद्राः प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः ।

पाषंडसंश्रयां वृत्तिमाश्रयिष्यन्ति सत्कृताः ।।३७
दुर्भिक्षकरपीडाभिरतीवोपद्रता जनाः ।
गोधूमान्नयवान्नाढ्यान्देशान्यास्यन्ति दुःखिता ।।३८

ब्रह्मचारी व्रतादि न करते हुए ही वेद पढ़ेंगे और गृहस्थ सत्पात्र को दान न देने वाले और हवन न करने वाले होंगे ।।३२।। वानप्रस्थ नगर का भोजन पसन्द करेंगे और संन्यासी अपने स्नेहीजनों के प्रेम में फँसे रहेंगे ।।३३।। कलियुग में राजागण कर लेने के बहाने प्रजा को लूटेंगे और उसकी रक्षा भी नहीं करेंगे ।।३४।। बहुत से रथ, हाथी, घोड़े वाला ही राजा हो जायगा तथा अशक्त पुरुष श्रेष्ठ होकर भी सेवक ही बनेगा ।।३५।। वैश्य भी कृषि-वाणिज्य को छोड कर शिल्पकारी करेंगे या शूद्र वृत्ति से निर्वाह करेंगे ।।३६।। अधम लोग संन्यासी वेश में भिक्षावृत्ति करेंगे तथा सम्मानित होकर पाखण्ड की वृद्धि करेंगे ।।३७।। प्रजाजन कर और दुर्भिक्ष के कारण अत्यन्त दुखित होकर गेहूँ और जौ की अधिकता वाले देशों में चले जांयगे ।।३८।।

वेद मार्गे प्रलीने च पाषण्डाढ्ये ततो जने ।
अधर्मवृद्ध्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ।।३९
अशास्त्रविहितं घोरं तप्यमानेषु वै तपः ।
नरेषु नृपदोषेण बाल्ये मृत्युर्भविष्यति ।।४०
भविता योषितां सूतिः पञ्चषट्सप्तवार्षिकी ।
नवाष्टदशवर्षाणां मनुष्याणां तथा कलौ ।।४१
पलितोद्भवश्चभविता तथा द्वादशवार्षिकः ।
नातिजीवति वै कश्चित्कलौ वर्षाणि विंशतिः ।।४२
अल्पप्रज्ञा वृथालिङ्गा दुष्टान्तः करणाः कलौ ।
यतस्ततो विनङ्क्ष्यन्ति कालेनाल्पेन मानवाः ।।४३
यदा तदा हि मैत्रेय हानिर्धर्मस्य लक्ष्यते ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ।।४४
यदा यदा हि पाषण्डवृद्धिर्मैत्रेय लक्ष्यते ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया महात्मभिः ।।४५

यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम् ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४६

कलिकाल में वेद-धर्म के लुप्त होने, पाखंड के बढ़ाने और अधर्म की प्रचुरता होने से प्रजा अल्प आयु वाली होगी ॥३९॥ शास्त्र विरुद्ध तपस्या से और राजा के विपरीत मार्गगामी होने से बाल्यावस्था में ही मृत्यु होने लगेगीं ॥४०॥ पाँच, छः या सात वर्ष की स्त्री और आठ, नौ या दस वर्ष के पुरुष की सन्तान उत्पन्न करने लगेंगे ॥४१॥ बारह वर्ष की आयु में ही केश पकने लगेंगे और बीस वर्ष से अधिक किसी की आयु नहीं होगी ॥४२॥ लोगों की बुद्धि, मन्द होगी, बुद्धि, व्यर्थ के चिन्ह धारण करेंगे और अल्पायु में ही मर जायगे ॥४३॥ जैसे-जैसे धर्म की हानि दिखाई दे, वैसे-वैसे ही कलियुग की वृद्धि समझे ॥४४॥ पाखंड की वृद्धि दिखाई दे, तभी समझले कि कलियुग का बल बढ़ रहा है ॥४५॥ जब वैदिक मार्ग पर चलने वालों की कमी जान पड़े, तभी बुद्धिमान पुरुष कलियुग को उत्कर्ष पर जान लेवें ॥४६॥

प्रारम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्मभृतां नृणाम् ।
तदानुमेयं प्राधान्यं कलेर्मैत्रेय पण्डितैः ॥४७
यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः ।
इज्यते पुरुषैर्यज्ञैस्तदा ज्ञेयं कलेर्बलम् ॥४८
न प्रीतिर्वेदवादेषु पाषण्डेषु यदा रतिः ।
कलेर्वृद्धिस्तथा प्राज्ञैरनुमेया विचक्षणैः ॥४९
कलौ जगत्पतिं विष्णुं सर्वस्रष्टारमीश्वरम् ।
नार्चयिष्यन्ति मैत्रेय पाषण्डोपहता जनाः ॥५०
किं देवैः किं द्विजैर्वेदैः किं शौचेनाम्बुजन्मना ।
इत्येवं विप्र वक्ष्यन्ति पाषण्डोपहता जनाः ॥५१
स्वल्पाम्बुवृष्टिः पर्जन्यः सस्यं स्वल्पफलं तथा ।
फलं तथाल्पसारं च विप्र प्राप्ते कलौ युगे ॥५२
शाणीप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महीरुहाः ।
शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥५३

अणुप्रायाणि धान्यानि अजाप्रायं तथा पयः ।
भविष्यति कलौ प्राप्ते ह्यौशीरं चानुलेपनम् ।।५४

जब धर्मात्मा पुरुषों के कार्य विफल हो जाँय, तब कलियुग का आधिक्य समझे ।।४७।। यज्ञेश्वर भगवान् के यजन से लोग विमुख हो जाँय तब कलियुग की प्रबलता माने ।। ४८ ।। वेदवाद से अरुचि और पाखण्ड में तन्मयता को कलियुग की वृद्धि जाने ।।४९।। पाखंड के कारण मनुष्य भगवान् विष्णु की पूजा नहीं करेंगे।।५०।। उस समय पाखण्डीजन कहेंगे कि देवता, विप्र, वेद तथा जल से होने वाले कर्मों से क्या लाभ हैं ? ।।५१।। कलियुग में वर्षा थोड़ी होगी, खेती थोड़ा अन्न उत्पन्न करेगी और फलादि में न्यून गुण होगा ।। ५२ ।। सन के बने हुये वस्त्र पहिने जाँयगे, शमी वृक्षों की अधिकता होगी और सब वर्णों का आचरण शूद्र के समान होगा ।।५३।। कलियुग में धान्य बहुत छोटे होंगे, बकरियों का दूध ही उपलब्ध होगा और खस ही अनुलेपन होगा ।।५४।।

श्वश्रूश्वशुरभूयिष्टा गुरवश्च नृणां कलौ ।
श्यालाद्या हारिभार्याश्च सुहृदो मुनिसत्तम ।।५५
कस्य माता पिता कस्य यथा कर्मानुगः पुमान् ।
इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नराः ।।५६
वाङ्मनः कायजैर्दोषैरभिभूता पुनः पुनः ।
नराः पापान्यनुदिनं करिष्यन्त्यल्पमेधसः ।।५७
निस्स्वाध्यायवषट्कारे स्वधास्वाहाविवर्जिते ।
तदा प्रविरलो धर्मः क्वचिल्लोके निवत्स्यति ।।५८
तत्राल्पेनैक यत्नेन पुण्यस्कन्धमनुत्तमम् ।
करोति यं कृतयुगे क्रियते तपसा हि सः ।।५९

कलियुग में सास—सुसर, गुरुजन तथा पत्नी और साले ही सुहृद्जन होंगे ।।५५।। सास-ससुर के वश में पड़े हुए लोग माता-पिता को कुछ नहीं मानेंगे ।।५६।। मनुष्यों की बुद्धि अल्प होगी, वे मन, वाणी और कर्म के द्वारा बारम्बार पाप करेंगे ।।५७।। संसार स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा और स्वाहा से हीन हो जायगा और कहीं-कहीं हो कुछ धर्म रह

सकेगा ॥५८॥ परन्तु कलियुग में स्वल्प प्रयत्न में ही जिस महान् पुण्य राशि की प्राप्ति हो सकती है, उसे सत्ययुग में घोर तप करके ही पाया जा सकता है ॥५९॥

दूसरा अध्याय

व्यासश्चाह महाबुद्धिर्यदत्रैव हि वस्तुनि ।
तच्छ्रूयतां महाभाग गदतो मम तत्त्वतः ॥१
कस्मिन्कालेऽल्पको धर्मो ददाति सुमहत्फलम् ।
मुनीनां पुण्यवादोऽभूत्कैश्चासौ क्रियते सुखम् ॥२
सन्देहनिर्णयार्थाय वेदव्यासं महामुनिम् ।
ययुस्ते संशयं प्रष्टुं मैत्रेय मुनिपुङ्गवाः ॥३
ददृशुस्ते मुनिं तत्र जाह्नवीसलिले द्विज ।
वेदव्यासं महाभागमर्द्धस्नातं सुतं मम ॥४
स्नानावसानं ते तस्य प्रतीक्षन्तो महर्षयः ।
तस्थुस्तीरे महानद्यास्तरुषण्डमुपाश्रिताः ॥५
मग्नोऽथ जाह्नवीतोयादुत्थायाह सुतो मम ।
शूद्रस्साधुः कलिस्साधुरित्येवं शृण्वतां वचः ॥६
तेषां मुनीनां भूयश्च ममज्ज स नदीजले ।
साधु साध्विति चोत्थाय शूद्र धन्योऽसि चाब्रवीत् ॥७

हे महाभाग ! इस विषय में व्यासजी ने जो कहा है, वहीं ज्यों का त्यों सुनाता हूँ ॥ १ ॥ एक बार मुनियों में परस्पर पुण्य विषयक वार्त्तालाप हुआ कि अल्प पुण्य भी महान् फल वाला कब होता है तथा उसके अनुष्ठाता कौन हो सकते हैं ? ॥२॥ इस सन्देह के समाधान हेतु वे सब महामुनि व्यासजी के पास पहुँचे ॥ ३ ॥ वहाँ जाकर उन्होंने मेरे पुत्र व्यासजी को गङ्गाजी में अर्द्ध स्नान करते हुए पाया ॥ ४ ॥ तब वे सब गङ्गातट स्थित वृक्षों के नीचे बैठकर प्रतीक्षा करने लगे ॥५॥ उस समय गङ्गाजी में गोता लगाकर व्यासजी ने ऊपर उठते हुए कहा 'कलि-

युग श्रेष्ठ, शूद्र श्रेष्ठ' उनके वचन सबने सुने। उन्होंने पुनः गोता लगाया और उठकर कहा—हे शूद्र ! तुम ही श्रेष्ठ और तुम ही धन्य हो॥६-७॥

निमग्नश्च समुत्थाय पुनः प्राह महामुनिः ।
योषितः साधु धन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्ति कः ॥८
ततः स्नात्वा यथान्यायमायान्तं च कृतक्रियम् ।
उपतस्थुर्महाभागं मुनयस्ते सुतं मम ॥९
कृतसंवन्दनांश्चाह कृतासनपरिग्रहान् ।
किमर्थमागता यूयमिति सत्यवतीसुतः ॥१०
तमूचुः संशयं प्रष्टुं भवन्तं वयमागताः ।
अलं तेनास्तु तावन्नः कथ्यतामरं त्वया ॥११
कलिस्साध्विति प्रत्प्रोक्तं शूद्रः साध्विति योषितः ।
यदाह भगवान् साधु धन्याश्चेति पुनः पुनः ॥१२
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामो न चेद् गुह्यं महामुने ।
तत्कथ्यतां ततो हृत्स्थं पृच्छामस्त्वां प्रयोजनम् ॥१३
इत्युक्तो मुनिभिर्व्यासः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ।
श्रूयतां भो मुनिश्रेष्ठा यदुक्तं साधु साध्विति ॥१४

उन्होंने फिर गोता लगाया उठते हुए कहा स्त्रियाँ धन्य हैं, वे ही साधु हैं, उनसे बढकर कृतकृत्य और कौन हो सकता है?॥८॥ फिर जब व्यासजी स्नान तथा नित्य-कर्मादि से निवृत्त हुए तब वे मुनिजन उनके पास गये ॥९॥ अभिवादन आदि करके जब वे बैठ गये तब व्यासजी ने उनके आगमन का कारण पूछा ॥१०॥ तब मुनियों ने कहा—वैसे तो हम एक शङ्का के समाधानार्थ यहाँ आये थे, परन्तु इस समय तो आप एक और बात बताने की कृपा करें ॥११॥ आपने स्नान करते समय कलियुग श्रेष्ठ, शूद्र श्रेष्ठ, स्त्रियाँ धन्य, वे ही साधु हैं आदि वाक्य कहे उनका तात्पर्य क्या है, यही हम सुनने को उत्सुक हैं। यदि यह विषय गोपनीय न हो तो बताने की कृपा करें ॥ १२-१३ ॥ मुनियों के प्रश्न पर व्यासजी हँस पड़े और बोले कि मेरे वचनों का प्रयोजन सुनो ॥१४॥

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत् ।
द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥१५
तपसो ब्रह्मचर्यं जपादेश्च फलं द्विजाः ।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिस्साध्विति भाषितम् ॥१६
ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥१७
धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुषः कलौ ।
अल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्हं कलेः ॥१८
व्रतचर्यापरैर्ग्राह्या वेदाः पूर्वं द्विजातिभिः ।
ततस्स्वधर्मसम्प्राप्तैष्टव्यं विधिवद्धनैः ॥१९
वृथा कथा वृथा भोज्यं वृथेज्या च द्विजन्मनाम् ।
पतनाय ततो भाव्यं तैस्तु संयमिभिस्सदा ॥२०
असम्यक्करणे दोषस्तेषां सर्वेषु वस्तुषु ।
भोज्यपेयादिकं चैषां नेच्छाप्राप्तिकर द्विजाः ॥२१
पारतन्त्र्यं समस्तेषु तेषां कार्येषु वै यतः ।
जयन्ति ते निजाँल्लोकान्क्लेशेन महता द्विजाः ॥२२

श्री व्यासजी बोले – हे द्विजगण ! सत्ययुग में दस वर्ष तक तप ब्रह्मचर्य—पालन और जपादि करने से जो फल मिलता है वह त्रेता में एक वर्ष में, द्वापर में एक महीने में तथा कलियुग में एक अहोरात्रि में ही मिल सकता है ॥१५-१६॥ सत्ययुग में ध्यान से जो फल होता है, वह त्रेता में केवल श्रीकृष्ण-नाम संकीर्तन से होता है ॥१७॥ हे धर्मज्ञो ! कलियुग में थोड़ा-सा परिश्रम करने पर ही महान् धर्म की प्राप्ति होती है, इसीलिए मैं कलियुग से वहुत प्रसन्न हूँ ॥१८॥ द्विजातियों को ब्रह्मचर्य व्रत के पालन पूर्वक वेदाध्ययन और धर्म से उपार्जित धन के द्वारा विधिपूर्वक यज्ञों के अनुष्ठान करने होते है ॥१९॥ फिर भी व्यर्थ वार्तालाप, व्यर्थ भोजन या निष्फल यज्ञ उनका पतन कर देते हैं इसलिए उन्हें समय रखना आवश्यक है ॥२०॥

कार्यों की विपरीतता ने उन्हें दोष-प्राप्ति होती है, इस भय से वे भोजन, पानादि भी स्वेच्छा से नहीं कर सकते ।।२१।। वे सभी कार्यों में परतंत्रता पूर्वक निष्ठावान् रहकर अत्यन्त क्लेश से पुण्यलोकों को प्राप्त होते हैं ।।२२।।

द्विजशुश्रूयैवैष पाकयज्ञाधिकारवान् ।
निजाक्रजयति वै लोकाञ्च्छूद्रो धन्यतरस्ततः ।।२३
भक्ष्याभक्ष्येषु नास्यास्ति पेयापेयेषु वै यतः ।
नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वितीरितः ।।२४
स्वधर्मस्याविरोधेन नरैर्लब्धं धनं सदा ।
प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्ठव्यं च यथाविधि ।।२५
तस्यार्जने महाक्लेशः पालने च द्विजोत्तमाः ।
तथासद्विनियोगेन विज्ञातं गहनं नृणाम् ।।२६
एवमन्यैस्मथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः ।
निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ।।२७
योषिच्छुश्रूषणाद्भर्त्तुः कर्मणा मनसा गिरा ।
तद्धिता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः ।।२८
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा ।
तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषितः ।।२९
एतद्वः कथितं विप्रा यन्निमित्तमिहागताः ।
तत्पृच्छत यथाकामं सव वक्ष्यामि वः स्फुटम् ।।३०
ऋषयस्ते ततः प्रोचुर्यत्प्रष्टव्यं महामुने ।
अस्मिन्नेव च तत् प्रश्ने यथावत्कथितं त्वया ।।३१

केवल पाक-यज्ञ का अधिकारी शूद्र द्विजों की सेवा करने से हीं मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ होता है, इसलिये वह शूद्र अधिक धन्य है ।। २३ ।। हे मुनिवरो ! शूद्र के लिए भक्ष्याभक्ष्य का भी कोई वन्धन नहीं होने से मैं उन्हे श्रेष्ठ कहता हूँ ।।२४।। मनुष्यों को धर्म से प्राप्त धन से सुपात्र को दान और विधिवत् यज्ञ करना उचित है ।।२५।। धन के उपार्जन और रक्षण में अत्यन्त कष्ट होता है और उसे

उचित मार्ग के व्यय न करने पर तो बहुत ही दुःख भोगना होता है ॥२६॥ इस प्रकार के कष्ट साध्य उपायों से ही प्राजापत्य आदि लोकों की प्राप्ति होती है ॥२७॥ परन्तु, स्त्रियों को तो केवल पति--सेवा करने से ही पति के समान लोकों की प्राप्ति हो जाती है, इसलिये मैंने स्त्रियों को साधु कहा है ॥२८-२९॥ हे विप्रो ! यह तो मैंने आपको बता ही दिया, अब आप अपने आने का प्रयोजन कहिये जिसे मैं स्पष्टता से समझा सकूँ ॥३०॥ इस पर ऋषि बोले कि हमारे प्रश्न का उत्तर इसी में मिल गया है ॥३१॥

ततः प्रहस्य तानाह कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
विस्मयोत्फुल्लनयनांस्तापसांस्तानुपागतान् ॥३२
यग्रैषा भवतां प्रश्नो ज्ञातो दिव्येन चक्षुषा ।
ततो हि वः प्रसङ्गेन साधु साध्विति भाषितम् ॥३३
स्वल्पेन हि प्रयत्नेन धर्मस्सिद्धयति वै कलौ ।
नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिताखिलकिल्बिषैः ॥३४
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परैर्द्विजसत्तमाः ।
तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूयैव हि ॥३५
ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतरं मतम् ।
धर्मसम्पादने क्लेशो द्विजतीनां कृतादिषु ॥३६
भवद्भिर्यदभिप्रेतं तदेतत्कथितं मया ।
अपृष्टेनापि धर्मज्ञाः किमन्यत्क्रियतां द्विजाः ॥३७

श्री पराशरजी ने कहा—यह सुनकर श्री व्यासजी ने उन तपस्वियों से हँसते हुए कहा ॥३२॥ मैंने आपके प्रश्न को दिव्य दृष्टि से जानकर ही प्रसंगवश 'साधु कहा था ॥३३॥ जिन्होंने गुण रूप जल से अपने सब दोषों को धो दिया है, उन्हें कलियुग में स्वल्प उद्यम से ही धर्म की प्राप्ति हो जाती है ॥३४॥ शूद्र द्विजसेवा से और स्त्रियाँ पति—सेवा से ही धर्म की प्राप्ति कर लेती हैं ॥३५॥ इसीलिये यह तीनों धन्य से भी

धन्य हैं, कलियुग के अतिरिक्त अन्य युगों में भी द्विजातियों को ही धर्म की सिद्धि के लिये घोर कष्ट सहन करने होते हैं ।।३६।। इस प्रकार आपकी शंका का समाधान हो चुका अब और मुझे क्या करना चाहिये ? ।।३७।।

ततस्सम्पूज्य ते व्यासं प्रशशंसुः पुनः पुनः ।
यथागतं द्विजा जग्मुर्व्यासोक्तिकृतनिश्चयाः ।।३८
भवतोऽपि महाभाग रहस्यं कथितं मया ।।३९
अत्यन्तदुष्टस्य कलेरयमेको महान्गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तवन्धः पर व्रजेत् ।।४०
यच्चाहं भवता पृष्टो जगतामुपसंहृतिम् ।
प्राकृतामन्तरालां च तामप्येष वदामि ते ।।४१

श्री पराशरजी ने कहा—फिर वे ऋषिगण व्यासजी का पूजन और बारम्बार स्तवन करते हुए अपने स्थान को गये ।।३८।। हे मैत्रेजी ! आपको भी मैं यह रहस्य सुना चुका ।।३९।। इस कलियुग में केवल कृष्ण-नाम संकीर्तन से परमपद की प्राप्ति होती है ।।४०।। अब मैं उस प्रश्न को भी कहता हूँ जो आपने संसार के उपसंहार के विषय में पूछा था ।।४१।।

तीसरा अध्याय

सर्वेषामेव भूतानां त्रिविधः प्रतिसंचरः ।
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लय ।।१
ब्राह्मो नैमित्तकस्तेषां कल्पान्ते प्रतिसंचरः ।
आत्यन्तिकस्तु मोक्षाख्यः प्राकृतो द्विपरार्द्धकः ।।२
पत्रार्द्ध संख्यां भगवन्ममाक्ष्व यया तु सः ।
द्विगुणीकृतया ज्ञेयः प्राकृतः प्रतिसंचरः ।।३
स्थानात्स्थानं दशगुणमेकस्माद् गण्यते द्विज ।
ततोऽष्टादशमे गे भापरार्द्धमभिधीयते ।।४

परार्द्धं द्विगुणं यत्तु प्राकृतस्स लयो द्विज ।
तदाव्यक्तेऽखिलं व्यक्तं स्वहेतौ लयमेति वै ।।५

निमेषो मानुषो योऽसौ मात्रा मात्राप्रमाणतः ।
तैः पंचदशभिः काष्ठा त्रिंशत्काष्ठा कला स्मृता ।।६

नाडिका तु प्रमाणेन सा कला दश पंच च ।
उन्मानेनाम्भसस्सा तु पलान्यर्द्धं त्रयोदश ।।७

मागधेन तु मानेन जलप्रस्थस्तु स स्मृतः ।
हेममाषैः कृतच्छिद्रश्चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ।।८

श्री पराशरजी ने कहा—नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक के भेद से प्राणियों का प्रलय तीन प्रकार का है ।।१।। कल्पान्त में होने वाला ब्राह्म प्रलय नैमित्तिक, दो परार्द्ध के अन्त में होने वाला प्राकृत और मोक्ष नामक प्रलय आत्यन्तिक कहा जाता है ।।२।। श्री मैत्रेयजी ने कहा--जिसे दुगुना करने में प्राकृतिक प्रलय का परिमाण ज्ञात होता है, उस परार्द्ध की संख्या मुझे वताइये ।।३।। श्री पराशरजी बोले—एक से लेकर क्रमशः गिनते-गिनते (जैसे इकाई, सैकड़ा आदि) जो संख्या अठारहवीं बार गिनी जाय उसे परार्द्ध कहते हैं ।।४।। हे द्विज ! इस परार्द्ध से दुगुनी सख्या में प्रलय है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व अपने कारण में लीन होता है ।।५।। मनुष्य का निमेष ही मात्रा है, उन पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला होती है ।।६।। पन्द्रह कला का एक नाडिका है जो साढ़े बारह पल जल के ताम्रपात्र से विदित होती है । मागधी माप से उस पात्र को जलप्रस्थ कहते हैं, उसमें चार माशे की चार अंगुल लम्बी सोने की सलाई में छेद किया जाता है इस प्रकार जितनी देर में वह पात्र भरे उतने समय को नाडिका समझे ।।७-८।।

नाडिकाभ्यामथ द्वाभ्यां मुहूर्त्तो द्विजसत्तम ।
अहोरात्रं मुहूर्तास्तु त्रिंशन्मासो दिनैस्तथा ।।९

मासैर्द्वादशभिर्वर्षमहोरात्रं तु तद्दिवि ।
त्रिभिर्वर्षशतैर्वर्षं षष्ठ्या चैवासुरद्विषाम् ।।१०

तैस्तु द्वादशासाहस्त्र श्चतुर्युगमुदाहृतम् ।
चतुर्युगसहस्त्रं तु कथ्यते ब्रह्मणो दिनम् ॥११
स कल्पस्तत्र मनवश्चतुर्दश महामुने ।
तदन्ते चैव मैत्रेय ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ॥१२
तस्य स्वरूपमत्युग्रं मैत्रेय गदतो मम ।
शृणुष्व प्राकृतं भूयस्तव वक्ष्याम्यहं लयम् ॥१३

ऐसी दो नाडिकाओं को एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्त का एक अहोरात्र और तीस अहोरात्र का एक मास होता है ॥९॥ बारह मास का वर्ष होता है यही देवताओं का एक अहोरात्र है। ऐसे तीन सौ आठ वर्षों का एक दिव्य वर्ष होता है ॥१०॥ बारह हजार दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी और एक हजार चतुर्युगियों का ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥११॥ हे महामुने ! यही कल्प है, इसमें चौदह मनु होते हैं। इस कल्प के अन्त में ही ब्रह्माजी का नैमित्तिक प्रलय होता है ॥१२॥ अब मैं उस नैमित्तिक प्रलय के भयंकर रूप को कहता हूँ, फिर प्राकृत प्रलय को कहूँगा ॥१३॥

चतुर्युगसहस्रान्ते क्षीणप्राये महीतले ।
अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते शतवार्षिकी ॥१४
ततो यान्यल्पसाराणि तानि सत्त्वान्यशेषतः ।
क्षयं यान्ति मुनिश्रेष्ठ पार्थिवान्यनुपीडनात् ॥१५
ततः स भगवान्विष्णू रुद्ररूपधरोऽव्ययः ।
क्षयाय यतते कर्तुमात्मस्थास्सकलाः प्रजाः ॥१६
ततस्स भगवान्विष्णुर्भानोस्सतुसु रश्मिषु ।
स्थितः पिबत्यशेषाणि जलानि मुनिसत्तम ॥१७
पीत्वाम्भांसि समस्तानि प्राणिभूमिगतान्यपि ।
शोषं नयति मैत्रेय समस्तं पृथिवीतलम् ॥१८
समुद्रान्सरितः शैलनदीप्रस्रवणानि च ।
पातालेषु च यत्तोयं तत्सर्वं नयति क्षयम् ॥१९

ततस्तस्यानुभावेन तोयाहारोत्रृंहिताः ।
त एव रश्मयस्सप्त जायन्ते सप्त भास्काराः ॥२०
अधश्चोर्ध्वं च ते दीप्तास्ततस्सप्त दिवाकराः ।
दहन्त्यशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विज ॥२१

एक हजार चतुर्युगियों के व्यतीत होने पर जब पृथिवी क्षीण प्राय होती है, तब सौ वर्ष तक वर्षा नहीं होती ॥१४॥ उस समय अल्प शक्ति वाले पार्थिव प्राणी अनावृष्टि से संतप्त होकर नाश को प्राप्त होते हैं ॥१५॥ फिर रुद्र रूपी भगवान् विष्णु जगत् के संहारार्थ सब प्रजा को अपने में लीन करने के लिये प्रयत्नवान् होते हैं ॥१६॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! उस समय सूर्य की सप्तरश्मियों में स्थित हुए भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जल का शोषण कर लेते हैं ॥१७॥ इस प्रकार वे जल का शोषण कर समस्त पृथिवी को सुखा देते हैं ॥१८॥ समुद्र, नदी, पर्वतीय स्रोत और पातालादि में सर्वत्र जल सूख जाता है ॥१९॥ तब प्रभु--प्रताप से वे सप्त--रश्मियों जल--पान से पुष्ट होकर सात सूर्य हो जाते हैं ॥२० उस समय ने सातों सूर्य सभी दिशाओं में प्रकाशित होकर पाताल तक सम्पूर्ण त्रिलोकी कों भस्म कर देते हैं ॥२१॥

दह्यमानं तैर्दीप्तैस्त्रैलोक्यं द्विज भास्करैः ।
साद्रिनद्यर्णवाभोगं निस्नेहमभिजायते ॥२२
ततो निर्दग्धवृक्षाम्बु त्रैलोक्यमखिलं द्विज ।
भवत्येषा च वसुधा कूर्मपृष्ठोपमाकृतिः ॥२३
ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ भूत्वा सर्वहरो हरिः ।
शेषाहिश्वाससम्भूतः पालतालानि दहत्यधः ॥२४
पातालानि समस्तानि स दग्ध्वा ज्वलनो महान् ।
भूमिमभ्येत्य सकलं वभस्ति वसुधातलम् ॥२५
भुवर्लोकं ततस्सर्वं स्वर्लोकं च सुदारुणः ।
ज्वालामालामहावर्तस्तत्रैव परिवर्तते ॥२६
अम्बरीषमिवाभाति त्रैलोक्यमखिलं तदा ।
ज्वालावर्तपरीवारमुपक्षीणचराचरम् ॥२७

ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः ।
कृताधिकारा गच्छन्ति महर्लोकं महामुने ॥२८
तस्मादपि महातापतप्ता लोकात्ततः परम् ।
गच्छन्ति जनलोकं ते दशावृत्या परैषिणः ॥२९

हे द्विज ! उन सूर्यों से नदी, पर्वत, समुद्रादि से युक्त सम्पूर्ण त्रिलोकी रस--हीन हो जाती है ॥२२॥ वृक्षों और जलादि के न रहने से यह पृथिवी कछुए की पीठ जैसी कठोर हो जाती है ॥२३॥ फिर कालाग्नि रुद्र रूप से प्रकट हुए भगवान् नीचे से पातालों को भस्मीभूत करने लगते हैं ॥२४॥ सब पातालों को जलाकर वह अग्नि पृथिवी पर पहुँच कर उसे भी भस्म कर डालता है ॥२५॥ फिर वह भुवर्लोक और स्वर्ग-लोक को भस्म करके वहीं घूमता रहता है ॥२६॥ इस धकार अग्नि के घेरे में घिर कर सम्पूर्ण चराचर के नष्ट होने पर यह त्रिलोकी तपे हुए कढ़ाव जैसी हो जाती है ॥२७॥ फिर परलोक की कामना वाले अधि-कारीगण भुवलोक और स्वर्गलोक में स्थित हुए उस अग्नि से संतप्त होकर महर्लोक में जाते हैं परन्तु वहाँ भी वैसा ही ताप होने के कारण जनलोक में चले जाते हैं ॥२८-२९॥

ततो दग्ध्वा जगत्सर्वं रुद्ररूपी जनार्दनः ।
मुखानिःश्वासजान्मेघान्करोति मुनिसत्तम ॥३०
ततो गजकुलप्रख्यास्तडित्वन्तोऽतिनादिनः ।
उत्तिष्ठन्ति तथा व्योम्नि घोरास्संवर्तका घनाः ॥३१
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः ।
धूम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥३२
केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षारसनिभास्तथा ।
केचिद्वैडूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभाः क्वचित् ॥३३
शंखकुन्दनिभाश्चान्ये जात्येञ्जननिभाः परे ।
इन्द्रगोपनिभाः केचित्ततश्शिखिनिभास्तथा ॥३४
मनश्शिलाभाः केचिद्वै हरितालनिभाः परे ।
चापपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्टन्ते महाघनाः ॥३५

केचित्पुरवराकाराः केचित्पर्वतसन्निभाः ।
कूटागारनिभाश्चान्ये केचित्स्थलनिभा घनाः ॥३६

हे मुनिवर ! फिर रुद्र रूपी भगवान् अपने मुख के निःश्वास से मेघों को उत्पन्न करते हैं ॥३०॥ तब भयकर गर्जन करते हुए और हाथियों के समान वृहदाकार वाले संवर्तक मेघ विद्युत से युक्त होकर आकाश में छा जाते हैं ॥३१॥ उन मेघों में कोई श्वेत, कोई धूम्र तथा कोई पीतवर्ण के होते हैं ॥३२॥ कोई गधे जैसे वर्ण के, कोई लाख जैसे लाल कोई वैदूर्य मणि जैसे और कोई इन्द्रनील मणि जैसी कान्ति वाले होते हैं ॥३३॥ कोई श्वेत, कोई शुभ्र, कोई लाल मोर के समान विचित्र वर्ण वाले होते हैं ॥३४॥ कोई गेरू जैसे, कोई हरिताल जैसे, कोई नीलकंठ जैसे वर्ण के होते हैं॥३५॥कोई नगर जैसे पर्वत के समान महाकाय, कोई कूटागार जैसे विशाल और कोई भूतल के समान विस्तृत होते हैं ॥३६॥

महारावा महाकायाः पूरयन्ति नभःस्थलम् ।
वर्षन्तस्ते महासारांस्तमग्निमतिभैरवम् ।
शमयन्त्यखिलं विप्र त्रैलोक्यान्तरधिष्ठितम् ॥३७
नष्टे चाग्नौ च सततं वर्षमाणा ह्यहर्निशम् ।
प्लावयन्ति जगत्सर्वमम्भोभिर्मुनिसत्तम ॥३८
धाराभिरतिमात्राभिः प्लावयित्वाखिलं भुवम् ।
भुवर्लोऽकं तथैवोर्ध्वं प्लावयन्ति हि ते द्विज ॥३९
अन्धकारीकृते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
वर्षन्ति ते महामेघा वर्षाणामधिकं शतम् ॥४०
एवं भवति कल्पान्ते समस्तं मुनिसत्तम ।
वासुदेवस्य माहात्म्यान्नियस्य परमात्मनः ॥४१

वे घनघोर शब्द वाले महाकाय मेघ आकाश को आच्छादित कर मूसलाधार जल वृष्टि से घोर अग्नि को शान्त करते हैं ॥३७॥ फिर वे मेघ निरन्तर वर्षणशील रहकर सम्पूर्ण विश्व को जल-मग्न कर देते हैं। ॥३८॥ भूर्लोक को डुबा कर भुवर्लोक और उसके ऊपर के लोकों को डुबाते हैं ॥३९॥ इस प्रकार जब सम्पूर्ण विश्व अन्धकारमय हो जाता

है, तब समस्त स्थावर-जंगम प्राणियों के नष्ट होने पर वे महामेघ सौ वर्ष से अधिक समय तक वृष्टि करते रहते हैं।।४०।। हे मुनिवर ! भगवान् वासुदेव की महिमा कल्प के अन्त में इसी प्रकार होता है ।।२१।।

चौथा अध्याय

सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि महामुने ।
एकार्णवं भवत्येतत्त्रैक्यमखिलं ततः ।।१

मुखनिःश्वासजो विष्णोर्वायुस्तञ्जलदांस्ततः ।
नाशयन्वाति मैत्रेय वर्षाणामपरं शतम् ।।२

सर्वभूतमयोऽचिन्त्यो भगवान्भूतभावनः ।
जनादिरादिर्विश्वस्य पीत्वा वायुमशेषतः ।।३

एकार्णवे ततस्तस्मिञ्छेषशय्यागतः प्रभुः ।
ब्रह्मरूपधरश्शेते भगवानादिकृद्धरिः ।।४

जनलोकगतैस्सिद्धैस्सनकाद्यैरभिष्टुतः ।
ब्रह्मलोकगतैश्चैव चिन्त्यमानो मुमुक्षुभिः ।।५

आत्ममायामयीं दिव्यां योगनिद्रां समास्थितः ।
आत्मानं वासुदेवाख्यं चिन्तयन्मधुसूदनः ।।६

एष नैमित्तको नाम मैत्रेय प्रतिसञ्चरः ।
निमित्तं तत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो हरिः ।।७

यदा जागर्ति सर्वात्मा स तदा चेष्टते जगत् ।
निमीलत्येतदखिलं मायाशय्यां गतेऽच्युते ।।८

श्री पराशरजी ने कहा—हे महामुने ! सप्तर्षियों के स्थान का भी अतिक्रमण करने वाले जल के कारण सम्पूर्ण त्रिलोकी महासागर जैसी प्रतीत होती है ।।१।। हे मैत्रेयजी ! फिर भगवान् विष्णु के मुख से प्रकट हुआ वायु उन मेघों को नष्ट करके सौ वर्ष तक चलता है ।।२।। फिर जन-लोक वासी सनकादि सिद्धों से स्तुत और ब्रह्मलोक प्राप्त मुमुक्षुओं

द्वारा ध्यान किये जाते हुए भूत भावन भगवान् श्रीहरि उस सम्पूर्ण वायु का पान करके वासुदेवात्मक अपने रूप का चिन्तन करते हुए योग निद्रा का अवलम्बन कर महा समुद्र स्थित शेष-शैया पर शयन करते हैं ॥३-६॥ हे मैत्रेयजी ! इसमें ब्रह्मा रूपधारी भगवान् विष्णु का शयन करना ही निमित्त होने से इसे नमित्तिक प्रलय कहा गया है ॥७॥ भगवान् के जागते रहने पर संसार की चेष्टाएँ चलती रहती हैं और उनके शयन करने पर संसार भी उनमें लीन हो जाता है ॥८॥

पद्मयोनेर्दिनं यत्तु चतुर्युगसहस्रवत् ।
एकार्णवीकृते लोके तावती रात्रिरिष्यते ॥९
ततः प्रबुद्धो रात्र्यन्ते पुनस्सृष्टिं करोत्यजः ।
ब्रह्मस्वरूपधृग्विष्णुर्यथा ते कथितं पुरा ॥१०
इत्येष कल्पसहारोऽवान्तरप्रलयो द्विज ।
नैमित्तिकस्ते कथितः प्राकृतः प्राकृतं शृण्वतः परम् ॥११
अनावृष्टयाद्रिसम्पर्कात्कृते संक्षालने मुने ।
समस्तेष्वेव लोकेषु पातालेष्वखिलेषु च ॥१२
महादादेर्विकारस्य विशेषान्तस्य संक्षये ।
कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते प्रतिसञ्चरे ॥१३
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् ।
आत्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ॥१४
प्रणष्टे गन्धतन्मात्रे भयत्युर्वी जलात्मिका ।
आपस्तदा प्रवृद्धास्तु वेगवत्यो महास्वनाः ॥१५
सर्वमापूरयन्तीदं तिष्ठन्ति विचरन्ति च ।
सलिलेनोर्मिमालेन लोका व्याप्ताः समन्ततः ॥१६

ब्रह्मा जी का दिन जिस प्रकार एक हजार चतुर्युगी का है, वैसे ही जगत् के एकार्णव रूप होने से उतने ही काल की उनकी रात्रि होती है ॥९॥ रात्रि का अन्त होने पर जब भगवान् जागते हैं तब ब्रह्मा रूप होकर पूर्व कहे हुए प्रकार से सृष्टि-रचना करते हैं ॥१०॥ हे द्विज ! इस प्रकार नैमित्तिक और अवान्तर प्रलय के विषय में कहा गया, अब

प्राकृत प्रलय का वर्णन सुनो ।।११।। अनावृष्टि आदि से सम्पूर्ण लोकों और पातालों के नष्ट होने पर महत्तत्त्व से विशेष तक सब विकार क्षीण हो जाते हैं और पहिले पृथिवी के गुण गन्ध को जल अपने में लीन कर लेता है। इस प्रकार गन्ध-हीन होने से पृथिवी का प्रलय होता है ।।१२-।।१४।। गन्ध-तन्मात्रा का नाश होने पर पृथिवी जलमयी हो जाती है और घोर शब्द से युक्त जल कभी स्थिर और कभी वहता हुआ रह कर सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर लेता है ।।१५-१६।।

अपामपि गुणो यस्तु ज्योतिषा पीयते तु सः ।
नश्यन्त्यापस्ततस्ताश्च रसतन्मात्रसंक्षयात् ।।१७
ततश्चापो हृतरसा ज्योतिष प्राप्नुवन्ति वै ।
अग्न्यवस्थे तु सलिले तेजसा सर्वतो वृते ।।१८
स चाग्निः सर्वतो व्याप्य चादत्तो तज्जलं तथा ।
सर्वमापूर्यतेऽर्चिभिस्तदा जगदिदं शनैः ।।१९
अर्चिभिस्संवृते तस्मिस्तिर्यगूर्ध्वं मधस्तदा ।
ज्योतिषोऽपि परं रूपं वायुरत्ति प्रभाकरम् ।।२०
प्रलीने च ततस्तस्मिन्वायुभूतेऽखिलात्मनि ।
प्रणष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसुः ।।२१
प्रशाम्यति तदा ज्योतिर्वायुर्दोधूयते महान् ।
निरालोके तथा लोके वाय्ववस्थे च तेजसि ।।२२
ततस्तु मूलमामासाद्यवापुस्संभवमात्मनः ।
ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश ।।२३

इसके पश्चात् जल के गुण रस को अग्नि अपने में लीन कर लेता है और रस तन्मात्रा के अभाव में जल नष्ट हो जाता है ।।१७।। इस प्रकार अग्नि रूप हुआ जल अग्नि के साथ संयुक्त होकर शेष जल का शोषण कर लेता है और तब सम्पूर्ण विश्व ही अग्निमय हो जाता है। ।।१८-१९।। जब सम्पूर्ण विश्व सब ओर से अग्निमय होता है, तब उस अग्नि के गुण प्रकाश (रूप) को वायु अपने में लीन कर लेता है ।।२०।।

उस समय रूप-तन्मात्रा के न रहने पर अग्नि का कोई स्वरूप ही नहीं रहता ॥२१॥ तब उस अग्नि के विलीन होने पर अत्यन्त घोर वायु चलता है ॥२२॥ तब अपने उद्गम स्थल आकाश के आश्रम में रह कर वह वायु सभी दिशाओं में अत्यन्त वेग पूर्वक चलता है ॥२३॥

वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशो ग्रसते ततः ।
प्रशाम्यति ततो वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम् ॥२४
अरूपरसस्पर्शमगन्धं न च मूर्तिमत् ।
सर्वमापूरयच्चैव सुमहत्तत्प्रकाशते ॥२५
परिमण्डलं च सुषिरमाकाशं शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्रं तदाकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२६
ततश्शब्दगुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः ।
भूतेन्द्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु वै ॥२७
अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसस्स्मृतः ।
भूतादिं ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः ॥२८

तदनन्तर वायु का गुण स्पर्श भी आकाश में लीन हो जाता है और वायु के अभाव में आकाश का कोई आवरण नहीं रहता ॥२४॥ उस समय रूप, रस, गन्ध और आकार से हीन हुआ आकाश ही सब को व्याप्त करता हुआ प्रकाशित होता है ॥२५॥ उस समय सब ओर से गोल, छिद्र रूप, शब्द लक्षण आकाश ही सबको अच्छादित किये रहता है ॥२६॥ फिर भूतादि उस आकाश के गुण शब्द का ग्रास कर लेता है। इसी भूतादि में पंचभूत और इन्द्रियों के भी लीन हो जाने पर यह अहंकारात्मक तामस कहा जाता है। फिर बुद्धि रूप महत्तत्त्व इस भूतादि का ग्रास कर लेता है ॥२७॥२८॥

उर्वी महांश्च जगतः प्रान्तेऽन्तर्बाह्यतस्तथा ॥२९
एवं सप्त महाबुद्धे क्रमात्प्रकृतयस्स्मृताः ।
प्रत्याहारे तु तास्सर्वाः प्रविशन्ति परस्परम् ॥३०
येनेदमावृतं सर्वमण्डलमप्सु प्रलीयते ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तलोकं सपर्वतम् ॥३१

उदकावरणं यत्तु ज्योतिषा पीयते तु तत् ।
ज्योतिर्वायौ लयं याति यात्याकाशे समीरणः ॥३२

आकाशं चैव भूतातिर्ग्रसते तं तथा महान् ।
महान्तमेभिस्सहितं प्रकृतिर्ग्रसते द्विज ॥३३

गुणसाम्यमनुद्रिक्तमन्यूनं च महामुने ।
प्रोच्यते प्रकृतिर्हेतुः प्रधानं कारणं परम् ॥३४

इत्येषा प्रकृनिस्सर्वा व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
व्यक्तस्वरूपमव्यक्ते तस्मान्मैत्रेय लीयते ॥३५

पृथिवी और महत्तत्त्व ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत जगत् और बाह्य जगत् दोनों की सीमाएँ हैं ॥२९॥ इसी प्रकार जो सात आवरण कहे हैं, वे सभी प्रलयकाल में अपने कारण में लीन हो जाते हैं ॥३०॥ सप्त द्वीप, समुद्र, सप्त लोक और सब पर्वत श्रेणियों के सहित यह सम्पूर्ण भूमण्डल जल में विलीन हो जाता है ॥३१॥ फिर जल के आवरण का पान करने वाला अग्नि वायु में और वायु अकाश में लीन हो जाता है ॥३२॥ वह आकश भूतादि में और भूतादि महत्तत्त्व में तथा महत्तत्त्व मूल प्रकृति में लीन होता है ॥३३॥ हे महामुने ! सत्वादि गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति हैं इसी को प्रधान कहते हैं। इसी प्रधान से सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है ॥३४॥ प्रकृति के व्यक्त और अव्यक्त रूप से सर्वमयी होने के कारण व्यक्त रूप अव्यक्त में विलीन हो जाता है ॥३५॥

एकश्शुद्धोऽक्षरो नित्यस्सर्वव्यापी तथा पुमान् ।
सोऽप्यशस्सर्वभूतस्य मैत्रेय परमात्मनः ॥३६

न सन्ति यत्र सर्वेशे नामजात्यादिकल्पनाः ।
सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे ॥३७

तद्ब्रह्म परमं धाम परमात्मा स चेश्वरः ।
स विष्णुस्सर्वमेवेदं यतो नावर्तते यतिः ॥३८

प्रकृतिर्या मयाख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि ॥३९

परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः ।
विष्णुनामा स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते ।।४०
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।
ताभ्यामुभाभ्यां पुरुषैस्सर्वमूर्त्तिस्स इज्यते ।।४१
ऋग्यजुस्सामभिर्मार्गैः प्रवृत्तैरिज्यते ह्यसौ ।
यज्ञेश्वरो यज्ञपुमान्पुरुषैः पुरुषोत्तमः ।।
ज्ञानात्मा ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्त्तिः स चेज्यते ।
निवृत्तो योगिभिर्मार्गे विष्णुर्मुक्तिफलप्रदः ।।४३

हे मैत्रेयजी ! इससे भिन्न एक शुद्ध, अक्षर, नित्य और सर्वव्यापी । पुरुष भी परमात्मा का ही अंश है ।।३६।। जिस ज्ञानात्मा एव ज्ञातव्य में नाम-जाति की कल्पना नहीं हैं, वही सर्वेश्वर परमधाम परब्रह्म परमात्मा है वही विश्व रूप ईश्वर है । उसे प्राप्त होकर योगी पुरुष पुनः संसारमें नहीं आते ।।३७-३८।। मेरे द्वारा कही हुई व्यक्त और अव्यक्त प्रकृति तथा पुरुष भी उसी परमात्मा में लीन होते है ।।३९।। उसी सर्वाधार, परमेश्वर को वेद-वेदान्तों में 'विष्णु' नाम से कहा है ।।४०।। कर्म और सांख्य रूप दोनों प्रकार के वैदिक कर्मों से उसी परमेश्वर का यजन होता है ।।४१।। ऋक्, यजुः और साम द्वारा कहे गये प्रवृत्ति मार्ग से भी उन्हीं यज्ञेश्वर भगवान् का पूजन होता है ।।४२।। तथा निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन करने वाले योगी भी उन्हीं भगवान् विष्णु का ज्ञान योग से यजन करते हैं ।।४३।।

ह्रस्वदीर्घप्लुतैर्यत्तु किञ्चिद्वस्त्वभिधीयते ।
यच्च वाचामविषय तत्सर्वं विष्णुरव्ययः ।।४४
व्यक्तस्स एव चाव्यक्तस्स एव पुरुषोऽव्ययः ।
परमात्मा च विश्वात्मा विश्वरूपधरो हरिः ।।४५
व्यक्ताव्यक्तात्मिका तस्मिन्प्रकृतिस्सम्प्रलीयते ।
पुरुषश्चापि मैत्रेय व्यापिन्यव्याहतात्मनि ।।४६
द्विपरार्द्धात्मकः कालः कथितो यो मया तव ।
तदहस्तस्य मैत्रेय विष्णोरीशस्य कथ्यते ।।४७

व्यक्ते च प्रकृतौ लीने प्रकृत्यां पुरुषे तथा ।
तत्र स्थिते निशा चास्य तत्प्रमाणा महामुने ॥४८
नैवाहस्तस्य न निशा नित्यस्य परमात्मनः ।
उपचारस्तथाप्येष तस्येशस्य द्विजोच्यते ॥४९
इत्येष तव मैत्रेय कथितः प्राकृतो लयः ।
आत्यन्तिकमथो ब्रह्मन्निबोध प्रतिसञ्चरम् ॥५०

तीनों प्रकार के स्वरों से जो कहा जाता है और जो वाणी से परे हैं, वह सब अव्ययात्मा विष्णु ही हैं ॥४४॥ वह विश्वरूप परमात्मा अव्यक्त और अविनाशी हैं ॥४५॥ उन्हीं सर्वव्याप्त एवं अविकृत रूप परमात्मा से व्यक्त और अव्यक्त रूप वाली प्रकृति और मनुष्य लीन हो जाते हैं ॥४६॥ हे मैत्रेयजी ! मैंने जो द्विपरार्द्ध काल तुम्हें बताया है, वह विष्णु भगवान् का एक दिन समझो ॥४७॥ जब व्यक्त जगत् प्रकृति में और प्रकृति पुरुष में लीन हो जाती है, तब इतने समय की विष्णु की रात्रि होती है ॥४८॥ यथार्थ में तो उस परमात्मा का न कोई दिन है, न रात्रि हैं, उपचार से ही इस प्रकार कहा गया है ॥४९॥ हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार प्राकृत प्रलय का यह वर्णन किया गया है, अब आत्यन्तिक प्रलय के विषय में सुनो ॥५०॥

पांचवां अध्याय

आध्यात्मिकादि मैत्रेय ज्ञात्वा तापत्रयं बुधः ।
उत्पन्नज्ञानवैराग्यः प्राप्नोत्यात्यन्तिकं लयम् ॥१
आध्यात्मिकोऽपि द्विविधश्शारीरो मानसस्तथा ।
शारीरो बहुभिर्भेदैर्भिद्यते श्रूयतां च सः ॥२
शिरोरोगप्रतिश्यायज्वरशूलभगन्दरैः ।
गुल्मार्शःश्वयथुश्वासच्छर्द्यादिभिरनेकधा ॥३

तथाक्षिरोगातीसारकुष्ठाङ्गामयसंज्ञितैः ।
भिद्यते देहजस्तापो मानसं श्रोतुमर्हसि ॥४
कामक्रोधभयद्वेषलोभमोहविषादजः ।
शोकासूयावमानेर्ष्यामात्सर्यादिमयस्तथा ॥५
मानसोऽपि द्विजश्रेष्ठ तापो भवति नैकधा ।
इत्येवमादिभिर्भेदैस्तापो ह्याध्यात्मिकः स्मृतः ॥६
मृगपक्षिमनुष्याद्यैः पिशाचोरगराक्षसैः ।
सरीसृपाद्यैश्च नृणां जायते चाधिभौतिकः ॥७
शीतवातोष्णवर्षाम्बुवैद्युतादिसमुद्भवः ।
ततो द्विजवर श्रेष्ठैः कथ्यते चाधिदैविकः ॥८

श्री पराशरजी से कहा—हे मैत्रेयजी! आध्यात्मिक आदि तीनों तापों का ज्ञान प्राप्त करने और वैराग्य के उत्पन्न होने पर आत्यन्तिक प्रलय की प्राप्ति होती है ॥१॥ आध्यात्मिक ताप के शारीरिको और मानसिक दो भेद हैं, उनमें शारीरिक के भी अनेक भेद हैं, उन्हें सुनो ॥२॥ शिरोरोग, प्रतिश्याय, ज्वर, शूल, भगन्दर, गुल्म, अर्श, शाथ श्वास, छर्दि, नेत्र, रोग, अतिसार, कुष्ठ आदि के भेद से शारीरिक ताप अनेक प्रकार का हैं। अब मानसिक ताप सुनो ॥३-४॥ काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, मोह, विषाद, शोक, असूया, अपमान, ईर्ष्या, मात्सर्य आदि के भेद से मानसिक ताप भी बहुत प्रकार का है। ऐसे ही अनेक भेद वाले ताप को आध्यात्मिक कहा है ॥५-६॥ मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच, सर्प, राक्षस, सरीसृप आदि से प्राप्त होने वाले दुःख को आधिभौतिक कहते हैं ॥७॥ शीत, वात, उष्ण, वर्षा, जल, विद्युत् आदि से मिलने वाला दुःख आधिदैविक है ॥८॥

गर्भजन्मजराज्ञानमृत्युनारकजं तथा ।
दुःखं सहस्रशो भेदैर्भिद्यते मुनिसत्तम ॥९
सुकुमारतनुर्गर्भे जन्तुर्बहुमलावृतो ।
उल्बसंवेष्टितो भुग्नपृष्ठग्रीवास्थिसंहतिः ॥१०

अत्यम्लकटुतीक्ष्णोष्णालवणैर्मातृभोजनैः।
अत्यन्ततापैरत्यर्थं वर्द्धमानातिवेदनः ॥११
प्रसारणाकुञ्जनादौ नाङ्गानां प्रभुरात्मनः।
शकृन्मूत्रमहापंकशायी सर्वत्र पीडितः ॥१२
निरुच्छ्वासः सचैतन्यस्स्मरञ्जन्मशतान्यथः।
आस्ते गर्भेऽतिदुःखेन निजकर्मनिबन्धनः ॥
जायमानः पुरीषासृङ्मूत्रशुक्राविलाननः।
प्राजापत्येन वातेन पीडचमानास्थिबन्धनः ॥१४
अधोमुखो वै क्रियते प्रबलैस्सूतिमारुतैः।
क्लेशान्निष्क्रान्तिमाप्नोति जठरान्मातुरातुरः ॥१५

हे मुनिवर ! इन दुःखों के अतिरिक्त गर्भ, जन्म, जरा, अज्ञान, मृत्यु तथा नरक से उत्पन्न दुःख भी सहस्त्रों प्रकार के हैं ॥६॥ गभ की झिल्ली से लिप्त सुकुमार देह वाला जीव मल-मूत्र रूप घोर कीचड़ में पड़ा हुआ माता के खट्टे, कडुवे, चरपरे, खारे और गर्म पदार्थों के सेवन से और पीठ तथा ग्रीवा की हड्डियों के कुण्डलाकार मुड़ी रहने से अत्यन्त पीड़ा को प्राप्त हो कर और चेतना मय होते हुए भी श्वास लेनें में असमर्थ रह कर अपने पूर्व जन्मों का स्मरण करता हुआ गर्भ-वास के दुःखों को भोगता है ॥१०-१३॥ जन्म के समय भी उसका मुख मल मूत्र, रक्त, वीर्य आदि ये सना रहता तथा सम्पूर्ण अस्थिबन्धन प्राजायत्य वायु से सन्तप्त होते हैं ॥१४॥ सूतिकावाद उसके मुख को नीचे कर देता है और जीव अत्यन्त क्लेष पूर्वक माता के गर्भ से निकलने में समर्थ होता है ॥१५॥

मूर्च्छामवाप्य महतीं संस्पृष्टो बाह्यवायुना।
विज्ञानभ्रंशवाप्नोति जातश्च मुनिसत्तम ॥१६
कण्टकैरिव तुन्नाङ्गः क्रकचैरिव दारितः।
पूतिव्रणान्निपतितो धरण्यां कृमिको यथा ॥१७
कण्डूयनेऽपि चाशक्तः परिवर्तेऽप्यनीश्वरः।
स्नानपानादिकाहारमयाप्नोति परेच्छया ॥१८

अशुचिप्रस्तरे सुप्तः कीटदंशादिभिस्तथा ।
भक्ष्यमाणोऽपि नैवैषां समर्थो विनिवारणे ॥१९
जन्मदुःखान्यनेकानि जन्मनोऽनन्तराणि च ।
बालभावे यदाप्नोति ह्याधिभौतादिकानि च ॥२०
अज्ञानतमसाच्छन्नो मूढान्तः करणो नरः ।
न जानाति कुतः कोऽहं क्वाहं गन्ताकिमात्मकः ॥२१
केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम् ।
किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं च नोच्यते ॥२२
को धर्मः कश्च वाधर्मः कस्मिन्वर्त्येऽथ वा कथम् ।
किंकर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत् ॥२३
एवं पशुसमैर्मूढैरज्ञानप्रभवं महत् ।
अवाप्यते नरैर्दुःख शिश्नोदरपरायणैः ॥२४

हे मुनिश्रेष्ठ ! उत्पन्न होने पर बाहरी वायु के स्पर्श से अत्यन्त मूर्छा को प्राप्त होता है ॥१६॥ उस समय जीव दुर्गन्धित व्रण से गिरे या आरे से चीरे हुए कीड़े के समान ही गर्भाशय से पृथिवी पर गिरता है ॥१७॥ वह स्वयं कुछ भी कर सकने में असमर्थ रहता तथा स्नान और दुग्धाहार के लिये भी पराधीन रहता है ॥१८॥ अपवित्र बिछौने पर पड़े रहने पर मच्छर आदि उसे काटते हैं, उन्हें भी वह नहीं हटा सकता ॥१९॥ इस प्रकार उत्पत्ति के समय और बाद में जीव आधिभौतिक दुःखों को भोगता है ॥२०॥ अज्ञान के अन्धेरे में पड़ा हुआ जीव यह भी भूल जाता है कि मैं कहाँ से आया ? कहाँ जाऊँगा ? मैं कौन हूँ ? मेरा रूप क्या है ? ॥२१॥ मैं कौन से बन्धन से किस कारण बँधा हूँ ? मैं क्या करूँ क्या न करूँ ? क्या कहूँ, क्या न कहूं ? ॥२२॥ धर्म क्या है, अधर्म क्या है ? किस अवस्था में कैसे रहूँ ? कर्त्तव्य या अकर्त्तव्य क्या है ? तथा गुण दोष क्या है ? ॥२३॥ इस प्रकार पशु के समान यह जीव अज्ञान से उत्पन्न दुःखों को भोगते हैं ॥२४॥

अज्ञानं तामसो भावः कार्यारम्भप्रवृत्तयः ।
अज्ञानिनां प्रवर्तन्ते कर्मलोपास्ततो द्विज ॥२५

नरकं कर्मणां लोपात्फलमाहुर्मनीषिणः ।
तस्मादज्ञानिनां दुःखमिह चामुत्र चोत्तमम् ।।२६
जराजर्जरदेहश्च शिथिलावयवः पुमान् ।
विगलच्छीर्णदशनो वलिस्नायुशिरावृतः ।।२७
दूरप्रणष्टनयनो व्योमान्तर्गततारकः ।
नासाविवरनिर्यातलोमपुञ्जश्चलद्वपुः ।।२८
प्रकटीभूतसर्वास्थिर्नतपृष्ठास्थिसंहति ।
उत्सन्नजठराग्नित्वादल्पहारोऽल्पचेष्टितः ।।२९

हे द्विज! अज्ञान के तामसिक होने से अज्ञानी पुरुषों की प्रवृत्ति तामसिक कर्मों में होती है, इसके कारण वैदिक कर्म लुप्त हो जाते हैं ।।२५।। कर्म लोप का फल मनीषियों ने नरक कहा है, इस लिए अज्ञानियों को इहलोक--परलोक दोनों में ही दुःखों को भोगना होता है ।।२६।। जब बुढापा आता है तब अङ्ग शिथिल होते, दात उखड़ जाते और देह पर झुर्रियाँ तथा नस--नाड़ियाँ उभड़ आती हैं ।।२७।। नेत्र दूर तक नहीं देख पाते और उनमें गढ़े पड़ जाते हैं, नासिका--छिद्रों से रोम बाहर निकलते और देह काँपता रहता है ।।२८।। रीढ़ की हड्डी झुक जाती और सभी अस्थियाँ दिखाई देने लगती हैं, जठराग्नि मन्द हो कर पाचन शक्ति और पुरुषार्थ में न्यूनता आ जा जाती हैं ।।२९।।

कृच्छ्राच्चङ्क्रमणोत्थानशयनासनचेष्टितः ।
मन्दीभवच्छ्रोत्रनेत्रस्स्रवल्लालाविलाननः ।।३०
अनायत्तैस्समस्तैश्च करणैर्मरणोन्मुखः ।
तत्क्षणेऽननुभूतानामस्मर्ताखिलवस्तुनाम् ।।३१
सकृदुच्चारिते वाक्ये समुद्भूतमहाश्रमः ।
श्वासकाशसमुद्भूतमहायासप्रजागरः ।।३२
अन्येनोत्थाप्यतेऽन्येन तथा सवेश्यते जरी ।
भृत्यात्मपुत्रदाराणामवमानास्पदीकृतः ।।३३
प्रक्षीणाखिलशौचश्च विहाराहारसंस्पृहः ।
हास्यः परिजनस्यापि निर्विण्णाशेषबान्धवः ।।३४

अनुभूतिमिवान्यस्मिञ्जन्मन्यात्मचेष्टितम् ।
संस्मरन्यौवने दीर्घं निःश्वसत्यभितापितः ॥३५
एवमादीनि दुःखानि जरायामनुभूय वै ।
मरणे यानि दुःखानि प्राप्नोति शृणु तान्यपि ॥३६

चलने-फिरने, उठने-बैठने आदि में भी कठिनाई होती है, कान और नेत्र अशक्त हो जाते हैं, और लार निकलने से मुख भी मलीन हो जाता हैं ॥३० इन्द्रियाँ अपने अधीन नहीं रहती और मरणासन्न अवस्था की प्राप्ति होती है तथा अपने देखे–सुने पदार्थों की भी याद नहीं रहती ॥३१॥ एक वाक्य कहने में भी कष्ट होता तथा श्वास--काम के प्रकोप से जागता रहता है ॥३२॥ दूसरों के द्वारा उठाया--बैठाया जाता है, स्वयं कुछ कर नहीं सकता, इसीलिये अपने भृत्य, पुत्र, स्त्री आदि से भी तिरस्कृत होता रहता है ॥३३॥ उसका पवित्राचरण नष्ट होता और भोग भोजन की इच्छा बढ़ जाती है, उसके बंधुजन उससे उदासीनता का व्यवहार करते और परिजन हँसी उड़ाते हैं ॥३४॥ उसे अपनी यौवनावस्था की चेष्टाएँ किसी अन्य जन्म में की हुई सी याद आती हैं और वह दुःख के कारण दीर्घ श्वास लेता रहाता है ॥३५॥ इस प्रकार बुढ़ापे के कष्ट भोगते हुए मरणकाल में उसकी जो अवस्था होती है उसे भी सुनो ॥६३॥

श्लथद्ग्रीवाङ्घ्रिहस्तोऽथ व्याप्तो वेपथुना भृशम् ।
मुहुर्ग्लानिपरवशो मुहुर्ज्ञानलवान्वितः ॥३७
हिरण्यधान्यतनयभार्याभृत्यगृहादिषु ।
एते कथं भविष्यन्तीत्यतीव ममताकुलः ॥३८
मर्मभिद्भिर्महारोगैः क्रकचैरिव दारुणैः ।
शरैरिवान्तकस्योग्रैश्छिद्यमानासुबन्धनः ॥३९
परिवर्तितताराक्षो हस्तपादं मुहुः क्षिपन् ।
संशुष्यमाणताल्वोष्ठपुटो घुरघुरायते ॥४०
निरुद्धकण्ठो दोषौघैरुदानश्वासपीडितः ।
तापेन महता व्याप्तस्तृषा चार्तस्तथा क्षुधा ॥४१

क्लेशादुत्क्रान्तिमाप्नोति यमकिङ्करपीडितः ।
ततश्च यातनादेहं क्लेशेन प्रतिपद्यते ॥४२
एतान्यन्यानि चोग्राणि दुःखानि मरणे नृणाम् ।
शृणुष्व नरके यानि प्राप्यन्ते पुरुषैर्मृतैः ॥४३

उसकी वाणी और हाथ-पाँव शिथिल हो जाते हैं, देह काँपती है, वारम्वार ग्लानि और मूर्च्छा के साथ कभी-कभी चैतन्यता भी आ जाती है ॥३७॥ उस समय वह अपने धन, धान्य, स्त्री–पुत्र, भृत्य और घर आदि के प्रति मोह करता हुआ व्याकुल होता है ॥३८॥ तभी मर्मभेदी आरे और भयंकर वाणों के समान भीषण रोगों के द्वारा देह के बन्धन कटने लगते हैं ॥३९॥ नेत्र चढ़ जाते हैं और तालू तथा ओष्ठ शुष्क होने लगते हैं। दर्द के कारण हाथ–पाँव पटकता हैं और फिर दोषों के कारण कण्ठ रुक कर 'घर्घर' करने लगता हैं । महान् ताप, ऊर्ध्व श्वास और भूख--पिपासा से व्याकुल हो जाता है ॥४०-४१॥ ऐसी दशा में भी यम-यातना प्राप्त करता हुआ बड़े क्लेश से देह त्याग करता और कर्मफल की प्राप्ति के लिये यातना--देह को धारण करता है ॥४२॥ मरते समय यह अथवा ऐसे अन्य भयङ्कर कष्ट भोगने के वाद यमसदन में जो यातनाएँ भोगनी होती हैं, उन्हें सुनो ॥४३॥

याम्यकिङ्करपाशादिग्रहणं दण्डताडनम् ।
यमस्य दर्शनं चोग्रमुग्रमार्गविलोकनम् ॥४४
करम्भवालुकावह्नियन्त्रशस्त्रादिभीषणं ।
प्रत्येकं नरके याश्च यातना द्विज दुःसहा ॥४५
क्रकचैः पाठ्यमानानां मूषायां चापि दह्यताम् ।
कुठारैः कृत्यमानानां भूमौ चापि निखन्यताम् ॥४६
शूलेष्वारोप्यमाणानां व्याघ्रवक्त्रे प्रवेश्यताम् ।
गृध्रैस्सम्भक्ष्यमाणानां द्वीपिभिश्चोपभुज्यताम् ॥४७
क्वाथ्यतां तैलमध्ये च क्लिद्यतां क्षारकर्दमे ।
उच्चान्निपात्यमानानां क्षिप्यतां क्षेपयन्त्रकैः ॥४८

नरके यानि दुःखानि पापहेतूद्भवानि वै ।
प्राप्यन्ते नारकैर्विप्र तेषां संख्या न विद्यते ।।४९

पहिले तो यमदूत उसे अपने पाश में बांध लेते और फिर उन पर दण्डप्रहार करते हैं। तब अत्यन्त दुर्गम मार्गों को पार करने पर यमराज का दर्शन हो पाता है ।।४४।। फिर तपे हुए बालू, अग्नि—यन्त्र और शस्त्रादि से भीषण एवं असह्य नरक--यातनाएं भोगनी होती हैं ।।४५।। नरकवासियों को गाड़ने, शूली पर चढ़ाने, सिंह के मुख में डालने, गिद्धों द्वारा नुचवाने, हाथियों से कुचलवाने, तेल में पकाने, दलदल में फँसाने ऊपर से नीचे गिराने तथा क्षेपणयंत्र से दूर फिकवाने रूप जिन--जिन कष्टों की प्राप्ति होती है, उनकी गणना असम्भव है ।।४६-४९।।

न केवलं द्विजश्रेष्ठ नरके दुःखपद्धतिः ।
स्वर्गेऽपि पातभीतस्य क्षयिष्णोर्नास्ति निर्वृत्तिः ।।५०
पुनश्च गर्भे भवति जायते च पुनः पुनः ।
गर्भे विलीयते भुयो जायमानोऽस्तनेति वै ।।५१
जातमात्रश्च म्रियते बालभावेऽथ यौवने ।
मध्यम वा वयःप्राप्य वार्द्धके वाथ वा मृतिः ।।५२
यावज्जीवति तावच्च दुःखैर्नानाविधैः प्लुतः ।
तन्तुकारणपक्ष्मौघैरास्ते कार्पासबीजवत् ।।५३
द्रव्यनाशे तथोत्पत्तौ पालने च सदा नृणाम् ।
भवन्त्यनेकदुःखनि तथैवेष्टविपत्तिषु ।।५४

हे द्विजवर ! केवल नरक में ही दुःख नहीं है, स्वर्ग में भी वहाँ से नीचे गिरने आशंका से जीव को सदा अशान्ति ही रहती है ।।५०।। क्योंकि जीव को बारम्बार गर्भ में आकर जन्म लेना, कभीगर्भ में ही मर जाना अथवा कभी उत्पन्न होते ही मृत्यु को प्राप्त होना पड़ता है ।।५१।। जिसने जन्म लिया है वह बालकपन में,युवा होने पर,मध्यम आयु अथवा वृद्धावस्था को प्राप्त होकर अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होता है ।।५२।। जब तक जीवित रहता है तब तक अनेक कष्टों से उसी प्रकार घिरा रहता है जैसे तन्तुओं से कपास का बीज ।।५३।। धनोपार्जन तथा

धन की रक्षा और उसके व्यय में अथवा इष्टमित्रों की विपति के कारण भी जीव को अनेक दुःख भोगने होते हैं ।।५४।।

यद्यत्प्रीतिकरं पुंसां वस्तु मैत्रेय जायते ।
तदेव दुःखवृक्षस्य बीजत्वमुपगच्छति ।।५५
कलत्रपुत्रमित्रार्थगृहक्षेत्रधनादिकैः ।
क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथाऽसुखम् ।।५६
इति संसारदुःखार्कतापतापितचेतसाम् ।
विमुक्तिपादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम् ।।५७
तदस्य त्रिविधस्यापि दुःखजातस्य वै मम ।
गर्भजन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यतः ।।५८
निरस्तातिशयाह्लादसुखभावैकलक्षणा ।
भेषजं भगवत्प्राप्तिरेकान्तात्यन्तिकी मता ।।५९
तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैर्नरैः ।
तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं महामुने ।।६०
आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तदुच्यते ।
शब्दब्रह्मागममयं परं ब्रह्म विवेकजम् ।।६१
अन्धं तम इवाज्ञानं दीपवच्चेन्द्रियोद्भवम् ।
यथा सूर्यस्तथा ज्ञानं यद्विप्रर्षे विवेकजम् ।।६२

हे मैत्रेयजी ! मनुष्यों की प्रिय वस्तुएं उनके लिये दुःख रूपी वृक्ष का बीज बन जाती हैं ।।५५।। स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, घर, खेत तथा धान्यादि से जितने दुःख की प्राप्ति होती है, उतना सुख नहीं मिलता ।।५६।। इस प्रकार संसार के दुःख रूपी सूर्य के ताप से संतप्त हुए पुरुषों को मोक्षरूपी वृक्ष की छाया के अतिरिक्त अन्य किस स्थान पर सुख की प्राप्ति होगी ? ।।५७।। इसलिये गर्भ, जन्म और बुढ़ापा आदि रोग—समूहों की एकमात्र औषधि भगवान् की प्राप्ति ही है, जिसका लक्षण आनन्द रूप सुख का प्राप्त होना ही है ।।५८-५९।। इसलिये भगवत्प्राप्ति का प्रयत्न ही ज्ञानियों का कर्त्तव्य है, और उसके ज्ञान और कर्म ये दो ही मार्ग हैं ।।६६।। ज्ञान भी दो प्रकार का है—शास्त्र जन्य और

विवेकजन्य। शब्द ब्रह्म विषयक ज्ञान शास्त्र से उत्पन्न होता है और परब्रह्म विषयक ज्ञान की उत्पत्ति विवेक से होती है ॥६१॥ हे ब्रह्मर्षे ! अज्ञान घोर अन्धकार जैसा है, उसे दूर करने के लिये इन्द्रिय से उत्पन्न ज्ञान दीपक के समान और विवेक से उत्पन्न ज्ञान सूर्य के समान है ॥६२॥

मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वा यन्मुनिसत्ताम ।
तदेतच्छ्रूयतामत्र सम्बन्धे गदतो ममः ॥ ६३
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परं च यत् ।
शब्द ब्रह्मणी निष्णातः पर ब्रह्माधिगच्छति ॥६४
द्वे वै विद्ये वेदितव्ये इति चाथर्वणी श्रुतिः ।
परया त्वक्षरप्राप्तिरृग्वेदादिमयापरा ॥६५
यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम् ।
अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंयुतम् ॥६६
विभु सर्वगतं नित्यं भूतयोनिरकारणाम् ।
व्याप्यव्याप्तं यतः सर्वं यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥६७
तद्ब्रह्म तत्परं धाम तद्धयेयं मोक्षकाङ्क्षिभिः ।
श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्म तद्विष्णोःपरमं पदम् ॥६८
तदेव भगवद्वच्यं स्वरूपं परमात्मनः ।
वाचको भगवच्छब्दस्तस्याद्यस्याक्षयात्मनः ॥६९

हे मुनिवर ! वेदार्थ के स्मरण पूर्वक मनुजी ने जो कुछ कहा है, वही मैं कहता हूँ, सुनो ॥६३॥ ब्राह्म के दो भेद हैं--और परब्रह्म जो शब्द ब्रह्म में निपुण होता है उसे परब्रह्म की प्राप्ति होजाती है ॥६४॥ अथर्व श्रुति है कि परा और अपरा भेद से विद्या दो प्रकार की है। परा में अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है तथा अपरा ऋगादि वेदात्मिका है ॥६५॥ अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, हाथ--पाँव से शून्य, विभु, सर्वगत, नित्य, भूनयोनि, कारण-रहित, जिससे व्याप्य, व्यापक प्रकट हुआ और जिसे ज्ञानीजन ही देख पाते हैं, वही परमधाम ब्रह्म है। वही मुमुक्षुओं द्वारा चिन्तनीय भगवान् विष्णु का अत्यन्त सूक्ष्म

परमपद पद है। परमात्मा का वही रूप 'भगवत्' कहा जाता है तथा 'भगवत्' शब्द उसी आदि एवं अक्षय रूप के लिये प्रयुक्त होता है ॥६९॥

एवं निगदितार्थस्य तत्तत्व तस्य तत्त्वतः ।
ज्ञायते येन तज्ज्ञानं परमन्यत्त्रयीमयम् ॥७०
अशब्दगोचरस्थापि तस्य वै ब्रह्मणो द्विज ।
पूजायां भगच्छब्दः क्रियते ह्युपचारतः ॥७१
शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि शब्द्यते ।
मैत्रेय भगवच्छब्दस्सर्वकारण कारणे ॥७२
सम्भर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः ।
नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने ॥७३
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥७४
वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि ।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः ॥७५
एवमेष महाञ्छब्दो मैत्रेय भगवानिति ।
परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यग ॥७६

जिसका ऐसा रूप कहा है उस ब्रह्म तत्व का जिससे यथार्थ ज्ञान होता है, वही परमज्ञान है और त्रयीमय ज्ञान इससे भिन्न है ॥७०॥ हे द्विज ! ब्रह्म के शब्द का विषय न होने पर भी 'भगवत्' शब्द उपासना के लिये उपचार से ही कहा जाता है ॥७१॥ हे मैत्रेयजी ! सब कारणों के कारण, महाविभूति रूप परब्रह्म को ही 'भगवत्' कहा है ॥७२॥ इस शब्द में भकार के दो अर्थ लिये गये हैं--भरण करने वाला तथा सबका आधार और गकार के अर्थ कर्मफल की प्राप्ति कराने वाला, लय करने और रचने वाला है ॥७३॥ ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छः को भग कहते हैं ॥७४॥ उस सर्वभूतात्मा मे सब भूतों का निवास में तथा वह स्वयं भी सब भूतों में स्थित है, इसलिये वह अव्यय ही वकार है ॥७५॥ हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार यह भगवान् शब्द परब्रह्म रूप वासुदेव का ही वाचक है ॥७६॥

तत्र पूज्यपदार्थोक्तिपरिभाषासमन्वितः ।
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ।।७८
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ।।७९
सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि ।
भतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः ।।८०
खाण्डिक्यजनकायाह पृष्टः केशिध्वजः पुरा ।
नामव्याख्यामनन्तस्य वासुदेवस्य तत्त्वतः ।।८१
भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसत्यत्र च तानि यत् ।
धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः ।।८२
स सर्वभूतप्रकृतिं विकारान् गुणादिदोषांश्च मुने व्यतीतः ।
अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा तेनास्तृतं यद्भुवनान्तराले ।।८३
समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशावृतभूतवर्गः ।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहस्संसाधिताशेषजगद्धितो यः ।।८४
तेजोबलैश्वर्यमहावबोध सुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः ।
परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयस्सन्ति परावरेशे ।।८५
स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपो व्यक्तस्वरूपोऽप्रकटस्वरूपः ।
सर्वेश्वरस्सर्वदृक् सर्वविच्च समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः ।।८६
संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेकरूपम् ।
संदृश्यते वाप्यवगम्यते वा तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम् ।।८७

पूजनीय सूचक इस भगवान् शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से परमात्मा के लिये ही है, अन्यों के प्रति गौण रूप से होता है ।।७७।। क्योंकि भगवान् वही कहा जा सकता है जो सब जीवों के उत्पत्ति, विनाश, आवागमन और विद्या-अविद्या का ज्ञाता हो ।।७८।। त्यागने योग्य गुणादि को छोड़ कर, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज आदि गुण ही 'भगवत्, कहे जा सकते हैं ।।७९।। उन्हीं परमात्मा में सब भूतों का निवास है तथा वे भी आत्मा रूप से सब में रहते हैं, इसलिये उन्हें 'वासुदेव' कहा

जाता है ।।८०।। प्राचीन काल में खाण्डिक्य जनक के प्रश्न पर केशिध्वज ने 'वासुदेव' नाम की इस प्रकार व्याख्या की थी ।।८१।। सब भूतों में व्याप्त और सब भूतों के निवास स्थान तथा संसार के रचयिता और रक्षक होने से वे 'वासुदेव' कहे जाते हैं ।।८२।। वे सर्वभूतों की प्रकृति प्रकृति के विकार, गुण और उनके दोषों से विलक्षण तथा सब आवरणों से अतीत सर्वात्मा हैं। पृथिवी--आकाश के मध्य में लो कुछ स्थित है, वह सब उन्हीं के द्वारा व्याप्त हैं ।।८३।। वे सभी कल्याण -गुणात्मक हैं उन्होंने अपनी माया से ही सबकों व्याप्त किया हुआ है और वे अपने इच्छित स्वरूपों के धारण पूर्वक विश्व का कल्याण करते हैं ।।८४।। तेज, वल, ऐश्वर्य, बोध, वीर्य और शक्ति आदि गुणों के समूह तथा प्रकृति आदि से भिन्न और सम्पूर्ण क्लेशों से नितान्त परे हैं ।।८५।। वे ही समष्टि और व्यष्टि रूप हैं, वे ही व्यक्त और अव्यक्त हैं, वे ही सर्वसाक्षी, सर्वज्ञाता और सबके स्वामी है तथा वे ही सर्वशक्ति सम्पन्न परमेश्वर संज्ञक हैं ।।८६।। वे दोष-रहित, मल-रहित विशुद्ध और एक रूप परमात्मा जिसके द्वारा देखे या जाने जाते हैं, वही ज्ञान है और इसके विपरीत को अज्ञान समझो ।।८७।।

छटवां अध्याय

स्वाध्यायसंयमाभ्यां स दृश्यते पुरुषोत्तमः ।
तत्प्राप्तिकारणं ब्रह्म तदेतदिति पठ्यते ।।१
स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमावसेत् ।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ।।२
तदीक्षणाय स्वाध्यायश्चक्षुर्योगस्तथा परम् ।
न मांसचक्षुषा द्रष्टुं ब्रह्मभूतस्य शक्यते ।।३
भगवंस्तमहं योगं ज्ञातुमिच्छामि तं वद ।
ज्ञाते यत्राखिलाधारं पश्येयं परमेश्वरम् ।।४
यथा केशिध्वजः प्राह खाण्डिक्याय महात्मने ।
जनकाय पुरा योगं तमहं कथयामि ते ।।५

खाण्डिक्यः कोऽभवद् ब्रह्मन्को वा केशिध्वजः कृती ।
कथं तयोश्च संवादो योगसम्बन्धवानभूत ।।६

श्री पराशरजी ने कहा—स्वाध्याय और संयम के द्वारा ही उन पुरुषोत्तम के दर्शन होते हैं तथा ब्रह्म की प्राप्ति के कारण होने से इन्हें भी ब्रह्म ही कहा है ।।१।। स्वाध्याय से योग का आश्रय प्राप्त करे और योग से स्वाध्याय का आश्रय ले। इस प्रकार स्वाध्याय और योग रूप सम्पत्ति ही परमात्मा को प्रकाशित करने वाली है ।।२।। उस ब्रह्म-रूप ब्रह्म को चर्म-- नेत्रों से नहीं, स्वायाय और योग रूपीं नेत्रों से ही देखा जा सकता है ।।३।। श्री मैत्रेयजी ने कहा— हे भगवन्! जिसे जानने पर परमेश्वर को देखा जा सकता है, उस योग को जानने का मैं इच्छुक हूँ, उसे आप मेरे प्रति कहिये ।।४।। श्री पराशरजी ने कहा—पूर्वकाल में खाण्डिक्य जनक से केशिध्वज ने इस योग का जो वर्णन किया था, वह तुम से कहता हूँ ।।५।। श्री मैत्रेयजी ने कहा—यह खाण्डिक्य और केशिध्वज कौन थे और उनका योग विषयक सम्वाद किसलिये हुआ था ? ।।६।।

धर्मध्वजो वै जनकस्तस्य पुत्रोऽमितध्वजः ।
कृतध्वजश्च नाम्नासीत्सदाध्यात्मरतिर्नृपः ।।७
कृतध्वजस्य पुत्रोऽभूत् ख्यातः केशिध्वजो नृपः ।
पुत्रोऽमितध्वजस्यापि खाण्डिक्यजनकोऽभवत् ।।८
कर्ममार्गेण खाण्डिक्यः पृथिव्यामभवत्कृती ।
केशिध्वजोऽप्यतीवासीदात्मविद्याविशारदः ।।९
तावुभावपि चैवास्तां विजिगीषू परस्परम् ।
केशिध्वजेन खाण्डिक्यस्स्वराज्यादवरोपितः ।।१०
पुरोधसा मन्त्रिभिश्च समवेतोऽल्पसाधनः ।
राज्यान्निराकृतस्सोऽथ दुर्गारण्यचरोऽभवत् ।।११
इयाज सोऽपि सुबहून्यज्ञाञ्ज्ञानव्यापाश्रयः ।
ब्रह्मविद्यामधिष्ठाय तर्तुं मृत्युमविद्यया ।।१२

श्री पराशरजी ने कहा—पूर्वकाल में धर्मध्वज जनक नामक एक राजा हो गये हैं। उनके दो पुत्र अमितध्वज और कृतध्वज नाम से हुए। इनमें से कृतध्वज अध्यात्म में ही लगा रहता था ।।७।। कृतध्वज का पुत्र केशिध्वज और अमितध्वज का पुत्र खाण्डिक्य जनक हुआ ।।८।। खाण्डिक्य कर्म--मार्ग में और केशिध्वज अध्यात्म शास्त्र मे निपुण था ।।९।। वे दोनों परस्पर में एक दूसरे को हराने का यत्न करते रहते थे और अन्त में केशिध्वज ने खाण्डिक्य को राज्य से हटा दिया ।।१०।। राज्य से भ्रष्ट हुआ खाण्डिक्य पुरोहित और मन्त्रियों तथा अल्प समान सहित वन में चला गया ।।११।। ज्ञानी होते हुए भी केशिध्वज ने कर्म द्वारा मृत्यु को जीतने के लिये अनेकों यज्ञ किये ।।१२।।

एकदा वर्तमानस्य यागे योगविदां वर ।
धर्मधेनुं जघानोग्रश्शार्दूलो विजने वने ।।१३
ततो राजा हतां श्रुत्वा धेनुं व्याघ्रेण चर्त्विजः ।
प्रायश्चित्तं स पप्रच्छ किमत्रेति विधीयताम् ।।१४
तेऽप्यूचुर्न वय विद्मः कशेरुः पृच्छ्यतामिति ।
कशेरुरपि तेनोक्तस्तथैव प्राह भार्गवम् । १५
शुनकं पृच्छ राजेन्द्र नाहं वेद्मि स वेत्स्यति ।
स गत्वा तमपृच्छच्च सोऽप्याह श्रृणु यन्मुने ।।१६
न कशेरुर्न चैवाहं न चान्यः साम्प्रत भुवि ।
वेत्त्येक एव त्वच्छत्रुःखाण्डिक्यो यो जितस्त्वया ।।१७
स चाह तं व्रजाम्येष प्रष्टुमात्मरिपुं मुने ।
प्राप्त एव महायज्ञो यदि मां स हनिष्यति ।।१८
प्रायश्चित्तमशेषेण चेत्पृष्टो वदिष्यति ।
ततश्चाविकलो यागो मुनिश्रेष्ठ भविष्यति ।।१९

एक दिन जब राजा केशिध्वज यज्ञानुष्ठान में लगे थे तब उनकी धर्म—गौ को जनहीन वन में एक भयानक व्याघ्र ने मार डाला ।।१३।। जब राजा ने गौ का इस प्रकार मारे जाना सुना तो उसने ऋत्विजों से उसका प्रायश्चित पूछा ।।४१।। ऋत्विजों ने कहा —कि इस

विषय में मैं नहीं जानता, कशेरु से पूछिये। कशेरु से पूछने पर उन्होंने भी यही कहा कि मैं तो नहीं जानता, परन्तु शुनक अवश्य जानते होंगे। तब राजा ने शुनक से पूछा और उन्होंने इसका उत्तर इस प्रकार दिया इस बात को कशेरु, मैं अथवा अन्य कोई भी नहीं जानता, केवल आपके द्वारा परास्त खाण्डिक्य ही जानता है ॥१५-१७॥ यह सुनकर राजा ने कहा—हे मुने! तो अपने शत्रु खाण्डिक्य के पास जाकर ही पूछता हूँ। यदि उसने मेरा वध कर दिया तो भी महायज्ञ का फल तो प्राप्त हो ही जायगा और कहीं प्रायश्चित वता दिया, तो यज्ञ की निर्विघ्न समाप्त निश्चित है ॥१८-१९॥

इत्युक्त्वा रथमारुह्य कृष्णाजिनधरो नृप।
वनं जगाम यत्रास्ते स खाण्डिक्यो महामति ॥२०
तमापनन्तमालोक्य खाण्डिक्यो रिपुमात्मनः।
प्रोवाच क्रोधताम्राक्षस्समारोपितकार्मुकः ॥२१
कृष्णाजिनं त्वं कवचमावध्यास्मान्हनिष्यसि।
कृष्णाजिनधरे वेत्सि न मयि प्रहरिष्यति ॥२२
मृगाणां वद पृष्ठेषु मूढ कृष्णाजिन न किम्।
येषां मया त्वया चोग्राः प्रहिताश्शितसायकाः ॥२३
स त्वामहं हनिष्यामि न मे जीवन्विमोक्ष्यसे।
आततायग्यसि दुर्बुद्धे मम राज्यहरो रिपु ॥२४
खाण्डिक्य संशय प्रष्टुं भवन्तमहामागतः।
न त्वां हन्तु बिचार्यैतत्कोप वाण विमुञ्च वा ॥२५

पराशरजी ने कहा—यह कहकर राजा केशिध्वज काला मृगचर्म ओढ़कर रथ के द्वारा खाण्डिक्य के निबास स्थान पर पहुँचे ॥२०॥ खाण्डिक्य ने अपने शत्रु को आया देखकर धनुष चढ़ाया और क्रोध पूर्वक कहने लगे—अरे, क्या तू काले मृगचर्म रूप कवच धारण करके हमें मारने को आया है? या तू समझता है कि इस चर्म धारण के कारण मैं तुझ पर प्रहार न करूँगा? ॥२१-२३॥ हे मूर्ख! क्या मृग काले मृगचर्म से रहित होते हैं और क्या मैंने और तूने उन कृष्ण मृगों पर कभी बाण

नहीं बरसाये हैं।।२४।। इसलिए मैं अवश्य ही तेरा वध कर दूंगा, तू मेरे राज्य का अपहरण करने वाला शत्रु है ।।२४।। केशिध्वज ने कहा--हे खाण्डिक्य ! मैं आपका वध करने के लिये नहीं, केवल एक सन्देह का समाधान करने के लिये आया हूँ। यह जानकर आप क्रोध का त्याग करें अथवा मुझ पर बाण छोड़ दें ।।२५।।

ततस्स मन्त्रिभिस्मार्द्धमेकान्ते सपुरोहितः ।
मन्त्रयामास खाण्डिक्यस्सर्वैरेव महामतिः ।।२६
तमूचुर्मन्त्रिणो वध्यो रिपुरेष वशं गतः ।
हतेऽस्मिन्पृथिवी सर्वा तव वश्या भविष्यति ।।२७
खाण्डिक्यश्चाह तान्सर्वानिवेमेतन्न सशयः ।
हतेऽस्मिन्पृथिवी सर्वा मम वश्वा भविष्यति ।।२८
परलोकजयस्तस्य पृथिवी सकला मम ।
न हन्मि चेल्लोकजयो मम तस्य वसुन्धरा ।।२९
नाहं मन्ये लोकजयादधिका स्याद्वसुन्धरा ।
परलोकजयोऽनन्तस्वल्पकालो महीजयः ।।३०
तस्मान्नूनं हनिष्यामि यत्पृच्छति वदामि तत् ।।३१
ततस्तमभ्युतेत्याह खाण्डिक्यजनको रिपुम् ।
प्रष्टव्यं यत्त्वमा सर्वं तत्पृच्छस्व वदाम्यहम् ।।३२

श्री पराशर जी ने कहा— ऐसा सुन कर खाण्डिक्य ने अपने पुरोहितों और मन्त्रियों से परामर्श किया ।।२६।। तब मन्त्रियों ने कहा-इस समय शत्रु आपकी पकड़ में है, इसे मार डालना ही उचित है । ऐसा करने से इस सम्पूर्ण पृथिवी पर अधिकार हो जायगा ।।२७।। खाण्डिक्य बोले--आप सब का कथन यथार्थ है, परन्तु इसे मार देने पर यह पारलौकिक विजय प्राप्त कर लेगा और मुझे पृथ्वी ही मिलेगी यदि इसका वध नहीं करूंगा तो इसे पृथिवी और मुझे पारलौकिक सिद्धि प्राप्त होगी ।।२८-२९।। परलोक से बढ़कर पृथिवी नहीं है, क्योंकि पारलौकिक विजय चिरकालिक और पृथिवी अल्प कालिक होती है । इसीलिये मैं इसका वध न करके इसके प्रश्न का समाधान करूंगा ।।३०-३१।। श्रीपराशर जी ने कहा-तब

खाण्डिक्य अपने शत्रु केशिध्वज के पास जाकर बोला तुम जो चाहो पूछ लो, मैं उत्तर देने को तत्पर हूँ ॥३२॥

ततस्सर्वं यथावृत्तं धर्मधेनुवधं द्विज ।
कथयित्वा स पप्रच्छ प्रायश्चितं हि तद्गतम् ॥३३
स चाचष्ट यथान्यायं द्विज केशिध्वजाय तत् ।
प्रायश्चित्तमशेषेण यद्वै यत्र विधीयते ॥३४
विदितार्थस्स तेनैव ह्यनुज्ञातो महात्मना ।
यागभूमिमुपागम्य चक्रे सर्वाः क्रियाः क्रमात् ॥३५
क्रमेण विधिवद्यागं नीत्वा सोऽवभृथाप्लुतः ।
कृतकृत्यस्ततो भूत्वा चिन्तयामास पार्थिवः ॥३६
पूजिताश्च द्विजास्सर्वे सदस्या मानिता मया ।

तब केशिध्वज ने धर्मधेनु के मारे जाने का सब वृत्तान्त कह कर उसका प्रायश्चित्त पूछा और खाण्डिक्य ने भी सम्पूर्ण विधि विधान सहित प्रायश्चित बता दिया ॥३४॥ फिर केशिध्वज खाण्डिक्य की अनुमति लेकर यज्ञ भूमि को लौटे और वहाँ विधिवत् सब कर्म सम्पन्न किया ॥३५॥ जब यज्ञ पूर्ण हो गया तब अवभृथ स्थान के पश्चात् महाराज केशिध्वज विचार करने लगे ॥१६॥ मैंने सभी ऋत्विजों को पूजा, सभी सदस्यों का सम्मान किया, याचकों की याचनाएँ पूर्ण कीं और लोक नियमानुसार भी सब कर्त्तव्य पूरे किये, फिर भी मेरा मन यह कह रहा है कुछ करना अभी शेष है ३७-३८॥ ऐसा विचार करते हुए उन्हें याद आया कि खाण्डिक्य को गुरु-दक्षिणा तो अभी दी नहीं है ॥३९॥

तथैवार्थिजनोऽप्यर्थैर्योजितोऽभिमतैर्मया ॥३७
यथार्हमस्य लोकस्य मया सर्वं विचेष्टितम् ।
अनिष्पन्नक्रियं चेतस्तथापि मम किं यथा ॥३८
इत्थं सञ्चिन्तयन्नेव सस्मार स महीपतिः ।
खाण्डिक्याय न दत्तेति मया वै गुरुदक्षिणा ॥३९
स जगाम तदा भूयो रथमारुह्य पार्थिवः ।
मैत्रेय दुर्गगहनं खाण्डिक्यो यत्र सस्थितः ॥४०

खाण्डिक्योऽपि पुनर्दृष्ट्वा तमायान्तं धृतायुधम् ।
तस्थौ हन्तुं कृतमतिस्तमाह स पुनर्नृपः ॥४१
भो नाहं तेऽपराधाय प्राप्तः खाण्डिक्य मा क्रुधः ।
गुरोर्निष्क्रयदानाय मामवेहि त्वमागतम् ॥४२
निष्पादितो मया यागः सम्यक्त्वदुपदेशतः ।
सोऽहं ते दातुमिच्छामि वृणीष्व गुरुदक्षिणाम् ॥४३
भूतस्य मन्त्रिभिस्सार्द्धं मन्त्रयामास पार्थिवः ।
गुरुनिष्क्रयकामोऽयं किं मया प्रार्थ्यतामिति ॥४४
तमूचुर्मन्त्रिणो राज्यमशेषं प्रार्थ्यतामयम् ।
शत्रुभिः प्रार्थ्यते राज्यमनायासितसैनिकैः ॥४५

हे मैत्रेयजी ! तदनन्तर राजा अपने रथ पर आरूढ़ होकर खाण्डिक्य के पास वन में पहुँचे ॥३०॥ परन्तु खाण्डिक्य ने उन्हें शस्त्र धारण किये देख कर मारने के लिए शस्त्र सम्भाले । तब केशिध्वज बोले हे खाण्डिक्य ! आप क्रोधित न हों । मैं आपका अपकार करने नहीं आया, अपितु गुरु—दक्षिणा देने आया हूं ॥४१-४२॥ मैंने आपके उपदेशानुसार अपने यज्ञ को भले प्रकार पूर्ण कर लिया है और अब आपको गुरु-दक्षिणा देने की इच्छा करता हूं, आप चाहे वही मुझसे मांगलें ॥४३॥ श्री पराशरजी ने कहा—यह सुन कर खाण्डिक्य ने पुनः अपने मन्त्रि आदि से परामर्श किया कि यह मुझे गुरु दक्षिणा देने के लिये आया है, इससे क्या मांगा जाय ? ॥४४॥ मन्त्रिगण बोले—आप इससे पूरा राज्य माँगिये, क्योंकि मतिमान् पुरुष अपने शत्रुओं से राज्य की ही माँग किया करते हैं ॥४५॥

प्रहस्य तानाह नृपस्स खाण्डिक्यो महामतिः ।
स्वल्पकालं महीपाल्यं मादृशैः प्रार्थ्यते कथम् ॥४६
एवमेतद्भवन्तोऽत्र ह्यर्थसाधनमन्त्रिणः ।
परमार्थः कथं कोऽत्र यूयं नात्र विचक्षणाः ॥४७
इत्युक्त्वा समुपेत्यैनं स तु केशिध्वजं नृप ।
उवाच किमवश्यं त्वं ददासि गुरुदक्षिणाम् ॥४८

बाढमित्येव तेनोक्तः खाण्डिक्यस्तमथाब्रवीत् ।
भवानध्यात्मविज्ञानपरमार्थविचक्षणः ॥४९
यदि चेद्दीयते मह्यं भवता गुरुनिष्क्रयः ।
तत्क्लेशप्रशमायालं यत्कर्म तदुदीरय ॥५०

तब खाण्डिक्य ने हँसते हुए कहा—राज्य तो कुछ दिन टिकने वाला है, मेरे जैसे व्यक्ति को क्यों माँगना चाहिये ? ॥४६॥ यह सत्य है कि स्वार्थ सिद्धि के लिये आपका परामर्श उचित हो सकता है, परन्तु परमार्थ का आपको ज्ञान नहीं ॥४७॥ श्री पराशरजी ने कहा—फिर खाण्डिक्य ने केशिध्वज के पास आकर कहा—क्या तुम मुझे अवश्य गुरु दक्षिणा देना चाहते हो ? केशिध्वज बोले—अवश्य । तब खाण्डिक्य ने कहा—आप अध्यात्मरूपिणी परमार्थ विद्या में पारङ्गत हैं, इसलिये गुरुदक्षिणा स्वरूप मुझे यह बताइये, जिससे सभी क्लेशों का शमन हो सके ॥५०॥

सातवां अध्याय

न प्रार्थितं त्वया कस्मादस्मद्राज्यमकण्टकम् ।
राज्यलाभाद्विना नान्यत्क्षत्रियाणामतिप्रियम् ॥१
केशिध्वजः निबोध त्वं मया न प्रार्थितं यतः ।
राज्यमेतदशेषं ते तत्र गृध्नन्त्यपण्डिताः ॥२
क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ।
वधश्च धर्मयुद्धेन स्वराज्यपरिपन्थिनाम् ॥३
तत्राशक्तस्य मे दोषो नैवास्त्यपहृते त्वया ।
बन्धायैव भवत्येषा ह्यविद्याप्यक्रमीज्झिता ॥४
जन्मोवभोगलिप्सार्थमियं राज्यस्पृहा मम ।
अन्येषां दोषजा सैव धर्मं वै नानुरुध्यते ॥५
न याञ्चा क्षत्रबन्धूनां धर्मायैतत्सतां मतम् ।
अतो न याचितं राज्यमविद्यान्तर्गतं तव ॥६

राज्ये गृध्नन्त्यविद्वांसो ममत्वाहृतचेतसः ।
अहंमानमहापानमदमत्ता न मादृशाः ॥७

केशिध्वज ने कहा—क्षत्रिय तो राज्य से अधिक प्रिय और किसी भी वस्तु को नहीं मानते, फिर आपके निष्कंटक राज्य न माँगने का क्या कारण है ? ॥१॥ खाण्डिक्य ने कहा—हे केशिध्वज ! राज्यादि की कामना तो मूर्ख किया करते हैं, इसी लिये मैंने राज्य नहीं माँगा है । ॥२॥ क्षत्रियों का धर्म प्रजापालन तथा अपने विरोधियों का धर्म पूर्वक दमन करना है ॥३॥ असक्त होने के कारण तुमने मेरे राज्य का अपहरण कर लिया तो वैसा न करने में मुझे कोई दोष नहीं है यद्यपि यह अविद्या ही है, फिर भी इसका अनियमित रूप से त्याग करना भी वन्धन का कारण हो जाता है ॥४॥ राज्य की आकांक्षा तो जन्मान्तर का सुख भोगने के निमित्त है और मन्त्री आदि में भी उसकी उत्पत्ति रागादि के कारण होती है ॥५॥ सज्जनों का मत है कि याचना करना श्रेष्ठ मन्त्रियों का धर्म नहीं है. इसीलिये मैंने अविद्या वाले राज्य को याचना नहीं की है ॥६॥ अहङ्कार से उन्मत्त और ममता वाले मूर्ख पुरुष ही राज्य चाहते हैं, मेरे जैसों को उसकी कोई कामना नहीं ॥७॥

प्रहृष्टस्साध्विति प्राह ततः केशिध्वजो नृपः ।
खाण्डिक्यजनकं प्रीत्या श्रूयतां वचनं मम ॥८
अह मविद्या मृत्यु च ततु कामः करोमि वै ।
राज्यं यागांश्च विविधान्भोगैः पुण्यक्षयं यथा ॥९
तदिदं ते मनो दिष्ट्या विवेकैश्वर्यतां गतम् ।
तच्छ्रूयतामविद्यायास्स्वरूपं कुलनन्दन ॥१०
अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या चास्वे स्वमिति या मतिः ।
संसारतरुसम्भूतिबीजमेतद् द्विधा स्थितम् ॥११
पञ्चभूतात्मके देहे देही मोहतमोवृतः ।
अहं ममैतदित्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिम् ॥१२
आकाशवाय्वग्निजलपृथिवीभ्यः पृथक् स्थिते ।
आत्मन्यात्ममयं भावं कः करोति कलेवरे ॥१३

कलेवरोपभोग्यं हि गृहक्षेत्रादिकं च कः ।
अदेहे ह्यात्मनि प्राज्ञो ममेदमिति मन्यते ।।१४

श्री पराशरजी ने कहा—इस पर राजा केशिध्वज ने उन्हें साधुवाद देकर प्रेम सहित यह कहा ।।८।। मैं अविद्या के द्वारा मृत्यु को जीतना चाह कर राज्य और यज्ञों के अनुष्ठान में लगा हूँ, जिससे विविध प्रकार भोगों से मेरे पुण्य क्षीण हो सकें ।।९।। यह प्रसन्नता की बात है कि तुम्हारी बुद्धि विवेक से सम्पन्न हुई है, इसलिये अब तुम अविद्या के रूप का श्रवण करो ।।१०।। अनात्मा को आत्मा और अपना नहीं है, उसे अपना मानना—इस प्रकार अविद्या के दो भेद हैं ।।११।। यह बुद्धिहीन प्राणी मोहान्धकार में पड़ कर पंचभूतात्मक इस शरीर "मैं" या "मेरा" का भाव रखता है ।।१२।। परन्तु आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि से आत्मा के नितान्त पृथक् होने के कारण कौन विवेकी पुरुष शरीर को आत्मा मानेगा ? ।। १३ ।। और जब शरीर से आत्मा भिन्न है तो शरीर के उपभोग की घर आदि वस्तुओं को कौन ज्ञानी पुरुष अपना कह सकता है ।।१४।।

इत्थं च पुत्रपौत्रेषु तद्देहोत्पादितेषु च कः ।
करोति पण्डितस्स्वाम्यमनात्मनि कलेवरे ।।१५
सर्वं देहोपभोगाय कुरुते कर्म मानवः ।
देहश्चान्यो यदा पुंसस्तदा बन्धाय तत्परम् ।।१६
मृन्मयं हि यथा गेहं लिप्यते वै मृदम्भसा ।
पार्थिवोऽयं तथा देहो मृदम्ब्वालेपनस्थितः ।।१७
पञ्चाभूतात्मकैर्भोगैः पञ्चभूतात्मकं वपुः ।
आप्यायते यदि ततः पुंसो भोगोऽत्र किं कृतः ।।१८
अनेकजन्मसाहस्रीं संसारपदवीं व्रजन् ।
मोहश्रमं प्रायतोऽसौ वासनारेणुगुण्ठितः ।।१९
प्रक्षाल्यते यदा सोऽस्य रेणुर्ज्ञानोष्णवारिणा ।
तदा संसारपान्थस्य याति मोहश्रमश्शमम् ।।२०

मोहश्रमे शमं याते स्वस्थान्तःकरणः पुमान् ।
अनन्यातिशयाबाधं परं निर्वाणमृच्छति ॥२१

इस प्रकार देह के आत्मा न होने से उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्र आदि को भी कौन अपना मानेगा ? ॥१५॥ इस देह के उपभोगार्थ सब कर्म किये जाते हैं, परन्तु देह के अपने से अलग होने के कारण ये सभी कर्म बन्धनकारी ही हो जाते हैं ॥१६॥ जैसे घर को मिट्टी और जल से लीपा जाता है, वैसे ही यह शरीर मिट्टी और जल के द्वारा ही स्थिर रहता है ॥१७॥ यदि पञ्चभूतात्मक इस देह का पोषण पाञ्चभौतिक पदार्थों से ही होता है तो पुरुष इससे क्या भोग कर सका ॥१८॥ यह प्राणी हजारों जन्म तक सांसारिक भोगों में रहने के कारण उन्हीं भोगों की वासना रूपी धूलि से पट कर मोहरूपी श्रम को पाता है ।१९। जब वह धूलि ज्ञानरूपी उष्ण जल से धुल जाती है तभी इस विश्वपथ के पथिक का मोह-श्रम मिट पाता है ॥२०॥ तव वह स्वस्थ-चित्त हुआ पुरुष निरतिशय और अबाध परम निर्वाणपद को प्राप्त होता है ॥२१॥

निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः ।
दुःखाज्ञानमया धर्माः प्रकृतेस्ते तु नात्मनः ॥२२
जलस्य नाग्निससर्गः स्थालीसंगात्तथापि हि ।
शब्दोद्रेकादिकान्धर्मांस्तत्करोति यथा नृपः ॥२३
तथात्मा प्रकृतेस्सङ्गादहम्मानादिदूषितः ।
भजते प्राकृतान्धर्मानप्यस्तेभ्यो हि सोऽव्ययः ॥२४
तदेतत्कथितं बीजमविद्याया मया तव ।
क्लेशानां च क्षयकरं योगादन्यन्न विद्यते ॥२५
तं तु ब्रूहि महाभाग योगं योगविदुत्तम ।
विज्ञातयोगशास्त्रार्थस्त्वमस्यां निमिसन्ततौ ॥२६
योगस्वरूपं खाण्डिक्य श्रूयतां गदतो मम ।
यत्र स्थितो न च्यवते प्राप्य ब्रह्म लयं मुनिः ॥२७

यह मल-रहित और ज्ञानमय आत्मा निर्वाण रूप है और दुःखादि अज्ञानमय धर्म आत्मा के नहीं, प्रकृति के हैं ॥२२॥ जैसे स्थाली में भरे

हुए जल का संयोग अग्नि से न होने पर भी स्थाली के संसर्ग से ही वह खोलने लगता है, वैसे ही प्रकृति के संसर्ग से अहंकार आदि से दूषित हुअ आत्मा प्रकृति के धर्मों को अपना लेता है। नहीं तो अव्यय स्वरूप आत्मा उन धर्मों से नितान्त पृथक है ॥२३-१४॥ इस प्रकार यह अविद्या का बीज मैंने कहा है। इस अविद्या---जन्य क्लेशों को दूर करने का उपाय योग ही है ॥२५॥ खाण्डिक्य ने कहा— हे केशिध्वज ! तुम योग के जानने वालों में श्रेष्ठ तथा योगशास्त्र के मर्मज्ञ हो, इसलिये उस योग का स्वरूप भी कहो ॥ २६ '। केशिध्वज ने कहा—अब तुम मुझसे उस योग को सुनो जिसमें अवस्थित मुनिजन ब्रह्म स्वरूप होकर फिर उससे पतित नहीं होते ॥२७॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासङ्गि मुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥२८
विषयेभ्यस्समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुनिः।
चिन्तयेन्मुक्तये तेन ब्रह्मभूतं परमेश्वरम् ॥२९
आत्मभावं नयत्येनं तद्‌ब्रह्म ध्यायिनं मुनिम्।
विकार्यमात्मनश्शक्त्या लोहमाकर्षको यथा ॥३०
आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते ॥३१
एवमत्यन्तवैशिष्ट्ययुक्तधर्मोपलक्षणः।
यस्य: योगः स वै योगी मुमुक्षुरभिधीयते ॥३२
योगयुक् प्रथमं योगी युञ्जानो ह्यभिधीयते।
विनिष्पन्नसमाधिस्तु परं ब्रह्मोपलब्धिमान् ॥३३

मनुष्यों के बन्ध-मोक्ष का कारण मन ही है। विषयों में आसक्त होकर वह बन्धन करने वाला तथा विषयों को त्यागने से मोक्ष प्राप्त कराने वाला होता है ॥ २८ ॥ इसलिये विज्ञान-सम्पन्न मुनिजनों को अपने मन को विषयों से निवृत्त कर, मोक्ष की प्राप्ति के लिये परमात्मा का ही चिन्तन करना चाहिये ॥२९॥ जैसे चुम्बक अपनी शक्ति से लोहे को अपनी ओर खींच लेता है, वैसे ही ब्रह्मचिन्तन वाले मुनि को पर-

मात्मा स्वभाव से ही अपने में मिला लेता है ॥३०॥ आत्मज्ञान के यत्न रूप यम, नियमादि की अपेक्षा वाली विशिष्ट मनोगति का ब्रह्म से संयोग होना ही 'योग' कहा गया है ॥३१॥ जो इस प्रकार के विशिष्ट धर्म वाले योग में रत रहता है, वह मुमुक्षु योगी कहलाता है॥३२॥ प्रथम योगाभ्यास करने वाला 'योगयुक्त योगी' कहा जाता है और जब वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है तब उसे 'विनिष्पन्न समाधि' कहते हैं ॥३३॥

यद्यन्तरायदोषेण दूष्यते चास्य मानसम् ।
जन्मान्तरैरभ्यसतो मुक्तिः पूर्वस्य जायते ॥३४
विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्ति तत्रैव जन्मनि ।
प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्धकर्मचयोऽचिरात् ॥३५
ब्रह्मचर्यमहिंसां च सत्यास्तेयापरिग्रहान् ।
सेवेत योगी निष्कामो योग्यतां स्वमनो नयन् ॥३६
स्वाध्यायशौचसन्तोषतपांसि नियतात्मवान् ।
कुर्वीत ब्रह्मणि तथा परस्मिन्प्रवण मनः ॥३७
एते यमास्सनियमाः पञ्च पञ्च च कीर्तिताः ।
विशिष्टफलदाः काम्या निष्कामाणां विमुक्तिदाः ॥३८
एकं भद्रासनादीनां समास्थाय गुणैर्युतः ।
यमाख्यैर्नियमाख्यैश्च युञ्जीत नियतो यतिः ॥३९
प्राणाख्यमनिलं वश्यमभ्यासात्कुरुते तु यत् ।
प्राणायामस्स विज्ञेयस्सबीजोऽबीज एव च ॥४०

यदि उस योगी का चित्त किसी विघ्न के कारण दूषित हो जाता है तो दूसरे जन्म में अभ्यास करने पर उसकी मुक्ति हो जाती है ॥३४॥ विनिष्पन्न समाधि योगी के कर्म योगाग्नि से भस्म हो जाते हैं और इसी लिये उस स्वल्प काल में ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ॥ ३५ ॥ योगी को ब्रह्म चिन्तन के योग्य होने के लिए ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह आदि का पालन करना उचित है ॥ ३६ ॥ स्वाध्याय, शौच, सन्तोष और तप के आचरण पूर्वक अपने मनको परब्रह्म में लगादे ॥३७॥ यम और नियम दोनों पाँच-पाँच हैं, किसी कामनावश इनका

पालन करने से पृथक्-पृथक् फल की प्राप्ति होती है, परन्तु निष्काम पालन से मोक्ष मिल जाता है ॥३८॥ इसलिये यति को भद्रासन आदि में से किसी एक-एक आसन के अवलम्बन में यम, नियम आदि के सेवन पूर्वक योगाभ्यास करना चाहिए॥३९॥ प्राण वायु का वश में किया जाना प्राणायाम है। उसके सबीज और निर्बीज—यह दो प्रकार हैं ॥४०॥

परस्परेणाभिभवं प्राणापानौ यथानिलौ।
कुरुतस्सद्विधानेन तृतीयस्संयमात्तयोः ॥४१
तस्य चालम्बनवतः स्थूलरूपं द्विजोत्तम।
आलम्बनमनन्तस्य योगिनोऽभ्यसतःस्मृतम् ॥४२
शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित्।
कुर्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः ॥४३
वश्यता परमा तेन जायतेऽतिचलात्मनाम्।
इन्द्रियाणामवश्यैस्तैनं योगी योगसाधकः ॥४४
प्राणायामेन पवने प्रत्याहारेण चेन्द्रिये।
वशीकृते ततः कुर्यात्स्थितं चेतश्शुभाश्रये ॥४५

प्राण और अपान के द्वारा निरोध करने से दो प्राणायाम होते हैं तथा इन दोनो को एक ही समय रोकने से तीसरा कुम्भक प्राणायाम होता है ॥ ४१ ॥ सबीज प्राणायाम के अभ्यासी का आलम्बन अनन्त भगवान् का स्थूल रूप होता है ॥४२॥ फिर वह प्रत्याहार के अभ्यास पूर्वक अपनी विषयासक्त इन्द्रियोंको संयमित करके अपने चित्तके अनुसार चलने वाली बना लेता है ॥४३ ॥ इससे चंचल इन्द्रियाँ उसके वश में हो जाती हैं, जिनको वशीभूत किये विना योग—साधन सम्भव नहीं होता ॥४४॥ इस प्रकार प्राणायाम से वायु को और प्रत्याहार से इन्द्रियों को वश में करके चित्त को शुभाश्रय में स्थित करना चाहिये ॥४५॥

कथ्यतां मे महाभाग चेतसो यश्शुभाश्रयः।
यदाधारमशेषं तद्धन्ति दोषमलोद्भवम् ॥४६
आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः।
भूप मूर्त्तममूर्त्तं च परं चापरमेव च ॥४७

त्रिविधा भावना भूप विश्वमेतन्निबोधताम् ।
ब्रह्माख्या कर्मसंज्ञा च तथा चैवोभयात्मिका ॥४८
कर्मभावात्मिका ह्येका ब्रह्मभावात्मिका परा ।
उभयात्मिका तथैवान्या त्रिविधा भावभावना ॥४९
सनन्दनादयो ये तु ब्रह्मभावनया युताः ।
कर्मभावनया चान्ये देवाद्याः स्थावराश्चराः ॥५०
हिरण्यगर्भादिषु च ब्रह्मकर्मात्मिका द्विधा ।
बोधाधिकारयुक्तेषु विद्यते भावभावना ॥५१
अक्षीणेषु समस्तेषु विशेषज्ञानकर्मसु ।
विश्वमेतत्परं चान्यभेद्भिन्नदृशां नृणाम् ॥५२
प्रत्यस्तमितभेदं यत्सत्तामात्रमगोचरम् ।
वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥५३
तच्च विष्णोः परं रूपमरूपाख्यमनुत्तमम् ।
विश्वस्वरूपवैरूप्यलक्षणं परमात्मनः ॥५४

खाण्डिक्य ने कहा—हे महाभागो ! जिसके आश्रय में चित्त के सब दोष नाश को प्राप्त होते हैं वह चित्त का शुभाश्रय कौन सा है ? ॥४६॥ केशिध्वज ने कहा - चित्त का आश्रय ब्रह्म है, जो मूर्त्त—अमूर्त्त अथवा पर-अपर रूप से दो प्रकार का है ॥४७॥ हे राजन् ! इस विश्व में कर्म, ब्रह्म और उभयात्मिका नाम की तीन प्रकार की भावनाएँ कही हैं ॥४८॥ इनमें कर्मभावना पहिली, ब्रह्मभावना दूसरी और उभयात्मिका तीसरी है ॥४९॥ सनन्दन आदि मुनिगण ब्रह्म भावना वाले तथा देवताओं से स्थावर जंगम तक जितने भी जीव हैं, वे सब कर्म भावना वाले हैं ॥५०॥ तथा बोध और अधिकार वाली ब्रह्म और कर्म दोनों से युक्त उभयात्मिका भावना समझो ॥ ५१ ॥ जब तक विशेष ज्ञान के कारण रूप कर्मों का क्षय नहीं होता, तभी तक अहङ्कारादि के कारण जिनकी भेद दृष्टि हो रही है, उन्हें ब्रह्म और जगत् भिन्न प्रतीत होते हैं ॥५२॥ जिसमें सब भेद नष्ट होते, जो सत्तामात्र वाणी का विषय नहीं है तथा जो अनुभव से जानने योग्य है, वही विष्णु अरूप कहा जाने

वाला परम स्वरूप है, जों उनके विश्वरूप से नितान्त विलक्षण है ।।५४।।

न तद्योगयुजा शक्यं नृप चिन्तयितुं यतः ।
ततः स्थूल हरे रूपं चिन्तयेद्विश्वगोचरम् ।।५५
हिरण्यगर्भो भगवान्वासुदेवः प्रजापतिः ।
मरुतो वसवो रुद्रा भास्करास्तारका ग्रहाः ।।५६
गन्धर्वयक्षदैत्याद्यास्सकला देवयोनयः ।
मनुष्याः पशवश्शैलास्समुद्रास्सरितो द्रुमाः ।।५७
भूप भूतान्यशेषाणि भूतानां ये च हेतवः ।
प्रधानादिविशेषान्त चेतनाचेतनात्मकम् ।।५८
एकपादं द्विपादं च बहुपादमपादकम् ।
मूर्त्तमेतद्धरे रूप भावनात्रितयात्मकम् ।।५९
एतत्सर्वमिद विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोश्शक्तिसमन्वितम् ।।६०

हे नृप ! योगाभ्यासी प्रारम्भ में उनके उस परम रूप का चिन्तन करने में असमर्थ होते हैं, इसलिये उन्हें उनके विश्वमय स्थूल रूप का ही ध्यान करना चाहिए।।५५।। हिरण्यगर्भ, वासुदेव, प्रजापति, मरुद्-गण, वसुगण, रुद्र, आदित्य, तारायण, ग्रहगण, गन्धर्व, यक्ष, दैत्य, देवता, मनुष्य, पशु, पर्वत, समुद्र, नदी, वृक्ष, सम्पूर्ण भूत तथा प्रधान से विशेष पर्यन्त उनके कारण तथा चेतन, अचेतन, एकपाद, दो पाद अथवा अनेक पाद या बिना पाद के प्राणी —यह सभी भगवान् के तीन भावना वाले मूर्त्त स्वरूप हैं ।।५६-५९।। यह सम्पूर्ण विश्व ही उन परब्रह्म रूप भगवान् विष्णु की शक्ति से सम्पन्न उन्हीं का विश्व नामक स्वरूप है ।।६०।।

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा ।
अविद्या कर्मसज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ।।६१
यया क्षेत्रज्ञशक्तिस्सा वेष्टिता नृप सर्वगा ।
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यतिसन्ततान् ।।६२

तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षत्रसंज्ञिता ।
सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन लक्ष्यते ।।६३
अप्राणवत्सु स्वल्पा सा स्थावरेषु ततोऽधिका ।
सरीसृपेषु तेभ्योऽपि ह्यतिशक्त्या पतत्त्रिषु ।।६४
पतत्त्रिभ्यो मृगास्तेभ्यस्तच्छक्त्या पशवोऽधिकाः ।
पशुभ्यो मनुजाश्चातिशक्त्या पुंसः प्रभाविताः ।।६५
तेभ्योऽपि नागगन्धर्वयक्षाद्या देवता नृप ।।६६
शक्रस्समस्तदेवेभ्यस्तमश्चाति प्रजापतिः ।
हिरण्यपर्भोऽपि ततः पुंस शक्त्युपलक्षितः ।।६७
एतान्यशेषरूपाणि तस्य रूपाणि पार्थिव ।
यतस्तच्छक्तियोगेन युक्तानि नभसा यथा ।।६८

विष्णु नामक शक्ति परा और क्षेत्रज्ञ नामक शक्ति अपरा है तथा कर्म संज्ञक तृतीय शक्ति अविद्या कही जाती है ।।६१।। हे नृप ! इसी अविद्या से आवृत हुई क्षेत्रज्ञ शक्ति सब प्रकार के सांसारिक कष्टों को भोगती है ।।६२।। अविद्या से तिरोहित हुई क्षेत्रज्ञ शक्ति सब जीवों में तारतम्य से दिखाई पड़ती है ।।६३।। जड़ पदार्थों में यह स्वल्प प्रमाण में, उनसे अधिक स्थावरों में और उनसे अधिक सरीसृपादि में तथा उनसे भी अधिक पक्षियों में है ।।६४।। पक्षियों से अधिक मृगों में, उनसे अधिक पशुओं में तथा पशुओं से अधिक शक्ति मनुष्यों में है ।।६५।। मनुष्यों से अधिक नाग, गन्धर्व, यक्षादि सब देवताओं में, उनसे अधिक इन्द्र में, इन्द्र से अधिक प्रजापति में, उनसे अधिक हिरण्यगर्भ में दिखाई देती है ।।६६-६७।। यह सभी रूप उस परमेश्वर के ही देह हैं, क्योंकि आकाश के समान ही उनकी शक्ति से यह सभी व्याप्त हो रहे हैं ।।६८।।

द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते ।
अमूर्त्तं ब्रह्मणो रूपं यत्सदित्युच्यते बुधैः ।।६९
समस्ताः शक्तयश्चैता नृप यत्र प्रतिष्ठिताः ।
तद्विश्वरूपवैरूप्यं रूपमन्यद्धरेर्महत् ।।७०

समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वर ।
देवतिर्यङ्मनुष्यादिचेष्टावन्ति स्वलीलया ॥७१

जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा ।
चेष्टा तस्याप्रमेयस्य व्यापिन्यव्याहतात्मिका ॥७२

तद्रूपं विश्वरूपस्य तस्य योगयुजा नृप ।
चिन्त्यमात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकिल्विषनाशम् ॥७३

यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति सानिलः ।
तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्विषम् ॥७४

तस्मात्समस्तशक्तीनामाधारे तत्र चेतसः ।
कुर्वीत सस्थितिं सा तु विज्ञेया शुद्धधारणा ॥७५

हे महामते ! ब्रह्म का द्वितीय अमूर्त रूप 'विष्णु' संज्ञक है, जिसे ज्ञानीजन 'सत्' कहते और मुनिजन जिसका ध्यान करते हैं ॥ ६९ ॥ जिसमें यह सभी शक्तियाँ स्थित हैं, वही विश्व रूप से विलक्षण भगवान् का दूसरा रूप है ॥७०॥ अपनी लीला से देव, तिर्यक् तथा मनुष्यादि की चेष्टाओं वाला सर्व शक्तिमय स्वरूप भी भगवान् का वही रूप धारण करता है ॥७१॥ इन रूपों में उनकी व्यापक और अव्याहत चेष्टा जगत् के उपकारार्थ है, कर्म से उत्पन्न नहीं होती ॥७२॥ हे नृप ! योगाभ्यास करने वाले को आत्म शुद्धि के लिये उसी सर्व पाप हर स्वरूप का ध्यान करना चाहिये ॥७३॥ जैसे वायु से मिलकर अग्नि अपनी ऊँची ज्वालाओं से तिनकों को भस्म कर देता है, वैसे ही चित्त में स्थित हुए भगवान् विष्णु योगियों के सभी पापों को भस्म कर देते हैं ॥७४॥ अतः सर्व-शक्तियों के आधार भगवान् में चित्त लगाना ही शुद्ध धारणा है ॥७५॥

शुभाश्रयः स चित्तस्य सर्वगस्याचलात्मनः ।
त्रिभावभावनातीतो मुक्तये योगिनो नृप ॥७६

अन्ये तु पुरुषव्याघ्र चेतसो ये व्यपाश्रयाः ।
अशुद्धास्ते समस्तास्तु देवाद्याः कर्मयोनयः ॥ ७७

मूर्त्तं भगवतो रूपं सर्वापाश्रयनिःस्पृहम् ।
एषा वै धारणा प्रोक्ता यच्चित्तं तत्र धार्यते ॥७८

यच्च मूर्तं हरे रूपं यादृक्चिन्त्यं नराधिप ।
तच्छ्रूयतामनाधारा धारणा नोपपद्यते ।।७९
प्रसन्नवदनं चारुपद्मपत्रोपमेक्षणम् ।
सुकपोलं सुविस्तीर्णललाटफलकोज्ज्वलम् ।।८०
समकर्णान्तविन्यस्तचारुकुण्डलभूषणम् ।
कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णश्रीवत्सांकितवक्षसम् ।।८१
वलित्रिभङ्गिना मग्ननाभिना ह्युदरेण च ।
प्रलम्बाष्टभुजं विष्णुमथवापि चतुर्भुजम् ।।८२
समस्थितोरुजङ्घं च सुस्थिताङ्घ्रिवराम्बुजम् ।
चिन्तयेद् ब्रह्मभूतं तं पीतनिर्मलवाससम् ।।८३

हे राजन् ! तीनों भावनाओं से परे भगवान् विष्णु ही योगियों को मोक्ष प्राप्त कराने के लिये उनके चंचल और स्थिर चित्त के शुभाश्रय हैं ।।७६।। इसके अतिरिक्त मन को आश्रय देने वाले देवादि कर्म योनियों के अशुद्धाश्रय समझो ।।७७।। भगवान् के इस मूर्त्त रूप से चित्त अन्य आश्रयों से हट जाता है, इस प्रकार चित्त के उन्हीं में स्थिर होने को 'धारणा' कहते हैं ।।७८।। हे राजन् ! बिना किसी आधार के धारणा नहीं होती, इसलिये प्रभु का जो मूर्त्त रूप है, उसे सुनो ।।७९।। जो भगवान् प्रसन्न मुख और सुन्दर पद्मदल जैसे लोचन वाले, श्रेष्ठ कपोल, विशाल ललाट, कानों में कुण्डल धारण किये हुए, शंख जैसी ग्रीवा वाले, विस्तृत एवं श्रीवत्सचिह्न युक्त वक्षःस्थल वाले, तरङ्गाकार त्रिवली और गंभीर नाभि वाले उदर से शोभित, आठ लम्बी-लम्बी भुजाओं वाले, जिनके जंघा और ऊरु समान रूप से स्थित हैं, सुघड़ और मनोहर चरण कमलों से बैठे हुए उन श्रीविष्णु का ध्यान करना चाहिये ।।८०-८३।।

किरीटहारकेयूरकटकादिविभूषितम् ।।८४
शार्ङ्गशंखगदाखड्गचक्राक्षवलयान्वितम् ।
वरदाभयहस्तं च मुद्रिकारत्न भूषितम् ।।८५
चिन्तयेत्तन्मयो योगी समाधायात्ममानसम् ।
तावद्यावद्दृढीभूता तत्रैव नृप धारणा ।।८६

व्रजतस्तिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वत. ।
नापयाति यदा चित्तात्सिद्धां मन्येत तां तदा ॥८७
ततः शंखगदाचक्रशार्ङ्गादिरहितं बुधः ।
चिन्तयेद्भगवद्रूपं प्रशान्तं साक्षसूत्रकम् ॥८८
सा यदा धारणा तद्वदवस्थानवती ततः ।
किरीटकेयूरमुखैर्भूषणै रहितं स्मरेत् ॥८९
तदेकावयवं देवं चेतसा हि पुनर्बुधः ।
कुर्यात्ततोऽवयविनि प्रणिधानपरो भवेत् ॥९०

हे राजन् ! किरीट, हार, केयूर, कटक आदि धारण किये शार्ङ्ग-धनु, शंख, चक्र, गदा, खंग और अक्ष-अवलि युक्त वरद और अभय मुद्रा वाले कर-कमल, जिनमें रत्नमयी मुद्रिका सुशोभित हैं, ऐसे भगवान् के दिव्य रूप का एकाग्र मन से धारण करके दृढ़ न होने तक चिंतन करते रहना चाहिए ॥८४-८६॥ जब चलते,उठते,बैठते या अन्य कोई कार्य करने में भी वह रूप अपने चित्त से विस्मृत न हो, तब सिद्धि की प्राप्ति हुई समझे ॥ ८७ ॥ जब धारणा में इतनी दृढ़ता आ जाय, तब शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष आदि के बिना जो उनका अक्षमाला और यज्ञोपवीत धारण किए हुए शान्त स्वरूप है, उसका ध्यान करना चाहिए ॥८८॥ जब यह धारणा भी दृढ़ हो जाय तव किरीटकेयूरादि आभूषणों से रहित उनके स्वरूप का चिन्तन करे ॥८९॥ फिर एक अवयव विशिष्ट भगवान् का ध्यानकरे और जब यह भी सिद्ध हो जाय तब अवयव रहित रूप का चिन्तन करना चाहिए ॥९०॥

तद्रूपप्रत्यया चैका सन्ततिश्चान्यनिःस्पृहा ।
तद्ध्यानं प्रथमैरङ्गैः षड्भिर्निष्पाद्यते नृप ॥९१
तस्यैव कल्पनाहीनं स्वरूपग्रहणं हि यत् ।
मनसा ध्याननिष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते ॥९२
विज्ञानं प्रापकं प्राप्ये परे ब्रह्मणि पार्थिव ।
प्रापणीयस्तथैवात्मा प्रक्षीणाशेषभावनः ॥९३

क्षेत्रज्ञः करणी ज्ञानं करणं तस्य तेन तत् ।
निष्पाद्य मुक्तिकार्यं वै कृतकृत्यो निवर्तते ।।९४
तद्भावभावमापन्नस्ततोऽसौ परमात्मना ।
भवत्यभेदी भेदस्य तस्याज्ञानकृतो भवेत् ।।९५
विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते ।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं कः करिष्यति ।।९६
इत्युक्तस्ते मया योगः खाण्डिक्य परिपृच्छतः ।
संक्षेपविस्तराभ्यां तु किमन्यत्क्रियतां तव ।।९७

हे नृप ! जिसमें प्रभु रूप की प्रतीति हो, वह निस्पृह एवं अनवरत धारा ही ध्यान है, वह अपने से पहले छः अङ्गों द्वारा निष्पन्न होता है ।।९१।। ध्यान द्वारा सिद्धि के योग्य उस ध्येय का जो स्वरूप मन के द्वारा ग्रहण होता है, वही समाधि कही जाती है ।।९२।। विज्ञान ही प्राप्त होने योग्य परब्रह्म तक पहुँचाने वाला तथा सब भावनाओं से हीन आत्मा ही वहाँ तक पहुँचने वाला है ।।९३।। मोक्ष-लाभ में क्षेत्रज्ञ कर्त्ता और ज्ञान करण है, मोक्ष रूपी कार्य को सिद्ध करने में धन्य हुआ वह विज्ञान निवृत्ति को प्राप्त होता है ।।९४।। उस समय भगवान् के भाव परिपूर्ण हुआ विज्ञान परमात्मा से अभिन्न होता है, इसको भिन्न माना जाने का कारण अज्ञान ही है ।।९५।। भेदोत्पादक अज्ञान के नष्ट होजाने पर ब्रह्म और आत्मा में न होने वाले भेद को कौन कर सकता है ? ।।९६।। हे खाण्डिक्य ! तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैंने संक्षिप्त रूप से और विस्तार पूर्वक भी योग का वर्णन कर दिया है, अब तुम्हारा और क्या कार्य मुझे करना है ? ।।९७।।

कथिते योगसद्भावे सर्वमेव कृतं मम ।
तवोपदेशेनाशेषो नष्टश्चित्तमलो यतः ।।९८
ममेति यन्मया चोक्तमसदेतन्न चान्यथा ।
नरेन्द्र गदितुं शक्यमपि विज्ञेयवेदिभिः ।।९९
अहं ममेत्यविद्येयं व्यवहारस्तथानयोः ।
परमार्थस्त्वसंलापो गोचरे वचसां न यः ।।१००

तद्गच्छ श्रेयसे सर्वं ममैतद्भवता कृतम् ।
यद्विमुक्तिप्रदो योगः प्रोक्तः केशिध्वजाव्ययः ।।१०१

खाण्डिक्य ने कहा — इस योग का वर्णन करके तुमने मेरे सभी कार्यों को सिद्ध कर दिया अब तुम्हारे उपदेश से मेरे चित्त का सब मैल दूर हो गया है ।।६८।। मैंने जो 'मेरा' कहा, वह भी मिथ्या ही है, क्योंकि जानने योग्य पदार्थ ज्ञाता ऐसा कदापि नहीं कह सकते ।।६६।। मैं, मेरा की भावना और इनका व्यवहार भी, अविद्या है और पदार्थ वाणी का विषय न होने से कहा या सुना नहीं जा सकता ।।१००।। हे केशिध्वज ! आपने मोक्षदायक योग को कह कर मेरी मुक्ति के निमित्त सब कुछ कर दिया, अब आप सुख से जाइये ।।१०१।।

यथार्हं पूजया तेन खाण्डिक्येन स पूजितः ।
आजगाम पुरं ब्रह्मंस्ततः केशिध्वजो नृपः ।।१०२
खाण्डिक्योऽपि सुतं कृत्वा राजानं योगसिद्धये ।
वनं जगाम गोविन्दे विनिवेशितमानसः ।।१०३
तत्रैकान्तमतिर्भूत्वा यमादिगुणसंयुतः ।
विष्ण्वाख्ये निर्मले ब्रह्मण्यवाप नृपतिर्लयम् ।।१०४
केशिध्वजो विमुक्त्यर्थं स्वकर्मक्षपणोन्मुखः ।
बुभुजे विषयान्मर्म चक्रे चानभिसंहितम् ।।१०५
सकल्याणोपभोगैश्च क्षीणपापोऽमलस्तथा ।
अवाप सिद्धिमत्यन्तां तापक्षयफलां द्विज ।।१०६

श्री पराशरजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इसके पश्चात् खाण्डिक्य द्वारा पूजित हुए राजा केशिध्वज अपने नगर को गये और अपने पुत्र को स्वामित्व सौंपकर भगवान् में चित्त लगाकर निर्जन वन मे योग-सिद्धि करने लगे ।। १०२-१०३ ।। यम-नियमादि से युक्त हुए राजा खाण्डिक्य एकाग्र चित्त से चिन्तन करते हुए निर्मल ब्रह्म में लय को प्राप्त हुए ।।१०४।। उधर राजा केशिध्वज अपने कर्मों को क्षय को करते हुए सब विषयों को भोगते रहे और अनेकों निष्काम कर्म करते रहे ।।१०५।। हे द्विज ! अनेकों कल्याणकारी भोगों को भोगते हुए उन्हें पाप और मल

के क्षीण होने पर तापत्रय को मिटाने वाली आत्यन्तिक सिद्धि प्राप्त होगई है ॥१०६॥

आठवां अध्याय

इत्येष कथितः सम्यक् तृतीयः प्रतिसञ्चरः ।
आत्यन्तिको विमुक्तिर्या लयो ब्रह्मणि शाश्वते ॥१

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव भवतो गदितं मया ॥२

पुराणं वैष्णवं चैतत्सर्वकिल्विषनाशनम् ।
विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपपादकम् ॥३

तुभ्यं यथावन्मैत्रेय प्रोक्तं शुश्रूषवेऽव्ययम् ।
यदन्यदपि वक्तव्यं तत्पृच्छाद्य वदामि ते ॥४

भगवन्कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽसि मया मुने ।
श्रुतं चैतन्मया भक्त्या नान्यत्प्रष्टव्यमस्ति मे ॥५

विच्छिन्नाः सर्वसन्देहा नैर्मल्यं मनसः कृतम् ।
त्वत्प्रसादान्मया ज्ञाता उत्पत्तिस्थितिसंक्षयाः ॥६

ज्ञातश्चतुर्विधो राशिः शक्तिश्च त्रिविधा गुरो ।
विज्ञाता सा च कात्स्न्र्येन त्रिविधा भावभावना ॥७

श्री पराशरजी ने कहा—हे मैत्रेयजी ! इस प्रकार तीसरे आत्यन्तिक प्रलय का वर्णन भी मैंने तुमसे कर दिया, जिसे तुम ब्रह्म में लीन होने रूपी ब्रह्म ही समझो ॥ १ ॥ मैंने सृष्टि, प्रलय, वंश मन्वन्तर और वंशों के चरित्र भी कह दिये ॥ २ ॥ तुम्हें श्रवणेच्छुक देखकर इस सर्वश्रेष्ठ, सर्व पापहारी तथा पुरुषार्थ के प्रतिपादक विष्णु पुराण को मैंने सुना दिया । अब यदि कुछ और पूछना चाहो तो उसे भी पूछ लो ॥३ ४॥ श्री मैत्रेयजी ने कहा—हे भगवान् ! आपने मेरा पूछा हुआ सभी

कुछ कह दिया और मैंने भी उसे भक्तिपूर्वक सुना है, अब मुझे कुछ नहीं पूँछना है ॥५॥ आपकी कृपा से मेरी शङ्काओं का समाधान होगया तथा चित्त निर्मल हुआ और सृष्टि, स्थिति और प्रलय का ज्ञान भी मुझे होगया ॥३॥ हे गुरो ! चार प्रकार की राशि, तीन प्रकार की शक्ति और तीन प्रकार की ही भाव-भावनाओं का मुझे ज्ञान होगया ॥७॥

त्वत्प्रसादान्मया ज्ञातं ज्ञेयमन्यैरलं द्विज ।
यदेतदखिलं विष्णोर्जगन्न व्यतिरिच्यते ॥८
कृतार्थोऽहमसन्देहस्त्वत्प्रसादान्महामुने ।
वर्णधर्मादयो धर्मा विदिता यदशेषतः ॥९
प्रवृत्तं च निवृत्तं च ज्ञातं कर्म मयाखिलम् ।
प्रसीद विप्रप्रवर नान्यत्प्रष्टव्यमस्ति मे ॥१०
यदस्य कथनायासैर्योजितोऽसि मया गुरो ।
तत्क्षम्यतां विशेषोऽस्ति न सतां पुत्रशिष्ययोः ॥११
एतत्त यन्मयाख्यातं पुराण वेदसम्मतम् ।
श्रुतेऽस्मिन्सर्वदोषोत्थः पापराशिः प्रणश्यति ॥१२
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वतराणि च ।
वंशानुचरितं कृत्स्नं मयात्र तव कीर्तितम् ॥१३
अत्र देवास्तथा दैत्या गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
यक्षविद्याधरास्सिद्धाः कथ्यन्ते ऽप्सरसस्तथा ॥१४

हे द्विज ! आपकी कृपा से मैं इस जानने योग्य बात को भले प्रकार जान गया कि यह संसार विष्णु से भिन्न नहीं है, इसलिये अन्य बातों के जानने से क्या प्रयोजन है ? ॥८॥ आपकी कृपा से मैं कृतार्थ हो गया हूँ क्योंकि मैं वर्ण--धर्मादि सब धर्मों तथा प्रवृत्ति--निवृत्ति रूप सब कर्मों को जान गया । हे ब्रह्मन् ! आप प्रसन्न हों, अब कुछ भी पूछना शेष नहीं है ॥९-१०॥ हे गुरो ! मैंने इस सम्पूर्ण पुराण के कहने का जो कष्ट आपको दिया है, उसके लिये मुझे क्षमा कीजिये । सन्तजन तो पुत्र और शिष्य में कोई भेद नहीं मानते ॥११॥ श्री पराशरजी ने कहा—मैंने तुम्हें जो

यह वेद सम्मत पुराण सुनाया है, उसके सुनने से ही सब दोषों से उत्पन्न हुए पाप नष्ट हो जाते हैं ।।१२।। इसमें सृष्टिरचना, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और वंशों के चरित्र—इन सबका वर्णन तुमसे किया है ।।१३।। इसमें देवता, दैत्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध और अप्सराओं का वर्णन हुआ है ।।१४।।

मुनयो भावितात्मान कथ्यन्तेः तपसान्विताः ।
चातुर्वर्ण्यं तथा पुंसां विशिष्टचरितानि च ।।१५
पुण्याः प्रदेशा मेदिन्याः पुण्या नद्योऽथ सागराः ।
पर्वताश्च महापुण्याश्चरितानि च धीमताम् ।।१६
वर्णधर्मादयो धर्मा वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः ।
येषां संस्मरणात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१७
उत्पत्तिस्थितिनाशानां हेतुर्यो जगतोऽव्ययः ।
स सर्वभूतस्सर्वात्मा कथ्यते भगवान्हरिः ।।१८
अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहस्त्रस्तैर्वृकैरिव ।।१९
यन्नामकीर्तनं भक्त्या विलायनमनुत्तमम् ।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः ।।२०
कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्तिप्रदं नृणाम् ।
प्रयाति निलयं सद्यः सकृद्यत्र च संस्मृतेः ।।२१

तपोनिष्ठ मुनिजन, चार वर्णों का विभाग, महापुरुषों के चरित्र, पृथिवी के पवित्र क्षेत्र, नदी, समुद्र, पर्वत, बुद्धिमानों के चरित्र, वर्ण धर्मादि धर्म और वेद शास्त्रों का भी इसमें भले प्रकार से वर्णन हुआ है जिनके स्मरण करने से ही मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ।।१५-१७।। विश्व की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के एकमात्र कारण रूप भगवान् विष्णु का भी इसमें कीर्तन हुआ है । १८।। यदि विवश होकर भी उन भगवान् का कीर्तन करे तो सिंह से भयतीत हुए भेड़िये के समान मुक्त हो जाता है ।।१९।। हे मैत्रेयजी ! भक्तिभाव पूर्वक जिनका हुआ नाम-कीर्तन

सभी पापों का सर्वश्रेष्ठ विलयन है ॥२०॥ जिनका एकवार भी स्मरण करने से नरक की यातनाएँ प्राप्त कराने वाला कलि-कल्मष उसी समय क्षीण हो जाता है ॥२१॥

हिरण्यगर्भदेवेन्द्ररुद्रादित्याश्विवायुभिः ।
पावकैर्वसुभिः साध्यैर्विश्वेदेवादिभिः सुरैः ॥२२
यक्षरक्षोरगैः सिद्धै र्दैत्यगन्धर्वदानवैः ।
अप्सरोभिस्तथा तारानक्षत्रैः सकलैर्ग्रहैः ॥२३
सप्तर्षिभिस्तथा धिष्ण्यैर्धिष्ण्याधिपतिभिस्तथा ।
ब्राह्मणाद्यै र्मनुष्यैश्च तथैव पशुभिर्मृगैः ॥२४
सरीसृपैर्विहङ्गैश्च पलाशाद्यै र्महीरुहैः ।
वनाग्निसागरसरित्पातालैः सधरादिभिः ॥२५
शब्दादिभिश्च सहितं ब्रह्माण्डमखिल द्विज ।
मेरोरिवाणुर्यस्यैतद्यन्मयं च द्विजोत्तम ॥२६
स सर्वः सर्ववित्सर्वस्त्ररूपो रूपवर्जितः ।
भगवान्कीर्तितो विष्णुरत्र पापप्रणाशनः ॥२७
यदश्वमेधावभृथे स्नातः प्राप्नोति वै फलम् ।
मान्नवस्तदवाप्नोति श्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ॥२८
प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रो तथाणवे ।
कृतोपवासः प्राप्नोति तदस्य श्रवणान्नरः ॥२९

हे द्विज ! हिर यगर्भ, देवेन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विद्वय, वायु, अग्नि, बसु, साध्य, विश्वेदेवा, यक्ष, राक्षस, उरग, सिद्ध, दैत्य, गन्धर्व, दानव, अप्सरा, तारे, नक्षत्र, ग्रह, सप्तर्षि, लोकपाय, मनुष्य, पशु, मृग, सरीसृप, विहंग, वृक्ष, बन, अग्नि, समुद्र, नदी, पाताल और पृथिवी आदि और शब्दादि विषयों के सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिन प्रभु के सामने अत्यन्त तुच्छ है और जो उसके उपादान-कारण भी हैं, उस सर्वरूप, सर्वज्ञ, रूप-हीन तथा पापों के नाश करने वाले भगवान् विष्णु का चरित्र इसमें कहा गया है ॥२२-२७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अश्वमेघ यज्ञ में अवभृथ स्नान का

जो फल है, वही इस पुराण के सुनने से प्राप्त हो जाता है ॥२८॥ प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र अथवा समुद्र के किनारे रहकर उपवास करने से लफ प्राप्ति होती है, वह इस पुराण के श्रवण से ही प्राप्त हो जाता है ॥२९॥

यदग्निहोत्रे सुहुते वर्षेणाप्नोति मानवः ।
महापुण्यफलं विप्र तदस्य श्रवणात्सकृत् ॥३०
यज्ज्येष्ठ शुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले ।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोनिः पुरुषः फलम् ॥३१
तदाप्नोत्यखिलं सम्यगध्यायं यः शृणोति वै ।
पुराणस्यास्य विप्रर्षे केशवार्पितमानसः ॥३२
यमुनासलिलस्नातः पुरुषो मुनिसत्तम ।
ज्येष्ठामूले सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः ॥३३
समभ्यर्च्याच्युतं सम्यङ् मथुरायां समाहितः ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्राप्नोत्यविकलं फलम् ॥३४
आलोक्यर्द्धिमथान्येषामुन्नीतानां स्ववंशजैः ।
एतत्किलोचुरन्येषां पितरः सपितामहाः ॥३५

नियमानुसार एक वर्ष तक अग्निहोत्र करने से जिस महापुण्य फल की प्राप्ति होती है, वह फल इसके एक बार श्रवण से ही मिल जाता है ॥३०॥ ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को मथुरा में यमुना स्नान करके श्रीकृष्ण का दर्शन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वही फल भगवान् श्रीकृष्ण में तन्मय चित्त होकर इस पुराण के एक अध्याय के श्रवण से ही प्राप्त हो जाता है ॥६१-६२॥ हे मुनिश्वर ! ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन मथुरापुरी में उपवास पूर्वक यमुना स्नान करके श्री अच्युत भगवान् में चित्त लगा कर उनका पूजन करने से अश्वमेध यज्ञ जैसा ही फल प्राप्त होता है ॥३३-३४॥ अपने वचनों द्वारा श्रेष्ठता को प्राप्त हुए पितरों ने अन्य पितरों को समृद्धि-लाभ करते हुए देखकर इस प्रकार कहा था ॥३५॥

कच्चिदस्मत्कुले जातः कालिन्दीसलिलाप्लुतः ।

अर्चयिष्यति गोविन्दं मथुरायामुपोषितः ॥३६
ज्येष्ठामूले सिते पक्षे येनैवं वयमप्युत ।
परामृद्धिमवाप्स्यामस्तारिताः स्वकुलोद्भवैः ॥३७
ज्येष्ठामूले सिते पक्षे समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
धन्यानां कुलजः पिण्डान्यमुनायां प्रदास्यति ॥३८
तस्मिन्काले समभ्यर्च्य तत्र कृष्णं समाहितः ।
दत्त्वा पिण्ड पितृभ्यश्च यमुनासंलिलाप्लुतः ॥३९
यदाप्नोति नरः पुण्यं तारयन्स्वपितामहान् ।
श्रुत्वाध्यायं तदाप्नोति पुराणस्यास्य भक्तितः ॥४०
एतत्संसारभीरूणां परित्राणमनुत्तमम् ।
श्राव्याणां परमं श्राव्यं पवित्राणामनुत्तमम् ॥४१
दुःस्वप्ननाशनं नृणां सर्वदुष्टनिबर्हणम् ।
मङ्गलं मङ्गलानां च पुत्रसम्पत्प्रदायकम् ॥४२

हमारे कुल में उत्पन्न कोई पुरुष क्या ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन उपवास करके परम पवित्र मथुरा नगरी में यमुना-स्नान करके गोविन्द का पूजन करेगा ? जिससे हम भी अपने वंशजों द्वारा उद्धार किये जाकर परम ऐश्वर्य को प्राप्त करेंगे । क्योंकि किन्हीं भाग्यवान् व्यक्तियों के वंशज ही जेष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में यमुना में पितृों को पिण्डदान का पुण्य करते हैं ॥३६-३८॥ जल में इस प्रकार स्नान करके पितरों को पिण्डदान करके उनको तारने वाला पुरुष जिस पुण्य का भागी होता है, वही पुण्य इस विष्णु पुराण का एक अध्याय भक्तिपूर्वक सुनने से प्राप्त होता है ॥३९-४०॥ यह पुराण संसार सागर से भयभीत जनों का बहुत बड़ा रक्षक, श्रवण योग्य तथा पवित्रों में भी बहुत पवित्र है ॥४१॥ बुरे स्वभावों का नाशक सम्पूर्ण दोषों को दूर करने वाला, मांगलिक वस्तुओं में परम मांगलिक और संतान तथा सम्पत्ति का देने वाला है ॥४२॥

इदमार्षं पुरा प्राह ऋभवे कमलोद्भवः ।
ऋभुः प्रियव्रतायाह स च भागुरयेऽब्रवीत् ॥४३

भागुरिः स्तम्भमित्राय दधीचाय स चोक्तवान् ।
सारस्वताय तेनोक्तं भृगुस्सारस्वनेन च ॥४४
भृगुणा पुरुकुत्साय नर्मदायै स चोक्तवान् ।
नर्मदा धृनराष्ट्राय नागायापूरणाय च ॥४५
ताभ्यां च नागराजाय प्रोक्तं वासुकये द्विज ।
वासुकिः प्राह वत्साय वत्मश्चाश्वतराय वै ॥४६
कम्बलाय च तेनोक्तमेलापुत्राय तेन वै ।
पातालं समनुप्राप्तस्ततो वेदशिरा मुनिः ॥४७
प्राप्तवानेतदखिलं स च प्रमतये ददौ ।
दत्तं प्रमतिना चैतञ्जातुकर्णाय धींमते ॥४८

इस आर्ष-पुराण के प्रथम वक्ता ब्रह्माजी थे जिनसे ऋभु ने इसे श्रवण किया। ऋभु से प्रियव्रत और प्रियव्रत से भागुरि ने सुना। भागुरि ने स्तम्भमित्र को, स्तम्भमित्र ने दधीचि को, दधीचि ने सारस्वत को, सारस्वत ने भृगु को सुनाया ॥४३-४४॥ इसके पश्चात् इसे भृगु से पुरुकुत्स ने, पुरुत्कुस से नर्मदा ने, नर्मदा से धृतराष्ट्र और पूरण नाग ने सुना ॥४५॥ इन दोनों ने यह पुराण नागराज वासुकि को सुनाया। वासुकि ने वत्स को, वत्स ने अश्वतर को, अश्वतर ने कम्बल को, कम्वल ने इला पुत्र को सुनाया। उसी अवसर पर वेदशिरा मुनि पाताल लोक में आये हुए थे, उन्होंने इस पुराण को नागों से प्राप्त करके प्रमति को सुनाया और उससे परम विद्वान जातुकर्ण ने इसे प्राप्त किया ॥४६-४८॥

जातुकर्णेन चैवोक्तनन्येषां पुण्यकर्मणाम् ।
पुलस्त्यवरदानेन ममाप्येतत्स्मृतिं गतम् ॥४९
मयापि तुभ्यं मैत्रेय यथावत्कथितं त्विदम् ।
त्वमप्येतच्छिनाकाय कलेरन्ते वदिष्यसि ॥५०
इत्येतत्परमं गुह्यं कलिकल्मषनाशनम् ।
यः शृणोति नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५१

समस्ततीर्थस्नानानि समस्तामरसंस्तुतिः ।
कृता तेन भवेदेतद्यः श्रणोति दिने दिने ॥५२
कपिलादानजनितं पुण्यमत्यन्तदुर्लभम् ।
श्रुत्वैतस्थ दशाध्यायानवाप्नोति न संशयः ॥५३
यस्त्वेतत्सकलं श्रृणोति पुरुषः कृत्वा मनस्यच्युतं ।
सर्वं सर्वमयं समस्तजगता माधारमात्माश्रयम् ।
ज्ञानज्ञेयमनादिमन्तरहितं सर्वामराणां हितं ।
स प्राप्नोति न संशयोऽस्त्यविकलं यद्वाजिमेधे फलम् ॥५४
यत्रादौ भगवांश्चराचरगुरुर्मध्ये तथान्ते च सः ।
ब्रह्मज्ञानमयोऽच्युतोऽखिलजगन्मध्यान्तसर्गप्रभुः ।
तत्सर्वं पुरुषः पवित्रममलं श्रृण्वन्पठन्वाचयन् ।
प्राप्नोत्यस्ति न तत्फलं त्रिभुवनेष्वेकान्तसिद्धिर्हरिः ॥५५

तत्पश्चात् जातुकर्ण ने इसे महात्माओं को सुनाया और उनमें से पुलस्त्य जी के वरदान से मुझे भी यह ज्ञात हो गया। वही मैंने तुमको यथावत् सुना दिया और तुम कलियुग के अन्त में इसे शिनीक को सुनाओगे ॥४९-५०॥ जो व्यक्ति इस परम गुह्य और कलियुग के दोषों को नाश करने वाले पुराण को भक्ति के साथ श्रवण करता है वह सब पापों से छुटकारा पा जाता है। और जो कोई इसको प्रति दिन सुनता रहता है तो मानो तमाम तीर्थों के स्नान तथा सभी देवों की स्तुति का पुण्य-फल प्राप्त कर लिया ॥५१-५२॥ जो कोई इस पुराण के दस अध्यायों को श्रवण कर लेता है उसे कपिला गौ के दान का अत्यन्त दुर्लभ पुण्य प्राप्त होता है। जो मनुष्य जगदाधार, आत्मा के आश्रय सर्व स्वरूप, सर्वमय, ज्ञान और ज्ञेय रूप, आदि अन्त रहित और सब देवताओं के हितैषी विष्णु भगवान् का ध्यान करते हुए सम्पूर्ण पुराण का श्रवण करता है उसे निस्सन्देह अश्वमेध-यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥५३-५४॥ इस पुराण के आदि, अन्त, मध्य में सर्वत्र विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा लय में समर्थ ब्रह्मज्ञानमय चराचर गुरु भगवान् अच्युत का

कीर्तन किया गया है। इसलिए इस सर्वश्रेष्ठ और निर्मल पुराण को सुनने, पढ़ने और धारण करने से जो फल प्राप्त होता है वह तीनों लोक में अन्य किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि मुक्तिदाता भगवान् विष्णु की ही इसके द्वारा प्राप्ति होती है ॥५५॥

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने ।
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः ।
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते ॥५६
यज्ञैर्यज्ञविदो यजन्ति सततं यज्ञेश्वरं कर्मिणो ।
यं वै ब्रह्ममयं परावरमयं ध्यायन्ति च ज्ञानिनः ।
यं सञ्चिन्त्य न जायते न म्रियते नो वर्द्धते हीयते ।
नैवासन्न च सद्भवत्यति ततः किं वा हरेः श्रूयताम् ॥५७
कव्यं यः पितृरूपधृग्विधिहुतं हव्यं च भुङ्क्ते विभु
र्देवत्वे भगवाननादिनिधनः स्वाहास्वधासञ्ज्ञिते ।
यस्मिन्ब्रह्मणि सर्वशक्तिनिलये मानानि नो मानिनां
निष्ठाये प्रभवन्ति हन्ति कलुषं श्रोत्रं स यातो हरिः ॥५८

जिन विष्णु भगवान् में चित्त लगाने से नर्क का भय दूर हो जाता है, जिनके स्मरण में स्वर्ग भी निस्सार है, ब्रह्म लोक भी तुच्छ प्रतीत होता है, और जो शुद्ध चित्त वाले सज्जनों के हृदय में स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते हैं, उन्हीं भगवान् अच्युत का कीर्तन करने से यदि सब पाप नष्ट हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है ॥५६॥ कर्मनिष्ठ यज्ञवेत्ता जिन भगवान् का यज्ञेश्वर रूप से भजन करते हैं, ज्ञानी जन जिनका ब्रह्म रूप से ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण करने से न पुरुष जन्म लेता है, न मरता है, न क्षीण होता है, एवं जो न सत् हैं न असत्, उन श्रीहरि के अतिरिक्त सुनने का विषय और क्या हो सकता है ? ॥५७॥ जो अनादिनिधन प्रभु पितृरूप से स्वधासंज्ञक कव्य को और देवरूप से अग्नि में हवन किये गये हव्य को ग्रहण करते हैं तथा जिन समस्त शक्तियों के आश्रय-

भूत भगवान् के विषय में प्रमाण कुशल विद्वान् भी प्रमाण नहीं दे सकते वे श्रीहरि श्रवण पथ में जाते ही समस्त पापों को नष्ट कर देते हैं।।५८।।

नान्तोऽस्ति यस्य न च यस्य समुद्भवोऽस्ति
वृद्धिर्न यस्य परिणामविवर्जितस्य।
नापाक्षयं च समुपैत्यविकारि वस्तु
यस्तं नतोऽस्मि पुरुषोत्तममीशमीड्यम् ।।५९
तस्यैव योऽनु गुणभुग्बहुधैक एव
शुद्धोऽप्यशुद्ध इव भाति हि मूर्तिभेदैः।
ज्ञानान्वितः सकलसत्त्वविभूतिकर्त्ता
तस्मै नमोऽस्तु पुरुषाय सदाव्ययाय ।।६०
ज्ञानप्रवृत्तिनियमैक्यमयाय पुंसो
भोगप्रदानपटवे त्रिगुणात्मकाय।
अव्याकृताय भवभावनकारणाय
वन्दे स्वरूपभवनाय सदाजराय ।।६१
व्योमानिलाग्निजलभूरचनामयाय
शब्दादिभोग्यविषयोपवयक्षमाय।
पुंसः समस्तकरणैरुपकारकाय
व्यक्ताय सूक्ष्मबृहदात्मवते नतोऽस्मि ।।६२
इति विविधमजस्य यस्य रूपं।
प्रकृतिपरात्ममयं सनातनस्य।
प्र दशतु भगवानशेषपुंसां।
हरिरपजन्मजरादिकां स सिद्धिम् ।।६३

जिन परिणाम रहित प्रभु का न आदि है न अन्त है, न वृद्धि और न क्षय होता है, जो नित्य निर्विकार हैं, उन स्तुतियोग भगवान् पुरुषोत्तम को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ५९ ।। जो इसी भाँति समान गुणों को आधार है, एक होने पर भी अनेक रूप में प्रकट होता है और शुद्ध होने पर भी विभिन्न रूपों के कारण अशुद्ध-सा जान पड़ता है, जो ज्ञान

स्वरूप और पञ्चभूतों तथा समस्त वैभवों का कर्त्ता है उस अव्यय परम-पुरुष को नमस्कार है ॥ ६० ॥ जो ज्ञाव-प्रवृत्ति और नियमन का सम्मिलित रूप है, जो मनुष्यों को समस्त भोग प्रदान करता है, तीनों गुणों से युक्त और अव्याकृत है, जो ससार की उत्पत्ति का कारण है, उस स्वतः सिद्ध और अजर भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥ ६१ ॥ जो भगवान् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी रूप हैं, शब्दादि भोग्य विषयों को प्राप्त कराने वाला है और मनुष्यों का उनकी इन्द्रियों द्वारा उपकार करने वाला है उस सूक्ष्म और विराट स्वरूप को नमस्कार है ॥६२॥ इस प्रकार जिन नित्य तथा सनातन परमात्मा के प्रकृति-पुरुष भेद से अनेक रूप हैं वे भगवान् हरि मनुष्य मात्र को जन्म और जरा से विहीन मुक्ति प्रदान करें ॥३६॥

॥ श्रीविष्णु महापुराण समाप्त ॥

विष्णु पुराण का निष्पक्ष नैतिक, सांस्कृतिक आध्यात्मिक अध्ययन

विष्णु पुराण विविध विषयों का भण्डार है, ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी उपयोगी तथ्यों का इसमें चयन किया गया है। पुराणकार ने परिस्थि-त्तियों का केवल एक पहलू ही प्रस्तुत नहीं किया है,अच्छे और बुरे दोनों पहलुओं पर विचार किया है। विष्णु पुराण कालीन भारत की सामा-जिक दुर्दशा का भी विस्तृत वर्णन किया गया है और उसका सुन्दर, व्यावहारिक समाधान किया गया है, पतन के लक्षणों के चित्रण के साथ उत्थान के सूत्र भी दिए हैं। भारत के गौरवमय इतिहास के कलंकों का भी खुले रूप में वर्णन है और भारत के समस्त को ऊँचा उठाने वाली विभूतियों का भी उल्लेख है। मानव मन की कमजोरियों का दिग्दर्शन कराते हुए उनका हल भी ढूँढ़ने का प्रयत्न किया गया है। दोषों, दुर्गुणों और कुरीतियों के दुष्परिणामों की ओर विशेष प्रकार से ध्यान दिलाया गया है और सद्‌गुणों के विकास पर बल दिया गया है। मानव जीवन के उत्थान के सिद्धान्तों का वर्णन है ही। उन्हें क्रिया रूप देने वाली साधनाओं को भी दिया गया है। कथाओं के माध्यम से जीवन जीने की कला सिखाई गई है। अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के विरोधी स्वभाव के प्रभावशाली व्यक्तित्वों को उभारा गया है, उनके कर्तृव्यों के परिणामों से ही पाठक निर्णय कर सकते हैं कि उसे किस मार्ग पर चलना उपयुक्त रहेगा। पुराणकार ने साम्प्रदायिक एकता भी बनाने का प्रयत्न किया है। जिस तरह के कई पुराणों में पुराण से सम्बन्धित देवी देवता को तो सबसे बड़ा श्रेष्ठ बताया गया है और दूसरों की दीनता-पूर्वक उनकी उपासना करते हुए दिखाया गया है, ऐसा विष्णु पुराण में नहीं है। इसमें अन्य देवी देवताओं के साथ उचित न्याय किया गया है। सार यह है कि मानव जीवन के सामाजिक, नैतिक और आध्या-

त्मिक उत्थान के लिए जिन तथ्यों और विचारों की आवश्यकता रहती है। वह सभी इसमें प्रस्तुत हैं।

हम अब विष्णु पुराण का निष्पक्ष अध्ययन करेंगे।

सामाजिक दुर्दशा –

पुराणों की परम्परागत शैली में विष्णु पुराण में भी पाँचों लक्षण सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित्र उपलब्ध होते हैं। विष्णु पुराण का निर्माण लोकहित की दृष्टि से किया गया है। राष्ट्र का हित इसी में होता है कि जनता के समक्ष देश में फैल रहे सामाजिक रोगों, उत्पातों और कुरीतियों को रखा जाए और स्पष्ट रूप से बताया जाए कि किस प्रकार राष्ट्र पतन की ओर जा रहा है। लेखक लोकनायकों का आह्वान करता है कि वह उठें और अपने तप त्याग द्वारा देश का उत्थान करें। विष्णु पुराण के लेखक ने ऐतिहासिक वर्णनों के साथ (कहीं २ प्रतीक रूप में और कहीं २ अतिशयोक्ति शैली में) उस समय की सामाजिक दुर्दशा का स्पष्ट उल्लेख किया है। इनसे विदित होगा कि पतन की राहें केवल कलयुग में ही नहीं बनी हैं हर युग में समाज का एक वर्ग दूषित रहा है जिसे सन्मार्ग पर लाने की आवश्यकता रही है। विष्णुकालीन भारत का चित्र पुराणकार ने बड़ा ही सरलता से खींचा है। विष्णु पुराण से ही कुछ उदाहरण देकर हम इसे स्पष्ट करेंगे।

राजाओं का अन्याय और अत्याचार –

राजा वेन के राज्यकाल का वर्णन करते हुए (१।१२।१३।२४) में कहा गया है जब वह वेन राजपद पर अभिषिक्त हुआ था तभी उसने विश्व भर में यह घोषित कर दिया था कि मैं भगवान् हूँ, यज्ञ पुरुष और यज्ञ का भोक्ता एवं स्वामी मैं ही हूँ। इसलिये अब कभी कोई भी मनुष्य दान और यज्ञादि न करे। हे मैत्रेयजी! उस समय वे महर्षिगण उस राजा वेन के समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने उसकी प्रशंसा करके स्वान्त्वनामयी मीठी बाणी से कहा—"हम तुम्हारे राज्य, प्रजा तथा शरीर के हितार्थ जो कहते हैं, उसे श्रवण करो। तुम्हारा कल्याण हो, हम यज्ञेश्वर देवदेव भगवान् विष्णु का पूजन करेंगे, उसके फल के छठे

अंश का भाग तुम्हें भी प्राप्त होगा। यज्ञों के द्वारा भगवान् यज्ञ पुरुष सन्तुष्ट होकर हमारे साथ ही तुम्हारी भी अभिलाषाएँ पूरी करेंगे। जिन राजाओं के राज्यकाल में यज्ञेश्वर भगवान् का यज्ञानुष्ठानों द्वारा पूजन होता है, उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं।" यह सुनकर बेन ने कहा—"मुझसे अधिक ऐसा कौन है जो मेरे द्वारा भी पूजा के योग्य हो। तुम जिसे यज्ञेश्वर एवं भगवान् कहते हो, वह कौन है? ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, धाता, पूषा, पृथिवी और चन्द्रमा अथवा अन्य जो देवता शाप या वर देने में समर्थ हैं, उन सभी का निवास राजा में होने से राजा ही सर्वदेवमय होता है। हे द्विजगण! यह जानकर मेरे आदेश का पालन करो. किसी को भी दान यज्ञ, हवनादि नहीं करना चाहिये। हे ब्राह्मणो! जैसे स्त्री का परम धर्म पतिसेवा है, वैसे ही आपका परमधर्म मेरी आज्ञा का पालन है।"

इससे उस समय में राजाओं की नादिरशाही का परिचय मिलता है। वह राज्य सत्ता का दुरुपयोग किसी भी तरह कर सकते थे। जनता की कोई आवाज न थी। राजा जनता को इतना दबाकर रखते थे कि भले ही उन पर हजारों जुल्म ढाये जाएँ, वह चूँ भी नहीं कर सकती थी, जनता की कोई विचारधारा और बल नहीं था, वह राजा के नेतृत्व को ही सौभाग्य मानती थी। इसीलिए उस समय के राजाओं में यह साहस उत्पन्न हो जाता था कि वह अपने को भगवान् घोषित कर देते थे और जनता से भगवान् की तरह पूजा और सम्मान के आकांक्षी रहते थे। जिस देश की जनता की आत्मा मर चुकी हो, वह अपने नेता का अन्धानुकरण करती है भले ही उनके आत्म विवेक का गला घुट रहा हो। जो जनता राजा के इशारों पर नाचती है, उसका उत्थान कैसे हो सकता है? यह प्राकृतिक नियम है कि कमजोर को हर कोई दबाता है। इसलिए निर्बलता को पाप माना गया है। वेन के समय में जनता निर्बल थी। उनकी निर्बलता ने ही वेन को अन्याय और अत्याचार करने के लिये उत्साहित किया। यदि उस समय के लोग कुछ भी विरोध करते तो उसके अत्याचार इस सीमा तक न बढ़ पाते।

इसी अध्याय में लूट पाट का वर्णन करते हुए कहा गया है "फिर महर्षियों ने सर्वत्र बड़ी धूल उड़ती हुई देखकर अपने पास खड़े लोगों से पूछा कि यह क्या है? तब उन्होंने उत्तर दिया कि इस समय राष्ट्र राजा रहित हो गया है इसलिए दीन दुःखी मनुष्यों ने धनवानों को लूटना आरम्भ कर दिया है। हे मुनिवरो! उन अत्यन्त वेगवान लुटेरों के उत्पात से ही यह धूल उड़ रही है।" (१।१३।३०—३२)

अन्याय स्वयं में एक निर्बलता है, उसकी भी एक सीमा होती है। वह स्थिर नहीं रह सकता। अन्यायी अपने अन्याय अपने अस्तित्व को नष्ट करता है। वेन की भी यही दुर्दशा हुई। जब राष्ट्र में भुखमरी फैलती है और शासन कुछ भी सहायक सिद्ध नहीं होता तो भूखी जनता लाचार होकर जमाखोरों को ढूँढ़ती है। परिस्थितियाँ उन्हें बाध्य करती हैं कि वह क्षुधा तृप्ति के लिये धनवानों का साहस करें, यही उस समय होने लगा था।

राजाओं की तानाशाही का बड़ा ही मार्मिक उल्लेख पुराणकार ने किया है। ऐसा लगता कि राज्य शासन के संचालन के लिये उन्होंने मानवता के सिद्धान्तों को तिलांजलि देदी थी। हिरण्यकशिपु काल में वेन के कुशासन के सभी लक्षण तो देखने को मिलते ही हैं, इसके अतिरिक्त ऐसे हृदय विदारक दृश्य दिखाई देते हैं जो पशुता, क्षुद्रता और विवेक-हीनता की सीमाओं का उल्लंघन कर गये हैं। जनता पर तो इतिहास में सैंकड़ों राजाओं ने अन्याय किया है परन्तु यह केवल एक ही उदाहरण है कि यदि उसकी अपनी सन्तान विवेक सङ्गत बात करती है यो उसको मृत्यु तुल्य दण्ड दिये जाएँ। वह किसी का भी विरोध सहन नहीं करते थे चाहे वह विरोध करने वाला उनका अपना ही पुत्र क्यों न हो। हल्का-सा विरोध उनके क्रोध के सन्तुलन को अव्यवस्थित कर देता है और वह बड़े से बड़ा दण्ड देने के लिये तैयार हो जाते हैं। (१।१६।१-१०) के अनुसार जब प्रह्लाद ने भगवान् विष्णु को अपना इष्ट बताया तो उसे अग्नि में भस्म करने का प्रयत्न किया गया, शस्त्रास्त्रों से आघात पहुँचाये गये, बाँध कर समुद्र के जल में डाला गया, पत्थरों की बौछारें

से उसका शरीरांत करने का प्रयास किया गया पर्वतों से गिराया गया, सर्पों से डसवाया गया, दिग्गजों के दाँतों से रुँधवाया गया, दैत्य गुरुओं ने उस पर कृत्या चलाई शम्बासुर अपनी मायाओं को प्रयुक्त किया, रसोइयों ने विष दिया।"

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जो अपने पुत्र पर इतने अत्याचार कर सकता है, वह जानता को कितने कष्ट पहुँचाता होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसके राज्य से कोई भी व्यक्ति अपने जान व माल को सुरक्षित नहीं समझता होगा क्योंकि क्या पता ऐसे कुशासक के कुविचारों का वेग किधर को प्रवाहित होने लगे और उधर ही उत्पातों के समूह लग जाएँ। जब उनकी मात्र आज्ञा ही नियम है तो क्षणभर में हजारों सर धड़ से अलग किए जा सकते हैं। ऐसे अत्याचारी राजा की प्रजा कभी भी अपने को सुरक्षित नहीं मान सकती है। वह समझते होंगे, कभी भी बिना कारण दण्ड मिल सकता है। ऐसा कुशासन तो विश्व के इतिहास में कभी नहीं देखा गया।

ब्राह्मण राष्ट्र निर्माता होते हैं। वह सामाजिक रोगों की चिकित्सा करके राष्ट्र को स्वस्थ शासन देते हैं, परन्तु उस समय के ब्राह्मण भी अन्याय का पक्षपात करते देखे जाते हैं। ब्राह्मण को प्राचीन काल में निष्पक्ष और साहसी नेता माना जाता था, क्षत्रिय राजा ब्राह्मणों के परामर्श से शासन का संचालन किया करते थे, उन्हें ब्राह्मणों की अवज्ञा करने का साहस नहीं होता था। परन्तु इस समय के ब्राह्मणों का साहस भी विलुप्त होगया था। वह अपने राजा को विवेक की शिक्षा नहीं दे पाए, उसके अत्याचारों के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कह सके। आश्चर्य तो यह है कि देवताओं ने अपना देवत्व छोड़ कर दैत्यपन स्वीकार कर लिया, आसुरी कार्यों का अनुमोदन ही नहीं किया वरन् उसमें भाग लेकर ब्राह्मणत्व पर कलंक का टीका लगा लिया। विष्णु पुराण (१।१७।५१—५२) में वह राजा से कहते हैं कि "यदि प्रह्लाद हमारे कहने से भी विपक्षी के पक्ष का त्याग न करेगा, तो हम इसे नष्ट करने के लिए किसी प्रकार भी व्यर्थ न होने वाली कृत्या का प्रयोग करेंगे।"

कंस के अत्याचारों का भी विस्तृत वर्णन इस पुराण में है। अपने पिता को कैद में डाल कर स्वयं राज्यसत्ता हथियाने का विश्व के इतिहास में औरंगजेब का उदाहरण मिलता है। इसे कुप्रवृत्ति का आरम्भ शायद कंस से ही होता है। भारतीय संस्कृति का अनुयायी होकर जब वह अपने जन्मदाता को जेल की काल कोठरी में सड़ने के लिए बाध्य कर सकता है तो जनता को निर्भय रूप से दबाने में उसे क्यों दर्द होगा? स्वाभाविक है कि पापी का मन आशकाओं से ओत प्रोत रहता है, वह हर क्षण किसी भी दुर्घटनाओं के लिए भयभीत रहता है। भले ही वह ईश्वरीय सत्ता को न स्वीकार करता हो परन्तु उसके कुकृत्य भय के जन्मदाता बनते हैं और बुरे भविष्य के सूचक होते हैं। कंस को निरन्तर यही आशंका रहती थी कि उसे कोई अज्ञात शक्ति अवश्य नष्ट कर देगी। आकाश वाणी के माध्यम से बताया गया है कि देवकी के उदर से जन्मा बालक तो उसका काल सिद्ध होगा। वह अपनी सुरक्षा के लिए निर्मम हत्याओं पर उतारू होगया। अनेकों शिशुओं का अन्त करने पर भी उसकी प्यास न बुझी। माता-पिता और पत्नी के बाद बहिन का सम्बन्ध प्रिय होता है। भाई बहिन की सुरक्षा का संकल्प रक्षा बन्धन पर करता है। उसके बच्चों को अपने बच्चों के तुल्य मानता हूँ। जो व्यक्ति अपनी बहिन के बच्चों को मौत के घाट उतार सकता है, वह अपने प्रजाजनों का क्या मूल्यांकन कर सकता है? ऐसा निर्दयी राजा तो मच्छरों और मक्खियों की तरह लोगों को मरवाता होगा ऐसे शासक के राज्यकाल में प्रजा सदैव अपने सर को तलवार के नीचे ही रखा समझती है।

कंस के अत्याचारों का वर्णन पंचम अंश के कई अध्यायों में है। (५।३।२३-२५) में है कि जब वसुदेव कृष्ण को नन्द के यहाँ छोड़ आये और उनके स्थान पर एक कन्या ले आए तो कंस ने उसे मार दिया। "इधर कन्या को लेकर आये हुए वसुदेवजी ने उसे देवकी के शयनागार में शयन करा दिया ओर फिर पहिले के समान ही स्थिर हो गये और उन्होंने तुरन्त ही देवकी के सन्तान उत्पन्न होने की सूचना दी। यह

सुनते ही कंस ने शीघ्रता पूर्वक वहाँ जाकर उस कन्या को पकड़ लिया और देवकी के रोकने पर भी उसे शिला पर पछाड़ दिया।"

इसके वाद उसने यह राजाज्ञा प्रसारित की पृथिवी पर जो भी यशस्वी पुरुष यज्ञ करने वाले हों, उन्हें देवताओं के अहित के निमित्त मार डालना चाहिए। देवकी के गर्भ से जो कन्या उत्पन्न हुई थी उसने यह भी कहा था कि तेरी मृत्यु कहीं अन्यत्र उत्पन्न हुए बालकों पर विशेष दृष्टि रखते हुए, जो अधिक वलवान बालक प्रतीत हों, उनका वध कर देना चाहिए। (५।४।११-१३)

कंस ने नवजात शिशुओं के वध के लिए ऐसी स्त्रियों की नियुक्ति की थी जो अपने स्तनों पर विष लगा लेती थीं और स्तन पान करते ही वालक मर जाता था। कृष्ण के वध के लिए पूतना ने प्रयत्न किया। (५।५।७) कृष्ण को गोद में उठाया और उन्हें अपना स्तन-पान कराने लगी। ऐसा लगता है कि कंस ने शिशु वध का राष्ट्र व्यापी अभियान चलाया था और उसकी सफलता के लिए हर सम्भव उपाय अपनाये गये थे। शिशु वध की व्यापक योजना का संचालन केवल कंस ने ही किया था। इस स्थिति में माता-पिता अपने बच्चों को घर की कैद में ही वन्द रखते होंगे। घर की चारदीवारी उनके लिए जेल के समान ही वन जाती होगी क्योंकि राज्य कर्मचारियों को पता चलने पर किसी भी क्षण उन पर मुसीबत आ सकती थी। कंस अपने इस हत्या काण्ड के लिए जगत् विख्यात हो गये, क्योंकि शिशुओं की निर्मम हत्याओं का श्रेय केवल उसे ही प्राप्त हुआ है। ऐसे जालिम शासकों का आज नाम निशान भी नहीं है। इस दृष्टि से तो आज का बुरा शासन भी उस समय के शासन से सैंकड़ों गुना अधिक स्वच्छ, स्वस्थ व श्रेष्ठ है।

हत्याएं—

छोटी-छोटी बातों पर हत्याएँ अव भी होती हैं और पहले भी होती थीं। हत्या से मानव मन की क्रूरता का परिचय मिलता है। वह मूल्यवान मानव शरीर जो आत्म विकास के लिए प्राप्त हुआ है, उसे क्षण

भर में नष्ट कर देना महान् पाप है। विष्णु पुराण के चतुर्थ अंश के १३ वें अध्याय में स्यमन्तक मणि पर अनेकों हत्याएँ होने का वर्णन है। सत्राजित के पास मणि थी, शतधन्वा ने सोते हुए उसकी हत्या कर दी। (४।१३।७१) पिता की हत्या से अत्यन्त रोष में भरकर सत्यभामा ने कृष्ण को शतधन्वा का वध करने के लिए प्रेरित किया। कृष्ण ने बलराम से कहा 'अब आप यहाँ से उठकर रथ पर बैठिये और शतधन्वा का वध करने के प्रयत्न में लग जाइये।' (४।१३।८०)।

माताओं द्वारा पुत्रों की हत्या करने का भी अनोखा उदाहरण है। "भरत की तीन पत्नियाँ थीं। उन्होंने नौ पुत्र उत्पन्न किये। भरत ने जब उन्हें अपने अनुरूप न बताया तो उनकी माताओं ने अपने परित्याग किए जाने की आशंका से उन पुत्रों की हत्या कर दी।' (४।१२।१४।१५) पिता जैसे योग्य पुत्र उत्पन्न न हों तो कोई उन्हें मार नहीं देता। माता का कोमल हृदय तो कभी सहन नहीं कर सकता। यह निर्दयता की सीमाओं का उल्लंघन है।

नर माँस का भत्ता –

पशुओं का मांस खाकर लोग अपनी पशुता का परिचय देते तो हैं। दानवता की चरम सीमा तक पहुँचने व ले जो कृत्य उस समय होते थे– वह दुष्कृत्य है नरमांस का भत्ता। यह एक कथात्मक उदाहरण से स्पष्ट है। सौदास ने यज्ञ किया। यज्ञ के समाप्ति पर वसिष्ठजी वहाँ से चले गये तब एक राक्षस वशिष्ठ जी का रूप धारण कर वहाँ आकर कहने लगा—यज्ञ की समाप्ति पर मुझे मनुष्य-माँस युक्त भोजन कराया जाना चाहिए, इसलिए तुम वैसा भोजन बनवाओ, क्षण भर में लौटकर आता हूँ। वह कहता हुआ वह वहाँ से चला गया। फिर वह रसोइये का रूप धारण कर राजाज्ञा से मनुष्य मांसमय भोजन बनाकर राजा के समक्ष लाया। राजा ने उसे स्वर्ण पात्र में रखा और वसिष्ठजी के आने पर उसने उन्हें वह नरमांस निवेदन किया। तब वसिष्ठ जी ने मन में विचार किया, यह राजा कितना कुटिल है जो जानते हुए भी मुझे यह माँस दे रहा है। फिर यह जानने के लिये कि यह किस जीव

का माँस है, उन्होंने समाधि का आश्रय लिया और ध्यानावस्था में उन्होंने जान लिया कि मनुष्य का माँस है। तब तो वसिष्ठजी अत्यन्त क्रोधित और क्षुब्ध मन हुए और उन्होंने तत्काल ही राजा को शाप दे डाला कि तूने इस अत्यन्त अभक्ष्य नर माँस को मेरे जैसे तपस्वी को जान बूझकर आहार हेतु दिया है, इसलिए तेरी लोलुपता नरमाँस में ही होगी। (४।४।४५५३)

नरभक्षी राक्षसों के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। विष्णु पुराण (४।४।५६—६३) के अनुसार "एक दिन उस राक्षसत्व प्राप्त राजा ने एक मुनि को ऋतुकाल में अपनी पत्नी से रमण करते हुए देखा। उस अत्यन्त भीषण राक्षस रूप वाले राजा को देखकर भय से भागते हुए उन दम्पति में से उसने मुनि को पकड़ लिया। उस समय मुनि पत्नी ने उससे अनेक प्रकार अनुनय विनय करते हुए कहा—हे राजन् ! प्रसन्न होइये। आप राक्षस नहीं, इक्ष्वाकुवंश के तिलक रूप महाराज मित्रसह हैं। आप सहयोग सुख के ज्ञाता हैं, मुझ अतृप्ता के पति की हत्या करना आपके लिए उचित नहीं हैं। इस प्रकार उस ब्राह्मणी द्वारा अनेक प्रकार से विलाप किये जाने पर भी जैसे व्याघ्र अपने इच्छित पशु को जंगल में पकड़ कर भक्षण कर लेता है, वैसे ही उस ब्राह्मण को पकड़ कर उसने खा लिया।"

माँस, मदिरा का सेवन और जुए की कुप्रवृत्ति—

राजवंशों में माँस का सेवन होता था। पुराणकार ने लिखा है। "राजा इक्ष्वाकु ने अष्टका श्राद्ध का आरम्भ किया और अपने पुत्र विकुक्षि को श्राद्ध योग्य अन्न लाने की आज्ञा दी। उसने उनकी आज्ञा मानकर धनुषबाण को ग्रहण किया और वन में आकर मृगों को मारने लगा। उस समय अत्यन्त क्षुधार्त्त होने के कारण विकुक्ष ने उनमें से एक खरगोश भक्षण कर लिया और शेष माँस पिता के समक्ष लाकर रखा।" (४।२।१५-१३)

मदिरापान के भी अनेकों उदाहरण पुराण में दिए गये हैं जिनसे विदित है कि उस समय मदिरा का प्रचलन था और उसे राजवंश में बुरा नहीं माना जाता था।

शतधन्वा से प्राप्त एक स्यमन्तक मणि अक्रूरजी के पास थी, उस पर काफी विवाद हुआ, उसे सभी हथियाना चाहते थे, वलरामजी की दृष्टि उस पर थी परन्तु उसे सुरक्षित रखने के लिए पवित्रता का जीवन व्यतीत करना आवश्यक था। इसलिये विवाद का निराकरण करते हुए कृष्ण ने कहा 'यदि आर्य बलरामजी इसे अपने पास रखते हैं तो उन्हें अपने मदिरा पान आदि सभी भोगों को छोड़ना पड़ेगा।" (४।३।१५७)।

"जब मनोहर मुख वाले वलरामजी वन में घूम रहे थे तब मदिरा की गन्ध पाकर उन्होंने उसके पान करने की इच्छा की।' (५।२५।५) "एक दिन बलरामजी रैवतोद्यान में रेवती और अन्य सुन्दरियों के साथ बैठे हुए मद्य पी रहे थे।" (५।३६।११) "फिर कृष्ण वलरामादि सब यादव रथों पर चढ़कर प्रभास क्षेत्र गये। वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण की प्रेरणा से सभी यादवों ने महापान किया।" (५।३८-३९)।

यथा राजा तथा प्रजा। सब राजा मदिरा का सेवन करते थे तो प्रजा भी अवश्य करती होगी।

कृष्ण और बलराम को जुआ खेलने वाला भी बताया गया है। यथा "प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध का विवाह संस्कार पूर्ण हो चुकने पर कलिंग-राज आदि प्रमुख नरेशों ने रुक्मी से कहा —यह बलरामजी द्यूत क्रीड़ा में चतुर न होते हुए भी उसके इच्छुक रहते हैं।" (५।१८-११) 'तब बल-मद से उन्मत्त हुआ रुक्मी उन राजाओं से 'बहुत अच्छा' कहकर सभा में गया और वलरामजी के साथ द्युत क्रीड़ा करने लगा।" (५।१८-१५) (५।०१-३५) में श्रीकृष्णको जुआ खेलते हुए दिखाया गया है।

अवैध सन्तान—

काम के वशीभूत होकर अवैध सन्तानों को उत्पन्न करने की भी घटनाओं का पता चलता है। "जब उर्वशी ने पुरुरवा को देखा तो उसके सुन्दर रूप को देखकर वह आकर्षित हुई। अन्य अप्सराओं ने भी उसके साथ बिहार करने की इच्छा प्रकट की। एक वर्ष की

समाप्ति पर जब राजा पुरुरवा पुनः वहाँ पहुँचे तो उर्वशी ने उन्हें 'आयु' नामक एक शिशु प्रदान किया। फिर उसने उनके साथ एक रात्रि रहकर पाँच पुत्रों की उत्पत्ति के लिए गर्भ धारण किया।" (४।६।६८-७४)।

ब्रह्मा के पौत्र और अत्रि के पुत्र चन्द्रमा ने देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण किया और अनुचित रूप से व्यभिचार किया। इस पर घोर युद्ध हुआ और तारा बृहस्पति को मिल गई। तारा को गर्भ रह गया था। इस पर बृहस्पति ने तारा से कहा कि मेरे क्षेत्र में दूसरे पुत्र को धारण करना अनुचित है। इस प्रकार की धृष्टता ठीक नहीं है। इसे निकालकर फेंक दो। तारा ने उस गर्भ को सींकों की झाड़ों में फेंक दिया। तारा ने स्वीकार किया कि यह गर्भ चन्द्रमा से है।" (४।६।२-२२)।

अवध संतान की उत्पत्ति चरित्रहीनता का लक्षण है।

कामासक्ति और भोगलिप्सा—

कामासक्ति और भोग की कुछ विचित्र घटनाएँ विष्णु पुराण में दी गई हैं। "एक बार सत्यधृति (अहिल्या के परपौत्र) ने अप्सरा श्रेष्ठ उर्वशी को देखा तो उसके प्रति कामासक्त होने से उनका वीर्य स्खलित हो गया और सरकण्डे पर जा गिरा।" (४।१०।६५)।

विश्वामित्र की तरह कण्डु नामक ऋषि का एक अप्सरा के जाल में फँसकर लम्बे समय तक भोगसक्त होने का वर्णन है.विवरण इस प्रकार है. (१।१५।११।२१) "प्राचीन काल में वेदज्ञ ऋषियों में श्रेष्ठ कण्डु नामक एक ऋषि हुए, जिन्होंने गोमती के सुरम्य तट पर घोर तपस्या की। तब इन्द्र ने उनका तप भंग करने के लिए अत्यन्त सुन्दरी अप्सरा नियुक्त की, जिसने उन महर्षि का चित्त चंचल कर दिया। उसके मोह जाल में पड़कर वे महर्षि सौ वर्ष से अधिक काल तक मन्दराचल में भोगासक्त पड़े रहे। इसके पश्चात् एक दिन उस अप्सरा ने उन महर्षि से कहा—हे ब्रह्मन्! अब मैं स्वर्ग लोक को प्रस्थान करूँगी, आप प्रसन्न होकर मुझे जाने की अनुमति दीजिये। उसकी बात सुनकर उसमें आसक्ति-वान ऋषि ने कहा कि अभी कुछ दिन और ठहरो। उनके अनुरोध

पर वह अप्सरा सौ वर्ष तक और उनके साथ रहती हुई विविध भोगों को भोगती रही। तब उसने पुनः उनसे कहा कि अब मुझे स्वर्ग जाने की अनुमति दीजिए। इस पर ऋषि ने उससे कहा कि अभी कुछ दिन और ठहरो। इस प्रकार फिर सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब उसने मुसका कर मुनि से कहा—"भगवन्! अब मैं स्वर्गलोक को जा रही हूँ।" यह सुनकर मुनि ने उसे अपने हृदय से लगा लिया और बोले कि वहाँ तो तुम्हें बहुत समय लगेगा, इसलिए अभी क्षण भर तो रुको। तब यह श्रेष्ठ कटि वाली अप्सरा उन ऋषि के साथ दो सौ वर्ष से कुछ कम समय तक और क्रीड़ा करती रही।

वह अप्सरा जब-जब ऋषि से स्वर्ग लोक को जाने की बात कहती, तब-तब कण्डु ऋषि उससे ठहरने का आग्रह करते।

जब काम तपस्वी ऋषियों को भी पतित करने में समर्थ है तो साधारण व्यक्तियों की क्या बिसात है। अतः इसे काम के प्रति सावधान रहने के लिए चेतावनी समझना चाहिए।

भोगों में लिप्त होने का राजा ययाति का उदाहरण अपने ढङ्ग का एक ही है। वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी उसने एक हजार वर्ष तक भोग करने की इच्छा व्यक्त की। दो पुत्रों ने तो उसे अपना यौवन देने से इन्कार कर दिया परन्तु पुरु ने ययाति की वृद्धावस्था लेकर अपनी युवावस्था दे दी। यौवन प्राप्त करके ययाति ने एक हजार वर्ष तक विश्वाची और देवयानी-अपनी पत्नियों के साथ अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग किया। (४।१०।१।२२)

लम्बे समय तक भोगों में लिप्त होना एक दोष है और पुत्र का यौवन छीनकर वासना की तृप्ति करना दूसरा दोष है। पुत्र की खुशियों को छीनने वाले पिता इस घोर कलियुग में भी नहीं मिलते हैं।

चन्द्रमा ने देवगुरु पत्नी तारा से व्यभिचार किया। गुरु पत्नी शिष्य के लिए पूज्य होती है। उस पर आसक्त होना घोर पतित अवस्था का

परिचायक है। इन्द्र ने छल से अहिल्या को दूषित किया। कामासक्त पुरुष किसी भी अनुचित उपाय को अपनाने में संकोच नहीं करता।

अश्लीलता का प्रदर्शन —

कृष्ण की रासलीला में कुछ अश्लीलता की भी गन्ध आती है। "एक चतुर गोपी श्रीकृष्ण के गीत की प्रशंसा करते हुए अपने बाहुओं को पसार कर उनसे लिपट गई।" "गोपियों के कपोलों को स्पर्श करती हुई श्रीकृष्ण की भुजाएँ उनमें पुलकावलि रूपी धान्य को उत्पन्न करने के निमित्त स्वेद रूपी मेघ हो गईं।" (५।१३।५५)। "वे रास रस की रसिका गोपियाँ अपने पति, पिता, माता, भ्राता आदि के द्वारा रोकी जाने पर भी न रुकतीं और रात्रि में कृष्ण के साथ रास विहार करती थीं।" (५।१३।५६) "शत्रुओं के मारने वाले मधुसूदन भी अपनी कैशोरावस्था के भाव में रात्रिकाल में उन गोपियों के साथ विहार करते थे।" (५।१३।५०)।

बहुपत्नी-प्रथा —

आज तो किसी की एक से अधिक पत्नी नहीं होती है। यदि कोई विरला उदाहरण मिल भी जाए तो उसे असम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और समाज भी उसे हेय दृष्टि से देखता है। परन्तु विष्णु पुराण कालीन भारत ऐसा नहीं था। राजा प्रायः विलासी और कामी होते थे, एक पत्नी से उनकी वासना की भूख नहीं मिटती थी इसलिए वह अनेकों विवाह करते थे। इस पर उस समय कोई रोक नहीं थी और न बहु-विवाह ही बुरी दृष्टि से देखा जाता था। उदाहरण के लिए "ब्रह्माजी ने अपनी दस कन्याएँ धर्म के और तेरह कश्यप के साथ ब्याह दीं। फिर काल परिवर्त्तन में नियुक्त हुई अश्विनी आदि २७ कन्याएँ चन्द्रमा को दीं।" (१।१५—७७।७८) (४।६।६) में चन्द्रमा को ब्रह्मा का पौत्र कहा गया है परन्तु यहाँ उन्हें दामाद बना दिया गया है।

"दक्ष प्रजापति ने साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं, उनमें से दस धर्म को, १३ कश्यप को, २७ चन्द्रमा को और चार अरिष्टनेमि को ब्याह दीं।" (१।१५-१०३।४७)

महर्षि सौभरि ने राजा मान्धाता की पचास कन्याओं से विवाह किया (अंश ४, अध्याय २)

"राजा शशिविन्दु के एक लाख स्त्रियाँ थीं जिनके दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए" (४।१२-४।५)।

सात बहिनों का विवाह वसुदेव जी के साथ हुआ था। (४।१४।१४)

आनन्ददुंदुभि नाम वाले वसुदेवजी की पौरवी, रोहिणी, मदिरा, भद्रा, देवकी नाम की अनेक पत्नियाँ थीं, (४।१५।१८)

इस मृत्युलोक में प्रकट हुए भगवान् वासुदेव की सोलह हजार एक सौ एक रानियाँ हुईं। उन सब रानियों के उदर से भगवान् के एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न हुए। (४।१५-३४।३५)।

भरत की तीन पत्नियाँ थीं। उन्होंने ६ पुत्र उत्पन्न किये" (४। १४।१४)

"कालिय की सैकड़ों नाग पत्नियाँ थीं।" (५।६।१६) (स्मरण रहे कालिय नाग जाति के नेता थे)।

"रुक्मिणी के अतिरिक्त श्री कृष्ण की सात रानियाँ थीं। इनके अतिरिक्त कृष्ण की १६००० रानियाँ और थीं।" (५।२८-३।५)

सम्भव है उस समय स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या न्यून हो और एक से अधिक रखने की स्वतन्त्रता हो।

बहु सन्तान प्रवृत्ति -

आज की देश की आबादी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है आबादी का तीव्र गति से बढ़ना राष्ट्र की सबसे गम्भीर समस्या हो गई है। आबादी से सम्बन्धित खाद्य संकट ने अनेकों क्षेत्रों में अकाल की सी स्थिति उत्पन्न कर दी है। विदेशों से काफी तादाद में खाद्य सामग्री मंगवाने पर भी पूर्ति नहीं हो पा रही है। इसलिए आज अधिक सन्तान अभिशाप सिद्ध हो रही हैं क्योंकि इस मँहगाई के युग में अधिक बच्चों का ठीक तरह से पालन पोषण सम्भव नहीं है।

प्राचीनकाल में स्थिति इसके विपरीत थी। आबादी कम थी। कृषि प्रधान देश होने के कारण खाद्य सामग्री आवश्यकता से अधिक उत्पन्न होती थी, इसलिए लोग अधिक सन्तान उत्पन्न करने के आकांक्षी रहते हैं। यह विष्णु पुराण के कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा—

"दक्ष प्रजापति के प्रसूति से २४ कन्याएँ उत्पन्न हुईं।" (१।७।२२)। सुना जाता है कि फिर दक्ष प्रजापति ने साठ कन्याऐं उत्पन्न कीं।" (१।१५।१०३)। "वैश्वानर की वे दोनों कन्याएँ मरीचि पुत्र कश्यप जी की पत्नियाँ हुईं जिनके साठ पुत्र हुए।" (१।२१।८)। "रेवत का पुत्र रैवत ककुद्मी हुआ जो अत्यन्त धार्मिक और अपने सौ भाइयों में ज्येष्ठ था।" (४।१।६५) "शतविन्दु की पुत्री बिन्दुमती से उस मान्धाता ने विवाह किया जिससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र और पचास कन्याएँ उत्पन्न हुईं।" (४।२।६६)। "कालान्तर में उन राजकुमारियों के द्वारा सौभरि मुनि ने डेढ़ सौ पुत्र उत्पन्न किए।" (४।२।११२)। भगवान् और्व ने सगर पत्नियों को वरदान देते हुए कहा। "तुम में से एक से वश वृद्धि करने वाला एक पुत्र उत्पन्न होगा और दूसरी से साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति होगी।" (४।४।३)।

'रजि के अत्यन्त बली और पराक्रमी पाँच सौ पुत्र उत्पन्न हुए।" (४।९।१)। "राजा शशिविन्दु के एक लाख स्त्रियाँ थीं जिनसे दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे।" (४।१२।४।५)। "भगवान् वसुदेव की सोलह हजार एक सौ एक रानियाँ हुईं जिनके उदर स भगवान् ने एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न किये थे।" (४।१५-३४।३५) "महर्षि च्यवन के वंशज सोमक के सौ पुत्र उत्पन्न हुए।" (४।१९।७२)। धृतराष्ट्र द्वारा गान्धारी से दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए।" श्री कृष्ण ने मुर के सात सहस्र पुत्रों को अपने चक्र की धार रूप ज्वाला में पतंग के समान जला दिया।" (५।१८) "अत्यन्त बली भगवान् ने नरकासुर के अन्तःपुर में जाकर सोलह हजार कन्याओं को देखा।"

(५।१८।३१)। 'इसी प्रकार भगवान् की अन्य पत्नियों से भी अठाईस हजार आठ सौ पुत्रों का जन्म हुआ।" (५।३८।५)।

संख्या के सम्बन्ध में अतिशयोक्तियाँ इसमें अवश्य हैं परन्तु अधिक सन्तान उत्पन्न करने की प्रवृत्ति का इससे पता चलता ही है। अधिक सन्तान भी उस समय गौरव का कारण मानी जाती होंगी।

विवाह सम्बन्धी अनियमितताएँ—

विवाह सम्बन्ध से विकृतियाँ आज में पनपी हों, ऐसी बात नहीं है। पहले भी यह विद्यमान थीं। युग की परिस्थितियों के अनुसार उनका रूप भले ही कुछ बदल गया हो। आज अश्लील फिल्मों को देख कर युवक युवतियाँ वासना की भूख से प्रेरित होकर प्रेम का नाटक करते हैं और अपने जीवन को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। इस उत्तेजना में वह अपने धर्म संस्कृति और मान्यताओं को भी तिलांजलि देते हैं। अनेकों हिन्दू युवक और युवतियों ने इस अन्धे प्रेम के वशीभूत होकर अपनी संस्कृति को छोड़ने का निश्चय किया। प्राचीनकाल में भी इस प्रकार के विवाह होते थे।

राजा पुरुरवा—स्वर्ग की प्रधान अप्सरा उर्वशी पर आसक्त हो गये और उससे विवाह का प्रस्ताव किया। (४।६—३६।४०)। उर्वशी ने अपनी कुछ शर्तें रखीं जो राजा ने स्वीकार करलीं और विवाह हो गया।

उषा और अनिरुद्ध का उदाहरण भी इसका साक्षी है। उषा स्वप्न में एक युवक को देखकर उसे अपना जीवन साथी बनाने को उद्यत हो गई। इसके लिए उसने काफी प्रयत्न किया। देश-विदेश में अपने दूतों को भेजा होगा। जब युवक का पता चल गया तो उसे वहाँ मंगवाया गया और विवाह हो गया। यह गन्धर्व विवाह का अनोखा उदाहरण है।

अनमेल विवाह की भी ऐसी घटना दी गई है जिसकी पुनरावृत्ति आज जैसे घोर कलयुग में भी सम्भव नहीं है। राजा ज्यामघ की रानी शैब्या से कोई सन्तान नहीं थी परन्तु वह उसके भय से दूसरा विवाह नहीं कर सकता था। एक बार युद्ध में उसे एक सुन्दर राजकुमारी मिल

गई। वह उस पर आसक्त हो गया और उससे विवाह की योजना बनाई ताकि उसको कोई सन्तान हो जाये। इसी दृष्टि से राजा ने राजकुमारी को अपने रथ पर बिठा लिया और सोचा कि शैव्या की अनुमति से इससे विवाह कर लूँगा। जब राजधानी पहुँचा तो राजा ने भय से कहा कि यह मेरी पुत्रवधू है। इस पर शैव्या ने कहा कि मेरा तो कोई पुत्र नहीं है फिर आपकी पुत्रवधू कैसे हुई ? राजा ने डरते हुए कहा "मैंने तुम्हारे होने वाले पुत्र के लिए अभी से यह पत्नी निश्चित कर दी है। रानी इस पर सहमत हो गई। कुछ कालोपरान्त शैव्या के गर्भ से एक पुत्र हुआ उसी से उस राजकन्या का विवाह हुआ। (४।१२–२३।३७)।

लड़का अभी इस संसार में आया नहीं और युवती कन्या से उसका विवाह निश्चित हो गया। नियमानुसार तो लड़के की आयु लड़की से ६-७ वर्ष अधिक होनी चाहिए। उस युवती की आयु यदि कम से कम १५ वर्ष मानी जाये तो भी वह पति से १६ वर्ष बड़ी हो गई क्योंकि उसके आने के बाद शैव्या ने गर्भ धारण किया था। वृद्धों के साथ तो छोटी आयु की कन्याओं के विवाह होते देखे गये हैं परन्तु बड़ी आयु की लड़कियों के साथ छोटी आयु के लड़कों के विवाह कम ही सुनने में आते हैं। यह घटना सामाजिक पतन की ही सूचक है।

हिन्दू संस्कृति में सपिण्ड विवाहों का निषेध है परन्तु कृष्ण की आज्ञा से वह सम्पन्न हुए हैं। कृष्ण के पुत्र प्रद्मुम्न ने रुक्मी की कन्या की कामना की और उस कन्या ने भी प्रद्युम्न का स्वयंवर में वरण किया। (५।२८।६) रुक्मी —कृष्णा-पत्नी रुक्मिणी का भाई था। इसका अर्थ हुआ प्रद्मुम्न ने अपने मामा की कन्या से विवाह किया जो आज कहीं भी सम्भव नहीं है। प्रद्मुम्न ने उस रुक्मी सुता से अनिरुद्ध नामक पुत्र उत्पन्न किया। श्रीकृष्ण ने रुक्मी की पौत्री के साथ उसका विवाह किया। श्रीकृष्ण से द्वेष होते हुए भी रुक्मी ने अपने दौहित्र को अपनी पौत्री देने का निश्चय कर लिया। हिन्दू संस्कृति में यह विवाह वैध नहीं हैं परन्तु हुए हैं और वह भी श्रीकृष्ण के संरक्षण में।

ऊँच-नीच भेद-भाव—

ऊँच-नीच के भेद-भाव मानव के अपने ही बनाये हुये हैं। भगवान् ने सबको समान अधिकार देकर पृथ्वी पर अवतरित किया है। ईश्वर द्वारा बनाई हुई जितनी वस्तुएं हैं, सभी प्राणी उनका समान रूप से उपभोग करते हैं। सूर्य की किरणें, वायु, जल आदि किसी जाति या प्राणी विशेष के साथ किसी बात का भी पक्षपात नहीं करते। प्राकृतिक वस्तुओं का समवितरण प्रेरित करता है कि हमें हर प्राणी के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिये। जातियों और वर्णों के भेदभाव आपसी संघर्षों की उत्पत्ति के ही कारण बनते हैं। हिन्दू संस्कृति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चार वर्ण कार्य की सुविधा की दृष्टि से बनाये गये हैं। बड़े-छोटे की दृष्टि से नहीं। शास्त्र भी इसका अनुमोदन करते हैं। महाभारतकार का कहना है कि पहले यहाँ केवल एक ब्राह्मण वर्ण ही था। शान्ति पर्व अ० १८८ के श्लोक १० में भृगु ने कहा है "वर्णों की कोई विशेषता नहीं। इस समस्त संसार को ब्रह्माजी ने ब्राह्मणमय ही बनाया है पश्चात् कर्मों के अनुसार वर्ण बने।" भागवतकार का भी यही कथन है। "सर्व प्रथम एक ही सर्ववांगमय प्रणव, एक ही अद्वैत नारायण, एक ही अग्नि और एक ही वर्ण था।" (६।१४) भगवान् ने गीता (४।१३) में भी कहा है कि मैंने गुण कर्म के विभाग के अनुसार ही चार वर्ण उत्पन्न किये हैं। हर वर्ण को अपने धर्म और कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। यही भगवान् ने आदेश किया।

जिन जातियों ने समानता के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप दिया, वह तीव्र गति से बढ़ती गईं और अब भी बढ़ रही हैं। परन्तु जहाँ ऊँच-नीच के रोग ने जन्म लिया, उसका ह्रास होता चला गया। दुर्भाग्य से हिन्दू जाति का एक यह विशेष अवगुण रहा है। कुछ कुण्ठित बुद्धि के शास्त्रकारों ने भी इसका समर्थन किया और उसके आधार पर यह रोग व्यापक रूप से फैला। शूद्रों को छोटा व घृणित समझकर उनकी घोर उपेक्षा की गई, उनसे अधिकार छीन लिए गये, समाज में

उनको अपने साथ बैठने तक नहीं दिया गया, जहाँ तक हो सका, उन्हें दबाया गया। अन्य सम्प्रदायों ने इस कमजोरी का लाभ उठाया। उन्हें गले लगाया गया और सभी प्रकार की सुविधायें दी गईं। भारत में सर्व प्रथम १७०० मुसलमान आये परन्तु आज उनकी संख्या करोड़ों में है। उपेक्षित जातियों का धर्म परिवर्तन तीव्र गति से हो रहा है। सारे दक्षिण पूर्व एशिया में हिन्दुओं का राज्य था, परन्तु कुण्ठित विचारधारा से धीरे-धीरे सभी राज्य समाप्त हो गये, आज उनके अवशेषों को देख कर ही सन्तुष्ट होना पड़ता है।

वर्णों में भेद होने के कारण खानपान में भी भेद हो गया। अपने को ऊँचा समझने वाला वर्ण दूसरे के हाथ का बनाया भोजन नहीं करता। दूसरे वर्णों का क्या एक वर्ण में ही विभिन्न प्रकार के भेदों ने जन्म लिया और खानपान के नियम बन गये। इन विषयों का उल्लेख होने पर विवाद उठ खड़े होते। विष्णु पुराण (५।३७।४१।४५) के अनुसार यादवों में भी यह मतभेद थे और उनका नाश इसी कारण से हुआ। पुराणकार ने कहा है—"मेरा पदार्थ शुद्ध है, तेरा भोजन ठीक नहीं। इसी प्रकार विवाद करते हुए उन यादवों में सघर्ष होने लगा। तब वह दैवी प्रेरणा से परस्पर शस्त्र प्रहार करने लगे और जब शस्त्र भी समाप्त हो गये, तो उन्होंने निकटवर्ती क्षेत्र से सरकण्ड ग्रहण किये। सरकन्डे वज्र जैसे लग रहे थे, उन्हीं के द्वारा वे परस्पर में आघात-प्रत्याघात करने लगे।"

यह कुप्रवृत्ति आज भी विद्यमान है, हिन्दू संस्कृति के उत्थान के लिए इसका जड़ से उन्मूलन होना आवश्यक है।

बड़ों का अनादर—

यदुवंश के नाश का कारण बड़ों के प्रति अशिष्टता का प्रदर्शन बताया गया है। वर्णन इस प्रकार है—

"एक बार यादवों के बालक ने विराडारक क्षेत्र में विश्वामित्र, कण्व और नारदादि महर्षियों को देखा। तब उन्होंने जाम्बवती के पुत्र साम्ब को स्त्री वेश में सजाकर उन मुनियों से प्रणाम करके पूछा कि— 'इसे पुत्र की इच्छा है तो बताइये इसके क्या उत्पन्न होगा ?

यादव बालकों की हँसी को ताड़ कर उन महर्षियों ने क्रोधपूर्वक कहा—इसके मूसल उत्पन्न होगा जो सब ओर से यादवों के नाश का कारण हो जायगा। मुनियों के ऐसा कहने पर उन बालकों ने राजा उग्रसेन को जाकर सब वृतान्त यथावत् सुनाया। उग्रसेन ने उस मूसल का चूर्ण करा कर समुद्र में फिकवा दिया,जिससे बहुत से सरकडे उत्पन्न हो गये। उस मूसल का भाले की नोंक जैसा एक भाग चूर्ण करने से रह गया, उसे भी समुद्र में डलवा दिया था, उस भाग को एक मछली ने निगल लिया। मछेरों द्वारा पकड़ी गई उस मछली के चीरने पर निकला मूसल का वह टुकड़ा जरा नामक व्याध ने उठा लिया (५।३७।६।१४)।

यही श्रीकृष्ण के पञ्चभौतिक शरीर को नष्ट करने का कारण बना। जब यादव आपस में लड़ने-झगड़ने लगे तो इन्हीं सरकंडों से एक दूसरे को मारा और यदुवश का नाश हुआ।

इस उदाहरण से यह शिक्षा देने का प्रयत्न किया गया है कि जब समाज इतना पतित हो जाता है कि वह सामान्य शिष्टाचारों का भी पालन नहीं कर सकता, तो इसे उसके भावी नाश का ही लक्षण समझना चाहिए। साम्ब के पेट से ऋषियों के शाप से मूसल निकला था नहीं, इस विवाद में पड़ने से कोई लाभ नहीं। हमें तो यह देखना है कि जिन बच्चों को इतनी भी नैतिक शिक्षा न दी जाती हो कि उन्हें अपने बड़ों के साथ किस नम्रता और सम्मान का व्यवहार करना चाहिए, वह अपना भौतिक विकास कुछ भी करलें आत्मिक प्रगति की ओर वह एक पग भी नहीं बढ़ सकते। पुराणकार की दृष्टि से जब समाज में अशिष्ट विचारधारा का व्यापक प्रसार हो जाता है, तो उस समाज को नष्ट हुआ ही समझना चाहिए।

अपहरण—

बलपूर्वक अपहरण अन्याययुक्त कार्य है, आज भी हम नित्य समाचार पत्रों में इसे पढ़ते रहते हैं। परन्तु प्राचीनकाल में भी ऐसी घटनायें होती थीं। यह राज्य शासन की अव्यवस्था की सूचक हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

"उर्वशी और पुरुरवा के मध्य हुई प्रतिज्ञा को जानने वाले विश्ववसु ने एक रात्रि में गन्धर्वों के साथ पुरुरवा के शयनागार में जाकर उसके एक मेष का अपहरण कर लिया। तव उर्वशी ने कहा कि मुझ अनाथ के पुत्र का अपहरण करके कौन लिए जा रहा ?" (४।६५।५३)। "जब विवाह होने में एक दिन शेष था तब श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया।" ५।२७।६)। "अर्जुन के देखते-देखते ही उन अहीरों ने एक एक स्त्री को घसीट-घसीट कर हरण कर लिया।" (५।३८।२६)। "एक बार जाम्बवती पुत्र साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री को स्वयंवर से बलपूर्वक हर लिया था।" (५।३५।४)

लोभ के दुष्परिणाम—

लोभ के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालने वाली घटनाओं का भी यदाकदा वर्णन है। सत्राजित के पास एक स्यमन्तक मणि थी। अक्रूर कृतवर्मा और शतधन्वा ने षड्यन्त्र रचा और मणि को प्राप्त करने के लिए शतधन्वा ने सोते हुए सत्रजित की हत्या कर दी (४।१३।७१)। सत्रजित सत्यभामा का पिता था। उसने श्रीकृष्ण को प्रेरित किया कि वह उसके पिता की हत्या का बदला लें। शतधन्वा श्रीकृष्ण के घर से भाग निकला। कृष्ण बलदेव ने उसका पीछा किया। कृष्ण ने चक्र से शतधन्वा का मस्तक काट दिया। एक मणि के लिए दो हत्याएँ हुईं। इन हत्याओं के पीछे मणि को प्राप्त करने का लोभ ही था।

संक्षिप्त में यह विष्णु कालीन भारत की सामाजिक दुर्दशा का पुराण के ही कांडों में चित्रांकन किया गया है। इससे उस समय की सामाजिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

आसुरी शक्तियों का विनाश

पिछले अध्याय में विष्णु पुराण में भारत की सामाजिक दुर्दशा का सुन्दर चित्रण किया गया है। इस दुर्दशा को ऐसे ही बने रहने दिया गया है, ऐसी बात भी नहीं है। अनेकों प्रकार के सुधार किये गये, आसुरी शक्तियों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया गया और देवत्त्व पुष्ठ किया गया, निरंकुश राजाओं का विरोध किया गया, इनके शासन को बदला गया; और राष्ट्र में हर प्रकार की शान्ति बनाये रखने का प्रयत्न किया गया। जहाँ पतन के लक्षण मिलते हैं। वहाँ उत्थान की व्यवहारिक रूप रेखा भी देखने को उपलब्ध होती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

ऐसा लगता है कि कृषि का विकास राजा पृथु के काल में ही हुआ और नगरों को बसाने की व्यवस्था का समय भी वही है। विष्णु के पुराण (६।१३।८३।८८) में कहा है। राजा पृथु ने अपने धनुष की कोटि से हजारों पर्वतों को उखाड़-उखाड़कर एक ही स्थान पर एकत्र कर दिया। इससे पहिले पृथ्वी समतल नहीं थी तथा पुर, ग्राम आदि का विभाग भी नहीं हुआ था। उस समय अन्न, कृषि व्यापार आदि का कोई क्रम नहीं था। इसका आरम्भ पृथु के शासन काल में ही हुआ। जहाँ-जहाँ पृथ्वी समतल हुई, वहीं-वही प्रजा जा बसी। उस समय तक केवल फल मूलादि का आहार किया जाता था। उस समय राजा पृथु ने स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाया और अपने हाथ से पृथ्वी रूपिणी गौ से सब शस्यों का दोहन किया। उसी अन्न के आधार पर अब प्रजा जीवन यापन करती है।"

इससे पूर्व पृथिवी और पृथु का सम्वाद जनता के हित के लिए पृथ्वी का वध करना चाहते हैं। पृथ्वी भयभीत होकर कहती है मैंने जिन औषधियों को अपने में लीन कर लिया है, यदि आप चाहें तो मैं उन्हें दूध रूप में दे सकती हूँ। (६।६।६७) इससे भूमि सुधार की वृहद् सफल योजनाओं का परिचय मिलता है।

जब राजा वेन के शासन में घोर अव्यवस्था फैली और दीन मनुष्यों ने धनवानों को लूटना आरम्भ कर दिया (१।१३।३१) तो मह-

षियों ने परामर्श किया और वेन के दाँये हाथ को मथकर पृथु को उत्पन्न किया (१।१३।३१)। जब ब्राह्मणों ने देखा कि वेन जुल्म ढा रहा है तो वेन के स्थान पर योग्य शासक को नियुक्त किया गया।

पृथु की सुव्यवस्था का प्रतीकात्मक रूप में वर्णन करते हुए कहा गया है "उनके समुद्र में जल स्थिर होकर रहता था, और पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे। इससे उनकी ध्वजा का भी पतन नहीं हुआ। पृथ्वी विना जोते वोए ही धान्य उत्पन्न करती है और पकाती थी, चिन्तन मात्र से अन्न पक जाता था। गायें कामधेनु के समान सर्व काम प्रद थीं तथा पुष्प-पुष्प में मधु भरा रहता था।" (१।१२।८-५०)।

कृष्ण ने राष्ट्र में अशान्ति उत्पन्न करने वाली आसुरी शक्तियों का दमन किया। कालिय नाग से उन्होंने युद्ध किया और उसे परास्त कर यमुना क्षेत्र से हटने के लिए वाध्य किया। नाग उस समय एक जाति थी और कालिय उस जाति का नेता था। वह जाति लूट मारकर जनता को परेशान करती थी। कृष्ण ने उन लोगों को अन्यत्र वसने के लिए वाध्य किया (पंचम अंश—अ० ८)।

कृष्ण वलराम ने धेनुकासुर का वध किया (५।८।८)। वलराम जी ने प्रलम्वासुर को यमपुर पहुँचाया (५।९।३६)। कृष्ण ने केशी दैत्य को समाप्त किया (५।१६।९-१०)। चाण्डूर मुष्टिक का अन्त किया (५।२०।७१)। कुवलिया पीड़ को परास्त किया (५।२०।३६)। फिर कंस को पछाड़ कर उसके भी प्राण निकाल लिए (५।२०।८७)। कृष्ण और वलराम ने जरासंध की सेना को पराजित किया (५।२२।८) और कैद से हजारों कन्याओं को छुड़ाया।

जव हिरण्यकशिपु के मस्तिष्क में विकृति आई और वह अपने को ईश्वर मानने लगा तो भगवान् ने नृसिंह अवतार लेकर उसका वध किया (१।२०।३२)। कोई नर-सिंह-मानवों में सिंह ही ऐसे कुमार्गियों का अन्त कर सकता है।

पुराणकार प्रेरित करते हैं कि जव-जव धर्म की हानि हो, अधर्म का वोलवाला हो, घोर सामाजिक अव्यवस्था फैल रही हो तो महान् आत्माएँ अवतरित होकर सुधार करती हैं।

भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा

भारतीय संस्कृति आदर्श संस्कृति है। सारे विश्व की सभ्यता और शिष्टाचार की शिक्षा और प्रेरणा देने का श्रेय इसे ही प्राप्त है। इसकी उत्कृष्टता और आदर्शवादिता के कुछ उदाहरण विष्णु पुराण से चुनकर नीचे दे रहे हैं—

राष्ट्रीय नेता भारत की कर्त्तव्य-निष्ठा-

प्राचीन वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण देश का नेता, कर्णधार और उन्नायक होता था, क्षत्रिय शासन इनके निर्देशन में ही शासन चलाते थे। वह तपस्वी त्यागी व निःस्वार्थी होते थे। राष्ट्र के रोगों का निरीक्षण करके उनका उपचार करना ही उनका कार्य होता था। वह ज्ञान के धनी देश के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाए रखते, अपने यजमान का चरित्र निर्दोष रखना तो वह अपना आवश्यक कर्त्तव्य मानते थे। जब-जब भी देश पर सङ्कट आया, उन्होंने उसे दूर करने के लिए प्रयत्न किये।

विष्णु-पुराण के अनुसार वेन एक निरंकुश, अहंकारी, नास्तिक राजा हुआ। हिरण्यकश्यप की ही तरह भगवान् की अपेक्षा अपने सम्मान पर अधिक वल देता था। उसकी घोषणा थी – 'मेरे आदेश का पूर्ण रूप से पालन करो, किसी को दान, यज्ञ, हवनादि नहीं करना चाहिए। हे ब्राह्मणो! जैसे स्त्री का परम धर्म पति सेवा है, वैसे ही आपका परम धर्म मेरी आज्ञा का पालन है" (१।१३।२३-२४)। ब्राह्मणों ने उसे बहुत समझाया परन्तु वह न माना और उसकी अनियमिततायें बढ़ती ही गई, तब उन्होंने उसे मार डालने का निश्चय किया। ऐसा लिखा है कि "पहिले से ही मृत हुए उस राजा का मंत्रपूत कुशों के आघात से वध कर दिया।" (१।१३।२४)।

'वेन की मृत्यु के बाद ब्राह्मणों ने वेन के दाँए हाथ को मथा, जिससे वेन पुत्र पृथु की उत्पत्ति हुई (१।१३।३८—३९) जिन्हें विधिपूर्वक राज्याधिकार देकर अभिषिक्त किया गया (१।१३।४७)। उसके पिता

ने जिस प्रजा को असप्रन्न किया था, उसी प्रजा को उसने प्रसन्न किया (१।१३।४८)। पृथु के उन्नत राज्य के सम्बन्ध में वर्णन है कि "उनके समुद्र में चलने पर जल स्थिर हो जाता और पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे, इससे उनकी ध्वजा का कभी पतन नहीं हुआ। पृथ्वी जोते-बोये विना ही अन्न उत्पन्न करती और पकाती थी, चिन्तन मात्र से ही अन्न पक जाता था, गौएँ कामधेनु के समान सर्व कामप्रद थीं तथा पुटके-पुटके में मधु भरा रहता था" (१।१३।४९—५०)।

राज्य में सुशासन, सुधार और सुव्यवस्था स्थापित होने का श्रेय उन ब्राह्मणों को है जिन्होंने शासन में से अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले तत्वों को निकाल फेंका और ऐसे हाथों में सत्ता सौंपी जो प्रजा के हितों का सच्चे अर्थों में संरक्षक करने वाले थे। इससे राज्य में सुधार हुए और प्रजा प्रसन्न हुई और उसे एक आदर्श राज्य की संज्ञा दी गई। आज ऐसे ब्राह्मणों का अभाव है। जब-जब देश ब्राह्मणहीन हो जाता है, तभी उस पर संकट आता है, तभी सुशासन कुशासन में परिवर्तित हो जाता। आज यह परम्परा प्रायः नष्ट सी हो गई है। शासन में स्वार्थपरता का बोलवाला होने के कारण वह प्रजा के हित को नहीं सोच सकता। ऐसे ब्राह्मण भी नहीं हैं, जो वेन को हटाकर पृथु जैसे शासकों को नियुक्त करें। जब तक इस देश का ब्राह्मण पुनः नहीं जगगा, उसका उत्थान अशक्य ही है।

धार्मिक उदारता—

वैष्णव धर्म एक उदार धर्म है। इसमें ऊँच-नीच के कोई भेद नहीं हैं। इसमें किसी वर्ग को नीचा समझकर उसकी उपेक्षा नहीं की जाती वरन् सबको गले से लगाया जाता है। सबको वैष्णव भक्ति का समान अधिकार है। भक्ति के क्षेत्र में अधिकारों की कोई दीवार खड़ी नहीं की गई। यही इसकी महान् विशेषता है। विष्णु पुराण इसका साक्षी है। जम्बू द्वीप के वर्णों और जातियों का वर्णन करते हुए कहा गया है "उस द्वीप में आर्यक, कुरर, विदिश्य और भावी संज्ञक जातियाँ हैं, वही क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। वहाँ आर्यक आदि जातियाँ ही सर्वेश्वर श्रीहरि का सोम रूप से यजन करती हैं।" (२।४।१७, १९)

शाल्मल द्वीप में कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण यह जातियाँ रहती हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। यह यज्ञ करने वाले व्यक्ति सर्वात्मा, अव्यय और यज्ञाश्रय वायु रूप विष्णु का श्रेष्ठ यज्ञों से भजन पूजन करते हैं।" (२।४।३०—३२)

"अपने-अपने कर्मों में लगी हुई चार जातियाँ दम्भी, शुष्मी, स्नेह और मन्देह संज्ञक हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। अपने प्रारब्ध को क्षीण करने के निमित्त शास्त्र सम्मत कर्म करते हुए ब्रह्म रूप जनार्दन की उपासना से अपने प्रारब्ध फल के दाता उस अत्यन्त उग्र अहङ्कार को क्षीण करते हैं।" (२।४।३८, ४०)।

"पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य संज्ञक वर्ण ही क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। वे वहाँ रुद्र रूपी भगवान् विष्णु का यज्ञादि से पूजन करते हैं।" (२।४।५५, ५६)।

"वहाँ वंग, मागध, मानस और मंदग नामक चार वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। उस शाक द्वीप में शास्त्र सम्मत कर्म करने वाले उन चतुर्वर्ण द्वारा सूर्य रूपी भगवान् विष्णु की आराधना की जाती है।" (२।४।७०, ७१)।

इस धार्मिक उदारता के कारण वैष्णव धर्म का देश-विदेश में विस्तार हुआ। सभी वर्ण समान रूप से यज्ञों में सम्मिलित होते थे परन्तु खेद है कि आज उन अधिकारों को सीमित कर दिया गया है और एक विशेष वर्ग को ही यज्ञ करने का अधिकार दिया गया। यह वैष्णव धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का हनन है। यदि यही स्थिति बनी रही तो यह धर्म भी संकुचित होता चला जायगा।

श्रद्धा-कृतज्ञता विश्व बन्धुत्व की उच्चतम भावना—

श्रद्धा भारतीय संस्कृति का प्राण है। इसे निकाल देने पर वह प्राण-हीन सी ही हो जायेगी। भगवत्प्राप्ति की सीढ़ियाँ चढ़ने के लिए भी यह आवश्यक है। इसीलिए इसे जाग्रत रखने और बढ़ाने के लिए अनेकों विधि-विधान और उपाय बताये गए हैं ताकि इसके सहारे साधक निरन्तर आगे बढ़ता चला जाए। विष्णु पुराण (३।११।२६, ३६) में कहा है

"स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारण कर देवता, ऋषि और पितरों का उन-उनके तीर्थों से तर्पण करे। देवताओं और ऋषियों के तर्पण में तीन-तीन बार और प्रजापति के लिए एक ही बार पृथ्वी में जल छोड़े। पितरों और पितामहों की तृप्ति के लिए भी तीन बार ही जल छोड़ना चाहिए, इसी प्रकार प्रपितामहों की तृप्ति करे, मातामह और उनके पिता और पितामह को यत्नपूर्वक तीर्थ जल से प्रसन्न करे। माता को, प्रमाता को. उसकी माता को, गुरु पत्नी को, गुरु को, मामा को, प्रिय मित्र को अथवा राजा को मेरा दिया हुआ यह जल प्राप्त हो। इस प्रकार कहता हुआ, सब भूतों के लिए देवादि का तर्पण करके अपने इच्छित सम्बन्धी को जल दे। देवता, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्मांड, पशु-पक्षी, जलचर, भूमिचर वायु का आहार करने वाले सब जीव मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हों—ऐसा देवादि के तर्पण में कहे। सम्पूर्ण नरकों में स्थित हुए जो-जो जीव विभिन्न प्रकार की यन्त्रणाएँ प्राप्त कर रहे हैं, उसकी तृप्ति के लिए जल देता हूँ। जो मेरे बन्धु हैं अथवा अबन्धु हैं या पहिले किसी जन्म में बन्धु थे या जो मुझसे जल-प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वे सभी मेरे द्वारा दिये गये इस जल से तृप्त हों - क्षुधा-पिपासा से व्याकुल कोई भी प्राणी जहाँ कहीं भी हों वे सब मेरे द्वारा दिये गये इस तिल-जल से तृप्त हो जाँय।"

बड़ों का सम्मान करना हिन्दू संस्कृति की एक महान् विशेषता है। यह सामान्य शिष्टाचार में सम्मिलित है। माता-पिता गुरु व वृद्धजनों की आज्ञा पालन यहाँ साधारण नियम था, जिसका हर कोई पालन करता था। इस नियम में इतनी दृढ़ता आ गई थी कि वृद्धजनों की मृत्यु हो जाने पर भी उनके प्रति सम्मान बना रहता था। उस सम्मान के प्रतीक में उन्हें जल से तर्पण आदि किया जाने लगा। जिन पूर्वजों के कारण आज हमारा इतना उत्थान हो पाया है, उनको उस कृपा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। कृतज्ञता के प्रदर्शन के लिए यह विधान बनाए गए हैं। कृतज्ञता का गुण मानवता का लक्षण है। जो इससे हीन है उसमें मानवता का अभाव समझना चाहिए।

यह कृतज्ञता, श्रद्धा और सहयोग की भावना केवल अपने सम्बन्धियों तक ही सीमित नहीं है। इसमें सभी प्राणियों को श्रद्धांजलि अर्पित की गई हैं। विश्व के सभी अभावग्रस्तों और दुःखियों के प्रति सद्भावना व्यक्त की गई है, शत्रुओं के प्रति भी सहानुभूति प्रकट की गई है। इससे विश्व बन्धुत्व की भावना जागृत होती है और हम समस्त विश्व के प्राणियों को अपना सम्बन्धी मानने लगते हैं। माता-पिता, बहन, भाई, पुत्र पुत्री आदि के सीमित पारिवारिक सम्बन्धों से ऊँचा उठकर हमें अपने दृष्टिकोण को विस्तृत करने की प्रेरणा मिलती है और हम सारे संसार को अपना परिवार मानने की ओर प्रेरित होते हैं। यह भावना जब परिपक्व हो जाती है, उस उन्नत अवस्था को ही आत्म-विस्तार, आत्म-कल्याण, आत्मोन्नति आदि कहा जाता है।

राम राज्य—आदर्श शासन—

शाक द्वीप में रामराज्य की सी स्थिति का वर्णन है। "उन सातों वर्णों में कहीं भी धर्म का क्षय, पारस्परिक कलह अथवा मर्यादा का नाश कभी नहीं होता।" (२।४।६८, ६९)। "वहाँ के निवासी रोग. शोक, राग-द्वेषादि से परे रहकर दस हजार वर्ष तक जीवन धारण करते हैं। उनमें ऊँच-नीच, मरने-मारने आदि जैसे भाव नहीं हैं और ईर्ष्या, असूया, भय. द्वेष तथा लोभादि का भी अभाव है (२।४।७९,८०)

इससे स्पष्ट है कि शाक द्वीप में धर्म संस्कृति और आस्तिकता का व्यापक विस्तार था और प्रजा बुद्धिमान् व विवेकी थी। उनके विचार शुद्ध व पवित्र थे तभी वह लम्बी आयु और उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करते थे। विचारों में स्थिरता, दृढ़ता और स्वभाव में शान्ति होने के कारण ही छोटी-छोटी बातों पर कलह, क्लेश और संघर्षोंसे बचा जा सकता है। यह आदर्श शाक द्वीप में था। इसे राम राज्य से सम्बोधित किया जा सकता है। आज यह स्थिति स्वप्न जैसी ही है।

विष्णु पुराण में जहाँ कंस, हिरण्यकशिपु आदि जैसे अन्यायी राजाओं के कुशासन का वर्णन है जिससे प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी थी, वहाँ न्यायमूर्ति, कर्तव्य परायण और अपने को प्रजा का सेवक मानने वाले

आदर्श राजाओं के सुशासन का भी उल्लेख है जो अपने अहं की पुष्टि के लिए जनता पर अनुचित आदेश लादना आत्मा का हनन मानते थे। आदर्श शासक जनता के जानमाल की सामूहिक आपत्तियों से सुरक्षा अपना नैतिक कर्त्तव्य मानता है। प्रजा-राजा का अनुकरण करती है। इसलिए राजा की नैतिक व धार्मिक प्रवृत्तियाँ भी ऐसी उच्च होनी चाहिए जिससे जनता प्रेरणा प्राप्त करे और अपना उद्देश्य निर्धारित करते हुए उसे मापदण्ड मानें।

वेन पुत्र पृथु की प्रजा इतनी सुखी और समृद्ध थी कि उसके राज्य-काल के सम्बन्ध में कहा गया है—"पृथ्वी जोते-बोए बिना ही धान्य उत्पन्न करती और पकाती थी" (१।१३।५०)। अतिशयोक्ति की शैली में यहाँ तक कहा गया है कि—चिन्तन मात्र से ही अन्न पक जाता था, गायें कामधेनु के समान सर्व कामप्रद थीं तथा पुटके-पुटके में मधु भरा रहता था।" प्रजा की अनुकूलता का वर्णन करते हुए कहा गया है—"उनके समुद्र में चलने पर जल स्थिर हो जाता और पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे, इससे उनकी ध्वजा का कभी पतन नहीं हुआ।" (१।१३।४६) इसमें जड़ पदार्थों को राजा की आज्ञा का पालन करते बताया गया है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रजा उनसे कितनी प्रसन्न होगी।

राजा कीर्तवीर्य के राज्यशासन की प्रशसा करते हुए कहा गया है कि—"उसने वल, पराक्रम, आरोग्य सुरक्षा, और व्यवस्थापूर्वक पिच्चासी हजार वर्ष तक इस पृथ्वी पर राज्य किया था।" (४।१२।१८) राजा को आदर्श शासक वनने के लिए सद्गुणी होना चाहिए। कार्तवीर्य के सम्बन्ध में लिला है कि—"यज्ञ, दान, विनम्रता और विद्या में कोई भी राजा कार्तवीर्य के समान नहीं हो सकता। उसके राज्यकाल में कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं हुआ।" (४।१२।१७) यज्ञ और दान से अभिप्राय लेने का ही नहीं देने का भी है अथवा नि:स्वार्थता की प्रवृत्ति की ओर संकेत है। राजा को आराम नहीं घोर परिश्रम करना चाहिए, आलस्य नहीं, क्रियाशीलता उसका आदर्श होना चाहिए, उसे सदैव चारों ओर से सजग रहना चाहिए। वह अपने को वड़ा नहीं जनता का सेवक समझे, अहंकार

से फूलने का रोग उसे न लगने पाये। वह विनम्रता की मूर्ति होना चाहिए, वह केवल धन सम्पत्ति का ही नहीं गुणों का भी भण्डार होना चाहिये। ऐसे शासन में सुव्यवस्था स्थिर रहती है। वर्तमान शासकों को भी इनसे प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

गुरुजनों के प्रति शिष्टाचार का पालन आदर्श विद्यार्थी जीवन—

आजकल विद्यार्थी वर्ग से सभी विचारशील चिन्तित हैं। आज्ञा नहीं अवज्ञा ही उनकी एक मात्र विशेषता हो गई है। गुरुजनों का सम्मान तो स्वप्नवत हो गया है। उन्हें अपमानित करने में भी तनिक लज्जा नहीं आती। कभी-कभी तो मार-पीट तक की नौबत आ जाती है। विद्यार्थी अपने निर्माताओं को गुरुजन नहीं केवल वेतन भोगी अध्यापक मानते हैं जिन्हें अपने अनुकूल मोड़ना वह अपना अधिकार समझते हैं। यह उच्छृंखलताएँ स्कूल कालेज तक ही सीमित नहीं रहतीं, शासन के विरुद्ध भी कड़ी से कड़ी कार्यवाही करने में संकोच नहीं करते। उनके लिए तोड़-फोड़, मार-पीट साधारण सी बात हो गई है। शिष्टा-चार के नाते गुरुजनों का सम्मान आवश्यक नहीं मानते। अरुणि, उद्दालक, एकलव्य आदि के देश में इतना अन्तर दुःख का विषय है। प्राचीन काल का विद्यार्थी आज्ञापालक, सेवाभावी, अनुशासित और आवश्यक शिष्टाचार का पालन करने वाला होता था। विष्णु पुराण (३।९।१।७) के अनुसार—"बालक को उपनयन संस्कार के पश्चात् वेदाध्ययन परायण होकर और ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरु गृह में निवास करना चाहिए। वहाँ रहकर शौच और आचार-व्रत का पालन तथा गुरु-सेवा करे एवं व्रतादि के पालन-पूर्वक स्थिर चित्त से वेदाध्ययन करे। दोनों सन्ध्याओं में एकाग्र मन से सूर्य और अग्नि की उपासना करे तथा गुरुदेव का अभिवादन करे। जब गुरुजी खड़े हों, तब खड़ा हो जाय, जब चलें तब पीछे-पीछे चले और जब बैठें तब नीचे बैठ जाय। इस प्रकार करते हुए कभी भी गुरु के विरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहिए। गुरु जी कहें तभी उनके सामने बैठकर वेद का अध्ययन

करे और जब उनकी आज्ञा हो तब भिक्षा से प्राप्त अन्न का भोजन करे। जब आचार्य जल में स्नान करलें तब स्नान करे और नित्य उनके लिए समिधा, जल, कुश, पुष्पादि लाकर एकत्र करें। इस प्रकार अपने वेदाध्ययन को पूर्ण करके मतिमान शिष्य गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके उन्हें गुरु-दक्षिणा दे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो।

प्राचीन काल के विद्यार्थी जीवन की यही व्यवहारिक रूप रेखा थी जिसे आज भी आदर्श माना जाता है। यदि आज का विद्यार्थी वर्ग इस शिष्टाचार का पालन करने लगे तो विद्यार्थी समाज से सम्बन्धित उलझी गुत्थियाँ सहज में ही सुलझ जायें। यह भारतीय सामाजिक सुव्यवस्था का ही चमत्कार था कि विद्यार्थी अपने आचार्य के दृढ़ अनुशासन में रहते थे। आज विदेशी शिक्षा प्रणाली के कारण वह अनुशासन भङ्ग हो गया। प्राचीनता को अपनाये बिना समस्या का समाधान असम्भव है।

अतिथि सत्कार-प्रेम विकास की साधना—

प्राचीन काल में अतिथि सत्कार को गृहस्थ का एक आवश्यक गुण माना जाता था। अतिथि की उपेक्षा करने वाले या उसका स्वागत न करने वाले को हीन दृष्टि से देखा जाता था। उत्तम गृहस्थ अतिथि को खिलाकर ही स्वयं भोजन करते थे। भोजन का समय होने पर वह अपने द्वार पर जाकर अतिथि की प्रतीक्षा करते थे। विष्णु पुराण (२।१५।८।१०) में निदाघ का वर्णन है कि—"वह बलिवैश्वदेव के पश्चात् अपने द्वार पर अतिथियों की प्रतीक्षा में खड़ा था तभी महर्षि ऋभु उसे दिखाई दिए और वह उन्हें अर्घ्य देकर अपने घरमें ले गया।"

अतिथि का सत्कार न करने वाले की भर्त्सना की गई है। "जिसके घर पर आया हुआ अतिथि निराश होकर लौटता है, वह अपने सब पाप कर्म उस गृहस्थ को देकर उसके सभी पुण्य कर्मों को साथ ले जाता है। अतिथि का अपमान उसके प्रति गर्व और दम्भ का व्यवहार, उसे कोई वस्तु देकर उसका पश्चाताप, कटु भाषण अथवा उस पर प्रहार करना नितान्त अनुचित है। (३।११।१५।१६)

विष्णु पुराण (३।११।६६।५१) में भी कड़े शब्दों का प्रयोग किया गया है—"जिसके घर से अतिथि विमुख लौटता है, उसे वह अपने समस्त पाप देकर शुभ कर्मों को साथ ले जाता है। धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण और अर्यमा—यह सभी देवता अतिथि के शरीर में बैठकर उसके साथ भोजन करते हैं। इसलिए अतिथि सत्कार के लिए गृहस्थ पुरुष को यत्नशील रहना चाहिए। जो मनुष्य अतिथि को भोजन कराये बिना स्वयं ही भोजन कर लेता है, वह तो केवल पाप का ही भक्षण करता है।"

कैसे अतिथि का स्वागत करना चाहिए, इसका विश्लेषण करते हुए कहा गया है। "यदि अतिथि मिल जाय तो उसे स्वागतपूर्वक आसन दे और चरण धोकर सत्कार करे और श्रद्धापूर्वक उसे भोजन कराता हुआ मधुर वाणी से बातचीत करता हुआ उसके गमनकाल में पीछे-पीछे जाकर उसे प्रसन्न करना चाहिए। जिस व्यक्ति के नाम और निवास स्थान आदि का पता न हो, उसी अतिथि का सत्कार करे। अपने ही ग्राम में निवास करने वाला पुरुष आतिथ्य का पात्र नहीं होता। जिसके पास कोई सामान न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके वंशादि का ज्ञान न हो और जो भोजन करने के लिये इच्छुक हो, ऐसे अतिथि का सत्कार न करना या भोजन न कराना अधोगति को प्राप्त कराने वाला है। आगत अतिथि का अध्ययन गोत्र, आचरण; कुल आदि कुछ न पूछे और हिरण्यगर्भ बुद्धि से उसका पूजन करें।" (३।११।५७।६१)

अतिथि सत्कार मानव मात्र के प्रति प्रेम के विकास की साधना है जो आत्मोत्थान में सहायक सिद्ध होती है।

तप द्वारा ही कठिनाइयों का अन्त सम्भव है—

ध्रुव का जीवन जीने की कला का मार्गदर्शक है। ध्रुव से पितृ स्नेह का अधिकार छीना जाता है। वह उद्विग्न हो उठते हैं। वह उसे अपने बल पर प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, घोर तप करते हैं। इसी तप को सृष्टि रचना का मूल बताया गया है। भगवान् मनु का कहना है कि—"समस्त लोकों में जो कुछ भी श्रेष्ठ दृष्टिगोचर हो रहा है,

उसके मूल, मध्य और अन्त में तपस्या विद्यमान है। त्रिकालदर्शी ऋषियों ने यह शक्ति तप के बल पर ही प्राप्त की है। दुस्तर, दुष्प्राण, दुर्गम और दुष्कर सभी कार्यों का प्रतिकार तप ही है। स्वर्ग का साधन तप ही है। तप के फलस्वरूप ही पवित्र हृदय वाले ऋषियों के अन्तःकरण में बड़े ज्ञान का अवतरण हुआ है भौतिक जीवन में ध्रुव को कठिनाइयाँ आईं। उसने डटकर मुकाबला किया, वह उनसे डरा नहीं, घबराया नहीं, खोया नहीं, निराश नहीं हुआ। उसने उसके समाधान का उपाय सोचा। हमारा जीवन भी कठिनाइयों से ओत-प्रोत है। यदि हम उनसे डर गये तो जीवन काटना भी असम्भव हो जायगा। दुःखों को धैर्य पूर्वक सहन करना चाहिए। राम जैसे अवतारी पुरुषों को और कृष्ण के सखा पाण्डवों को जब घोर संकटों का सामना करना पड़ा है तो साधारण जीव उनसे कैसे बच सकते हैं? दुःख तो संघर्ष की प्रेरणा देने आते हैं। यदि व्यक्ति को संघर्ष करने का अवसर न मिले तो इस ओर मन से निकम्मा हो जाता है। संघर्ष व्यक्ति को क्रियाशील और शक्तिशाली बनाने आता है। उससे कितनी प्रसन्न होगी।

ध्रुव के तप को विफल करने को अनेकों प्रयत्न किए गये। माया रूपी सुनीति ने विलाप किये (१।१२।१४।१५)। भयंकर राक्षसों ने डराया धमकाया (१।१२।२६।१८)। परन्तु ध्रुव अपने निश्चय पर अटल रहे। हमारा भी यही जीवन आदर्श होना चाहिये तभी प्रगति पथ पर आरूढ़ हो सकेंगे। कठिनाइयों का अत तप द्वारा ही सम्भव है।

देवता से मानवी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन—

विष्णु पुराण ५।३०।४३-५१ के अनुसार कृष्ण पत्नी सत्यभामा को जब इन्द्राणी का पारिजात वृक्ष पसन्द आया जिसके सुगन्धित पुष्पों से वह अपने केशों को सजाती थी, तो उसने कृष्ण को इसे द्वारका ले जाने के लिए प्रेरित किया। वह जानती थी कि इससे इन्द्र व समस्त देवताओं के साथ संघर्ष आवश्यम्भावी है। परन्तु वह इससे भयभीत नहीं होती शची को सन्देश भेजते हुए गर्वपूर्वक चुनौती देतीहै कि--यदि तुम्हारे पति तुम्हें अत्यन्त प्रेम करते हैं और तुम्हारे वश में हैं, तो मेरे पति को पारिजात ले

जाने से रोको। मैं तुम्हारे पति को जानती हूँ कि वे देवताओं के अधीश्वर हैं, फिर भी मैं मानुषी होकर तुम्हारे पारिजात को लिए जाती हूँ।" (५।३०।५६।५१)।

इस पर कृष्ण और इन्द्र सहित देवताओं में संघर्ष हुआ जिसमें देवताओं को पराजित होना पड़ा। इस कथा से यह ध्वनि निकलती है कि मानव देवताओं से श्रेष्ठ हैं। देवता भोग करते हैं, मानव भोग और कर्म दोनों करता है। मानव अपने बल, पौरुष और पराक्रम से उच्चतम स्थिति तक पहुँचने में समर्थ है। इसमें मानव का गौरव झलकता है।

स्वर्ग से भी आगे बढ़ने की आज्ञा—

सारा विष्णु पुराण पाप और पुण्य के संघर्ष से भरा हुआ है। इसमें पापी व्यक्तियों का भी वर्णन है जो अहंकार के वशीभूत होकर अपने अहं का प्रदर्शन करने के लिए दूसरों का दमन करते हैं परन्तु अन्त में उन्हें अपने दुष्कर्मों पर पछताना पड़ता है। इसमें ऐसी भी पुण्य आत्माओं की कथाओं का उल्लेख है जो सत्कर्मों को ही अपने जीवन का आलम्बन बनाती रही है और समस्त प्राणियों में अपने इष्टदेव के दर्शन करती रही हैं। विष्णु पुराण (३।७।४४) ने इसी पाप को नरक और पुण्य को स्वर्ग की संज्ञा दी है। तभी पापात्माओं के चरित्रों को वर्णन करके वैसे कर्मों से वचने की प्रेरणा दी है। साथ ही साथ पुण्य के संचय की शिक्षा भी दी गई है ताकि साधक ऊपर उठ सके क्योंकि ऊपर उठना ही स्वर्ग है। भागवत के अनुसार सात्विक गुणों का विकास ही मनुष्य के लिए स्वर्ग है।

पुराणकार अपने साधक को स्वर्ग तक ही सीमित नहीं रखना चाहते। स्पष्ट रूप से कहते हैं कि केवल नरक में ही दुःख नहीं है, स्वर्ग में भी है, क्योंकि वहाँ से नीचे गिरने की आशंका से जीव को सदा अशान्ति ही रहती है (५।५।५०) स्वर्ग के सुख भोगकर पुनः पृथ्वी पर आना पड़ता है। अतः यह अन्तिम लक्ष्य नहीं है। इससे आगे बढ़ना होगा। इस प्रगति पर सन्तोष नहीं करना चाहिए। स्वर्ग से भी आगे के लोकों की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

भविष्य वाणी—एक वैज्ञानिक प्रक्रिया—

भारतवर्ष तपस्वी और वैज्ञानिक ऋषियों की भूमि रहा है। ऋषि

त्रिकालज्ञ होते थे, वह भूत, भविष्य का ज्ञान रखते थे। वह जो भविष्य वाणियाँ करते थे, वह प्राय: सत्य निकलती थीं। विष्णु पुराण में भी कुछ भविष्य वाणियों का वर्णन है। (४।२१।३,८) के अनुसार "इस काल में राज्य करने वाले महाराज परीक्षित के चार पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन, भीमसेन होंगे। जनमेजय का शतानीक नामक पुत्र होगा, जो याज्ञवल्क्य मुनि से वेद-शिक्षा प्राप्त कर और कृप से शस्त्रास्त्र विद्या प्राप्त करके महर्षि शौनक द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करेगा। शतानीक का अश्वमेघदत्त नामक पुत्र होगा। अश्वमेवदत्त का पुत्र अधिसीम कृष्ण और अधिसीम कृष्ण का पुत्र निचक्नु होगा। निचक्नु गंगाजी द्वारा हस्तिनापुर वहा ले जाने पर कौशाम्वी में निवास करेगा।"

चौथे अंश के २४ वें अध्याय के श्लोक ७० — ९३ में भी कुछ भविष्य की बातें कही गई हैं—यह सभी राजा एक ही काल में पृथ्वी पर होंगे, यह अल्प प्रसन्नता वाले, अधिक क्रोध वाले, अधर्म और असत्य भाषण में रुचि वाले स्त्री, बालक और गौओं का बध करने वाले, पर-धन-हारी, न्यून शक्ति वाले, तमयुक्त विकसित होते ही पतन को प्राप्त होने वाले, अल्पायु, अल्प पुन्य, बड़ी अभिलाषा वाले और महान् लोभी होंगे। यह सब देशों को परस्पर में एक कर देने वाले होंगे। इन राजाओं के आश्रय में रहने वाले बलावान् म्लेच्छ और अनार्य व्यक्ति, उनके स्वभाव के अनुसार आचरण करते हुए सम्पूर्ण प्रजा को ही नष्ट कर डालेंगे। इससे दिनों-दिन धर्म और अर्थ की धीरे-धीरे करके हानि होती जायगी और जब यह क्षीण हो जायेंगे तो सम्पूर्ण विश्व ही नष्ट हो जायगा। उस समय धन ही कुलीनता का सूचक होगा, बल ही सब धर्मों का चिह्न होगा, परस्पर की चाहना ही दाम्पत्य-सम्बन्ध की करने वाली होगी, स्त्रीत्व ही भोग का साधन होगा। झूँठ ही व्यवहार में जीत कराने वाला होगा, जलवायु की श्रेष्ठता ही पृथ्वी की श्रेष्ठता का लक्षण होगा, यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणत्व का कारण होगा, रत्नादि धारण ही श्लाघा का हेतु होगा, वाह्य चिह्न ही आश्रमों के सूचक होंगे, अन्याय ही वृत्ति का साधन होगा, निर्भयता और धृष्टतापूर्वक भाषण ही पाडित्य होगा, निर्धनता ही साधुत्व का कारण समझा जायेगा।

स्नान साधन का हेतु, दान धर्म का हेतु और स्वीकृति ही विवाह का हेतु होगा। सज-धज कर रहना ही सुपात्रता का द्योतक होगा, दूर देश का जल ही तीर्थ-जल होगा, छद्मवेश ही गौरव होगा। इस प्रकार सम्पूर्ण भूमंडल में नाना प्रकार के दोषों के फैलने से सब वर्णों में जो-जो बली होगे वही-वही राजा राज्य को हथिया लेंगे।"

भविष्य की बातें जानने में भारत इतना दक्ष था कि अलग से एक भविष्य पुराण का ही निर्माण हो गया। भविष्य कथन एक विश्वसनीय सिद्धान्त है, यह एक विद्वान है, साधना है। महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन में इसका समर्थन किया है और साधना का संकेत किया है। उन्होंने लिखा है "तीनों परिणामों (धर्म, लक्षण, अवस्था) में संयम करने से अतीत और अनागत (भूत, भविष्यत्) का ज्ञान होता है (३।१६)। संसार के समस्त पदार्थ इन तीन परिणामों के अन्तर्गत आ जाते हैं। इसमें संयम करने से तमोगुण और रजोगुण का निवारण होता है और सतोगुण का विकास होता है। इसी से भूत और भविष्यत् का ज्ञान होता है।

यह भारत की एक गौरवमय उपलब्धि है जिस पर हमें गर्व है।

दोषों, दुर्गुणों और कुरीतियों से चेतावनी

दुर्गुण मानव के महान् शत्रु हैं। वह शक्तियों का ह्रास करते हैं। शक्ति के विकास से ही सुख शान्ति की प्राप्ति सम्भव है। इसलिए इसको नष्ट करने वाले शत्रुओं से सावधान किया गया है—

बड़ों के अनादर के दुष्परिणाम—

शिष्टाचार भारतीय संस्कृति की नींव है। जो इसका आचरण नहीं करता, वह उद्दण्ड और अशिष्ट माना जाता है। आचारों में माता, पिता, गुरु और वृद्धजनों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना सर्वोपरि है। सम्मान न करके जो ऋषि, ब्राह्मणों और अपने से बड़ों की हँसी, मजाक और अनादर करते हैं, उनके घोर दुष्परिणाम विष्णु पुराण में वर्णित किए गये हैं।

पंचम अंश के दसवें अध्याय में वर्णित कथा के अनुसार यादव बालकों ने ऋषियों के साथ मनोरंजन का प्रोग्राम बनाया। उन्होंने जाम्बवती पुत्र साम्ब को स्त्री वेष में सजा कर ऋषियों से कहा—"इसे पुत्र की इच्छा है तो बताइये, इसके क्या उत्पन्न होगा ?" (६—८) ऋषि यादव बालकों की चाल को ताड़ गये और क्रोधपूर्वक कहा—"इसके मूसल उत्पन्न होगा जो सब ओर से यादवों के नाश का कारण हो जायगा।" (६—१०) और अन्त में यही हुआ।

एक बार अप्सराओं ने अष्टावक्र के आठ स्थानों से टेढ़े शरीर को देखा तो स्वभावतः हँसी छूट पड़ी और छिपाने पर भी न छिप सकी। महर्षि ने उन्हें शाप दिया कि तुमने मेरे कुबड़ की हँसी उड़ाई है, इसलिए तुम भगवान् विष्णु को पति रूप में पाकर भी लुटेरों द्वारा अपहृत होगी।" (६।३८।७६-८२)

इन कथाओं से बड़ों के अनादर करने से सावधान करते समय सम्मान की प्रेरणा दी गई है।

अविवेक-अज्ञानता का लक्षण है—

विवेक कहते हैं—सत्य असत्य के निर्णय करने की शक्ति को। जो व्यक्ति इस शक्ति से च्युत है, वह अन्धकार में भटकता रहता है और गौरवमयी मानव योनि पाकर के भी अमानवों के से काम करता है। मानवता की सिद्धि के लिए विवेक का जागरण आवश्यक है। विष्णु पुराण में अविवेक को नष्ट करने के लिए अनेकों स्थलों पर महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है। एक स्थान पर कड़े शब्दों में कहा है "अज्ञान के अंधेरे में पड़ा हुआ जीव यह भी भूल जाता है कि मैं कहाँ से आया ? कहाँ जाऊँगा ? मैं कौन हूं ? मेरा रूप क्या है ? मैं कौन से बन्धन में किस कारण बँधा हूँ ? मैं क्या करूँ, क्या न करूँ ? क्या कहूँ, क्या न कहूँ ? धर्म क्या है? अधर्म क्या ? किस अवस्था में कैसे रहूँ ? कर्त्तव्य या अकर्त्तव्य क्या है ? इस प्रकार विकेक रहित पशु के समान यह जीव अज्ञान से उत्पन्न दुःखी को भोगते हैं।" (६।५।२१—२४)

अहंकार एक महारोग—

आत्मिक पतन में जहाँ अन्य अवगुणों का हाथ रहता है, वहीं अहंकार को भी एक ऊँचा स्थान प्राप्त है। भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में कोई

विरला ही ऐसा व्यक्ति बचा होगा, जो इसके कुप्रभावों से पीड़ित न हुआ हो। इसके प्रहार व्यापक रूप से काम करते हैं। इसीलिए तो गीताकार (१८।१६) ने कहा कि "जो संस्कृत बुद्धि न होने के कारण यह समझे कि मैं ही अकेला कर्त्ता हूँ, समझना चाहिये कि वह दुर्गति कुछ नहीं जानता।" अहंकार के प्रदर्शन के लिए पुराण में अनेकों कथाओं का चयन किया गया है जिनमें वन और हिरण्यकशिपु के चरित्र प्रमुख हैं। वेन ने तो कहा था। "मुझसे अधिक ऐसा कौन है जो मेरे द्वारा भी पूजा के योग्य हो। तुम जिसे यज्ञेश्वर एवं भगवान् कहते हो, वह कौन है ?" (१।१३।२०) उसने प्रजा को अपनी पूजा करने का आदेश दिया था। हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद से विष्णु की अपेक्षा अपना सम्मान चाहते थे। प्रह्लाद ने इसका विरोध किया तो हिरण्यकशिपु का अहंकार भड़का, इसी अग्नि में उसने प्रह्लाद को जलाना चाहा, परन्तु अहङ्कारी व्यक्ति तो स्वयं उससे जलता है, वह क्या दूसरे को जलायेगा ? अहङ्कारी का सर सदैव नीचा होने वाली कहावत कही जाती है। पुराणकार इसे भी व्यावहारिक रूप में बताते हैं। विश्व विख्यात हजारों महान योद्धाओं पर विजय प्राप्त करने वाले अर्जुन अनाथ बालाओं को ले जाते हुए अपार दस्युओं से उनकी रक्षा करने से अपने में असमर्थ पाते हैं और लूट लिए जाते हैं (५।३८।१२–१५)।

केवल भौतिकवादी राजा लोग इस रोग के रोगी रहे हों, ऐसा नहीं है। तपस्वी ऋषि भी इससे हार मान चुके हैं। इन्द्र ऐरावत पर चढ़े जा रहे थे। दुर्वासा ने एक पुष्पमाला इन्द्र को दी। इन्द्र ने हाथी के मस्तक पर डाल दी। हाथी ने उसे पृथ्वी पर फेंक दिया। महर्षि का अहङ्कार इससे उत्तेजित हो गया। उनके क्रोध की ज्वाला भड़क उठी और उन्होंने इन्द्र को शाप दिया कि "तेरा यह त्रिभुवन भी अब शीघ्र ही हीनता को प्राप्त होगा।" (१।९।१६)

इस छोटी सी गलती के लिये इतना बड़ा दण्ड अनुचित ही है। वह क्यों न देते, अहङ्कार ने जो उनके मस्तिष्क पर नियन्त्रण कर लिया था।

पुराणकार ने इस महारोग से सावधान रहने की प्रेरणा दी है।

क्रोध से शक्ति नाश–

क्रोध ऐसी अग्नि है जिसमें हमारा शरीर, मन और बुद्धि सब चलते रहते हैं। शास्त्रों ने इसे नरक का द्वार, पाप का मूल और महा शत्रु कहा है क्योंकि यह आत्मिक वल को नष्ट करता है। गाँधी जी ने कहा कि "क्रोध के लक्षण शराव और अफीम दोनों से मिलते हैं।" गीता (१।६३) में कहा कि क्रोध से अविवेक होता है, अविवेक से स्मृति-भ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धि नाश और बुद्धि नाशसे सर्वनाश हो जाता है।"

इस क्रोध से पुराणकार ने वार-वार विभिन्न कथाओं द्वारा सावधान किया है। एक बार वसिष्ठ ने जब देखा कि राजा निमि ने उसके स्थान पर गौतम को होता नियुक्त कर लिया है तो शाप दे डाला कि तुम देह रहित हो जाओ। (४।५।७—८) जब राजा सोकर उठे तो उन्हें भी क्रोध आया। उन्होंने गुरु को शाप दिया कि वह भी देह रहित हो जाँय (९—१०)।

इन्द्र ने जब महर्षि दुर्वासा द्वारा पुण्यमाला का अनादर किया तो क्रोधपूर्वक शाप दिया कि तुम श्रीहीन हो जाओ (१।९।१६)। महर्षि पाराशर ने एक वार क्रोध में आकर राक्षसों के विनाशार्थ यज्ञ किया जिसमें प्रतिदिन सैकड़ों हजारों राक्षस भस्म होने लगे (१।१।१३–१४)। तव वसिष्ठ ने उन्हें रोका कि "इसे शान्त करो। मूर्ख व्यक्ति ही क्रोध किया करते हैं, ज्ञानीजन ऐसा नहीं करते हैं। (१।१।१७) ज्ञान के भण्डार ऋषिगण स्वर्ग और मोक्ष में बाधा स्वरूप क्रोध का परित्याग कर देते हैं। इसलिए तुम क्रोध के वशीभूत मत हो।" (१५—१९)

क्रोध को शान्ति पर पुलस्त्य ने उन्हें वरदान दिया कि "अत्यन्त वैर भाव होने पर भी तुमने राक्षसों को क्षमा कर दिया, इससे तुमको समस्त शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त हो जायगा (२३-२४) "कोध करने पर भी तुमने जो मेरे वंश का मूलोच्छेद नहीं किया, उसके लिए मैं तुमको यह विशेष वर प्रदान करता हूँ कि तुम पुराण संहिताओं के रचयिता होंगे, देवता और परमार्थतत्व को जान सकोगे और मेरे प्रसाद से प्रवृत्ति और

निवृत्ति मूलक धर्म में तुम्हारी बुद्धि निर्मल और असंदिग्ध रहेगी।" (२५–२७) जिस शान्त मन में क्रोध की ज्वाला नहीं भटकती, उसी मन में ऐसे परिणामों की सम्भावना हो सकती है।

मोह से बन्धनों की दृढ़ता—

प्रेम अमृत है। इसे प्राणीमात्र पर छिड़कना चाहिए। यह मानव का परम धर्म है। इससे वंचित व्यक्ति जड़ गिना जाता है। परन्तु प्रेमी के प्रति लगाव और लिप्तता हानिकारक है। यह लगाव ही कुमति है जो बन्धन और दुःख का कारण है। इससे निवृत्ति की साधना बड़ी तत्परता पूर्वक करनी चाहिए क्योंकि विष्णु पुराणकार ने ऋषि और तपस्वियों को भी इसमें फँसते हुए बताया है।

भरत तपस्वी और ज्ञानी थे परन्तु एक हरिणी से उनका मोह हो गया। भयभीता हरिणी का गर्भ नदी में गिरा और उन्होंने पकड़ कर उसका पालन किया। इससे तो उनके प्राणीमात्र के ऊपर अपार प्रेम की झलक मिलती है। (२।१३।१६)। परन्तु मरते हुए भी उनका स्मरण करते रहना उनके लिए हानिकारक हो गया और उन्हें हरिणी की योनि में जाना पड़ा।

महर्षि सौभरि अत्यन्त तपस्वी थे। एक बार उन्हें ब्याह की सूझी। एक नहीं राजा मानधाता की ५० कन्याओं से विवाह कर लिया और १५० पुत्र उत्पन्न किये। वह सोचने लगे 'क्या यह मेरे पुत्र मधुर बोली बोलेंगे? अपने पैरों से चलेंगे? युवावस्था को प्राप्त होंगे? क्या मैं इन सबको पत्नी सहित देख सकूँगा? फिर इनके भी पुत्र होंगे, तब क्या मैं अपने को पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न देख पाऊँगा? (४।२।११४)।

इस तरह हमारे मोह की कोई सीमा नहीं है। जिनसे मोह करते हैं, उन्हें एक दिन नष्ट होना है फिर इन अनावश्यक लगावों से क्या लाभ है? इससे निवृत होना ही ज्ञान और विवेक का लक्षण है।

धन का अपव्यय—

धन मानव के ज्ञान-अज्ञान की महान कसौटी है। शरीर आत्मिक

उत्थान की साधना के लिए मिला है। अतः उसे भगवान का मन्दिर समझ कर स्वस्थ व हृष्ट पुष्ट रखना कर्त्तव्य है, परन्तु हर समय उसी के लालन-पालन में लगे रहना अज्ञानता है। इसीलिए ईसा को कहना पड़ा कि सुई की नोंक में से एक ऊँट को निकालना सम्भव है परन्तु एक धनवान् का स्वर्ग में जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि वह धन की तृष्णा से हर समय त्रस्त रहता है और उसे प्राप्त करने के लिए अनुचित उपाय अपनाता है। विष्णुपुराण ने प्रेरणा दी है कि धन का उपार्जन किया जाये अवश्य परन्तु उसका आधार धर्म होना चाहिए (६।२।२४) बिना धर्म के प्राप्त धन नरक का द्वार सिद्ध होता है। ईमानदारी से कमाया धन ही स्वर्गीय सुख और शान्ति का प्रदाता है। पुराणकार ने वास्तविकता का वर्णन करते हुए लिखा है। "धन के उपार्जन और रक्षण में अत्यन्त कष्ट होता है और फिर उसे अनुचित मार्ग से व्यय करने पर भी बहुत ही दुःख भोगना पड़ता है।" (२६) उपार्जन और संरक्षण दोनों में सावधानी बरतनी पड़ती है। प्राकृतिक नियम है कि जो व्यक्ति जिस वस्तु का सदुपयोग करता है, वह उसे अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है क्योंकि वह उसके लिए अपने को अधिकारी सिद्ध करता है। इसके विपरीत सदुपयोग करने वाले से छीन ली जाती है। इसलिए चेतावनी दी गई है कि धन के व्यय में ध्यान रखना चाहिए।

लोग अनुचित उपायों से कमाये धन को यश और कीर्ति के लिए दान में देते रहते हैं। विष्णुपुराण ने इसका भी विरोध किया है और कहा है कि जो धन धर्म से कमाया गया हो, उसे ही दान और यज्ञों में देना उचित है (६।२।२४)।

बन्धन का कारण तृष्णा—

धन, वैभव और अन्य भौतिक ऐश्वर्यों की तपस्या जीव को बन्धन में डालकर आवागमन के चक्र में घुमाती रहती है। इसका वर्णन राजा ययाति के अनुभव के माध्यम से दिया गया है। उसने अपने पुत्र प्रासू का यौवन लेकर हजार वर्ष तक भोगों को भोगा। इतने लम्बे सम्पर्क तथा अनुभव के बाद अपने उद्गार प्रकट करते हुए कहा—

"भोगों के भोगते रहने से उनकी तृष्णा कभी शान्त नहीं होती किन्तु आज्याहुति से प्रवृद्ध होने वाले अग्नि के समान निरन्तर बढ़ती जाती है। भूमण्डल पर जितने भी धान्य, जौ, स्वर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं वे सब एक मनुष्य के लिए भी तृप्त नहीं कर सकते, इसलिए इस तृष्णा का सर्वथा त्याग करना चाहिए। जो तृष्णा खोटी बुद्धि वालों द्वारा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक त्यागी जा सकती है और जो वृद्धावस्था में भी शिथिलता को प्राप्त नहीं होती, उसी तृष्णा को त्याग कर बुद्धिमान पुरुष पूर्ण रूप से सुखी हो ज ता है। जीर्णावस्था प्राप्त होने पर बाल और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं, परन्तु उनके जीर्ण होने पर भी धन और जीवन की आशा जीर्ण नहीं हो पाती। इन विषयों में आसक्त रहते हुए मेरे एक हज़ार वर्ष व्यतीत हो गये, फिर भी उनके प्रति नित्य ही इच्छा रहती है। इसलिए, अब मैं इनको त्याग कर अपने चित्त को ब्रह्म में लगाऊँगा, निर्द्वन्द्व तथा निर्मम होकर मृगो के साथ विचरण करूँगा। (४।१०।२२,२४,२६—२६)।

ययाति के अनुभव से लाभ उठाकर हमें भी अपने जीवन में मोड़ लाना चाहिए।

पापो का परिणाम नरक—

शास्त्रों में अनेकों प्रकार के नरकों का वर्णन है। विष्णु पुराण में भी यह नाम आये हैं। "तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असि-पत्रवन, घोर, काल सूत्र, अवीचिक, यह सब नरक लोक हैं। वेदों की निन्दा करने वाले, यज्ञों में बाधा डालने वाले और धर्म को त्याग का आचरण करने वालों का यही स्थान कहा गया है।" (१।६—४०।४२) नारकीय यातनाओं का वर्णन गरुड़ पुराण आदि में है। विष्णु पुराण में भी उनका संक्षिप्त वर्णन है।

"पहले तो यमदूत उसे अपने पाश में बाँध लेते लौर फिर इन रर दण्ड प्रहार करते हैं। तब अत्यन्त दुर्गम मार्गों को पार करने पर यमराज का दर्शन हो पाता है। फिर तपे हुए बालू अग्नियन्त्र, शस्त्रादि से

भीषण एवं असह्य नरक-यातनाएँ भोगनी होती हैं। नरकवासी को फाड़ने, शूली पर चढ़ाने, सिंह के मुख में डालने, गिद्धों द्वारा नुचवाने, हाथियों से कुचलवाने, तेल में पकाने, दलदल में फँसाने, ऊपर से नीचे गिराने तथा क्षेपणयंत्र से दूर फिकवाने रूप जिन-जिन कष्टों की प्राप्ति होती है, उनकी गणना असम्भव है। (६।५—४।४९)।"

इन यातनाओं से जो बचना चाहें, उसे उन कर्मों से दूर रहना चाहिये जिनका परिणाम नरकों में प्राप्त होता है।

"नरक प्राप्ति के कारणों पर चर्चा करते हुए कहा गया है। अज्ञान के तामसिक होने से अज्ञानी पुरुषों की प्रवृत्ति तामसिक कर्मों में होती है, इसके कारण वैदिक कर्म लुप्त हो जाते हैं। कर्म लोप का फल मनीषियों ने नरक कहा है। (६।५—२५।२६) एक कारण और बताया है। "जो व्यक्ति अपने पापों का प्रायश्चित नहीं करते, उन्हें नरक की ही प्राप्ति होती है।" (२।५।३४) आत्म निरीक्षण करने वाला व्यक्ति ही दुष्कर्मों को छोड़कर सद्कर्मों की ओर प्रवृत्त होता है। तभी उसकी निवृत्ति नरक से हो सकती है। पुराणकार चाहते हैं कि हम पूर्व पापों का प्रायश्चित करके स्वर्ग के पथ पर आरूढ़ हों।

पशुबलि हिन्दू धर्म पर महान् कलंक—

वेद शास्त्रों की घोषणा है कि पशुओं में भी उसी आत्मा का निवास है जिसका मनुष्यों में है। तत्वज्ञानियों की दृष्टि में दोनों समान हैं। मानव ने अपने बुद्धिबल से पशुओं पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया है और स्वार्थ की पूर्ति के लिए उनका मनमाना उपयोग करता है। जिह्वा के स्वाद के लिए मांस हार का सेवन तो पाप है ही, धर्म के नाम पर तो यह महापाप हो जाता है। यज्ञ पवित्रतम कार्य है। इससे सारे विश्व के प्राणियों का कल्याण होता है। इसके साथ पशुबलि जैसे जघन्य कार्य को मिलाना पशुता से भी गिरने के समान है। विष्णु पुराण ने इस बात का विरोध करते हुए कहा है "यदि यज्ञ में बलि होने वाले पशु को स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने पिता का बलिदान करके ही उसे स्वर्ग क्यों नहीं प्राप्त करा देता?" (३।१८।२७)

इस बुद्धिवादी युग में भी बलि का प्रचलन है। यह हिन्दू-धर्म पर कलंक है।

आचार दर्शन

सभ्य और असभ्य की पहिचान की यदि कोई कसौटी है तो वह आचार ही हैं। यही पतन और उत्थान की सीमा रेखाएँ खींचने वाले हैं। आचारहीन मनुष्य पशु तुल्य ही माना जाता है। आचार की शिक्षा ग्रहण व्यक्ति ही सभ्य कहा जाता है। भारतीय आचार दर्शन शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक स्वास्थ्य के लिये हितकर है, नागरिकता की उत्तम शिक्षाओं से भी यह ओत-प्रोत है। प्रातः व सायं के अलग-अलग आचार हैं। लोकाचार के सामान्य नियमों को भी प्रेरणा दी गई है। सदाचार तो भारतीय संस्कृति की आधार शिला है ही। विष्णु पुराण के आधार पर यहाँ उनका दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

सदाचार—

सदाचार की प्रेरणा भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है। विष्णु पुराण भी उससे अछूता नहीं है। सदाचार की परिभाषा का वर्णन करते हुए कहा गया है "सत्मार्गी का अर्थ साधु होता है और दोष रहित को भी साधु कहते हैं। उस साधु पुरुष का आचरण ही सदाचार कहा गया है। (३।११।३)।

विष्णु भक्ति की श्रेष्ठता का आधार सदाचार ही है। (३।७।२२) में कहा है "जो निर्धन स्थान में पराए स्वर्ण को भी पड़ा देखकर उसे तिनके के समान मानता है, उसे भगवान् का भक्त समझो।" भगवान् के निवास की कसौटी वह पुरुष है जो "स्वच्छ चित्त, मत्सरताहीन, प्रशान्त, पुनीत चरित्र, सब प्राणियों का प्रेमी, सहृदय तथा हित की बात कहने वाला, निरभिमान तथा माया से अलग रहता है।" (३।७।२४)

परनारी में आसक्ति रखने वाले को इहलोक व परलोक दोनों के विगड़ने का भय दिखाया गया है (१।१२।१२४) क्योंकि इस लोक में आयु का ह्रास और परलोक में नरक की प्राप्ति होती है। इसलिए पुराणकार ने प्रेरित किया है कि "परनारी से तो वाणी या मन से भी सङ्ग न करे (३।११।१२३) केवल अपनी ही स्त्री से ऋतुकाल में सङ्ग करे (१२५)।

कुछ व्यावहारिक उपयोग के आचारों की भी शिक्षा दी गई है। जैसे "स्वल्प रूप में भी अप्रिय भाषण न करे। मिथ्या वचन प्रिय हों तो भी न बोले और परदोषों को किसी से न कहे।" (३।१२।४) "किसी के साथ वैर आदि रखने में रुचि न रखे" (५)। "लोक निन्दित पतित, उन्मत्त बहुतों के वैरी, मिथ्या भाषी, अत्यन्त व्यय करने वाले, परनिन्दा में रुचि रखने वाले और दुष्टों के साथ कभी मित्रता न करे।" (३।१२।६।७)। "जो कुटिल पुरुषों से भी प्रिय भाषण करता है, मोक्ष सदा उसके हाथ में स्थित रहता है" '४।१३।४२) "ज्ञानी पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वह उसी प्रकार का सत्य बोलें जिससे दूसरों को सुख मिले। यदि किसी सत्य वाक्य से दूसरों का अहित होता हो तो मौन रहना ही उचित है" (३।१३।४३)।

यह सद्-आचार साधक को दिन-दिन ऊँचा उठाते हैं। मानवता के लिए इनका आचरण आवश्यक है।

प्रातःकाल के आचार—

भारतीय संस्कृति एक आदर्श संस्कृति है। मानवता का विकास इसका प्रमुख उद्देश्य है। आत्म विकास मानव का अन्तिम लक्ष्य है। प्रारम्भिक पाठ तो शिष्ट आचार हैं जिनके आचरण से हम समाजमें उत्तम नागरिक के रूप में रह सकें। यदि नागरिकता के साधारण नियमों का पालन सम्भव न हो तो आत्म-विकास की भी सम्भावना नहीं हो सकती। भारतीय ऋषियों ने प्रातःकाल उठने से लेकर रात्रि काल तक ऐसे नियमों का चयन किया जो व्यक्तिगत और सामाजिक-दोनों दृष्टियों से लाभदायक हैं। यह केवल नियम ही नहीं हैं। यदि उन पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो उनके गहन रहस्यों का पता चलेगा। यह निश्चय है कि

बिना उपयोगिता के किसी भी नियम को इन आचारों में स्थान नहीं दिया गया है।

विष्णु पुराण (३।११।८—२१) में मल-मूत्र सम्बन्धी स्वास्थ्योपयोगी नियमों का दिग्दर्शन कराया गया है "ब्रह्म मुहूर्त में उठने के पश्चात् ग्राम के नैऋत्य कोण वाली दिशा में जितनी दूर छोड़ा हुआ वाण जा सकता है, उतनी दूर से भी आगे बढ़कर मल-मूत्र का त्याग करे और अपने घर के आंगन में पाँव धोने का जल अथवा झूठा जल न डालें। अपनी छाया पर या वृक्ष की छाया पर अथवा गौ, सूर्य, अग्नि, वायु, गुरु और द्विजाति वाले किसी पुरुष के सामने जाकर मलमूल न करें। इसी प्रकार जोते हुए खेत, अनाज युक्त भूमि, गौओं के गोष्ठ, जन-सभा, मार्ग के मध्य, नदी आदि तीर्थ, जल या जलाशय के किनारे और श्मशानादि में कभी मल-मूत्र विसर्जन न करे। सम्भव हो तो दिन में उत्तर की ओर मुख करके और रात में दक्षिण की ओर मुख करके मूत्रोत्सर्ग करे। मल त्याग के समय पृथिवी को तिनकों से ढक लें और सिर पर वस्त्र लपेट लें और उस स्थान पर अधिक समय तक न रहें तथा मुख से भी कुछ न बोलें।"

"बाँबी की मिट्टी, चूहों द्वारा बिल से निकाली हुई, जल के भीतर की, घर लीपने की, चींटी आदि जीवों द्वारा निकाली हुई, हल द्वारा उखाड़ी हुई तथा शौच कर्म से बची हुई मिट्टी को शौच कर्म में काम न लें। हे राजन् ! उपस्थ में एक बार, गुदा में तीन बार, बाँये हाथ में दस बार और दोनों हाथों में सात बार मिट्टी लगाने से शुद्धि होती है। फिर निर्गन्ध, फेनहीन जल से आचमन करे और यत्नपूर्वक अधिक मिट्टी ग्रहण करे। उससे पाँवों को शुद्ध करे। पाँव धोने के उपरान्त तीन बार कुल्ला और फिर दो बार मुख को धोवे। फिर जल ग्रहण करके उससे इन्द्रियरन्ध्र, मूर्द्धा, बाहु नाभि और हृदय को स्पर्श करे। फिर भली प्रकार स्नान करके बालों को संभाले और आवश्यकतानुसार दर्पण, अजन दूर्वा आदि मांगलिक द्रव्यों का विधिपूर्वक प्रयोग करे।

मल मूत्रोत्सर्ग के बाद स्नान करना चाहिए (३।११।२४—२५)। स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारण कर देवता ऋषि और पितरों का तर्पण करने का आदेश है (२६)। श्लोक २४-३६ में तर्पण के विस्तृत नियम दिये गये हैं। तर्पण को केवल अपने सम्बन्धियों तक ही सीमित नहीं रखा गया वरन् प्राणी मात्र को, चाहे वह मनुष्य, पक्षी, पशु, जलचर, थलचर या अपना विरोधी ही क्यों न हो, उसे जलांजलि देने का नियम है (३५—३६) क्योंकि मूलरूप में सभी प्राणी एक हैं। जो इस एकता को अनुभव करता है उसी का आत्मविकास हुआ समझना चाहिए।

तर्पण के बाद आचमन, सूर्य भगवान को अर्घ्यदान, गृह देवता और इष्ट देवता की पूजा और अग्निहोत्र का विधान है (३।११।३२—४२। फिर पृथ्वी पर बलि भाग रखने और अतिथि की प्रतीक्षा करने का आदेश है (५५—५६)।

जो कुछ भी हम खाते हैं, उससे हमारे मन और बुद्धि का निर्माण होता है, सुख-दुःख के कर्मों का यही आश्रय है, इसलिए भोजन सम्बन्धी नियमों को बहुत ही पैनी दृष्टि बनाया गया है। शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से तो वह लाभदायक हैं ही, मानसिक व बौद्धिक पवित्रता के लिए भी वह आवश्यक हैं। भावना योग का भी इसमें समावेश है। आधुनिक भौतिक विज्ञान के यह अनुकूल हैं। मनोविज्ञान ने इन्हें उपयोगी पाया हैं। विष्णु पुराण (३।११।६१—८६) में भोजन सम्बन्धी नियम इस प्रकार वर्णित हैं—जो मनुष्य स्नान के बिना ही भोजन कर लेता है, उसे मल भक्षण करने वाला समझो। जप किए बिना भोजन कर लेना रुधिर और मूत्र पान करना है। असंस्कृत अन्न का भोजन करने वाला कीड़ों का और बिना दान किये बिना खा लेने वाला विष का भोजन करता है। इसलिए गृहस्थ जिस प्रकार भोजन करे उस विधि को श्रवण करो। स्नान के अनन्तर देवताओं ऋषियों और पितरों का तर्पण कर हाथ में श्रेष्ठ रत्न धारण पूर्वक पवित्रता से भोजन करे। जप और अग्निहोत्र के बाद शुद्ध वस्त्र पहिरे तथा अतिथि, ब्राह्मण, गुरुजन और अपने आश्रितों के भोजन करने के पश्चात् श्रेष्ठ पुष्पमालादि धारण और हाथ पाँव

प्रक्षालन आदि से शुद्ध होकर भोजन करे और भोजन करते समय इधर-उधर दृष्टिपात न करे।"

"अन्यमनस्क भाव को त्यागकर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर पथ्य अन्य को मन्त्रपूत जल के छींटे देकर उसका आहार करे। किसी दुराचारी पुरुष से प्राप्त, घृणोत्पादक या बलि वैश्वदेव आदि संस्कारों से रहित अन्न को त्याग दे तथा अपने भोजन योग्य अन्न में से कुछ अंश अपने शिष्य अथवा अन्य क्षुधार्त व्यक्तियों को देकर शुद्ध पात्र में अन्न रखकर उसका भक्षण करें। किसी वेत आदि के आसन पर स्थित पात्र में, अयोग्य या संकुचित स्थान में अथवा असमय में भोजन न करे। प्रथम अग्नि को अन्न का अग्रभाग देकर ही भोजन करें। मन्त्रपूत, प्रशस्त तथा ताजा अन्न का भोजन करे। परन्तु, मूल और सूखी शाखाओं के और चटनी में युड़ के पदार्थों के प्रति यह नियम लागू नहीं हैं। सारहीन पदार्थों का भोजन न करना ही इस कथन का उद्देश्य है। मधु, जल, घृत, दही, सत्तू आदि के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ को पूरा ही भक्षण न करे।"

"एकाग्र मन से भोजन करना चाहिए। पहिले मीठे, फिर नमकीन, फिर खट्टे और अन्त में कडुवे तीक्ष्ण पदार्थों का भोजन करे। जो मनुष्य प्रथम द्रव पदार्थ, मध्य में कठिन पदार्थ और अन्त में पुनः द्रव पदार्थ भक्षण करता है, उसके बल और आरोग्य का कभी क्षय नहीं होता। इस प्रकार अनिषिद्ध पदार्थों का वाणी के संयमपूर्वक भोजन करे। अन्न का कभी तिरस्कार न करे। पहिले पाँच ग्रास मौन रहकर खाय, वह पाँच प्राणों की तृप्ति करने वाले हैं। भोजन के पश्चात् भले प्रकार आचमन करे और पूर्व या उत्तार की ओर मुख करके हाथों को उनके मूल-देश तक धोकर पुनः विधिवत् आचमन करे। फिर स्वस्थ और शान्त मन से आसन पर स्थित हो और अपने इष्ट देवताओं का ध्यान करे। "प्राणवायु प्रदीप्त हुआ जठराग्नि आकाश से आकाशमय अन्त का परिपाक करता हुआ मेरी देहगत पार्थिक धातुओं का पोषण करे, जिससे मैं सुखी रहूँ, यह अन्न मेरे देह में स्थित पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के बल की वृद्धि करे तथा इन्हीं चारों तत्वों के रूप में हुआ यह अन्न मुझे सुखदायक हो।"

"यह अन्न प्राणापान, समान, उदान और व्यान को पुष्ट करे, जिससे मुझे वाधा रहित सुख मिल सके। मेरे भोजन किए हुए सब अन्न को अगस्ति नामक अग्नि और वड़वानल पकावें, उसके परिणाम से उपलब्ध होने वाला सुख दें और उससे मेरे देह को आरोग्य लाभ हो। देह तथा इन्द्रयादि के अधिष्ठाता केवल भगवान् श्री हरि के प्रधान हैं, इस सत्य के प्रभाव से मेरे भोजन का सब अन्न पककर मुझे अरोग्य - लाभ करावे। भोजन करने वाला, अन्न तथा उसका परिपाक—यह सब विष्णु ही हैं। इसी सत्य के प्रभाव से मेरे भोजन किए हुए इस अन्न का परिपाक हो—इस प्रकार कहकर अपने पेट पर हाथ फेरे और यत्न पूर्वक अधिक श्रम उत्पन्न न करने वाले कार्यों को करने लगें।"

इन नियमों को धर्म के साथ मिला दिया गया परन्तु वास्तव में यह स्वास्थ्य के वैज्ञानिक नियम हैं जिनके साथ मनोविज्ञान के तथ्यों को भी गूँथा गया है।

सायंकाल के आचारों में सन्ध्या सर्वोपरि है। इस पर काफी वल दिया गया है (३।११।९८) संन्ध्या न करने वाले को अन्धतामिस्र नरक की प्राप्ति का भय दिया गया है (१०१)। वलिवैश्वदेव और अतिथि पूजन करके भोजन करे।

सायंकाल के आचार—

शयन का वैज्ञानिक नियम इस प्रकार है—"शयन के समय पूर्व अथवा दक्षिण की ओर शिर रखे, अन्य दिशाओं में शिर रखना रोग उत्पन्न करने वाला होता है (३।११।१११) वैखानस धर्म सूत्र (३।१।४) में भी उत्तर और पश्चिम की ओर शिर करके शयन करने का निषेध किया गया है क्योंकि उत्तारीय ध्रुव से दक्षिण-ध्रुव की ओर जो लहरों का प्रवाह चलता है, उससे मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। शतपथ ब्राह्मण ३।१।१।७ में पश्चिम की ओर सिर करने का निषेध किया गया है क्योंकि पूर्व दिशा को देव दिशा स्वीकार किया गया है। सुश्रुत संहिता--सूत्रस्था १९।६ ने इस तथ्य का समर्थन किया है। इसका वैज्ञानिक कारण बताते हुए एक विद्वान ने लिखा है—"समस्त ब्रह्माण्ड की गति ध्रुव की ओर

होती है और ध्रुव की स्थिति उत्तर दिशा में होती है। इस कारण ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत पृथ्वी के भीतर की विद्युत धारा भी दक्षिण दिशा से उत्तराभिमुख प्रवाहित होती है। यदि हम उत्तराभिमुख सिर करके सोवें तो वह पार्थिक-विद्युत हमारे पैरों से होकर सिर की ओर प्रवाहित होगी, जिससे सिर में कई रोग हो जायेंगे और स्मायुपुंज में अस्वाभाविक उत्तेजना की वृद्धि होने से प्रवृत्ति अस्वस्थ रहा करेगी।"

समागम सम्बन्धी वैज्ञानिक निषेधात्मक नियमों का उल्लेख करते हुए पुराणकार ने (३।११।११२—१८) लिखा है—"ऋतुकाल को प्राप्त हुई अपनी ही भार्या से समागम करे। पुल्लिग नक्षत्र में, युग्म यात्रियों में बहुत रात गये तथा श्रेष्ठ समय देखकर ही नारी से संगति करे। अप्रसन्न मन वाली, रोगिणी, रजस्वला, अभिलाषा-हीन, क्रोधमयी, दुःखिनी या गर्भवती के साथ संगति न करे। जो सरल स्वभाव की न हो, अभिलाषा-हीन या दूसरे पुरुष की कामना वाली हो, भूख से व्याकुल या अधिक भोजन किए हुए हो ऐसी पत्नी, स्त्री गमन योग्य नहीं है। यदि अपने में भी इन दोषों की स्थिति हो तो उस दशा में भी संगति नहीं करनी चाहिए। स्नान करके पुष्प-माला तथा गंध लेपनादि से युक्त होकर काम और अनुराग के सहित स्त्री के पास जाय अतिभोजन करके अथवा भूखा रहने की अवस्था में संगति न करे। चौदस, अष्टमी, अमावस, पूर्णिमा तथा सूर्य की संक्रान्ति – यह सब पर्व-दिवस हैं। इनमें तैल-मर्दन, नारी-संयोग मृत्यु के अनन्तर मल-मूत्र युक्त नरक की प्राप्ति कराने वाला है। विद्वान पुरुषों को इन सभी पर्व-दिनों में संयम पूर्वक सत्-शास्त्रों का अध्ययन, देववन्दन, जप और ध्यानादि कार्य करने चाहिए।"

यह स्वास्थ्य रक्षा के लिए अत्यन्त उपयोगी सूत्र हैं।

लोकाचार—

विष्णु पुराण केवल वैष्णव सम्प्रदाय का प्राचीन ग्रन्थ ही नहीं है; इसमें अनेकों लोकोपयोगी तथ्यों का संकलन है जो लोकचार की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य, शिष्टाचार और सामान्य ज्ञान व उप-

योगिता पर वह आधारित है। (३।१२।६—२१) में इस प्रकार दिए गए हैं:—

जल प्रवाह के वेग के सामने से कभी स्नान न करें, जलते हुए घर में कभी न घुसे तथा वृक्ष के शिखर पर भी न चढ़े। दाँतों का आपस में घर्षण न करे, नासिका को न कुरेदे। बन्द मुँह में जमुहाई लेना, खाँसना या श्वास छोड़ना वर्जित है। जोर से न हँसें, अधोवायु का शब्द सहित त्याग न करे, नखों कों न चबावे, तिनका न तोड़े तथा भूमि पर न लिखे। मूँछ-दाढ़ी के बालों को भी न चबावे, दो ढेलों को परस्पर में न घिसे तथा निन्दित और अशुद्ध नक्षत्रों का दर्शन न करे। नग्नावस्था वाली परनारी को न देखे, उदय या अस्त होते हुए सूर्य के दर्शन न करें। शव या शव की गन्ध से घृणा न करे, क्योंकि शव गन्ध का चन्द्रमा का अंश है। चौराहा, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन तथा दुष्टा स्त्री की निकटता—इन सबको रात्रिकाल में त्याग दे। अपने पूजनीय देवता, ब्राह्मण और ज्योतिषियों की छाया को कभी भी न लाँघे तथा सूने जंगल या सूने घर में भीं अकेला न रहे। केश, अस्थि, काँटे, अशुद्ध वस्तु बलि, भस्म, तुष और स्नान से गीली हुई भूमि को दूर से ही त्याग दे। अनार्य पुरुष का संग और कुटिल मनुष्य में आसक्ति न करे, सर्प के समीप न जाय और नींद खुलने पर देर तक न लेटे। जागने, सोने, स्नान करने, बैठने, शय्या पर लेटने और व्यायाम करने में अधिक देर न लगावे। दाँत और सींग वाले पशुओं को, ओस को, सामने की वायु को और धूप को सर्वथा छोड़ दे। नङ्गा होकर स्नान, शयन और आचमन न करे और बालों को खोलकर आचमन या देवपूजन ही करे। हवन, देव-पूजन, आचमन, पुण्याहवाचन और जर में एक वस्त्र धारण पूर्वक ही प्रवृत्त न हो। संशय हृदय पुरुषों का कभी साथ न करे। सदाचारी पुरुषों का सदा साथ करे, क्योंकि ऐसे मनुष्य के साथ तो आधे क्षण रहना भी प्रशंसनीय है।"

गुरुजनों के सामने पैर न पसारे और उच्चासन पर बैठने का आदेश है (३।१२।२४)। गुरु ब्राह्मण-देवता और माता-पिता की पूजा से

शरीरधारियों के जीवन की सफलता मानी गई है (५।२१।४)। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, वायु और पूज्य व्यक्तियों के समक्ष थूकने और मल-मूत्र विसर्जन करने का निषेध है (३।१२।२७)। भोजन, हवन, देव-पूजन के समय थूके व छींके नहीं (२९)। पूज्य पुरुषों का अभिवादन किए बिना घर से बाहर न जाए (३१)।

यह लोकाचार की उपयोगी बातें हैं जो प्रत्येक उत्तम नागरिक को जाननी आवश्यक हैं। अध्यात्म का आरम्भ आचार से होता है। जो आचार में दक्ष नहीं है, उसके आत्म साधना में सफलता प्राप्त करने में सन्देह ही है।

जीवन निर्माण के अमूल्य सूत्र

विष्णुपुराण जीवन निर्माण की साधना विधान प्रस्तुत करता है, जिन पर चलकर मानव का पूर्ण उत्थान सम्भव है। यह सिद्धान्त अनुभव गम्य और वेद शास्त्र अनुमोदित हैं। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

मोक्ष प्राप्ति का साधन-निष्काम कर्मयोग

शास्त्रकारों की घोषणा है कि मन को निष्काम कर लेने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। (मनु ६।३४, अमृत बिन्दु २)। "जिसका मन एक बार शुद्ध और निष्काम हो जाता है, उस स्थितप्रज्ञ पुरुष से फिर कभी पाप होना सम्भव नहीं अर्थात् सब कुछ करके भी वह पाप पुण्य से अलिप्त रहता है" (बौद्ध ग्रंथ) गीताकार (२।५१) ने भी कहा है "समत्व बुद्धि से जो ज्ञानी पुरुष कर्मफल का त्याग करते हैं, वे जन्म के बन्धन से मुक्त होकर परमेश्वर के दुःख विरहित पद को जा पहुँचते हैं।" इसीलिए भगवान ने स्वयं कहा कि "मुझे कर्म का लेप अर्थात् बाधा नहीं होगी क्योंकि कर्म के फल में मेरी इच्छा नहीं है। जो मुझे इस प्रकार जानता है, उसे कर्म की बाधा नहीं होती।"

प्रह्लाद को जब भगवान् के दर्शन हुए और भगवान् ने वर माँगने को कहा तो इसी पवित्र भावना से प्रेरित होकर उसने कहा "हजारों योनियों में से मैं जिस-जिस योनि को प्राप्त होऊँ, उस उसमें ही मेरी भक्ति आप में सदैव अक्षुण्ण रूप से बनी रहे। जैसे अविवेकी जन विषयों में अविचल प्रीति रखते हैं, वैसे ही आप मेरे हृदय से कभी भी पृथक् न हों।" (१।२०।१८,१९)

ऐसी निष्काम बुद्धि से जो भी भगवान् की भक्ति करता है। वह चिंतामुक्त जीवन व्यतीत करता हुआ अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है।

ईश्वर प्राप्ति का साधन ज्ञान साधना—

ज्ञान की परिभाषा करते हुए विष्णु पुराण (६।५।८६—८७) में कहा गया है। "वे ही समष्टि और व्यष्टि रूप हैं, वे ही व्यक्त और अव्यक्त हैं, वे ही सर्वसाक्षी, सर्वज्ञाता और सबके स्वामी हैं और वे ही सर्वशक्ति सम्पन्न परमेश्वर संज्ञक हैं। वे दोष रहित, मन रहित, विशुद्ध और एक रूप परमात्मा जिसके द्वारा देखे या जाने जाते हैं, वही ज्ञान है और इ के विपरीत अज्ञान है।" साधना में ज्ञान को उच्चतम स्थान प्राप्त है तभी गीता (४।३८) में कहा गया है। "इस लोक में ज्ञान के समान पवित्र सचमुच और कुछ भी नहीं है।" "पापी से पापी हो, तब भी वह इस ज्ञान नौका से तर जाता है (गीता ४।३६) यह ज्ञान रूपी अग्नि शुभ-अशुभ बन्धनों को जला डालती है (गीता ४।३६)। ज्ञान से मोह का नाश होता है और साधन समस्त प्राणियों को अपने में भगवान् दीखने लगता है (गीता ४।३५)। ज्ञान से ही परमेश्वर की प्राप्ति कही गई है (महाभारत का० ३८०।३)। ज्ञानी को कर्म दूषित नहीं कर सकते (छांदोग्य ४।१४।३)। इसी आधार पर विष्णु पुराण (२।६।४८) में ज्ञान को पर-ब्रह्म कहा गया है। इसी के माध्यम से वह ईश्वर से मिल सकता है।

आत्म-विकास की कसौटी साम्यभाव—

यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि हर प्राणी में आत्मा का निवास है। वह आत्मा एकरस अविनाशी, अवध्य है। गलना, सड़ना अथवा नष्ट

होना उसकी प्रकृति में नहीं है। नाश तो पंचभौतिक शरीर का होता है। अतः ज्ञानी पुरुषों का कहना है कि वाह्य आकृति से भले ही जीवधारियों में अन्तर प्रतीत होता हो, वस्तुतः उनका कोई अन्तर नहीं है। सर्वत्र एक आत्मतत्व ही बिखरा हुआ है। ऐसा जानना और अनुभव करना ही ज्ञान है। जो व्यक्ति अपने को किन्हीं भौतिक विशेषताओं के कारण दूसरों से बड़ा समझता है, वह इसकी अज्ञानता है। इस अज्ञानता से शक्ति क्षीण होती है क्योंकि वह अपने को एक साधारण प्राणी मानने लगता है और ज्ञान से शक्ति का विकास होता है, क्योंकि वह अपने को महान आत्मा अनुभव करता है। प्रह्लाद की सफलता का रहस्य समान भाव में ही था। वह किसी को अपना शत्रु व वैरी नहीं समझता था। तभी किसी भी आपत्ति का उस पर प्रभाव न पड़ा। उसने स्वयं दैत्य पुत्रों को शिक्षा देते हुए कहा था। "तुम सबके प्रति समान दृष्टि रखो क्योंकि सब समानता ही भगवान् अच्युत की परम आराधना है।" (१।१७।६०)।

साधना की उच्चतम स्थिति का सरल मार्ग भक्ति –

भक्ति का अर्थ है प्रेम। नारद भक्ति सूत्र में कहा है कि परमात्मा में परम प्रेम ही भक्ति का स्वरूप है। शांडिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार ईश्वर में परम अनुराग का नाम ही भक्ति है। गर्ग मुनि का मत है कि भगवान की कथा अर्थात् नाम, रूप, गुण और लीला के कीर्तन में अनुराग का नाम ही भक्ति है। भागवत में लिखा है "भगवान् की महिमा और गुणगान श्रवण करते ही समुद्र की ओर प्रस्थान करती हुई गंगाजी की अविच्छिन्न धारा की तरह चित्त की जब निष्काम अविच्छिन्न गति हो जाती है, उसी को भक्तियोग कहते हैं।" वास्तव में अव्यक्त ईश्वर को व्यक्त द्वारा अनुभव करने की साधन प्रणाली को ही भक्ति कहा गया है।

विष्णुपुराण में भक्त प्रह्लाद प्रार्थना करते हैं "जिस तरह विषय भोगों में लिप्त लोगों में विषयों के प्रति एक-चित्त प्रीति होती है, वैसे ही भगवान् के प्रति अटूट और अविच्छिन्न प्रेम भक्ति का लक्षण है।"

इसी भक्ति भावना को विकसित करने के लिए विष्णुपुराण (१।१७। (८६।८९) में कहा है "हे शान्ति, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, मेघ, वरुण,

सिद्ध, राक्षस, यक्ष, दैत्येन्द्र, किन्नर मनुष्यों और पशुओं के अपने मन से उत्पन्न दोषों से, ज्वर, नेत्ररोग, अतिसार, प्लीहा और गुल्मादि रोगों से, तथा द्वेष ईर्ष्या, मत्सर राग, लोभ और किसी भी अन्य भाव से नष्ट नहीं हो सकती, वह अत्यन्त निर्मल परम शान्ति भगवान् केशव में मन लगाने से प्राप्त हो सकती हैं।" भगवान् ने गीता में भक्तों को स्वयं आश्वासन देते हुए कहा है—"वह भक्ति से मेरा तात्विक ज्ञान पायेगा और तात्विक ज्ञान प्राप्त हो जाने पर वह मुझमें प्रवेश पा जाएगा (१८।५५)।

इससे स्पष्ट है कि भक्ति से साधना की उच्चतम स्थिति तक पहुँचना सम्भव है।

शक्ति-संचय का साधन सद्गुण—

सद्गुण मानव की सच्ची सम्पत्ति है। धन वैभव ही धूप-छाँया की तरह क्षीण हो जाता है परन्तु सद्गुण सदैव साथ रहते हैं और मानव को अपने परम लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होते हैं। दुर्गुण इस प्रगति में बाधा उपस्थित करते हैं, इसलिए वह मानव के सबसे बड़े शत्रु माने गये हैं। इसलिए विष्णु पुराण ने सद्गुणों के विकास पर बल दिया है।

गुणों के अभाव की चर्चा करते हुए कहा गया है "जब गुण नहीं तो पुरुष में बल, शौर्यादि भी नहीं रहता और जिसमें बल शौर्यादि नहीं, उसे कहीं भी आदर प्राप्त नहीं होता।" (१।९।३१) इसका अभिप्राय यह है कि दुर्गुण शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक सभी शक्तियों पर कुठाराघात करते हैं और उन्हें नष्ट करते रहते हैं। दुर्गुणी शक्तिहीन होता है और सद्गुणी शक्तिशाली, पुराणकार की प्रेरणा है कि जिसे शक्ति संचय के पथ पर चलना हो, वह सद्गुणों को अपनाये। इसीलिए कहा गया है कि सद्गुणों से ही मनुष्य प्रशंशित होता है" (१।१३।४७) शक्ति की ही सर्वथा पूजा और सम्मान होता है और शक्तिहीन का तिरस्कार।

गुणों के आधार पर ही मनुष्य के जीवन का निर्माण होता है क्योंकि गुणों की प्रेरणा से प्राणियों की प्रवृत्ति होती है।" (२।१४।४) यही गुण उसे चोर, डाकू या महात्मा वनाते हैं, यही महान् पुरुष या दर-दर का भिखारी बनाते हैं, यही क्षुद्र या उच्च बनाते हैं, यही कलंकित करते हैं और यही प्रशंसित। अतः दुर्गुणों से सावधान रहकर सद्गुणों के विकास में लग जाना चाहिए।

कथाओं के माध्यम से भी सद्गुणों की प्रशंसा की गई है। अक्रूरजी को सद्गुणी घोषित करते हुए कहा गया है कि जब उन्होंने नगर का त्याग किया तो वहाँ दुर्भिक्ष और महामारी आदि उपद्रव होने लगे (८।१३।१२७-१२८) जब उन्हें वापिस लाया गया तो सभी उपद्रवों की शान्ति हो गई (१३०)।

पौण्ड्रकवंश में वासुदेव नामक एक राजा हुआ था, जिसे अज्ञान से भ्रमे हुए मनुष्य वासुदेव रूप से अवतीर्ण हुआ कहकर उसकी स्तुति करते थे। इसमे वह भी यह मान बैठा कि मैंने ही वासुदेव रूप से भूतल पर अवतार लिया है। इस प्रकार अपने को भूल जाने के कारण उसने भगवान् विष्णु के सभी चिन्हों को धारण कर लिया। फिर उसने भगवान् श्रीकृष्ण के पास दूत के द्वारा यह सन्देश भेजा कि अरे मूढ़! तू वासुदेव नाम और चक्रादि सब चिह्नों का अभी त्याग कर दे और यदि अपना जीवन चाहता है तो मेरी शरण में उपस्थित हो (५।३४।५—७)।

भगवान् कृष्ण ने स्वयं उपस्थित होकर उसका गर्व मर्दन किया। पौण्ड्रक ने विष्णु के वाह्य चिन्ह धारण करके ही विष्णु का अवतार बनना चाहा। वेषभूषा को धारण करने से कोई वैसा नहीं बन जाता, यह निर्माण गुणों के आधार पर ही होता है। यह गुण ही क्षुद्र से महान बनाते हैं। बाह्य आकार आकर्षक हो या न हो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसलिए पुराणकार ने नाशवान शरीर की सजावट की ओर ध्यान न देकर सद्गुणों के विकास पर बल दिया है।

धर्म पालन का अभिप्राय

विवेकयुक्त व्यवहार—

धर्म का अर्थ केवल पूजा, पाठ और मन्दिर में जाकर भगवान् की

साकार मूर्ति के समक्ष सर झुकाना ही नहीं है। धर्म के बड़े व्यापक अर्थ हैं। प्राय: इसके प्रति गलत धारणा बताई जाती है। हमारे शास्त्रकारों ने इसका सुन्दर स्पष्टीकरण किया है।

"जो व्यवहार अपने विरुद्ध हो, उसको दूसरे के साथ मत करो। यही धर्म का तत्व है" (विष्णुधर्मोत्तर ३।२५८।४४) 'जिस व्यवहार से इस लोक में आनन्द भोगते हुए परलोक में कल्याण प्राप्त हो, वही धर्म है" (वैशेषिक) "न्याययुक्त कार्य धर्म और अन्याययुक्त कार्य अधर्म है, यही श्रेष्ठ पुरुषों का मत है" (महाभारत, वनपर्व २०७।६७। "सत्य बोले और प्रिय बोले, अप्रिय सत्य न कहे, मिथ्या प्रिय न कहे, यह सनातन धर्म है" (मनु० ४।१३८)। यही पाण्डित्य है, यही चतुरता है, परम धर्म है कि आय से अधिक खर्च न हो" (पद्म पु० सृष्टि खण्ड अ० ५०) धर्म के तीन स्कन्ध हैं - यज्ञ, अध्ययन और दान" (छान्दोग्य) समग्र मानव जाति का—प्राणीमात्र का - जिससे हित होता हो, वही धर्म है" (तिलक)। "दया धर्म का मूल है" (तुलसी)। "सत्य बोलना, सब प्राणियों को एक जैसा समझना, इन्द्रियों को वश में रखना, ईर्ष्या द्वेष से बचना, क्षमा, शील लज्जा, दूसरों को कष्ट न देना, दुष्कर्मों से अलग रहना, ईश्वर भक्ति. मन की पवित्रता, साहस, विद्या, यह १३ धर्म के लक्षण हैं। इनका पालन सबसे उत्तम धर्म है" (भीष्म)।

इसी धर्म को विष्णु पुराण में अपनी स्वाभाविक शैली में अभिव्यक्त किया गया है। १।७।२३ में कहा है "श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि. लज्जा, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति और वपु ये तेरह कन्याएँ भार्या रूप में धर्म ने ग्रहण कीं।" अर्थात् यह गुण धर्म के जीवन साथी रहते हैं। आगे २९।३१ श्लोकों में कहा गया है "इसी प्रकार मेधा ने श्रुत क्रिया ने दण्ड, नय और विनय, बुद्धि ने बोध, लज्जा ने विनय, वपु ने व्यवसाय, शान्ति ने क्षेम, सिद्धि ने सुख और कीर्ति ने यश को उत्पन्न किया। धर्म के यही सब पुत्र हैं धर्म पुत्र काम ने रति से हर्ष को प्रकट किया। धर्म के जो पुत्र घोषित किये गये हैं, वह धर्म पालन के सहज परिणाम हैं। यह धर्म की सुन्दर व्याख्या है।

धर्म की ओर प्रवृत्त करने के लिए कथा का भी सहारा लिया गया है। एक बार दैत्य "धर्म के पालक, वेदमार्ग पर चलने वाले तथा तपोनिष्ठ हो गये" (३।१८।३६)। देवता घवराये। विष्णु के पास गये। विष्णु ने अपनी देह से माया-मोह को उत्पन्न किया जो दैत्यों के पास गया। उसने अनेकों युक्तियों से दैत्यों को वैदिक मार्ग से हटा दिया, धर्म से विमुख कर दिया (३।१८।७–११) तब देवता दैत्यों पर विजय प्राप्त करने में सफल हो गये। इससे स्पष्ट है कि धर्म पालन में शक्ति सिद्धि, और सफलता है और अधर्म में विफलता है। इस प्रकार से पुराण ने धर्म पालन की प्रेरणा दी है।

ईश्वरीय शक्ति के सहवास से निर्भयता प्राप्ति—

प्रह्लाद का चरित्र निर्भयता का प्रतीक है। विष्णु के प्रति उसकी एक निश्चित धारणा बन चुकी थी जिसे उसके पिता नहीं चाहते थे परन्तु प्रह्लाद ने उसे अपने मन से हराने से मना कर दिया। हिरण्यकशिपु ने इसे अपनी अवज्ञा समझा और पुत्र को डाँटा, फटकारा और घोर दण्ड का भय दिया परन्तु जिसको विश्व की महानतम शक्ति का सहारा प्राप्त हो, वह सांसारिक शक्तियों में क्यों भयभीत हो ? कथा के अनुसार पिता ने पुत्र को वह मृत्यु तुल्य दण्ड दिए जो एक सहृदय पिता अपने पुत्र के लिए कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। सर्पों से डसवाया गया (१।१६। ३७) जिनका उसके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सर्पों ने कहा— इसके काटने से हमारी दाढ़ें विदीर्ण हो गईं, मणियों में दरारें पड़ गईं, फणों में दर्द होने लगा (१।१७।४०) पर्वत की शिखर के समान विशाल देह वाले दिग्गजों ने उस बालक को पृथ्वी पर डालकर अपने दाँतों से रौंदने की चेष्टा की (१।१७।४२)। अग्नि ने उसे भस्म करने की चेष्टा की (१।१७।४६) परन्तु प्रह्लाद ने कहा "मुझे सभी दिशायें ऐसी शीतल लग रही हैं जैसे मेरे चारों ओर कमल के पुष्प बिछ रहे हों (१।१७।४७) रसोईयों ने उसे हलाहल विष दिया (१।१८।४) वह भगवन्नाम के प्रभाव से तेजहीन हो गया। उसे वह बिना विकार के पचा गए और स्वस्थ चित्त

रहे (१।१८।६)। जब ब्राह्मणों ने कृत्या से मारने का भय दिखाया (१।१८।३०) तो प्रह्लाद ने कहा "कौन किसके द्वारा मारा जाता व रक्षित होता है ? शुभाशुभ आचरणों से यह आत्मा स्वयं अपनी रक्षा अथवा विनाश में समर्थ है" (१।१८।३१)।

जब कृत्या का प्रयोग किया गया और त्रिशूल ने क्रोधपूर्वक प्रहार किया तो त्रिशूल टूट गया और उसके सैकड़ों टुकड़े हो गए (१।१८।२५) प्रह्लाद ने कहा "जिस हृदय में भगवान का निरन्तर निवास है, उसके स्पर्श से त्रिशूल तो क्या, वज्र के भी टुकड़े उड़ जाते हैं (१।१८।३६)। जब उसे सौ योजन ऊँचे भवन से गिराया गया (१।१९।०१) तो पृथ्वी ने ऊँचे उठकर उसे गोद में ले लिया (१।१९।१९) शम्बरासुर की मायाओं का उस पर प्रभाव न पड़ा (१।१९।२०) वायु ने भी असफल प्रयत्न किया (१।१९।२२)। पर्वतों के हजारों विस्तृत ढेर कर दिए और उसे दबाना चाहा (१।१९।६२) परन्तु वह निर्भय रहा। पिता से उसके कहे यह शब्द मार्मिक हैं "जिनके स्मरण-मात्र से जन्म, जरा, और मृत्यु के सभी भय भाग खड़े होते हैं, उन भयहारी भगवान के हृदय में विराजमान होते हुए मेरे लिए भय कहाँ रहेगा ?" (१।१७।३६)

जीवन में व्यक्ति को कठिनाइयों और भयभीत करने वाले विरोधाभासों का अनुभव होता है, उस समय प्रह्लाद का चरित्र डूबते को तिनके के सहारे की तरह काम देता है। इससे बड़े से बड़े भयों से निर्भय रहने की प्रेरणा मिलती है।

कर्म निश्चित फल की आशा के सूचक हैं

कर्म का सिद्धान्त निश्चित, अटल और वैज्ञानिक है। इसके अनुसार मनुष्य जैसे कर्म करता है, वैसे ही वह फल पाता है। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' (४।४।५) का कथन है कि "मनुष्य की जैसी इच्छा होती है, वैसे ही उसके विचार बनते हैं, विचारों के अनुसार ही उसके कर्म होते हैं, कर्मों के अनुसार ही वह फल पाता है।"

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जो कार्य भी हम करते हैं,

उसका सूक्ष्म चित्रण हमारे अन्तर्मन में हो जाता है। इस चित्रण को आध्यात्मिक भाषा में रेखायें कहा जाता है। इस सिद्धान्त के प्रबल समर्थक हैं विश्व प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० फ्राइड। अन्तर्मन पर हुए चित्रण को ही भाग्य रेखायें कहा जाता है। वैज्ञानिक ने इन रेखाओं का मनन अध्ययन किया है। डा० ईवन्स इसमें अग्रणी रहे हैं। उन्होंने अपने अनुसन्धान के फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला कि जब मस्तिष्क के भूरे चर्बीदार पदार्थ को सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों से देखा गया तो उसके एक-एक परमाणु पर असंख्य रेखाएँ अंकित हुई मिलीं। यह रेखाएँ क्रियाशील प्राणियों में अधिक और क्रिया शून्य प्राणियों में कम देखी गईं। विशेषज्ञों का कहना है कि यही रेखायें उपयुक्त समय पर कर्मों का साकार रूप धारण करती रहती हैं। इसे ही कर्मफल कहते हैं।

कर्मों का सूक्ष्म रेखांकन स्वचालित यन्त्र द्वारा ही अपने आप होता रहता है। इस प्रतिक्रिया को समझने के लिये चित्रगुप्त रूपी देवता का नाम रखा गया है कि वह प्राणियों के सभी कर्मों जो निरन्तर अपनी बही में लिखता रहता है और मृत्यु के पश्चात् जब प्राणी को यमराज के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो चित्रगुप्त ही उसके भले-बुरे कार्यों का लेखा-जोखा बताते हैं, उसी के अनुसार फल मिलता है। यह चित्र-गुप्त वास्तव में हमारा अन्तर्मन गुप्त मन ही है जो निरन्तर हमारे कार्यों के चित्र लेता रहता है और उन्हें सुरक्षित रखता है। उपयुक्त समय आने पर उन्हें प्रकट कर देता है।

विष्णु पुराण में कर्म सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। (१।१।१७) में कहा है "कोई किसी का वध नहीं करता है क्योंकि सब अपने-अपने कृतकर्मों का फल भोग किया करते हैं।" कर्म की अमिट रेखाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है (१।११।१७) "पूर्व जन्म के कर्म का फल कोई नहीं मिटा सकता और जो तूने नहीं किया, उसे कोई दे नहीं सकता।" बड़े विश्वास के साथ कहा गया है (१।१६।५-६) "जो मनुष्य दूसरों का कभी बुरा नहीं करना चाहता, उसका अकारण ही कभी अनिष्ट नहीं होता। जो मनुष्य मन, वचन, कर्म से किसी को कष्ट

देता है, उसे उस पर पीड़ा रूप कर्म के द्वारा उत्पन्न हुआ अत्यन्त अशुभ फल प्राप्त होता है।"

कर्म सिद्धान्त पर विश्वास करने वाले जब श्रेष्ठ कर्म करते हैं तो वह अपने निश्चित उज्ज्वल भविष्य की आशा रखते हैं। इसीलिए कहा गया है "श्रेष्ठ चित्त वाला होने से मुझे दैविक, मानसिक अथवा भौतिक दु:ख कैसे मिल सकता है?" (१।१९।८)।

यह सिद्धान्त निश्चित भविष्य की आशा का प्रेरक है।

सफलता की कुन्जी—पुरुषार्थ—

वैसे तो उत्थान के लिए पुराणकार ने अनेकों मार्ग और साधनाओं का मार्ग-दर्शन किया है परन्तु ध्रुव चरित्र के माध्यम से जो पुरुषार्थ का वर्णन किया गया है, वह सबसे श्रेष्ठ माना जायेगा क्योंकि वही सब साधनाओं के मूल में है। इसी के बल पर सभी साधनायें सफल होती हैं।

ध्रुव को अपने अधिकारों से वञ्चित होना पड़ा। वह घबड़ाया नहीं। अपने अधिकार के लिए पात्रता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। यह पात्रता प्राप्त करने के लिए उसने पुरुषार्थ का सहारा लिया। उसने स्वयं कहा "किसी दूसरे के द्वारा दिए पद की अभिलाषा नहीं करता, मैं तो अपने पुरुषार्थ से ही उस पद को पाना चाहता हूँ जिसे पिताजी भी नहीं प्राप्त कर सके हैं।"

उन्नति की कोई सीमा नहीं है। इससे असीम उन्नति की आशा की जाती है। जिस तरह ध्रुव ने पुरुषार्थ से अमर पद पाया, उस तरह पुराणकार विश्वास दिलाते हैं, कि हर कोई ऐसा कर सकता है।

संघर्ष का उद्देश्य अधिकार नहीं कर्त्तव्य हो—

हर युग में हर तरह के व्यक्ति हुए हैं। कोई न्याय या अन्यायपूर्वक स्वार्थ या लोभवश संघर्ष करके अपने अधिकार प्राप्त करते हैं और किन्हीं ने न्याय और कर्त्तव्य के लिए अपने जीवन खपा दिये, कोई अपने क्षेत्र के विस्तार में लगा रहा है, कोई उनकी सुव्यवस्था में। कंस, रावण और हिरण्यकशिपु जैसे राजा अन्याय के लिए प्रसिद्ध हैं और राम, कृष्ण जैसे

राजा अपने न्याय के लिए। जब राम ने रावण पर विजय प्राप्त करली तो वह सुविधापूर्वक लंका के शासक बन सकते थे परन्तु उन्होंने इसे अपना अधिकार नहीं समझा, उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इसे विभीषण को दे दिया। यही उचित था।

यही आदर्श विष्णु पुराण (पंचम अंश के २१ वें अध्याय (में कृष्ण द्वारा उपस्थित किया गया है। कंस के उत्पात बहुत बढ़ रहे थे, वह दमन की नीति का अनुयायी था। प्रजा अत्यन्त दुःखी थी, जिसने शासन के विरुद्ध सर उठाया, उसे दबा दिया गया। कृष्ण ने भी विरोध किया। कंस ने कृष्ण को मारने के अनेकों प्रयत्न किये परन्तु वह सफल नहीं हुआ। कृष्ण की योजना सफल हुई, क्योंकि कंस की दमन नीति से उसके सहायक भी उसके विरोधी हो गये और गुप्त रूप से कृष्ण का साथ दे रहे थे। कृष्ण ने कंस को मारकर सत्ता हथियाने का प्रयत्न नहीं किया। कंस अन्याय की प्रतिमा थे। उसे नष्ट करना ही उनका उद्देश्य था। वह चाहते तो स्वयं शासन की बागडोर सभाल सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कंस के पिता उग्रसेन को उन्होंने शासक नियुक्त किया। उन्होंने अधिकार के लिए नहीं, कर्त्तव्य के लिए संघर्ष किया और कर्त्तव्य की पूर्ति होने पर स्वयं अलग हो गये। यही आदर्श है जिसके पालन की आज आवश्यकता है।

अनधिकार चेष्टाओं से दूर रहने के कुछ और उदाहरण भी विष्णु-पुराण में दिए गए हैं। एक बार कृष्ण और सत्यभामा इन्द्रपुरी गये। सत्यभामा को शची के परिजाति वृक्ष के पुष्प पसन्द आये और कृष्ण को पारिजात ले जाने के लिए प्रेरित किया। जब वृक्ष को ले जाने लगे तो द्वारपाल ने रोका, इन्द्र व अन्य देवता भी वहाँ आ गये और उस वृक्ष पर घोर संग्राम हुआ। अन्त में इन्द्र की पराजय हुई और इन्द्र कृष्ण को पारिजात ले जाने से रोक न सके। सत्यभामा ने कहा "मुझे इस पारिजात रूप पराई सम्पत्ति को ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। (५।३०।७६) मैंने तो शची का गर्व मर्दन करने के लिये यह युद्ध कराया था।"

राजा शान्तनु का उदाहरण प्रेरणाप्रद है। विष्णु पुराण (४।१०—१४।२१) में इस प्रकार कथा वर्णित की गई है। शान्तनु के शासन काल में एक समय बारह साल पर्यन्त बरसात नहीं हुई। तब अपने समस्त राज्य को समाप्त होता देखकर नृप शान्तनु ने विप्रों से पूछा "मेरे देश में वर्षा का अभाव क्यों है ? इसमें मेरी क्या त्रुटि है। ब्राह्मण बोले—"जिस राज्य को आप भोग रहे हैं, वह आपके ज्येष्ठ भ्राता का है, इसलिए आप तो केवल संरक्षक मात्र हैं।" यह सुनकर शान्तनु ने पुनः पूछा—"इस परिस्थिति में अब मुझे क्या करना अभीष्ट है ?" ब्राह्मणों ने उत्तर दिया —"आपके ज्येष्ठ भ्राता देवापि किसी प्रकार पतित या अनाचारी होकर राज्य से पदच्युत होने योग्य न हों, तब तक इस राज्य के अधिकारी वही हैं। इसलिए आप इस राज्य को अपने भाई को ही सौंप दें, आपका इससे कोई सम्बन्ध नहीं।"

शान्तनु ने अपने अनधिकार को स्वीकार किया। पुराणकार के अनुसार ब्राह्मणों के वचन सुनकर दुखित एवं शोकाकुल राजा शान्तनु ब्राह्मणों को संग लेकर ज्येष्ठ भ्राता को राज्य सौंपने वन को गये। वे सभी सरलमति विनीत व्यवहारी राजकुमार देवापि के आश्रम पर पहुँचे। जहाँ ब्राह्मण उन्हें समझाते रहे और "ज्येष्ठ भ्राता को ही राज्य करना चाहिए।" आदि वेदों के अनुसार नीति एवं उपदेशपूर्ण वचन कहने लगे। लेकिन देवापि ने वेद नीति के विरुद्ध उनसे अनेक प्रकार से दूषित वचन कहे। जिन्हें सुनकर शान्तनु से उन ब्राह्मणों ने कहा—हे नृप ! चलिए, अब अधिक आग्रह करने की आवश्यकता नहीं है। आदि काल से आराध्य वेद वाक्यों के विरुद्ध दूषित वचन कहने से देवापि पतित हो गये हैं। अब आप चलें अनावृष्टि का दोष समाप्त होकर आपके राज्य में वर्षा प्रारम्भ हो गई है। चूँकि बड़ा भाई इस प्रकार पतित हो चुका है, इस कारण अब आप संरक्षक या परिवेत्ता मात्र नहीं हैं। फिर शान्तनु अपने राज्य को लौट आये और शासन करने लगे।" (४।२०-२३।२४)

शान्तनु को जब यह पता चला कि राज्य पर उसका अधिकार नहीं है तो वह उसे छोड़ने के लिए तैयार हो गये। अनधिकार पूर्वक राज्य

करने से वर्षा का अभाव हो गया था परन्तु जब बड़े भाई को ब्राह्मणों ने अयोग्य पाया और शान्तनु को राज्याधिकार मिल गया तो वर्षा आरम्भ हो गई। अनाधिकार चेष्टा से दैवी प्रकोप होता है और अधिकार पूर्वक कार्य करने पर दैवी सहायता मिलती है। कथा का अभिप्राय यह है कि हमें अविवेक के वश में होकर अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। इस सीमा रेखा के प्रति सदैव सतर्क रहना चाहिए क्योंकि अनाधिकार की सीमा में प्रवेश करके कलह, क्लेश, संघर्ष, कठिनाई और घोर विरोधों का सामना करना पड़ेगा जिससे मन हर समय अशान्त रहेगा और यह भी सम्भव नहीं कि वह अनधिकार का प्रयत्न सफल हो जाये।

आत्म निरीक्षण—

मानव अपूर्ण है। यह अपनी अपूर्णता को दूर करने के लिए पूर्ण की ओर प्रवृत्त होता है। ईश्वर पूर्ण है दोष रहित है। उससे अनुकूलता प्राप्त करने के लिए अपने दोषों का परिमार्जन करना पड़ेगा। विवेक की जाग्रति बिना यह सम्भव न होगा। कौन-सा कार्य करने योग्य है और कौनसा न करने योग्य, ग्रहण और त्याग योग्य कर्मों का निरीक्षण करना होगा। उचित और अनुचित को परखना होगा और उचित को स्वीकार करना होगा। अपने गरेबान में झाँककर देखना होगा कि मुझमें कौन-कौन से दोष हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है, जिनसे आत्म विकास में बाधा उपस्थित हो रही है। चार पुरुषार्थों पर विचार करना चाहिए। अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ और काम को सन्तुलित रखना आवश्यक है ताकि सुविधापूर्वक आगे बढ़ा जा सके। विष्णु पुराण (३।११-५।७) में इन तीनों पुरुषार्थों के प्रति सजग रहने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है "गतिमान पुरुष को स्वस्थ चित्त से ब्रह्म मुहूर्त में उठकर अपने धर्म तथा धर्म कार्य में बाधक विषयों पर विचार करना चाहिये और उस कार्य का भी विचार करे जिससे धर्म और अर्थ की हानि न हो। इस प्रकार दृष्टादृष्ट अनिष्ट की शान्ति के लिए धर्म, अर्थ और काम

इन तीनों के प्रति समभावी हो। धर्म के विरुद्ध जो अर्थ और काम हैं, उनका त्याग करे और ऐसे धर्म को छोड़ दे जो आगे चल कर दुःखमय हो जाय अथवा समाज के विरुद्ध हो।"

इस प्रकार का आत्मनिरीक्षण ही एक ऐसा उपाय है जिसमें दोषों को अनुभव करके उनका परिमार्जन किया जा सकता है।

सुखी दाम्पत्य जीवन का आधार—प्रेममय व्यवहार—

महर्षि सौभरि ने राजा मान्धाता की ५० कन्याओं के साथ विवाह किया। यह विस्तृत चरित्र चतुर्थ अंश के दूसरे अध्याय में वर्णित है। एक बार मान्धाता यह जानने के लिये महर्षि के आश्रम में गए कि उनकी कन्याएँ किस परिस्थिति में रह रही हैं। राजा सभी कन्याओं से मिले। सभी हर प्रकार से सुखी थीं, किसी तरह का उन्हें अभाव न था परन्तु हर कन्या ने अपने इस दुःख का वर्णन किया कि "हमारे पति यह महर्षि मेरे भवन से कभी निकलते ही नहीं, मुझ पर ही अत्यधिक स्नेह रहने के कारण यह हर समय मेरे ही पास रहते हैं, मेरी अन्य बहिनों के पास कभी नहीं जाते" (४।२।१०६-७)। सभी पत्नियाँ यह अनुभव करती हैं कि उनके पति उनसे सर्वाधिक प्रेम करते हैं। यही दाम्पत्य जीवन की सफलता का चिन्ह है। महर्षि भले ही योग बल से सभी पत्नियों के साथ एक ही समय में रह पाते हों परन्तु वास्तविकता यह है कि वह अपनी पत्नियों को सन्तुष्ट करने में सफल रहे। गृहस्थ जीवन उसी का सफल माना जाना चाहिए जिसकी पत्नी यह अनुभव करे कि जहाँ तक उसकी जानकारी है, अन्य पतियों की अपेक्षा उसके पति उससे अधिक प्रेम करते हैं। यह सन्तोष ही गृहस्थ जीवन के सुखी होने की नींव हैं। यही उत्तम कसौटी है।

गृहस्थ योग है—

गृहस्थ को बन्धन नहीं, योग की संज्ञा दी गई। अज्ञानियों के लिये तो वह बन्धन ही है क्योंकि इसमें सैकड़ों तरह के झन्झट पग-पग पर उपस्थित होते रहते हैं, परन्तु विवेकी पुरुष इस संघर्षमय जीवन को ही अपने

उत्थान का माध्यम मानते हैं। इसमें जो दुःख आते हैं, वह विकास के भविष्य की आशा लेकर आते हैं। गृहस्थ में क्रियाशीलता, चेतना और जागरूकता बनी रहती है, जो आत्मिक साधना के लिए अत्यन्त आवश्यक है। गृहस्थ किसी पर निर्भर नहीं रहता, अन्य आश्रमों का यह आश्रय स्थल है, यह किसी की सहायता नहीं चाहता, यह औरों की सहायता करता है। इसलिए इस आश्रम में आत्म विकास की काफी सम्भावना निहित है। तभी विष्णु पुराण (३।१।६।११) में गृहस्थ के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए इसे सर्वश्रेष्ठ आश्रम कहा गया है" पितरों की पिण्ड-दानादि से, देवताओं की यज्ञादि के अनुष्ठान से, अतिथियों की अन्न-दान से, ऋषियों की स्वाध्याय से, प्रजापति की पुत्रोत्पादन से, भूतों की बलि से और सम्पूर्ण विश्व की वात्सल्य भाव से सन्तुष्टि करे। अपने इन कर्मों के द्वारा वह पुरुष श्रेष्ठ लोक को प्राप्त कर लेता है। भिक्षा-वृत्ति पर निर्भर रहने वाले परिव्राजकों और ब्रह्मचारियों आदि का आश्रय भी यह गृहस्थाश्रम ही है, इसीलिए इसे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

गृहस्थ को प्रेरणा देते हुए कहा गया है (३।१२।१—७) कि "वह प्रतिदिन देवता, गौ, ब्राह्मण, सिद्धगण, गुरुजन और आचार्य का पूजन करे तथा दोनों समय सन्ध्योपासना और अग्निहोम करे। संयम पूर्वक रहे। किसी के किंचित मात्र धन का भी अपहरण न करे, अप्रिय भाषण न करे, परनारी में प्रीति न करे, दुष्टों के साथ कभी मित्रता न करे।" आज इन आदर्शों पर और कर्त्तव्यों पर ध्यान नहीं दिया जाता, इसलिए इस परम पवित्र गृहस्थ आश्रम का बोझ अनुभव किया जाता है।

गुरुजनों का सम्मान एक सामान्य शिष्टाचार—

'अद्वयतारक' उपनिषद् के अनुसार गुरु ही परब्रह्म है, गुरु ही परम गति है, गुरु ही परम विद्या है, गुरु ही परायण योग्य है, गुरु ही परा-काष्ठा है, गुरु ही परम धन है। वह उपदेष्टा होने के कारण श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है। यही भारतीय संस्कृति की धारणा है। प्राचीनकाल में गुरु निः-स्वार्थी, निर्लोभी, तपस्वी होते थे और निरन्तर अपने शिष्यों के उत्थान

के लिए प्रयत्नशील रहते थे, तभी तो महर्षि ऋभु अपने पुराने शिष्य निदाघ के निवास स्थान पर अद्वैत और आत्मबुद्धि की शिक्षा देने जाते हैं (विष्णु पुराण २।१६।१८) और निदाघ उनकी सेवा करते हैं, आज्ञा का पालन करते हैं, और गुरु के आदेश के अनुसार साधना में लग जाते हैं।

प्राचीन व्यवस्था में गुरु को काफी सम्मान दिया जाता था। बालक को गुरु-गृह में रहकर गुरु सेवा का आदेश दिया गया है (३।९।१-२)। गुरु के प्रति शिष्टाचार का पालन करते हुए (३।९।२-६) में कहा गया है, "गुरुदेव का अभिवादन करे। जब गुरुजी खड़े हों, तब खड़ा हो जाय, जब चलें तब पीछे-पीछे चले और जब बैठें तब नीचे बैठ जाय। इस प्रकार करते हुए कभी भी गुरु के विरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहिए। गुरुजी कहें तभी इनके सामने बैठकर वेद का अध्ययन करे और जब उनकी आज्ञा हो तब भिक्षा से प्राप्त अन्न का भोजन करे। जब आचार्य जल में स्नान कर लें तब स्नान करे और नित्य प्रति उनके लिए समिधा, जल, कुश, पुष्पादि लाकर एकत्र करे। इस प्रकार अपने वेदाध्ययन को पूर्ण करके मतिमान शिष्य गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके उन्हें गुरु-दक्षिणा दे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो।"

गुरुजनों की आज्ञा के पालन से सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन शास्त्रों में आया है। गुरु अन्धकार व अविवेक को नष्ट करते हैं, अतः शिष्टता-पूर्वक उनका सम्मान करना चाहिये।

पितृ सेवा—पुत्र का परम धर्म—

पिता बालक की उत्पत्ति में ही सहायक नहीं होता वह परिश्रम करके उसका पालन-पोषण करता है। अतः भारतीय संस्कृति में हर प्रकार से सम्मान योग्य माना गया है। राम ने तो यहाँ तक कहा था "पिताजी के लिये मैं जीवन दे सकता हूँ, भयङ्कर विष भी पी सकता हूँ, सीता कौशल्या और राज्य को भी छोड़ सकता हूँ" (अध्यात्म रामायण ३।५८-६०)। भरत को सम्बोधित करते हुए राम ने कहा, "जो व्यक्ति पिता के वचनों का उल्लंघन कर स्वेच्छापूर्वक वर्तता है, वह

जीता हुआ भी मृतक के समान है और मरने पर नरक को जाता है" अध्यात्म रामायण (६।३१)। पिता की प्रसन्नता के लिये भीष्म प्रतिज्ञा प्रसिद्ध है। श्रवणकुमार की सेवा को कौन भुला सकता है? इसीलिए पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए विष्णु पुराण ने भी कहा है, "पिता सर्वत्र प्रशसनीय है, वही गुरुओं के परम गुरु हैं. इसीलिए उन्हीं की स्तुति करनी चाहिये" (१।१८।१३)। पुराणकार ने भगवान कृष्ण के मुख से कहलवाया है "माता-पिता की सेवा किए बिना व्यतीत हुआ आयु भाग असाधुत्व को प्राप्त कराता हुआ व्यर्थ ही चला जाता है" (५।२१।३)।

राजा ययाति शुक्राचार्य के शाप से असमय में ही वृद्धहो गये। फिर यह छूट मिली कि वह अपने किसी पुत्र का यौवन लेकर अपनी वृद्धावस्था उसे दे सकते हैं और यौवनके भोगों को भोग सकते हैं। ययाति पुत्र पुरु ने अपना यौवन पिता को अर्पित करते हुए कहा,"यह तो आपका मुझ पर परम अनुग्रह है। इस प्रकार कहकर पुरु ने उनकी वृद्धावस्था लेकर अपनी युवावस्था उन्हें दे दी" (४।१०।१६-१७)। पितृ सेवा का यह भी एक अनोखा उदाहरण है–अपना यौवन पिता को अर्पित करना। यही सीख पुराणकार देना चाहते हैं कि पिता की सेवा हमारा परम धर्म होना चाहिये।

समय का सदुपयोग –

समय को एक मूल्यवान सम्पत्ति माना जाता है। जो इसका सदुपयोग करता है, सफलता उसके पैर चूमती है, दुरुपयोग करने वाले को रोते-झींकते और भाग्य को कोसते ही देखा गया है। क्षीण परिस्थितियों में पले व्यक्तियों ने उसकी सिद्धि से महान सफलताएँ प्राप्त की हैं और उत्तम अवसर प्राप्त व्यक्तियों का जीवन उसके अभिशाप से नष्ट हो गया।

माता-पिता अपने बच्चों को वही शिक्षा देते हैं जो माया रूपी सुनीति ने ध्रुव को अपने साधना पथ से विचलित होने के लिये दी थी कि "क्योंकि अभी तो तेरी आयु खेलने-कूदने की ही है, फिर अध्ययन करने योग्य होगी, उसके बाद भोगों को भोगने का समय होगा और अन्त

में तप करने की अवस्था प्राप्त होगी। हे पुत्र ! तुझ सुकुमार की जो बाल्यावस्था है, उस खेलने की अवस्था में तू तपस्या का अभिलाषी हुआ है अरे, तू क्यों इससे अपना सर्वनाश करने को तत्पर है ? मुझे प्रसन्न करना ही तेरा परम धर्म है, इसलिये तू अपनी आयु के अनुकूल ही कर्मों को कर, मोह का अनुवर्तन कर और इस तपस्या रूपी अधर्म से अब विमुख होजा" (५।१२।१८-२०)।

तभी तो पुराणकार ने प्रेरणा दी है. "मूर्ख मनुष्य बाल्यावस्था में खेलते-कूदते, यौवनावस्था में विषयों में फंसे रहते और वृद्धावस्था में असमर्थ हो जाते हैं। इसलिए विवेकी मनुष्य को बाल, युवा या वृद्धावस्था का विचार न करके, बाल्यावस्था से ही अपने कल्याण में लग जाना चाहिये" (१।१७।७५।७६)। बाल्यावस्था और यौवन में इन्द्रियाँ सशक्त होती हैं। वह कठोरसे कठोर साधना करने में समर्थ होती हैं। वृद्ध होने पर तो वह शिथिल हो जाती हैं, फिर उनसे कुछ भी नहीं बन पाता। इसलिये यह अवस्था पहुँचने से पूर्व ही समय का सदुपयोग करने की प्रेरणा दी गई है।

राजा खट्वांग ने भी आयु से पूर्व एक मुहूर्त के समय का अच्छा उपयोग किया। उसने देवासुर संग्राम में देवताओं की सहायता की थी। इसी लिए देवताओं ने उससे वर माँगने को कहा (४।४ ७५-७६)। उस समय उसकी एक मुहूर्त की आयु रह गई थी। राजा एक अबाध गति वाले यान पर बैठकर मृत्यु लोक में पहुँचा और बोला, "यदि मैंने कभी अपने धर्म को नहीं छोड़ा, यदि सब देवता, मनुष्य, पशु पक्षी और वृक्षादि में भगवान के अतिरिक्त कुछ और नहीं देखा तो मुझे निर्बाध रूप से भगवान श्रीविष्णु की प्राप्ति हो" (४।४।८०)। यह कहकर खट्वांग अपना चित्त परमात्मा में लगाकर लीन हो गये। तभी ऋषि प्रशंसा करते हैं कि 'खट्वांग जैसा कोई भी राजा पृथ्वी पर नहीं होना है जिसने केवल एक मुहूर्त जीवन के शेष रहते हुए स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर अपनी बुद्धि से तीनों लोकों को पार किया और भगवान को प्राप्त कर लिया" (४।४।८१-८२)।

पुराणकार की प्रेरणा है कि हमें एक क्षण भी नष्ट किए बिना अपने लक्ष्य की ओर निर्बाध गति से चलते जाना चाहिए और समय जैसी मूल्यवान सम्पत्ति को नष्ट न करके उसका सदुपयोग करना चाहिए।

साधना का भूषण क्षमा—

विष्णु पुराण (१।१।२०) में क्षमा को साधुता का भूषण कहा गया है। यह निर्बलता का चिन्ह नहीं, शक्ति का द्योतक है। अपराधी को दण्ड देना तो साधारण नियम है। आधुनिक सनोविज्ञान ने भी लम्बे समय के अनुभव के बाद निश्चित्त किया है कि अपराध वृत्ति को दण्ड के भय से सुधारा जाना सम्भव नहीं है, उसके लिये अन्य उपाय अपनाने चाहिए। अपराधी को दण्ड दिलाकर मन को कुछ सन्तोष अवश्य हो जाता है परन्तु उससे किसी का भी भला नहीं होता। अपराधी की अपराध वृत्ति उत्तेजित होती है और दण्ड दिलाने वाले के मन में शत्रुता के भाव दृढ़ होते हैं। पुराणकार प्रह्लाद की कथा के माध्यम से अपनी नीति का स्पष्टीकरण करते हैं। प्रह्लाद के पिता ने उसे अनेकों प्रकार के मृत्यु दण्ड दिए जिनसे वह बच निकला। विष्णु भगवान् के जब उसे दर्शन हुए और उन्होंने वर माँगने के लिये कहा तो प्रह्लाद ने साधुता का परिचय देते हुए कहा—"मेरे देह पर शस्त्राघात करने, अग्नि में जलाने, सर्पों से कटवाने, भोजन में विष देने, पाशबद्ध कर समुद्र में डालने, शिलाओं से दबाने तथा अन्यान्य दुर्व्यवहार मेरे साथ करने के कारण जो पाप मेरे पिता को लगे हैं, उन पापों से वह शीघ्र छूट जायें" (१।२०।२२-२४) यह है सच्ची क्षमा। पिता ने पुत्र को अपना विरोधी समझकर उसे यमपुर पहुँचाने के सभी सम्भव प्रयत्न किए तो पुत्र भी वैसा कोई वर माँग सकता था जिससे अपना बदला लिया जा सके परन्तु उसने अज्ञानी जानकर क्षमा कर दिया। यह महानता का लक्षण है।

स्पष्टवादिता—साहसी जीवन का परिचायक गुण—

मन और व्यवहार में अन्तर होना एक अवगुण है। ऐसे व्यक्ति पर कोई भी विश्वास नहीं करता। इससे अन्ततः हानि ही होती है। जो मन में है, वह क्रिया में होना एक विशेषता है, ऐसा व्यक्ति दूसरों पर विश्वासपात्र

बनता है और उसे हर तरह का सहयोग मिलता है। विष्णु पुराण ऐसी स्पष्ट-वादिता का समर्थक है। एक बार देवताओं दैत्यों में युद्ध होने को था। दोनों ब्रह्मा के पास अपना भविष्य पूछने गये। ब्रह्मा ने उन्हें कहा कि जिस पक्ष के साथ राजा रजि शस्त्र धारणपूर्वक युद्ध करेगा, वही पक्ष जीतेगा (४।९।४-५)। दैत्य उसके पास गये। रजि ने यह शर्त रखी कि यदि विजयी होने पर मैं दैत्यों का इन्द्र बन सकूँ तो मैं तुम्हारी ओर से युद्ध करने को तैयार हूँ। इस पर दैत्यों ने स्पष्ट रूप से कहा—"हम जो कह देते हैं,उससे विपरीत आचरण कभी नहीं करते। हमारे इन्द्र प्रह्लाद हैं और उन्हीं के लिये हम इस संग्राम में तत्पर हुए हैं" (४।९।८)। दैत्य हार गये परन्तु उन्होंने कपट नहीं किया, स्पष्ट रूप से रजि को वास्तविकता से परिचय कराया।

प्रभावशाली व्यक्तियों का चित्रण

विष्णु पुराण में प्रभावशाली व्यक्तियों को उभारने का प्रयत्न किया गया है। शिक्षाओं और प्रेरणाओं का व्यक्ति के मस्तिष्क पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि गणमान्य व्यक्तियों की सच्ची घटनाओं से। इसीलिए पुराणकारों ने जीवन उत्थान के सूत्रों की कथाओं के माध्यम से था की शैली अपनाई। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें दो प्रकार के व्यक्तियों में लाना पड़ा—एक अच्छे और दूसरे बुरे। अच्छे के गुणों को ग्रहण किया जा सके और बुरे की बुराइतों के प्रति सजग रहा जाय।

पहली श्रेणी में अनेकों महान् और आदर्श आत्माओं को लिया गया है। जनक (४।५।१२) आदर्श कर्मयोगी के रूपमें हमारे सामने उपस्थित होते हैं। राजा होकर भी वह सभी भोगोंमें अलिप्त रहते हैं क्षत्रिय होकर ब्राह्मणों और संन्यासियों तक को शिक्षा देते हैं। हर व्यक्ति पुरुषार्थ के बल पर महानतम पद प्राप्त कर सकता है।

ध्रुव ने बाल्यकाल में भगवत्प्राप्ति की साधना आरम्भ की। यह आज-कल के भौतिक वादियों को चेतावनी है, जो अपने बच्चों को स्कूल

की पुस्तकों के अतिरिक्त और कुछ पढ़ने की आज्ञा और प्रेरणा नहीं देते। ध्रुव को अपने अधिकारों से वंचित किया गया। वह किसी के पास रोया नहीं, गिड़गिड़ाया नहीं। पुरुषार्थ के वल पर उसने अपना अधिकार प्राप्त किया। विश्व की हर शक्ति पुरुषार्थ के सामने घुटने टेक देती है। जो व्यक्ति परिस्थितियों का रोना रोकर भाग्य और ईश्वर को कोसा करते हैं, उन्हें ध्रुव के चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए कि वह अपनी बुरी से बुरी परिस्थितियों को पुरुषार्थ से सुधार सकते हैं।

प्रह्लाद निर्भयता के प्रतीक हैं। जो साधक शरीर-भाव से ऊँचा उठ कर आत्म-भाव में स्थित हो जाता है, उसे संसार की महानतम शक्तियों से भी भय नहीं लगता, क्योंकि वह समझता है कि उसका यह पंचतत्वों का शरीर तो आज नहीं कल नष्ट हो ही जायगा। इसके नष्ट होने पर भी मेरा नाश सम्भव नहीं है, मैं तो अविनाशी तत्व हूँ। यह छाप जिसके मन पर स्थायी रूप से पड़ जाती है, वह विष, अग्नि से क्यों मरेगा ? पर्वतों से गिरने और समुद्र में डूबने से उसका क्या होगा ? वह तो सदैव एक जैसी स्थिति में रहेगा। जीवन की सफलता इसी में है न कि भौतिक ऐश्वर्यों के संचय में।

"सगर का जन्म तपोवन में हुआ था। उनका राज्य छिन गया था। जव वह वड़ा हुआ तो अपने सभी शत्रुओं को परास्त करके सात द्वीपों वाली सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य किया" (४।४।४६)। अपने छीने हुए अधिकारों को पराक्रम से वापिस लिया जा सकता है।

भागीरथ भी पुरुषार्थ के प्रतीक ही हैं जो गङ्गा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने में सफल हुए और पृथ्वी को स्वर्ग बना दिया। स्वर्ग से अवतरित होने की कथा को बुद्धिवादी न भी मानें तो यह तो स्वीकार ही होगा कि उसने वाँध बनवाकर गंगाजल को एक निश्चित दिशा में प्रवाहित करने की योजना वनाई और सफल हुए।

कृष्ण वलराम ने तो मिलकर कंस, जरासध जैसी अजेय शक्तियों को पराजित किया और धेनुकासुर, प्रलम्वासुर जैसे अनिष्टकारी तत्वों का

विध्वंस किया। यह उच्चकोटि की परमार्थ साधना है। इसे अपनी सामर्थ्य के अनुसार हर कोई अपना सकता है।

वसुदेव देवकी अपने धुन के पक्के थे। वह जानते थे कि उनके हर शिशु का वध कर दिया जायगा। साधारण बुद्धि तो यह निर्णय करती कि अपने बच्चों की आँखों के सामने मरते देखने की अपेक्षा यही उचित था कि उन्हें उत्पन्न ही न किया जाय परन्तु उनका निश्चय था कि उनकी सन्तान कस का अंत करेगी। वह अपने हृदय को कटता देखते रहे परन्तु दृढ़ निश्चय और संकल्प एक दिन सफल होता ही है। वह कृष्ण को बचाने में सफल हुए जिसने कंस को यमपुरी पहुँचाकर देश में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना की।

नन्द का बलिदान भी कम महत्व का नहीं है। उसने दूसरे के शिशु को बचाने के लिये अपनी कन्या को बलि देवी पर चढ़ा दिया। उस त्याग का ही यह फल हुआ कि कंस जैसी महान शक्ति को तोड़-फोड़ दिया गया। त्याग से बड़े-बड़े कार्य होते देखे गये हैं।

विरोधी व्यक्तित्व भी कम प्रभावशाली नहीं है। रावण (४।१५) ने लंका को स्वर्णमय बना दिया। वह महान् पण्डित और भौतिक विज्ञानी था वह स्वर्ग तक सीढ़ी बनाने के प्रयत्न में था परन्तु सीताजी के प्रति आसक्त होने से वह कलङ्कित हो गया। विद्वान और ऐश्वर्यशाली होना ही पर्याप्त नहीं है, चरित्रवान् होना महानता की प्रथम कसौटी है। वह सब तरह से प्रभावशाली था परन्तु एक अवगुण दुश्चरित्र ने घुन का काम किया।

कंस का विस्तृत चरित्र विष्णु पुराण में उपलब्ध है। (पंचम अंश, अध्याय १६-२१)। उसकी निर्दयता का विशिष्ट उदाहरण है। जनता पर अन्याय और जुल्म ढाना तो प्राचीन राजाओं के लिए एक साधारण बात रही है परन्तु अपनी बहिन की सन्तानों का बध कहीं नहीं सुना गया। जो कहीं न सुना गया, न देखा गया, वह कंस ने किया। जो राजा अपने सगे सम्बन्धियों के साथ ऐसा दुर्व्यवहार कर सकता है उससे कल्पना की जा सकती है कि जनता के लिए वह कितना जालिम होगा। कंस के

चरित्र से स्पष्ट है कि अन्याय और निर्दयता से शक्ति का ह्रास होता है। इतने शक्तिशाली सम्राट् को एक बालक कृष्ण ने परास्त कर दिया। न्याय का पक्ष लेने वाली छोटी शक्तियाँ अन्यायों की शक्तियों पर सहज ही विजय कर सकती हैं।

जरासंध के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। यह कंस का वध किया तो वह असंख्य सेना लेकर मथुरा पर चढ़ाई करने आ गया। यादवों की थोड़ी-सी सेना ने उसकी विशाल सेना को एक नहीं अठारह बार परास्त किया। अन्याय और अत्याचार उसका भी एक अवगुण था। उसने दूसरे राजाओं की हजारों कन्यायें अपने यहाँ कैद कर ली थीं। अन्याय शक्ति को विध्वंस करने वाला है।

वेन ने राजपद पर अभिषिक्त होते ही यह घोषित कर दिया था कि—"मैं भगवान् हूँ, यज्ञ पुरुष और यज्ञ का भोक्ता और स्वामी मैं ही हूँ। इसलिए अब कोई पुरुष दान और यज्ञादि न करे"(१)१३ (१३-१४) राज्य के लिये इस अहितकर मनोभावना को देखकर महर्षि ने पहिले से ही मृत उस राजा का मन्त्रपूत कुशों के आघात से वध कर दिया (१।१३।२९)। अहंकार शक्तिशाली को भी शक्तिशून्य कर देता है। ऋषियों ने उसके दांये हाथ को मला और पृथु की उत्पत्ति की, उसे ही राज्य-शासन सौंपा। अहंकार का सदैव सर नीचा होता है।

हिरण्यकशिपु की घोषणा भी वेन से मिलती-जुलती है। उसने भी प्रह्लाद से कहा था-"मेरे अतिरिक्त और कौन परमेश्वर हो सकता है?' (१।१७।२३)। राज्य और शक्ति के अहङ्कार ने उसे अन्धा कर दिया था। वह अपने को विश्व की समस्त शक्तियों का सिरमौर मानता था। उसका वध स्वयं भगवान् ने नृसिंह अवतार लेकर किया। यह निश्चित है कि विश्व के सभी ऐश्वर्य और भौतिक शक्तियाँ प्राप्त होने पर भी जिसके मनमें अहङ्कार घुसा हुआ है, उसका अन्त बुरा ही होता है, उसे दुर्दिन देखने ही पड़ते हैं।

कृष्ण के नेतृत्व में यादवों ने प्रशंसनीय विकास किया परन्तु जब विलासिता और मद्यपान आदि की कुप्रवृत्तियाँ उनमें पनपने लगीं और

ऊँच नीच के भेद-भावों ने जन्म लिया (५।३७।४२)। तब उनमें आपसी संघर्ष होने लगे और कृष्ण स्वयं उन्हें ध्वस्त करने की सोचने लगे। इन कुरीतियों और कुप्रवृत्तियों ने मनोमालिन्य का रूप लिया, फिर संघर्ष, युद्ध और समाप्ति। अवगुण व्यक्तित्व को भी नष्ट कर देते हैं।

वैदिक युग में इन्द्र का एक सर्वोच्च, सम्मानित पद था। इन्द्र से सम्बन्धित लगभग साढ़े तीन हजार मन्त्र वेदों में आते हैं। इतने मन्त्र और किसी देवता को समर्पित नहीं हुए हैं। परन्तु विष्णु पुराण में उसे सत्ता लोलुप, द्वेषी कामी और ईर्ष्यालु दिखाया गया है। (१।२२।३२-३८) के अनुसार कश्यप पत्नी दिति के गर्भ के इन्द्र ने सात खण्ड कर दिये। पंचम अंश के दसवें अध्याय में कृष्ण ने इन्द्र-यज्ञ की उपेक्षा की और गोवर्धन की पूजा की, (५।१०।४४)। पंचम अंश के तीसरे अध्याय में कृष्ण ने इन्द्र को पारिजात वृक्ष ले जाने पर नीचा दिखाया। नरकासुर वध के लिये इन्द्र कृष्ण से प्रार्थना करते हैं (५।२०।१०-१२)। इन्द्र को तपस्वियों का तप भ्रष्ट करते हुए दिखाया गया है और वह भी सुन्दर स्त्रियाँ भेजकर उन्हें काम-जाल में फँसा कर (१।१५।११-१३)। कण्व ऋषि का तप एक अप्सरा के सहयोग से भ्रष्ट किया गया। महानतम व्यक्तित्वों के भी गिरने की सम्भावना रहती है। अतः सदैव जागरूक रहना ही बुद्धिमानी है। आत्म निरीक्षण द्वारा अपने दोषों पर कड़ी दृष्टि रखनी चाहिये और उन्हें पनपने के अवसर न देने चाहिये क्योंकि जीवन के अन्तिम क्षणों में भी पतन की अवस्था आ सकती है।

कंस अन्याय का प्रतीक था। वह नष्ट हुआ। अन्याय को जो भी सहयोग देगा वह नष्ट होगा, यह निश्चित है। पूतना ने कंस की आज्ञा से कृष्ण का वध करना चाहा परन्तु उसका वही अन्त हुआ जो अन्याय के पक्षपातियों का होता है।

अहिल्या गौतम ऋषि की पत्नी थी, इन्द्र ने गौतम का वेष बदल कर अहिल्या से सम्भोग किया। वह शापवश पत्थर की हो गई। उसने अपना दोष स्वीकार किया, अपनी गलती पर वह पछताई। गौतम ने उसे स्वीकार कर लिया। मौन धारण करने वाली अहिल्या ने राम के समक्ष अपना

दोष माना होगा। इसीलिए कहा गया कि वह उनके दर्शन करने से पाप मुक्त हो गई। (४।४।६१)।

इसी तरह चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी तारा से सम्भोग किया, उसके गर्भ रह गया। इस पर दानवों और दैत्यों में युद्ध हुआ। ब्रह्माजी बीच में पड़े और तारा को बृहस्पति को दिलवा दिया। बृहस्पति ने उस गर्भ को निकाल फैंकने के लिये कहा। आदेश का पालन किया गया। तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। जब यह पूछा गया कि यह किसका बालक है तो तारा ने इसे चन्द्रमा का स्वीकार किया (४।६।३२)। दोष बहुत बड़ा है परन्तु स्वीकार किया गया। बृहस्पति ने उसे अपनाया।

इन दो उदाहरणों से दोषी स्त्रियों के प्रति अपनाई जाने वाली नीति स्पष्ट हो जाती है। दोष सबसे होते हैं और जब वह दोष को स्वीकार कर लेते हैं तो दोष को समाप्त हुआ माना जाता है।

इन दो प्रकार के विरोधी व्यक्तियों से अपने जीवन का मार्ग चुनने में सहायता मिलती है।

साम्प्रदायिक एकता-अनेकता का प्रतिपादन

विष्णु पुराण विष्णु-प्रधान पुराण है। यह स्वाभाविक ही है कि इसमें अन्य देवताओं की अपेक्षा विष्णु को महान सिद्ध किया जाय, जिस तरह से शिव सम्बन्धी पुराणों में शिव को प्रधान और अन्यों को गौड़ माना गया हैं। वैष्णव धर्म उदार धर्म है। इसमें ऊँच नीच का कोई भेद भाव नहीं है, जो भी इधर झुका उसे गले लगाया गया, चाहे वह कोई भी हो, यह भागवत और विष्णु पुराण आदि विष्णु-प्रधान पुराणों से स्पष्ट है। फिर भी पुराणकार की श्रद्धा अपने इष्टदेव की ओर विशेष होती है और वह त्रिदेव को एक मानते हुये भी अनेक स्थानों पर दोनों में विवाद करा कर उस पुराण से सम्बन्धित देव को प्रधान और दूसरों को गौड़ बना ही देता है। उदाहरण के लिये कृष्ण और शंकर युद्ध का वर्णन है—जिसमें

शंकर, कृष्ण से पराजित होते हुए दिखाये गये हैं। (१।३३—२१।२६)

एक और स्थान पर शंकर को कृष्ण से नीचा दिखाया गया है। पंचम अश के ३४ वें अध्याय में वर्णन है कि पौण्ड्रक के वसुदेव राजा ने विष्णु का वेष बनाकर सारे चिन्ह धारण किए और कृष्ण को चुनौती दी। कृष्ण ने स्वीकार किया। वसुदेव पराजित हुए। कृष्ण ने उसके सहायक काशी नरेश का भी सिर काट दिया। काशी नरेश के पुत्र ने शंकर को प्रसन्न करके कृत्या उत्पन्न की जो अपनी विकराल ज्वालाओं के साथ द्वारका में आई। कृष्ण ने चक्र छोड़ा तो वह भागी। शंकर की प्रदान की हुई कृत्या कृष्ण के चक्र के सामने न रुक सकी (५।३४—२८। ४३)।

ब्रह्मा को भी गौड़ मानने के कई उदाहरण इस पुराण में हैं। जब देवासुर सग्राम में देवता पराजित हुए तो ब्रह्मा ने उनकी समस्या का स्वयं समाधान न करके भगवान् विष्णु की शरण में जाने के लिए प्रेरित किया। (१।६—३।४)

ब्रह्मा देवताओं को लेकर भगवान् विष्णु के पास पहुँचे। ब्रह्मा से विष्णु की ऐसी प्रार्थना कराई गई है जैसे आर्त स्वर से कोई भक्त अपने इष्टदेव के प्रति करता है (१।६—४०।५०)। इसका उद्देश्य ब्रह्मा की हीनता और विष्णु की महानता का प्रतिपादन करना है।

इसी तरह से ध्रुव आख्यान (१।१२।४६) में ध्रुव भगवान विष्णु की स्तुति करते हुए कहते हैं—हे देव ! ब्रह्मा आदि वेदों के ज्ञाता भी जिनकी गति का ज्ञान नहीं रखते उनका स्तवन मैं अबोध बालक कैसे कर सकता हूँ।"

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि विष्णु को शिव और ब्रह्मा से बड़ा सिद्ध किया गया है। वैसे पुराणकार ने तीनों को एक शक्ति, एक शक्ति के विभिन्न रूप भी माना है और तीनों के साम्य की स्थापना की है, जिससे उनकी निष्पक्षता और उदारता का परिचय मिलता है।

विष्णु पुराण (१।२—६४।६६) में कहा है। "एक मात्र भगवान् जनार्दन ही सृष्टि, स्थित और प्रलय में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के नामों को ग्रहण करते हैं।" १।४।१६ में पृथ्वी ने भगवान की स्तुति करते

हुए कहा है। "हे प्रभो ! सृष्टि आदि के लिए आप ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, का स्वरूप धारण करते हो, तुम ही सर्व भूतों के कर्ता हो, तुम ही रचने वाले और तुम ही विनाश करने वाले हो।" (१।९।२३) में विष्णु और शिव की एकता स्थापित करते हुए कहा गया है 'यदि विष्णु शिव हैं तो लक्ष्मी पार्वती हैं।"

'ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप में जिन अभूतपूर्व देव की शक्तियाँ हैं, वही भगवान श्री हरि का परम पद है।" (१।९।५६)। "देवताओं ने कहा—हे नाथ ! आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अग्नि, पवन, वरुण,सूर्य,यमराज होते हुए भी निर्विशेष हैं।" (३।१-६८।६४)।

प्रह्लाद ने भगवान् की स्तुति करते हुए कहा "ब्रह्मा रूप से विश्व के सृष्टा,विष्णु, रूप से पावक और रुद्र रूप से संहारक त्रिमूर्ति धारी भगवान को नमस्कार है।" (१।१९।६६)।

विष्णु की तीनों शक्तियों का समन्वय रूप घोषित करते हुये कहा गया है। "जिस जीव द्वारा जो कुछ भी उत्पत्ति होती है, उस सब में भगवान विष्णु का हेतु ही एकमात्र कारण है। इसी प्रकार स्थावर जंगम प्राणियों में से यदि कोई किसी का अन्त करता है, तो वह अन्त करने वाला भी भगवान का अन्त करने वाला रौद्र रूप होता है। इस प्रकार से वह भगवान ही समस्त विश्व के सृजन, पालन और संहारकर्त्ता हैं, तथा वह स्वयं ही जगद्रूप हैं।" (१।२२-३८।४०)।

"ब्रह्मा, विष्णु, शिव यह तीनों ब्रह्म की प्रधान शक्तियाँ हैं।" (१।२२।५८)।

भगवान के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हुए कहा गया है—"आपका जो स्वरूप कल्प के अन्त में सभी भूतों का अनिवार्य रूप से भक्षण कर लेता है, उस काल रूप को नमस्कार है। प्रलयकाल में देवादि सब प्राणियों को सामान्य रूप से भक्षण करके नृत्य करने वाले आपके रुद्र रूप को नमस्कार है।" (३।१७-२५।२६)।

भगवान कृष्ण ने शंकर से अपनी अभिन्नता का प्रदर्शन करते हुए कहा "हे शिव ! आपने जो वर दिया है, उसे मेरे द्वारा ही दिया हुआ

समझें। आप मुझे सदैव अपने से अभिन्न ही देखें। जो मैं हूँ वही आप हैं। सम्पूर्ण विश्व-देवता, दैत्य, मनुष्यादि कोई भी तो मुझसे भिन्न नहीं हैं। हे शङ्कर ! अविद्या से भ्रमित चित्त वाले मनुष्य ही हम दोनों में भेद करते अथवा देखते हैं।" (५।२६–४७।४६)

आश्चर्य है कि यहाँ पर कृष्ण और शङ्कर की अभिन्नता प्रतिष्ठापित की गई है और दो अन्य स्थानों पर इन्हें परस्पर युद्ध में उलझा दिया गया है और शङ्कर को पराजित कर दिया गया जब कि महाभारत के अनुशासन पर्व में युधिष्ठिर के अनुरोध पर कृष्ण ने शिव महिमा का गान किया और उन्हें अपना इष्टदेव मान कर अभीष्ट वर की प्राप्ति के लिए साधनरत हुये।

इस पुराण में दोनों भावों का सम्मिश्रण है। विष्णु प्रधान पुराण होने के कारण विष्णु को सर्व प्रधान देवता घोषित किया गया है और अन्य को गौण। साथ ही तीनों को भिन्न-भिन्न शक्तियों का प्रतिनिधि भी माना गया है। तीनों एक रूप भी स्वीकार किये गये हैं, एकता और अभिन्नता स्थापित की गई है। पहला सामान्य और स्वाभाविक रूप है और दूसरा असामान्य और उदार रूप है।

विविध महत्वपूर्ण विषय

विष्णु पुराण को ज्ञान और विज्ञान का भण्डार ही कहना चाहिए। इसमें हर प्रकार के विषयों का समावेश है। द्वितीय अंश आठवें अध्याय में विज्ञान की चर्चा है। सूर्य को सदा एक ही रूप में स्थित रहने वाला कहा गया है (२।८।१६)। २।६।८ में सूर्य द्वारा वर्षा की व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। २।५।२-३ में भूगोल की जानकारी है। द्वितीय अंश के सातवें और आठवें अध्याय में खगोल विद्या का स्पष्टीकरण किया गया है। प्रथम अंश के द्वितीय, पाँचवें, छठे और द्वितीय अंश के सातवें अध्याय में सृष्टि रचना का विस्तृत वर्णन हैं। वैसे तो सारा विष्णु पुराण ही ईश्वर की सत्ता और महत्ता की पुष्टि करता हैं परन्तु सैद्धान्तिक पक्ष

का प्रतिपादन १।२।१०,१५,२१, १।१२।५७,६७,७४, १।१४-२६, १।१७।१५,२४, ६।४।३७-३८, में विशेष रूप से किया गया है।

१।६।१३ में मन की शुद्धि को परमात्म प्राप्ति का साधन बताया गया है। भगवान उसी पर प्रसन्न होते हैं जो किसी की निन्दा और मिथ्या भाषण नहीं करता और खेदजनक वचन नहीं कहता (३।८।१३)। ईर्ष्यालु, निन्दक, सन्तों का तिरस्कार करने वाला और दान न देने वाला भगवान को प्राप्त नहीं कर सकता (२।७।२९)

१।२।१६, ५०-५३, और ६।४।३४ में प्रकृति का चित्रांकन किया गया है। १।२।२५, १।७।४२, ४३, ३।३।१, ६।४।१५-१६, ५।५।१ में विभिन्न प्रकार के प्रलयों का वर्णन है। इससे यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रलय ही स्वाभाविक रूप से आती है और आती रहेगी। उत्तम साधक को सदैव अपने सामने प्रलय के दर्शन करते रहने चाहिए और निर्भय रूप से विचरना चाहिए। जो प्रलय से निर्भय हो गया, वह संसार की किसी भी विपत्ति से नहीं घबड़ा सकता।

तृतीय अंश के १८ वें अध्याय में एक कथा द्वारा भारतीय मनो-विज्ञान को सुन्दर रूप से उभारा गया है जिससे निराश से निराश व्यक्तियों में भी आशा की उमंगें उछलने लगती हैं। २।१२।९९ में वेदान्त विज्ञान का सार दिया गया है।

१।१।१७, १।११।१७-१८, १।१६।५,८ में कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है और यह साहसपूर्वक कहा गया है कि जो मनुष्य दूसरों का बुरा नहीं करना चाहता, उसको अकारण भी कभी कष्ट नहीं होता। इसी सिद्धान्त से व्यक्ति भविष्य निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करता है। वह केवल अपने कर्मों को सुधार कर किसी से भयभीत नहीं होता। वह अपने भाग्य को स्वयं बनाया है।

राजा खाण्डिक के सामने जब राज्य और परलोक दोनों में से चुनने का अवसर आता है तो वह राज्य की उपेक्षा करके परलोक को ही पसन्द करते हैं। इस कथा में पृथ्वी के भौतिक सुखों और ऐश्वर्यों की अपेक्षा परलोक को अधिक महत्व दिया है। (६।६।२६-३१)।

४।२४।१४७ में काल की शक्ति का उल्लेख है। भस्वर, महत और रघुवंशियों का ऐश्वर्य भी व्यर्थ ही हुआ क्योंकि काल के कटाक्ष मात्र से वह ऐसा मिट गया कि उसकी भस्म भी शेष न रही। किसी की यहाँ स्थायी रूप से रक्षा सम्भव नहीं है। कर्मों के अनुसार भोग भोगकर सभी को समयानुसार जाना है। तो फिर जब काल की तलवार घूमती है तो रोना, पीटना और दुःखी होना कैसा ? यह अज्ञानता और निश्चित तथ्यों पर अविश्वास का व्यक्त करना है। ज्ञानी वही है जो प्रसन्नता-पूर्वक काल की गति को देखता है।

६।७।२८ में मन को बन्धन और मोक्ष का कारण बताया गया है और प्रेरणा दी गई है कि मन को विषयों से हटाकर मोक्ष मार्ग की ओर लगाना चाहिये। इस साधना में दक्ष व्यक्ति ही जीवन की सफलता प्राप्त करता है।

१।६।३-८ में ब्रह्मा से चारों वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है। ३।८। २०-३३ में चारों वर्णों के धर्मों का विवेचन है।

१।४।२२ में विष्णु को यज्ञ रूप कहा गया है। यज्ञ के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है "देव गण यज्ञ से सन्तुष्ट होकर समस्त प्रजा का कल्याण करते हैं। इससे यज्ञ कल्याण का मूल है" (१।६।७-८) यज्ञ से मनुष्य स्वर्ग अपवर्ग प्राप्त करते हैं और अभिलाषित स्थित को पा सकते है (१।६।१०)। यज्ञ प्रत्येक व्यक्ति द्वारा नित्य किया जाने योग्य अनुष्ठान है। मनुष्यों का उपकार करने वाला है और नित्य होने वाले पंच सूना पापों को दूर करने वाला है" (१।६।२८) यह सम्पूर्ण विश्व हवि से ही उत्पन्न हुआ है "(१।१३।२५)।" प्राचीन वर्हि ने यज्ञ द्वारा अपनी प्रजा की अत्यन्त वृद्धि की "(१।१४।३)।" राजाओं ने यज्ञेश्वर भगवान का महायज्ञों द्वारा यजन करके इहलोक और परलोक दोनों को सिद्ध कर लिया (२।६।१२०) इस तरह यज्ञ जैसी महान् साधना की ओर प्रेरित किया गया है।

गाय के प्रति भगवान् कृष्ण का विशेष आकर्षण दिखाया गया है। (५।६।१८।१२)। इन्द्र यज्ञ की उपेक्षा करके गोवर्धन की पूजा आरम्भ

की गई है (५।१०।४४)। इसका विद्वान यह अर्थ लगाते हैं कि यह गोवर को धन मानने की ओर संकेत है।

पुराणों में प्रतीकात्मक शैली का खुले रूप में प्रयोग किया जाता है। भगवान विष्णु का स्वरूप स्वयं इनसे गुथा हुआ है। उनकी चार भुजाएँ चार दिशाओं, यज्ञ कुण्ड, चार देवता, चारों वेद, विकास की चार अवस्थाओं, चार आधारभूत मानसिक, प्रक्रियाओं, चार आश्रमों, चार वर्णों, चारों ओर से सुरक्षा, चार देवी गुणों, जीवन के चतुर्मुखी उद्देश्य और अन्तःकरण की वृत्तियों को परिष्कृत करने की ओर संकेत है। उनकी आठ भुजाएँ स्वास्थ्य, विद्या, धन, व्यवसाय, सङ्गठन, यश, शौर्य और सत्य के विकास की ओर इंगित करती हैं।

जीवन को परिष्कृत करने वाले संस्कारों का भी विष्णु पुराण में वर्णन है। (३।१३।१) में जन्म के समय का विधान दिया गया है और जातकर्म संस्कार करने को कहा गया है। (३।१०।८-१०) में नामकरण का विधान और नामकरण के सम्बन्ध में उपयोगी मनोवैज्ञानिक जानकारी दी गई है (१३)। विवाह और कन्या के चुनाव के सम्बन्ध में निर्देश दिये गए हैं (१७-३१)। संन्यास की भी चर्चा है (१४)। ३।१३।८-१३ में दाहसंस्कार का विधान दिया गया है।

इस तरह से अत्यन्त उपयोगी विषयों का चयन इस पुराण में किया गया है

विष्णु पुराण उच्चकोटि का सुधारात्मक प्रेरणात्मक ग्रन्थ है

आजकल भी कोई सुधारात्मक ग्रन्थ लिखा जाय तो सर्व प्रथम वर्तमान पतित समाज और कुशासन का निरीक्षण होगा और तत्पश्चात् सुधार के लिए सुझाव दिए जायेंगे। राष्ट्र विकास के चहुँमुखी सुझाव ही उपयोगी

माने जायेंगे बजाए एकांगी विकास के। विष्णु पुराण ने सर्वांगीण उन्नति के लिए ही भूमिका तैयार की है। उन्होंने स्वभाविक रूप से पहले सामाजिक दुर्दशा, राजनीतिक परिस्थितियाँ, और नीतियों को प्रस्तुत किया है। वह भली प्रकार जानते थे कि भारतीय संस्कृति का गौरव महान है परन्तु फिर भी साहस के साथ ऐसे-ऐसे उदाहरणों का उल्लेख किया है जिनकी सारे विश्व में पुनरावृत्ति सम्भव नहीं हो सकी। ऐसे हृदय विदारक दृश्य उपस्थित किए हैं कि पाठक को अन्याय के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है। उस समय की राजनीतिक अव्यवस्था अहंकारी, निरंकुश, अन्यायी राजाओं के कारण हुई जो स्वय को भगवान् समझते थे। बेन और हिरण्यकशिपु के नाम इस कोटि में आते हैं। कंस ने सत्ता की स्थिरता के लिए क्रूरता का सहारा लिया, हिरण्यकशिपु ने विरोध को दबाने के लिये शक्ति का दुरुपयोग किया। छोटी-छोटी बातों पर हत्यायें की जाती थीं। माँस मदिरा का सेवन और जुए की कुप्रवृत्ति का प्रचलन था। नरमांस भक्षी के भी उदाहरण दिए गए हैं। बलराम तक मदिरा का सेवन करते थे। व्यभिचार के परिणाम स्वरूप अवैध सन्तान भी होती थीं। कण्डु जैसे ऋषि भी कामासक्त होते दिखाए गए हैं। कृष्ण पर अश्लीलता का आरोप लगाया गया है। राजा एक से अधिक पत्नी रखते थे। जनता में भी यह प्रवृत्ति हो गयी। अधिक पत्नियों से अधिक सन्तान होना स्वाभाविक है। अधिक सन्तान के उचित पालन पोषण में अड़चन पड़ती है अनेकों प्रकार की उलझनें उत्पन्न हो जाती हैं। गन्धर्व विवाहों का भी प्रचलन था। स्वप्न में देखे युवक के साथ भी विवाह होने की विलक्षण घटनायें हैं अनमेल विवाहों की भी सूचना मिलती है। सपिण्ड विवाह भी खुले रूप में होते थे। ऊँच-नीच का भेदभाव भी माना जाता था, व्यवहारिक शिष्टता का अभाव था, बड़ों का उपहास किया जाता था। कन्याओं के अपहरण की भी कथायें दी गई हैं। जनता का नैतिक चरित्र गिरा हुआ था और शासन में अन्याय अत्याचार का बोल-बाला था।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जब अन्याय अपनी सीमाओं का उल्लंघन करने लगता है तो न्याय की स्थापना के लिए महान
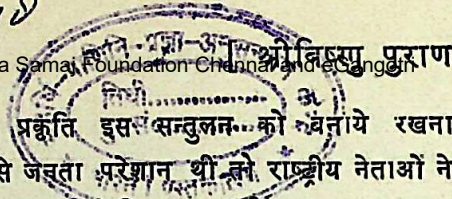
आत्माएँ अवतरित होती हैं, प्रकृति इस सन्तुलन को बनाये रखना चाहती है। जब राजा वेन से जनता परेशान थी तो राष्ट्रीय नेताओं ने मिलकर वेन को हटा दिया। पृथु ने कृषि, शासन और अन्य आवश्यक सुधार किए। जब हिरण्यकशिपु के जुल्म बढ़े तो नृसिंह द्वारा उसका वध हुआ। कंस का कृष्ण द्वारा वध कराया गया। अन्याय शक्ति का घुन है। अन्यायी का भवन रेत की दीवार पर खड़ा बताया जाता है। यह विष्णु पुराण से भी स्पष्ट है क्योंकि शक्तिशाली सम्राटों का विरोध छोटी शक्तियों ने किया और उन्हें सफलता मिली।

पुराणकार केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता को ही पर्याप्त नहीं मानते हैं। वह सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करने के लिए नैतिक व आध्यात्मिक विकास भी आवश्यक समझते हैं। इसलिए सावधानी और सुरक्षा की भी सामग्री प्रस्तुत की गई है। उनका विचार है कि सद्गुणों के विकास के लिए अवगुणों पर पहले ध्यान देना होगा। अतः वह काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार, तृष्णा, मोह, धन के अपव्यय, अविवेक, अशिष्टता, भोग-विलास, व्यभिचार, पशुवलि व वैवाहिक कुरीतियों की ओर ध्यान आकर्षित कराते हैं और चेतावनी देते हैं कि यदि उनसे बचा न गया तो व्यक्तिगत व सामाजिक उत्थान अशक्त हो जायेगा।

पुराणकार ने क्रमिक विकास का नियम अपनाया है। उन्होंने आचार की पूरी योजना प्रस्तुत की है। वह आत्मसाधना से पूर्व नागरिकता की परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक मानते हैं। इसलिये प्रातः व सायं के अलग-अलग अपनाने योग्य आचार दिये हैं, लोकाचार व सदाचार की उपयोगी शिक्षाएँ दी हैं।

जीवन निर्माण के लगभग सभी सूत्रों का संकलन कर लिया गया गृहस्थ में प्रवेश करके दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिये सूत्र दिये गये हैं, गृहस्थ को योग मानकर उसकी साधना की प्रेरणा दी गई है, माता-पिता की सेवा, अतिथि पूजन, गुरुजनों का सम्मान, शिष्टाचार व सद्गुणों के विकास पर वल दिया गया है। पुरुषार्थ, कर्तव्यनिष्ठा से उत्थान की सम्भावनायें प्रदर्शित की गई हैं। समय के सदुपयोग, सहन-

शीलता, क्षमाशीलता, निर्भयता, उद्योग और क्रियाशीलता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। धम की वास्तविकता पर प्रकाश डाला गया है और भक्ति ज्ञान, वैराग्य निष्काम कर्मयोग और साम्ययोक द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाया गया है। सदैव आत्म-निरीक्षण द्वारा विवेक की स्थिरता, दोषों दुर्गुणों पर पैनी दृष्टि रखने को कहा है।

बन्धन और मोक्ष के कारणों पर भी विचार किया है और मोक्ष के लिए मन की शुद्धि को आवश्यक माना गया है। पृथ्वी के समस्त ऐश्वर्यों की अपेक्षा परलोक सुधार को श्रेष्ठ माना गया है। कर्म, उद्योग, तप, पुरुषार्थ और कर्त्तव्य निष्ठा से उन्नति के उच्चतन पद पर पहुँचने का आश्वासन दिया गया है। यह शिक्षाएँ क्रियात्मक रूप से प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा वर्णित की गई हैं जिनका विशेष प्रभाव पड़ता है।

शिक्षाओं को जीवन में उतारने के लिए साधनाओं का विस्तृत विवेचन हैं। हर स्तर के साधक के लिए अलग-अलग साधनाएँ दी गई हैं। श्रद्धा को जाग्रत करने की कथाएँ और नियम दिये गये हैं। सन्ध्या, जप, तप, प्रार्थना आदि को अपनाने की प्रेरणा दी गई है। योग मार्ग के पथिकों के लिए पतञ्जलि के अष्टांग योग के विभिन्न अङ्गों का वर्णन किया गया है। आत्म-साधना का भी पथ-प्रदर्शन किया गया है। इस तरह से शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी भोजनादि के नियम से लेकर अद्वैत तक की साधनाओं का वर्णन है। बार-बार दोषों के परि-मार्जन की चेतावनी और नैतिक विकास पर बल दिया गया है। पुराण का पाठ करते हुए पाठक के अपने दोष और दुर्गुण उभर कर सामने आ जाते हैं और कथाओं के माध्यम से यह भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है कि इनके यह दुष्परिणाम होंगे। इससे भय की उत्पत्ति और विवेक की जाग्रति होती है। इस मिश्रित प्रतिक्रिया से वह सुधार के आवश्यक पग उठाता है, अपनी आत्मा स्वयं उसे बार-बार धिक्कारती है और उसे अपने दुष्कर्मों पर ग्लानि होती है। आत्मग्लानि से घुटन उत्पन्न होती है। यह घुटन ही सुधार का मार्ग प्रशस्त करती है।

उपरोक्त तथ्यों से विदित होगा कि विष्णुपुराण का लेखन एक विशेष उद्देश्य से किया गया है और वह है राष्ट्र का नैतिक व आध्यात्मिक सुधार। इसलिये इसे यदि उच्चकोटि का सुधारात्मक व प्रेरणात्मक ग्रन्थ कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी।

मुद्रक : यमुना प्रिंटिंग प्रेस, आर्य समाज रोड, मथुरा।

पुराणों का वृहद् प्रकाशन

सरल हिन्दी अनुवाद सहित

१—शिव पुराण	२ खण्ड	...	
२—विष्णु पुराण	२ खण्ड	...	
३—मार्कण्डेय पुराण	२ खण्ड	...	
४—अग्नि पुराण	२ खण्ड	...	
५—गरुड़ पुराण	२ खण्ड	...	
६—हरिवंश पुराण	२ खण्ड	...	
७—देवी भागवत पुराण	२ खण्ड	...	
८—भविष्य पुराण	२ खण्ड	...	
९—लिंग पुराण	२ खण्ड	...	
१०—पद्म पुराण	२ खण्ड	...	
११—वामन पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१२—कूर्म पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१३—ब्रह्मवैवर्त पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१४—मत्स्य पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१५—स्कन्द पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१६—ब्रह्म पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१७—नारद पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१८—कालिका पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१९—वाराह पुराण	२ खण्ड	...	२०)
२०—कल्कि पुराण		...	५)७५
२१—सू. पराण		...	१०)
२२—महाभारत (भाषा)		...	८)
२३—श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा		...	१४)

प्रकाशक : संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर
बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)